Methodology of Educational Research And Statistics

DEDU404

LOVELY
PROFESSIONAL
UNIVERSITY

शैक्षिक अनुसंधान प्रणाली एवं सांख्यिकी

METHODOLOGY OF EDUCATIONAL RESEARCH AND STATISTICS

Copyright © 2012 Laxmi Publications (P) Ltd.
All rights reserved

Produced & Printed by
LAXMI PUBLICATIONS (P) LTD.
113, Golden House, Daryaganj,
New Delhi-110002
for
Lovely Professional University
Phagwara

पाठ्यक्रम

(SYLLABUS)

शैक्षिक अनुसंधान प्रणाली एवं सांख्यिकी

(Methodology of Educational Research and Statistics)

उद्देश्य

- अनुसंधान की आधारभूत अवधारणाओं, अनुसंधान प्रक्रियाओं और आकल्पों को समझना।
- विभिन्न प्रकार की अनुसंधान समस्याओं को चुनने की तकनीकों को समझना।
- अनुसंधान प्रस्ताव तैयार करने की योग्यता प्राप्त करना।

Objectives

- To understand the basic concepts of research, research processes and designs.
- To understand the techniques of selecting different types of research problems.
- To acquire the skills of preparing the research proposal.

Sr. No.	Content
1	Educational Research – concept, need and scope, Approaches to research- Qualitative vs. Quantitative, Types of research – basic, applied research and action research.
2	Selection and identification of research problem, sources of research problem, Review of related literature, need and sources.
3	Methods of research: descriptive method, Survey method, Correlation Studies, Developmental Studies, Experimental research, Ex post-facto research, Experimental Designs, Historical research.
4	Tools and techniques of data collection; Observation and observation schedule, Questionnaire, Rating scale, Case study, Interview and Interview Schedule.
5	Population, sample and sampling design, Probability and non-probability sampling techniques,
6	Hypothesis – concept, characteristics, sources, Formulation of hypotheses, testing of hypotheses, Quantitative data – collection, scoring, analysis and interpretation, Qualitative data – collection, scoring, analysis and interpretation, Preparation of research report and dissemination of findings.
7	Statistical methods: frequency distribution and graphical representation, Measurement of central tendency- Mean, Median, Mode, Measures of variability- SD, MD, QD.
8	Probability: Normal Probability Curve and its Uses.
9	Correlation- rank difference, product moment method
10	Chi-square test, T-test, F-test.

विषय-सूची

इकाई (Units) **(CONTENTS)** **पृष्ठ संख्या (Page No.)**

1. शैक्षिक अनुसंधान (Educational Research) 1
2. अनुसंधान के प्रकार : मूलभूत, व्यावहारिक एवं क्रियात्मक अनुसंधान (Types of Research: Basic, Applied and Action Research) 10
3. अनुसंधान–समस्या का चयन, कथन एवं स्रोत (Selection, Statement and Source of Research Problem) 24
4. संबंधित साहित्य की समीक्षा, आवश्यकता एवं स्रोत (Review of Related Literature Need and Sources) 37
5. अनुसंधान की विधियाँ (Methods of Research) 57
6. वर्णनात्मक अनुसंधान (Descriptive Research) 62
7. विकासात्मक एवं घटनोत्तर अनुसंधान (Developmental and Ex-Post Facto Research) 71
8. ऐतिहासिक अनुसंधान (Historical Research) 78
9. प्रयोगात्मक अनुसंधान (Experimental Research) 86
10. प्रयोगात्मक आकल्प (Experimental Design) 96
11. निरीक्षण एवं निरीक्षण योजना (Observation and Observation Schedule) 119
12. प्रदत्तों के संकलन के उपकरण एवं तकनीक (Tools and Techniques of Data Collection) 125
13. प्रश्नावली (Questionnaire) 143
14. निर्धारण मापनी (Rating Scale) 148
15. साक्षात्कार एवं साक्षात्कार योजना (Interview and Interview Schedule) 158
16. केस अध्ययन विधि (Case Study Method) 165
17. समष्टि, न्यादर्श एवं न्यादर्श–चयन की विधियाँ (Population, Sample and Sampling Design) 176
18. संभाविता एवं असंभाविता प्रतिचयन विधियाँ (Probability and Non-Probability Sampling Techniques) 183
19. परिकल्पना : अवधारणा, विशेषताएँ एवं स्रोत (Hypothesis: Concept, Characteristics and Sources) 198
20. परिकल्पना का प्रतिपादन एवं निरीक्षण (Formulation and Testing of Hypothesis) 212
21. गुणात्मक एवं संख्यात्मक आंकड़े (Qualitative and Quantitative Data) 219
22. साँख्यिकीय विधियाँ (Statistical Methods) 229
23. केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापक–मध्यमान, मध्यांक, बहुलांक (Measurement of Central Tendency–M, Md, Mo) 237
24. प्रायिकता : समवितरण वक्र एवं प्रयोग (Probability: Normal Probability Curve and its Uses) 255
25. विचलन के मापक : क्यूडी, एमडी, एसडी (Measures of Dispersion QD, MD, SD) 275
26. सह–संबंध : क्रमांतर विधि, गुणन–आघूर्ण विधि (Correlation: Rank Difference Method, Product-Moment Method) 293
27. काई वर्ग परीक्षण (Chi-Square Test) 311
28. टी–टेस्ट (T-Test) 323
29. एफ–टेस्ट (F-Test) 339
30. अनुसंधान प्रतिवेदन का लेखन (Preparation of Research Report) 367

नोट

इकाई 1: शैक्षिक अनुसंधान (Educational Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

1.1 शैक्षिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Educational Research)

1.2 शिक्षा अनुसंधान की आवश्यकता (Need of Educational Research)

1.3 शैक्षिक अनुसंधान का क्षेत्र (Scope of Educational Research)

1.4 अनुसंधान की विशिष्ट भावी आवश्यकताएँ (Distinctive Future Need of Educational Research)

1.5 सारांश (Summary)

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- शैक्षिक अनुसंधान को जानने में;
- शैक्षिक अनुसंधान की आवश्यकता को जानने में;
- शैक्षिक अनुसंधान की प्राथमिकता को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शैक्षिक अनुसंधान से तात्पर्य उस अनुसंधान से होता है, जो शिक्षा के क्षेत्र में किया जाता है। उसका उद्देश्य शिक्षा के विभिन्न पहलुओं, आयामों, प्रक्रियाओं आदि के विषय में नवीन ज्ञान का सृजन, वर्तमान ज्ञान की सत्यता का परीक्षण, उसका विकास एवं भावी योजनाओं की दिशाओं का निर्धारण करना होता है। ट्रैवर्स ने शिक्षा–अनुसंधान को एक ऐसी क्रिया माना है, जिसका उद्देश्य शिक्षा–संबंधी विषयों पर खोज करके ज्ञान का विकास एवं संगठन करना होता है। विशेष रूप से छात्रों के उन व्यवहारों के विषय में ज्ञान एकत्र करना, जिनका विकास किया जाना शिक्षा का धर्म समझा जाता है, शिक्षा–अनुसंधान में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। **ट्रैवर्स** के अनुसार, शिक्षा के विभिन्न पहलुओं के विषय में संगठित वैज्ञानिक ज्ञान–पुंज का विकास अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि उसी के आधार पर

नोट

शिक्षक के लिए यह निर्धारित करना संभव होता है कि छात्रों में वांछनीय व्यवहारों के विकास हेतु किस प्रकार की शिक्षण एवं अधिगम परिस्थितियों का निर्माण करना आवश्यक होगा।

1.1 शैक्षिक अनुसंधान का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Educational Research)

शिक्षा के अनेक संबंधित क्षेत्र एवं विषय हैं, जैसे– शिक्षा का इतिहास, शिक्षा का समाजशास्त्र, शिक्षा का मनोविज्ञान, शिक्षा-दर्शन, शिक्षण-विधियाँ, शिक्षा-तकनीकी, अध्यापक एवं छात्र, मूल्यांकन, मार्गदर्शन, शिक्षा के आर्थिक आधार, शिक्षा-प्रबंधन, शिक्षा की मूलभूत समस्याएँ आदि। इन सभी क्षेत्रों में बदलते हुए परिवेश एवं परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल वर्तमान ज्ञान के सत्यापन एवं वैधता-परीक्षण की निरंतर आवश्यकता बनी रहती है। यह कार्य शिक्षा-अनुसंधान के द्वारा ही सम्पन्न होता है। इस प्रकार शिक्षा-अनुसंधान शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान एवं पूर्वस्थित ज्ञान का परीक्षण एवं सत्यापन तथा नये ज्ञान का विकास करने की एक विधा, एक प्रक्रिया है। शिक्षा के प्रत्येक क्षेत्र में अनेक प्रकार की समस्याएँ समय-समय पर सामने आती हैं। उनके समाधान खोजना भी आवश्यक होता है। यह कार्य भी शिक्षा-अनुसंधान के द्वारा ही संभव होता है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा-अनुसंधान शिक्षा की समस्याओं के समाधान प्राप्त करने की एक विशिष्ट प्रक्रिया है। शिक्षा-संबंधी अनेक अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने का माध्यम भी शिक्षा अनुसंधान है। कितने ही विशेषज्ञों ने शिक्षा-अनुसंधान की परिभाषाएँ प्रस्तुत की हैं।

भिटनी (1954) के अनुसार, शिक्षा-अनुसंधान शिक्षा-क्षेत्र की समस्याओं के समाधान खोजने का प्रयास करता है तथा इस कार्य की पूर्ति हेतु उसमें वैज्ञानिक, दार्शनिक एवं समालोचनात्मक कल्पना-प्रधान चिंतन-विधियों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार वैज्ञानिक अनुसंधान एवं पद्धतियों को शिक्षा-क्षेत्र की समस्याओं के समाधान के लिए लागू करना शैक्षिक अनुसंधान कहलाता है।

कौरनेल का मानना है कि विद्यालय के बालकों, विद्यालयों, सामाजिक ढाँचे तथा सीखने वालों के लक्षणों एवं इनके बीच होने वाली अन्तर्क्रिया के विषय में क्रमबद्ध रूप से सूचनाएँ एकत्र करना शिक्षा-अनुसंधान है।

यूनेस्को के एक प्रकाशन के अनुसार, शिक्षा-अनुसंधान से तात्पर्य है उन सब प्रयासों से जो राज्य अथवा व्यक्ति अथवा संस्थाओं द्वारा किए जाते हैं तथा जिनका उद्देश्य शैक्षिक विधियों एवं शैक्षिक कार्यों में सुधार लाना होता है।

1.2 शिक्षा अनुसंधान की आवश्यकता (Need of Educational Research)

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। उसका मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति में ऐसे परिवर्तन लाना होता है, जो सामाजिक विकास एवं व्यक्ति के जीवन को उन्नतशील बनाने के दृष्टिकोण से अनिवार्य होते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति मुख्य रूप से शिक्षा की प्रक्रिया पर निर्भर करती है। यदि शिक्षा की प्रक्रिया सशक्त एवं प्रभावशाली हो तो व्यक्ति में उसके द्वारा उपरोक्त वांछनीय परिवर्तन लाना सरल एवं संभव होगा अन्यथा नहीं। अत: शिक्षा की प्रमुख समस्या है कि उसकी प्रक्रिया को सुदृढ़ प्रभावशाली एवं सशक्त कैसे बनाया जाए। इस समस्या के समाधान हेतु अनुसंधान आवश्यक है।

क्या आप जानते हैं

अनुसंधान के द्वारा ही उन विधियों, पद्धतियों, परिस्थितियों की खोज संभव है, जो शिक्षा की प्रक्रिया को सबल बनाने में सहयोग दे सकती हैं। इस दृष्टिकोण से अनुसंधान का शिक्षा के क्षेत्र में बहुत अधिक महत्त्व है।

शिक्षा की प्रक्रिया एक बहुतत्वीय प्रक्रिया है। उसके अनेक आधारभूत तत्व हैं। सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियाँ, गृह-परिवेश, विद्यालय का वातावरण एवं उसकी अनेक विशेषताएँ, शिक्षण विधियाँ, पाठ्य-सामग्री,

नोट

शिक्षण की सहायक सामग्री, अध्यापक एवं उसकी अनेक विशेषताएँ, विद्यार्थी एवं उसकी अनेक विशेषताएँ, अधिगम-प्रक्रिया आदि अनेक चर हैं, जो शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावित करते हैं। इन सभी की अनेक विशेषताएँ ऐसी हो सकती हैं, जिनके विषय में अभी तक किसी को कोई जानकारी नहीं है। उनकी खोज अनुसंधान के माध्यम से ही संभव है। साथ ही जिन चरों की खोज की जा चुकी है, उनके विषय में यह जानना एवं निश्चित करना आवश्यक है कि शिक्षा की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने में प्रत्येक कितना महत्त्वपूर्ण है तथा उसका प्रक्रिया में समावेश किस प्रकार किया जाना चाहिए, उसके प्रयोग को किस प्रकार अधिक प्रभावशाली बनाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा-अनुसंधान का विशेष महत्त्व है, क्योंकि उसके द्वारा ही उपरोक्त समस्याओं का समाधान संभव हो सकता है।

सामाजिक-आर्थिक परिस्थितियाँ शिक्षा के प्रसार, उसकी गुणवत्ता, उसके परिणामों एवं उसकी प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। अत: इनके संदर्भ में शिक्षा की प्रक्रिया एवं उसकी व्यवस्था का अध्ययन किया जाना भी अत्यन्त आवश्यक है। किस प्रकार की परिस्थितियाँ किस प्रकार शिक्षा को प्रभावित करती हैं, यह अनुसंधान द्वारा ही निर्धारित किया जा सकता है। अत: इस दृष्टिकोण से शिक्षा-अनुसंधान का अपना महत्त्व है।

विद्यार्थियों के व्यक्तित्व की विशेषताएँ भी शिक्षा की प्रक्रिया को प्रभावित करती हैं। अनेक ऐसी विशेषताओं के प्रभाव का अध्ययन किया गया है, परन्तु परिणाम असंदिग्ध एवं एक से प्राप्त नहीं हुए हैं। कुछ विशेषताओं का अध्ययन तो न के बराबर ही है। अत: इस क्षेत्र में भी अनुसंधान की बहुत आवश्यकता है। इन अध्ययनों को अधिक सुसंगठित एवं वैध विधियों द्वारा सम्पन्न किए जाने की आवश्यकता है।

पिछले कुछ वर्षों में बहुत-सी नई-नई शिक्षण-विधियों का निर्माण किया गया है। इनकी उपयोगिता एवं प्रभाविकता का गहन स्तर पर अध्ययन करने की आवश्यकता है। साथ ही और भी विशिष्ट विधियों की खोज की जानी चाहिए। इस क्षेत्र में अनुसंधान महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकता है। गत वर्ष में बहुत से शिक्षण-प्रतिमानों (models to teaching) का निर्माण किया गया है परन्तु, इनका पर्याप्त परीक्षण नहीं हो पाया है। शिक्षा-अनुसंधान द्वारा इनके परीक्षण की आवश्यकता है। इसी प्रकार अभिक्रमित अधिगम (programmed learning), सूक्ष्म-शिक्षण (micro-teaching), सिमुलेटिक शिक्षण की उपयोगिता का अध्ययन भी आवश्यक है।

उदाहरण शिक्षक स्वयं शिक्षा की प्रक्रिया का एक महत्त्वपूर्ण घटक है।

शिक्षक व्यक्तित्व की विशेषताओं, उसके ज्ञान, उसके व्यवहार का विद्यार्थियों के विकास पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता है, परन्तु ये कौन-सी विशेषताएँ हैं, कैसे अपना प्रभाव डालती हैं, किस प्रकार का प्रभाव डालती हैं आदि ऐसे प्रश्न हैं, जो अभी तक अनुत्तरित हैं। शिक्षा-अनुसंधान द्वारा इनके निश्चित उत्तर प्राप्त करना आवश्यक है। इस दृष्टिकोण से शिक्षा में अनुसंधान की बहुत आवश्यकता प्रतीत होती है।

प्रत्येक व्यक्ति अपने परिवेश की परिस्थितियों से प्रभावित होता है। विद्यार्थी निरंतर गृह-परिवेश एवं विद्यालय परिवेश के बीच विचरता है। गृह-परिवेश एवं विद्यालय-परिवेश को कौन-सी परिस्थितियाँ एवं विशेषताएँ, उसके अधिगम एवं विकास को किस प्रकार प्रभावित करती हैं, शिक्षा-अनुसंधान द्वारा इसका निर्धारण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस क्षेत्र में शिक्षा-अनुसंधान की बहुत आवश्यकता है।

शिक्षा की प्रक्रिया के दायरे से हटकर अन्य संदर्भों में भी शिक्षा-अनुसंधान की बहुत अधिक आवश्यकता प्रतीत होती है। शिक्षा-तंत्र आत्मनिर्भर एवं स्वतंत्र नहीं है, उसकी व्यवस्था एवं गतिविधियों पर समाज के कई दूसरे तंत्रों (systems) का प्रभाव पड़ता है। राजनीति, सामाजिक-व्यवस्था, अर्थव्यस्था, तकनीकी विकास, धर्म, जाति आदि अनेक तत्व शिक्षा को प्रभावित करते हैं। शिक्षा तथा इन सभी के बीच निरंतर अन्तर्क्रिया होती रहती है। अत: यह जानना भी आवश्यक है कि ये सब किस प्रकार किसी देश की शिक्षा व्यवस्था को प्रभावित करते हैं। शिक्षा भी इन तंत्रों को प्रभावित करती है। अत: यह जानना भी महत्त्वपूर्ण है कि शिक्षा इन्हें कहाँ तक और किस प्रकार प्रभावित करती है। इस क्षेत्र में भी शिक्षा-अनुसंधान की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से भी शिक्षा-अनुसंधान का विशेष महत्त्व है।

नोट

ऐतिहासिक दृष्टिकोण से भी शिक्षा का अध्ययन किया जाना महत्त्वपूर्ण है। यह मानवीय जिज्ञासा एवं उसकी रुचि का विषय है। विभिन्न कालों में शिक्षा का स्वरूप क्या रहा है, किन परिस्थितियों ने उसे वह रूप दिया है, आज की परिस्थितियों में उसकी क्या प्रासंगिकता है आदि स्वयं में महत्त्वपूर्ण हैं। इन प्रश्नों के उत्तर शिक्षा-संबंधी उपलब्ध ज्ञान की सीमाओं का विस्तार कर सकते हैं तथा मानवीय जिज्ञासा को शांत करते हैं। अत: इस क्षेत्र में भी शिक्षा-अनुसंधान की आवश्यकता है। इस दृष्टिकोण से भी शिक्षा-अनुसंधान का महत्त्व है।

शैक्षिक नियोजन के दृष्टिकोण से भी शैक्षिक अनुसंधान का बहुत महत्त्व है। संतोषजनक शैक्षिक नियोजन एवं उसके मूलभूत आधार निर्धारित करने के लिए अनुसंधान आवश्यक है।

सावधानी शैक्षिक नियोजन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि संसाधनों एवं दायित्वों की पूरी जानकारी हो।

साथ ही समाज के लोगों, उनकी संस्कृति, उनकी पारस्परिक समानताओं-असमानताओं की जानकारी भी आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि समाज के संगठनों, उनके प्रभावी नियंत्रणों, उनकी आवश्यकताओं, आकांक्षाओं एवं समस्याओं की भी अच्छी जानकारी हो। यह जानकारी प्राप्त करने का माध्यम शैक्षिक अनुसंधान ही हो सकता है। अत: उसका इस दृष्टिकोण से भी बहुत महत्त्व है। इस जानकारी के बिना शैक्षिक नियोजन कभी भी सार्थक एवं यथार्थता से जुड़ा नहीं हो सकता। कई बार ऐसा होता है कि बिना आधारभूत जानकारी के शैक्षिक योजनाएँ बना ली जाती हैं तथा बिना अच्छी तरह विचार किए उन्हें क्रियान्वित कर दिया जाता है और बाद में पता लगता है कि वे समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप न होने के कारण न तो लोगों के हित में हैं और न समाज उन्हें स्वीकार कर पाया है। तब उन पर खर्च किया गया धन एवं जनशक्ति व्यर्थ चले जाते हैं। धन एवं जनशक्ति के दुरुपयोग से बहुत हद तक बचा जा सकता है, यदि शैक्षिक अनुसंधान द्वारा आधारभूत जानकारी प्राप्त करके उसके आधार पर योजनाएँ तैयार की जाएँ।

शैक्षिक योजनाओं को सफलतापूर्वक क्रियान्वित करने के लिए ऐसे नेतृत्व की आवश्यकता होती है, जो प्रभावशाली हो। नेतृत्व प्रभावशाली तभी हो सकता है, जब उसे यह जानकारी हो कि किस प्रकार के सुधारों की आवश्यकता है, किस प्रकार की समस्याओं से शिक्षा-जगत के लोग जूझ रहे हैं, शिक्षा की प्रगति में कौन तत्व बाधक हैं, शिक्षा-क्षेत्र के किस कोने में क्या घट रहा है, शिक्षा-जगत के विभिन्न संगठन किस दिशा में जा रहे हैं आदि। शिक्षा-अनुसंधान यह सब जानकारी जुटाकर नेतृत्व को सशक्त एवं प्रभावशाली बना सकता है तथा शिक्षा-जगत की विसंगतियों को दूर करने की सामर्थ्य उसे प्रदान कर सकता है।

प्राय: सभी समाज रूढ़ियों, निर्मूल धारणाओं, अनेक प्रकार के पूर्वाग्रहों एवं दकियानूसी विचारों, अंधविश्वासों तथा घिसी-पिटी मान्यताओं से ग्रसित रहते हैं। देश एवं समाज की उन्नति में ये बाधक होते हैं। शैक्षिक अनुसंधान उन्हें प्रकाश में लाने का प्रयास कर सकता है तथा उन कड़ियों को खोजकर समाज के समक्ष प्रस्तुत कर सकता है, जिनसे ये अंधविश्वास जुड़े होते हैं। शिक्षा के माध्यम से इन्हें किस प्रकार दूर किया जा सकता है, ये सुझाव भी शैक्षिक अनुसंधान के द्वारा उपलब्ध हो सकते हैं। कैसे सामाजिक जागरूकता बढ़े, लोग अंधकार से प्रकाश में आएँ तथा उनमें सामाजिक जीवन की अच्छी समझ का विकास हो, समाज के विभिन्न वर्गों के बीच एकजुटता एवं विचार-साम्यता का विकास हो, इन सब लक्ष्यों तक पहुँचने के उपाय, विधियाँ एवं योजनाएँ शैक्षिक अनुसंधान ही सुझा सकता है।

नोट्स शिक्षा अनुसंधान शिक्षा के विभिन्न आयामों के विषय में संगठित वैज्ञानिक ज्ञानपुंज का विकास है।

शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान का सूत्रपात 1950 के दशक में हुआ, ऐसा माना जाता है। शिक्षा के क्षेत्र में प्रथम पी. एच.डी. उपाधि 1943 में बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई थी। उसके पश्चात् अनुसंधान के क्षेत्र का विस्तार

नोट

होता रहा। सन् 1943–1988 के बीच जो प्रगति इस क्षेत्र में हुई उसका विस्तृत विवरण चार शैक्षिक अनुसंधान सर्वेक्षणों (Surveys of Research in Education) में मिलता है, जो क्रमशः 1974, 1979, 1987 तथा 1991 में प्रकाशित हुये थे। प्रथम सर्वेक्षण जो 1974 में छपा था, में उन अध्ययनों का वर्णन है, जो 1972 तक सम्पन्न हुये थे। दूसरे सर्वेक्षण (1979) में उन अध्ययनों का विवरण है, जो 1972 से 1978 के बीच पूरे हुये। तीसरे सर्वेक्षण (1987) में उन अध्ययनों का वर्णन है, जो 1978 से 1983 के बीच किये गये थे। चतुर्थ सर्वेक्षण (1991) में 1988 तक सम्पन्न हुए अध्ययनों का उल्लेख किया गया है। प्रथम सर्वेक्षण में 462 पी.एच.डी. तथा 269 प्रोजेक्ट स्तर के अध्ययनों का विवरण है। द्वितीय सर्वेक्षण में 839 अनुसंधानों का वर्णन है, जो शिक्षा के 17 क्षेत्रों में किए गए थे। ये क्षेत्र हैं : तुलनात्मक शिक्षा, पाठ्यक्रम, शिक्षण विधि, पाठ्य-पुस्तकें, शैक्षिक उपलब्धि के कारक, शिक्षा-तकनीकी, शैक्षिक प्रशासन, शैक्षिक अर्थशास्त्र, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा-दर्शन, शिक्षा-समाजशास्त्र, मार्गदर्शन एवं मंत्रणा, शैक्षिक मूल्यांकन, मापन एवं परीक्षाएँ, अध्यापक प्रशिक्षण, शिक्षण एवं शिक्षा का इतिहास एवं उसकी समस्याएँ। तृतीय सर्वेक्षण (1987) ने 1940 से 1983 के बीच हुए अनुसंधानों का दशकवार ब्यौरा प्रस्तुत किया है। पी.एच. डी. स्तर के अध्ययनों का ब्यौरा इस प्रकार है–

तालिका 1.1

दशकवार पी.एच.डी. अध्ययन

वर्ष	*संख्या*
1941–1950	10
1951–1960	63
1961–1970	234
1971–1980	850
1981–1983	266
कुल	1423

इसी प्रकार पी.एच.डी. के अतिरिक्त जो अनुसंधान इन दशकों में हुए उनका ब्यौरा इस प्रकार है–

तालिका 1.2

दशकवार अन्य अध्ययन

वर्ष	*संख्या*
1941–1950	5
1951–1960	56
1961–1970	250
1971–1980	556
1981–1983	150
कुल	1017

नोट

कुल 19 क्षेत्रों में ये अध्ययन सम्पन्न हुए। द्वितीय सर्वेक्षण में कुल 17 क्षेत्र थे। इनमें भाषा शिक्षा तथा अनौपचारिक शिक्षा दो विषय और जुड़ गए।

चतुर्थ सर्वेक्षण (1991) में कुल 4703 अनुसंधानों का उल्लेख है जो 29 क्षेत्रों में बँटे हुए हैं। इनमें से 3289 पी.एच.डी. स्तर के तथा 1414 अन्य प्रोजेक्ट स्तर के अध्ययन हैं। इन 3289 पी.एच.डी. अनुसंधानों में से 2272 शिक्षा विभागों में तथा 1017 अन्य विभागों जैसे मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र आदि विभागों में सम्पन्न हुए।

इस विवरण से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षा के अनेक क्षेत्रों में अनुसंधान को महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है। यह भी कहा जा सकता है कि संख्यात्मक दृष्टिकोण से शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान का बहुत द्रुतगति से विकास हुआ है। कुछ शिक्षाशास्त्री इसे विस्फोटक वृद्धि भी मानते हैं। उनका मानना है कि शिक्षा के क्षेत्र में थोक में (mass production) पी.एच.डी. तैयार किए जा रहे हैं। चतुर्थ सर्वेक्षण में इस वृद्धि की गति (trend) को इस प्रकार व्यक्त किया है : सन् 1940 के दशक में प्रतिवर्ष एक, 1950 के दशक में प्रति 73 दिन पर एक, 1960 के दशक में प्रति 16 दिन पर एक, 1970 के दशक में प्रति 4½ दिन पर एक, 1980 के दशक में प्रति 3 दिन पर एक पी. एच.डी. की उपाधि प्रदान की गई। यदि इसमें पी.एच.डी. स्तर के अतिरिक्त अन्य अनुसंधानों को भी सम्मिलित कर लिया जाए तो चतुर्थ सर्वेक्षण के अनुसार प्रति 36 घंटे एक अनुसंधान रिपोर्ट प्राप्त होती है। आगे यह भी कहा गया है कि यदि यही गति बनी रही तो भविष्य में प्रतिदिन एक अनुसंधान सम्पन्न होगा।

टास्क शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान की प्राथमिकता पर अपने दृष्टिकोण प्रकट करें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. शैक्षिक अनुसंधान ..... के क्षेत्र में की जाने वाली खोज है।
2. शिक्षक स्वयं शिक्षा की ..... का एक महत्त्वपूर्ण घटक है।
3. प्रथम पी.एच.डी. उपाधि, 1943 में ..... विश्वविद्यालय द्वारा प्रदान की गई।

1.3. शैक्षिक अनुसंधान का क्षेत्र (Scope of Educational Research)

शिक्षा के क्षेत्र में किस प्रकार के अनुसंधानों को प्राथमिकता दी जाए, यह प्रश्न भी दो दशकों से बराबर उठाया जा रहा है। समय-समय पर इस संबंध में संस्तुतियाँ भी की जाती रही हैं, परन्तु शोधकर्ताओं ने इसे कभी गम्भीरता से नहीं लिया। इसका एक कारण तो यह रहा है कि प्राथमिकता का आधार क्या हो। इस संबंध में कोई निश्चित मत नहीं बन सका। तृतीय अनुसंधान सर्वेक्षण (1987) के अन्तिम अध्याय में डॉ. शिव के. मित्रा ने सुझाव दिया है कि उन समस्याओं को अनुसंधान हेतु प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिनकी राष्ट्रीय शिक्षा-नीतियों में उठाई गई समस्याओं के समाधान उपलब्ध कराने हेतु तत्काल आवश्यकता है। इससे पूर्व भी 1975 में एन.सी.ई.आर.टी. के एक प्रकाशन "एजुकेशनल रिसर्च एण्ड इन्नोवेशन्स" में निम्नलिखित समस्याओं को शिक्षा-अनुसंधान की प्राथमिकता सूची में रखा गया था–

1. समाज के गरीब वर्ग के बालकों की शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति के समाधान खोजना।
2. अन्तर्विषयी अनुसंधान (interdisciplinary research)।

नोट

3. प्रतिभाओं की खोज एवं उनके विकास से संबंधित समस्याएँ।
4. चौदह वर्ष तक के बालकों की अनिवार्य एवं नि:शुल्क शिक्षा जिसका भारतीय संविधान की धारा 45 में प्रावधान है, से संबंधित समस्याओं का अध्ययन।
5. अनुसूचित जातियों एवं जन-जातियों के बालकों की शिक्षा से संबंधित समस्याओं का अध्ययन।

कुछ अन्य शिक्षा-शास्त्रियों ने भी इस संबंध में विचार व्यक्त किए हैं। उन सबको ध्यान में रखते हुए शिक्षा के निम्नलिखित क्षेत्रों में उपरोक्त के अतिरिक्त प्राथमिकता के आधार पर अनुसंधान की आवश्यकता प्रतीत होती है–

1. छोटे बालकों की देखरेख एवं उनकी शिक्षा,
2. अनौपचारिक शिक्षा,
3. शिक्षा का व्यावसायीकरण,
4. पाठ्यक्रम संशोधन,
5. जीवन-मूल्यों की शिक्षा,
6. शिक्षा में क्षेत्रीय असन्तुलन,
7. शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन,
8. शिक्षा-प्रशासन,
9. शिक्षा में नेतृत्व,
10. शिक्षा-संस्थाओं के कार्यक्रमों एवं उनकी प्रभाविकता का अध्ययन,
11. पूर्व-प्राथमिक शिक्षा का पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियाँ,
12. शिक्षा संस्थाओं के वातावरण का अध्ययन,
13. अध्यापक प्रशिक्षण,
14. तुलनात्मक शिक्षा,
15. नैतिक शिक्षा,
16. शैक्षिक अर्थशास्त्र,
17. शिक्षा एवं विधि शास्त्र,
18. शिक्षा एवं राजनीति।

उपरोक्त क्षेत्र अति-विस्तृत एवं व्यापक हैं। प्रत्येक क्षेत्र में अनेक समस्याएँ अध्ययन हेतु उपलब्ध हो सकती हैं। इन क्षेत्रों में अध्ययन बहुत कम हुए हैं। इस दृष्टिकोण से ही इनको दर्शाया गया है। विशिष्ट समस्याओं की सूची देना संभव नहीं है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State Whether the Following Statement are True or False):

4. शिक्षा अनुसंधान का उद्देश्य शिक्षा संबंधी विषयों की खोजकर ज्ञान का विकास करना है।
5. शिक्षा एक आर्थिक प्रक्रिया है।
6. शिक्षा के क्षेत्र में अनुसंधान का सूत्रपात 1950 ई. में हुआ।
7. व्यक्ति अपने परिवेश की परिस्थिति से प्रभावित नहीं होता है।

नोट

1.4. अनुसंधान की विशिष्ट भावी आवश्यकताएँ (Distinctive Future Need of Educational Research)

शिक्षा एवं सामाजिक परिवर्तन के बीच अटूट संबंध है। मानव-जीवन एवं उसके परिवेश से संबंधित प्रत्येक परिप्रेक्ष्य कहीं न कहीं शिक्षा को छूता है। अत: इस क्षेत्र से संबंधित समस्याओं का अध्ययन भी आवश्यक है। उनमें से बहुतों का अध्ययन विदेशों में किया भी जा चुका है। इन अध्ययनों के आधार पर बहुत से सिद्धांतों का प्रतिपादन भी किया गया है। ये सिद्धांत अनेक तथ्यों, घटनाओं, समस्याओं एवं विसंगतियों की व्याख्या भी करते हैं। तो भी इन सिद्धांतों की व्यावहारिक उपयोगिता अधिक नहीं है। इसका एक कारण तो शिक्षा-विज्ञान के विषय-क्षेत्र का प्रातीतिक (Subjective) होना है। अत: इस क्षेत्र में जो अनुसंधान हुए हैं, उनके परिणामों एवं तदाधारित सिद्धांतों की व्यापकता (generality) का स्तर बहुत ऊँचा उठ पाया है अर्थात् उनके आधार पर घटनाओं के बहुत बड़े समूह अथवा बहुत अधिक शैक्षिक परिस्थितियों की व्याख्या नहीं की जा सकती। कुछ विशिष्ट प्रकार के परिप्रेक्ष्यों का ही उनके आधार पर विश्लेषण किया जा सकता है, परन्तु आवश्यकता अधिक व्यापक सिद्धांतों की है। अत: भविष्य में ऐसे अनुसंधानों की आवश्यकता है, जो अधिक व्यापक हों तथा जिनके आधार पर अधिक से अधिक परिप्रेक्ष्यों एवं समस्याओं को समझना संभव हो।

इस परिप्रेक्ष्य से संबंधित जो सिद्धांत (educational theories) उपलब्ध हैं, वे अधिकांशत: विदेशों में किए गए अनुसंधानों के आधार पर विकसित हुए हैं, परन्तु प्रत्येक समाज की अपनी सामाजिक यथार्थता (social reality) होती है। अत: यह आवश्यक नहीं है कि जिन सिद्धांतों का विकास दूसरे देशों में हुआ हो, वे अपने देश की सामाजिक यथार्थता के भी अनुरूप हों।

1.5 सारांश (Summary)

- शिक्षा अनुसंधान शिक्षा के क्षेत्र में वर्तमान एवं पूर्वस्थित ज्ञान का परीक्षण एवं सत्यापन तथा नये ज्ञान का विकास करने की एक विधा, एक प्रक्रिया है।
- **यूनेस्को** के एक प्रकाशन के अनुसार, शिक्षा अनुसंधान से तात्पर्य है उन सब प्रयासों से जो राज्य अथवा व्यक्ति अथवा संस्थाओं द्वारा किए जाते हैं तथा जिनका उद्देश्य शैक्षिक विधियों एवं शैक्षिक कार्यों में सुधार लाना होता है।
- शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। उसका मूलभूत उद्देश्य व्यक्ति में ऐसे परिवर्तन लाना होता है, जो सामाजिक विकास एवं व्यक्ति के जीवन को उन्नतशील बनाने के दृष्टिकोण से अनिवार्य होते हैं।
- तृतीय अनुसंधान सर्वेक्षण में डॉ. शिव के. मित्रा ने सुझाव दिया है कि उन समस्याओं को अनुसंधान हेतु प्राथमिकता दी जानी चाहिए, जिनकी राष्ट्रीय शिक्षा-नीतियों में उठाई गई समस्याओं के समाधान उपलब्ध कराने हेतु तत्काल आवश्यकता है।

1.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **शैक्षिक अनुसंधान (Educational Research)**–इसका उद्देश्य शिक्षा संबंधी विषयों पर खोज करके ज्ञान का विकास एवं संगठन करना है।
2. **शैक्षिक नियोजन (Educational Planning)**–इसका अभिप्राय समुचित शिक्षा प्रदान करने के लिए शिक्षा की योजना बनाकर उसे क्रियान्वित करना है।

1.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. शैक्षिक अनुसंधान से आप क्या समझते हैं?
2. शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक अनुसंधान की आवश्यकता पर प्रकाश डालें।
3. शैक्षिक अनुसंधान के क्षेत्र का वर्णन करें।
4. अनुसंधान की भावी आवश्यकताओं पर टिप्पणी लिखें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. शिक्षा	2. प्रक्रिया	3. बम्बई	4. सत्य
5. असत्य	6. सत्य	7. असत्य	

1.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
2. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
3. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 2 : अनुसंधान के प्रकार: मूलभूत, व्यावहारिक एवं क्रियात्मक अनुसंधान (Types of Research: Basic, Applied and Action Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

2.1 शिक्षा अनुसंधान का वर्गीकरण (Classification of Educational Research)

2.2 शिक्षा अनुसंधान के कार्य (Functions of Educational Research)

2.3 क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना का विकास (Development of Concept of Action Research)

2.4 क्रियात्मक अनुसंधान का अर्थ (Meaning of Action Research)

2.5 क्रियात्मक अनुसंधान की प्रमुख विशेषताएँ (Main Features of Action Research)

2.6 क्रियात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया (Process of Action Research)

2.7 क्रियात्मक अनुसंधान की उपयोगिता (Utility of Action Research)

2.8 क्रियात्मक अनुसंधान की सीमाएँ (Limitation of Action Research)

2.9 सारांश (Summary)

2.10 शब्दकोश (Keywords)

2.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

2.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- शिक्षा अनुसंधान के प्रकारों को जानने में;
- शिक्षा अनुसंधान के कार्य तथा संकल्पना के विकास को जानने में;
- क्रियात्मक अनुसंधान तथा इसकी प्रक्रिया और उपयोगिता को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

नोट

शिक्षा के क्षेत्र में शैक्षिक अनुसंधान का महत्त्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा की प्रमुख समस्या है कि उसकी प्रक्रिया को सुदृढ़ प्रभावशाली एवं सशक्त कैसे बनाया जाए। इस समस्या के समाधान हेतु अनुसंधान की आवश्यकता है। मौलिक अनुसंधानों से ज्ञानक्षेत्र में वृद्धि की जाती है। प्रयोगात्मक शोधकार्यों से नवीन सिद्धांतों तथा नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना का जन्म **स्टीफन एम. कोरे** के विचारों में हुआ। विद्यालयों के समक्ष उस समय अनेक समस्याएँ थीं जिनके समाधान उपलब्ध नहीं हो पा रहे थे। उस समय स्टीफन एम. कोरे की पुस्तक 'एक्शन रिसर्च टू इम्प्रूव स्कूल प्रैक्टिस' ने इन समस्याओं के समाधान की दिशाएँ सुझाई थीं। यही सुझाव क्रियात्मक अनुसंधान कहलाया। क्रियात्मक अनुसंधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी क्षेत्र के कार्यकर्ता अपनी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करके, उसका मूल्यांकन करते हैं।

2.1 शिक्षा-अनुसंधान का वर्गीकरण (Classification of Educational Research)

शिक्षा-अनुसंधान के उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि शैक्षिक अनुसंधानों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है। प्रमुख वर्गीकरण के मानदण्ड अधोलिखित हैं–

योगदान की दृष्टि से (Contribution Point of View): शोध-कार्यों के योगदान की दृष्टि से शैक्षिक-अनुसंधानों को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

1. मौलिक अनुसंधान (Basic or Fundamental Research): इन शोध-कार्यों द्वारा नवीन ज्ञान की वृद्धि की जाती है–नवीन सिद्धांतों का प्रतिपादन, नवीन तथ्यों की खोज, नवीन सत्यों का प्रतिस्थापन होता है। मौलिक अनुसंधानों से ज्ञान-क्षेत्र में वृद्धि की जाती है। इन्हें उद्देश्यों की दृष्टि से तीन वर्गों में बाँटा जा सकता है–

(अ) प्रयोगात्मक शोध कार्यों से नवीन सिद्धांतों तथा नियमों का प्रतिपादन किया जाता है। **सर्वेक्षण-शोध** भी इसी प्रकार का योगदान करते हैं।

(ब) ऐतिहासिक शोध कार्यों से नवीन तथ्यों की खोज की जाती है, जिनमें अतीत का अध्ययन किया जाता है और उनके आधार पर वर्तमान को समझने का प्रयास किया जाता है।

(स) दार्शनिक शोध कार्यों से नवीन सत्यों एवं मूल्यों का प्रतिस्थापन किया जाता है। शिक्षा का सैद्धान्तिक दार्शनिक-अनुसंधानों से विकसित किया जा सकता है।

2. क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research): इस प्रकार के शोध-कार्यों से स्थानीय समस्याओं का अध्ययन किया जाता है, जिससे शिक्षण की प्रक्रिया में सुधार तथा विकास किया जाता है, इनसे ज्ञान-वृद्धि नहीं की जाती है। इन्हें प्रयोगात्मक आयाम अनुसंधान भी कहते हैं।

शोध-आयाम की दृष्टि से (Research Approaches): शोध-कार्यों में तथ्यों का अध्ययन करने के लिए दो आयामों का प्रयोग किया जाता है–अनुदैर्घ्य-आयाम (Longitudinal Approach) तथा कटाव-आयाम (Cross-sectional Approach)।

1. अनुदैर्घ्य आयाम (Longitudinal Approach): यह शब्द वनस्पति विज्ञान से लिया गया है। जब किसी पौधे का अध्ययन बीज बोने से लेकर फल आने तक किया जाता है तब उसे अनुदैर्घ्य-आयाम कहा जाता है। इसे आयाम भी कहा जाता है क्योंकि अध्ययन में समय प्रमुख घटक होता है ऐतिहासिक, इकाई तथा उत्पत्ति संबंधी (Genetic) अनुसंधान विधियों में इसी आयाम का प्रयोग किया जाता है।

2. अनुप्रस्थ-आयाम (Cross-sectional Approach): यह शब्द भी वनस्पति विज्ञान का है। जब किसी पौधे के तने, पत्ती या जड़ तथा अन्य किसी अंग के स्वरूप का अध्ययन करना होता है तब उस पौधे के उस अंग का

नोट

कटाव करके अध्ययन कर लिये जाते हैं, तब उसे अनुप्रस्थ-आयाम की संज्ञा दी जाती है। इसमें समय का महत्त्व नहीं होता है। प्रयोगात्मक तथा सर्वेक्षण विधियों में इस आयाम का प्रयोग किया जाता है।

उदाहरण 'अध्यापक-शिक्षा के आविर्भाव के कारणों' का अध्ययन अनुदैर्घ्य-आयाम से किया जायेगा। अध्यापक-शिक्षा के नवीन प्रवर्त्तनों का अध्ययन अनुप्रस्थ-आयाम से किया जायेगा।

शोध-निष्कर्षों की शुद्धता की दृष्टि से (Precision in Research Findings)

अनुसंधान के निष्कर्षों को शुद्धता की दृष्टि से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

1. प्रयोगात्मक अनुसंधान (Experimental Research) तथा

2. अप्रयोगात्मक अनुसंधान (Non-Experimental Research)

प्रयोगात्मक-अनुसंधान के निष्कर्षों की शुद्धता अधिक होती है क्योंकि इसमें नियंत्रण, शुद्ध मापन तथा निरीक्षण विशेषताओं को ध्यान में रखा जाता है। अप्रयोगात्मक अनुसंधान के निष्कर्षों की शुद्धता कम होती है, क्योंकि मापन अधिकांश शुद्ध नहीं होता, निरीक्षण तथा नियंत्रण भी संभव नहीं होता है।

2.2 शिक्षा-अनुसंधान के कार्य (Functions of Educational Research)

शिक्षा-अनुसंधान के अधोलिखित प्रमुख कार्य होते हैं–

1. शिक्षा-अनुसंधान का प्रमुख कार्य शिक्षा की प्रक्रिया में सुधार तथा विकास करना है। यह कार्य ज्ञान के प्रसार से किया जाता है।

2. शिक्षा की प्रक्रिया के विकास के लिए आन्तरिक प्रयास नवीन ज्ञान में वृद्धि करना तथा वर्तमान ज्ञान में सुधार करना है।

अनुसंधान किस उद्देश्य को लेकर किया जाता है तथा किस प्रकार किया जाता है, इस दृष्टिकोण से उनमें परस्पर अन्तर पाए जाते हैं। सभी अनुसंधानों के उद्देश्य समान नहीं होते और न उनकी प्रक्रिया ही एक सी होती है। विभिन्न प्रकार के अनुसंधानों का एक वर्गीकरण आगे के अध्याय में प्रस्तुत किया गया है। इन सबसे भिन्न एक अनुसंधान का वर्णन किया गया है। इसे क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research) की संज्ञा दी गई है।

2.3 क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना का विकास (Development of Concept of Action Research)

क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना का जन्म **स्टीफेन एम. कोरे** (1953) के विचारों में हुआ। कई लेखकों ने इस संकल्पना को **लेविन** से जोड़ने का प्रयास किया है। एक लेखक ने, 1926 में इसका विकास हुआ, ऐसा भी लिखा है। साथ ही यह भी कहा है कि इस प्रत्यय की उत्पत्ति का स्रोत 'आधुनिक मानव-व्यवस्था' सिद्धांत है। ये विचार भ्रामक हैं। क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना केवल कोरे की है तथा उसकी उत्पत्ति केवल 1953 में लिखी गई उनकी पुस्तक "एक्शन रिसर्च टू इम्प्रूव स्कूल प्रैक्टिस" (1953) से ही मानी जाती है। इससे पहले कभी किसी ने इस शब्दावली का प्रयोग नहीं किया। यह दूसरी बात है कि किन्हीं दूसरे लेखकों के विचारों में **कोरे** के विचारों की समानता एवं सादृश्यता रही हो। **मौलि** के अनुसार भी इस संकल्पना के विकास के लिए **कोरे** को ही उत्तरदायी माना गया है। **मौलि** का कहना है कि जब उपरोक्त पुस्तक (1953) प्रकाशित हुई तो अध्यापकों ने उसका बहुत स्वागत किया क्योंकि वे जिन समस्याओं से जूझ रहे थे, उनके समाधान के उपाय उन्हें नहीं सूझ रहे थे और इस पुस्तक में इन समाधानों को खोजने की दिशाएँ सुझाई गई थीं। यह सुझाव ही क्रियात्मक अनुसंधान था।

नोट

क्या आप जानते हैं क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना का जन्म **स्टीफेन एम. कोरे** के विचारों में हुआ।

क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना **कोरे** के मस्तिष्क में घर कर गई। इसके पीछे उनके अनुभवों की पृष्ठभूमि थी। जो अनुसंधान 1950 तक अमरीका में शिक्षा के क्षेत्र में हो रहे थे, उनसे कोरे अत्यन्त क्षुब्ध थे क्योंकि उनकी उपयोगिता बहुत सीमित थी। विद्यालयी शिक्षा पर उसका वांछनीय प्रभाव नहीं पड़ रहा था। विद्यालयों के समक्ष अनेक समस्याएँ थीं, परन्तु शैक्षिक अनुसंधान उन दिनों-प्रतिदिन की समस्याओं, जिनसे अध्यापक जूझ रहे थे, के समाधान उपलब्ध नहीं करा पा रहे थे। अधिकतर अनुसंधानों का उद्देश्य वृहद् न्यादर्श को लेकर सूचनाएँ एकत्र करके उनके आधार पर व्यापक सिद्धांतों एवं नियमों का प्रतिपादन करना होता था। अनुसंधान के ये परिणाम केवल सिद्धांतों तक ही सीमित रहते थे। केवल ज्ञान-भंडार ही उनसे भरता था। शिक्षा की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने में, विद्यालयों की दिन-प्रतिदिन की समस्याओं को सुलझाने में, अध्यापकों के कार्य की कुशलता बढ़ाने में, विद्यार्थियों की शैक्षिक उन्नति में, इन अनुसंधानों से कोई सहायता नहीं मिलती थी। इस प्रकार इन अनुसंधानों की व्यावहारिक उपयोगिता नाममात्र की थी। अत: मूलभूत अनुसंधान की अनुपयोगिता से क्षुब्ध होकर **कोरे** ने नये ढंग से अनुसंधान के विषय में सोचना आरंभ किया। उनका विचार था कि जब तक अध्यापक अनुसंधान से नहीं जुड़ेगा, अनुसंधान के परिणामों का विद्यालय की स्थिति को सुदृढ़ बनाने में क्रियान्वयन नहीं हो सकता। कोरे ने अपनी पुस्तक (1953) में एक स्थान पर स्वयं लिखा है कि पहले मुझे शिक्षा-जगत के अनुसंधान-विशेषज्ञों में बहुत विश्वास था और मैं उनसे कहा करता था कि वे विद्यालयों का अध्ययन करें और बताएँ कि उन्हें क्या करना चाहिए, परन्तु अब मेरा यह विश्वास बहुत कुछ टूट चुका है। उनकी संस्तुतियों को शिक्षा-जगत के कार्यकर्ताओं के व्यवहारों में उतारना एक बहुत बड़ी समस्या है जिसका अभी तक कोई समाधान उपलब्ध नहीं हो सका है।

सावधानी अनुसंधान उन्हीं को करना चाहिए जिन्हें अध्ययन के परिणामों के आधार पर अपनी कार्य-प्रणाली में परिवर्तन लाना है।

अत: उन्होंने इस बात पर बल दिया कि विद्यालय की जो समस्याएँ हैं, उनके समाधान खोजने हेतु विद्यालय के स्तर पर ही अनुसंधान किया जाना चाहिए और ये अनुसंधान सामान्यत: अध्यापकों द्वारा ही किए जाने चाहिए, जिससे कि उनके द्वारा प्राप्त परिणामों का शैक्षिक क्रियाओं को सबल बनाने में प्रयोग भी किया जा सके। अपने इन विचारों को **कोरे** ने "क्रियात्मक अनुसंधान" की संकल्पना में संजोया तथा उन्हें विकसित किया। जब 1962 के आस-पास **कोरे** भारत में एन.सी.ई.आर.टी. में परामर्शक (consultant) रहे, तब हमारे देश में भी उनके विचारों तथा 'क्रियात्मक अनुसंधान' की संकल्पना का प्रचार हुआ। उन्हें हमारे यहाँ के शिक्षा-शास्त्रियों ने भी हर्षपूर्वक स्वीकार किया। एन. सी.ई.आर.टी. ने शैक्षिक अनुसंधान पर उनकी एक पुस्तक (कोरे, 1962) भी प्रकाशित की। उसमें विस्तार से इस संकल्पना की उन्होंने व्याख्या की।

2.4 क्रियात्मक अनुसंधान का अर्थ (Meaning of Action Research)

मौलि के शब्दों में क्रियात्मक अनुसंधान एक तत्स्थान (on the spot) अध्ययन है जिसका उद्देश्य किसी तात्कालिक समस्या का समाधान खोजना होता है अर्थात् यह एक ऐसा अनुसंधान है जो वहीं किया जाता है जहाँ वास्तव में समस्या उत्पन्न हुई है तथा बनी हुई है। यदि किसी विद्यालय विशेष के छात्रों में अनुशासनहीनता इतनी अधिक है कि शिक्षण-कार्य सुचारू रूप से नहीं चल पाता तो इस समस्या का समाधान खोजने हेतु उसी विद्यालय में वहीं के अध्यापकों द्वारा किया गया अध्ययन एवं प्रयास क्रियात्मक अनुसंधान कहलायेगा। स्वयं **कोरे** (1962) के शब्दों में,

नोट

क्रियात्मक अनुसंधान एक ऐसा अध्ययन है जिसे कोई व्यक्ति अपने ही काम को अधिक अच्छे ढंग से करने के लिए करता है, यथा–एक शिक्षक का अपने शिक्षण-कार्य को अधिक प्रभावशाली बनाने के उद्देश्य से तथा एक विद्यालय-प्रशासक का अपने प्रशासन को अधिक सुदृढ़ बनाने के लिए किया गया अध्ययन। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि क्रियात्मक अनुसंधान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा किसी क्षेत्र के कार्यकर्ता अपनी समस्याओं का वैज्ञानिक ढंग से अध्ययन करते हैं ताकि वे जो निर्णय लेते हैं तथा जो कार्य करते हैं, उनको सही दिशा मिल सके, उनमें सुधार किया जा सके तथा उनका मूल्यांकन किया जा सके।

नोट्स

क्रियात्मक अनुसंधान एक ऐसी सुव्यवस्थित एवं अन्वेषणात्मक क्रिया है, जिसका उद्देश्य उन व्यक्तियों द्वारा जो सुधार एवं परिवर्तन से संबंधित हैं, किए जा रहे वर्तमान प्रयासों का अध्ययन करना एवं उनमें संरचनात्मक परिवर्तन लाना होता है।

क्रियात्मक अनुसंधान की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख नीचे किया गया है। इनके द्वारा उसका अर्थ और अधिक स्पष्ट हो जायेगा।

2.5 क्रियात्मक अनुसंधान की प्रमुख विशेषताएँ (Main Features of Action Research)

क्रियात्मक अनुसंधान की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं–

1. मूलभूत अनुसंधान से भिन्न

क्रियात्मक अनुसंधान की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि वह कई दृष्टिकोणों से मूलभूत अनुसंधान (fundamental research) से भिन्न होता है। मूलभूत अनुसंधान का उद्देश्य सामान्यनों (generalizations) एवं नियमों (laws) की खोज करना होता है जिनके आधार पर उसी प्रकार की अनेक घटनाओं की व्याख्या की जा सके। इसीलिए उसमें एक वृहद् समष्टि (large population) से प्रतिनिधि न्यादर्श छाँटकर उसे अध्ययन का आधार बनाया जाता है। अत: इस प्रकार के अध्ययन में समय बहुत लगता है। उसकी अध्ययन-विधि, उसके उपकरण एवं विश्लेषण-विधियाँ सब अधिक जटिल होती हैं। इसके विपरीत क्रियात्मक अनुसंधान में उद्देश्य बहुत सीमित होता है। सामान्यन, नियमों की खोज एवं सिद्धांतों का प्रतिपादन आदि जो मूलभूत अध्ययन के प्राण होते हैं, क्रियात्मक अनुसंधान के उद्देश्य नहीं होते। क्रियात्मक अनुसंधान का उद्देश्य तो अत्यन्त व्यावहारिक होता है। वर्तमान कार्य-पद्धति में सुधार लाना, किसी तात्कालिक समस्या का समाधान खोजना, किसी प्रचलित नियम अथवा विधि की प्रभाविकता अथवा उसकी असफलता के कारणों को खोजना आदि उसके उद्देश्य होते हैं। **मौलि** के शब्दों में, क्रियात्मक अनुसंधान यह जानने के लिए किया जाता है कि किसी विशिष्ट समस्या को सुलझाने के लिए क्या कदम उठाए जाने चाहिए।

दूसरा अन्तर अध्ययन के स्थान एवं इकाइयों की संख्या के दृष्टिकोण से होता है। मूलभूत अनुसंधान का आधार एक वृहद् समष्टि तथा उससे चुना गया प्रतिनिधि-न्यादर्श होता है जिसकी इकाइयाँ (units) एक विस्तृत क्षेत्र से चुनी जाती हैं। उनके चयन की प्रक्रिया भी विशिष्ट होती है। क्रियात्मक अनुसंधान में समष्टि एवं न्यादर्श का प्रश्न नहीं उठता। यह अनुसंधान तो उसी विद्यालय अथवा संस्थान में किया जाता है जहाँ की समस्या अध्ययनगत है। वहीं से अध्ययन हेतु थोड़ी सी अथवा सब इकाइयों का चयन किया जाता है। इकाइयों की संख्या बहुत अधिक होना आवश्यक नहीं होता। मान लीजिए समस्या है एक विद्यालय की आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों का गणित में बहुत कमजोर होना। इस समस्या का समाधान खोजने के लिए पहले छात्रों की इस कमजोरी के कारणों का पता लगाने

नोट

के लिए अनुसंधान की आवश्यकता होगी। यह कार्य उस कक्षा का गणित का अध्यापक ही करेगा। तत्संबंधी जानकारी प्राप्त करने का स्रोत भी उसकी कक्षा के विद्यार्थी ही होंगे। उस कक्षा से बाहर अध्ययन-सामग्री एकत्र करने के लिए उसे जाने की आवश्यकता नहीं होगी। अध्ययन उस कक्षा तक ही सीमित रहेगा। इस प्रकार क्रियात्मक अनुसंधान सीमित एवं स्थानीय होता है जबकि मूलभूत अथवा शुद्ध (pure) अनुसंधान विस्तृत, व्यापक एवं दूरगामी होता है।

तीसरा अन्तर परिणामों की प्रयुक्ति के दृष्टिकोण से होता है। मूलभूत अनुसंधानों के जो निष्कर्ष उपलब्ध होते हैं, वे केवल ज्ञान की वृद्धि तक ही सीमित होते है। जिन परिस्थितियों में लोग काम करते हैं उनमें उनका प्रयोग कम ही हो पाता है। ज्ञान के लिए ज्ञान, मात्र इसी स्तर पर वे ठहरे रहते हैं। इसके विपरीत क्रियात्मक अनुसंधान के परिणामों का उद्देश्य ही उनका क्रियान्वयन होता है। उन परिणामों के आधार पर तत्संबंधी समस्या का समाधान करना ही उनका ध्येय होता है। गणित विषय में छात्रों की कमजोरी के कारणों का अनुसंधान द्वारा पता लगाकर उन कारणों को दूर करने के प्रयास करना ही उनका परम लक्ष्य होता है। इस प्रकार क्रियात्मक अनुसंधान व्यावहारिक होता है जबकि मूलभूत अनुसंधान सैद्धांतिक होता है। क्रियात्मक शोधकर्ता अत्यन्त व्यावहारिक व्यक्ति होता है। वह स्थानीय स्तर पर वर्तमान समस्या का उपयोगी समाधान प्राप्त करने के लिए वैज्ञानिक अनुसंधान की कठोरता एवं जटिलता को त्यागना पसंद करता है। वर्तमान समस्या ही उसके ध्यान का प्रमुख केन्द्र होती है क्योंकि वह समझता है कि जो समस्या आज है वह कल भी रहेगी और उसके अनुसंधान के परिणाम उपयोगी होंगे क्योंकि वे वास्तविक इकाइयों पर आधारित हैं।

टास्क मूलभूत अनुसंधान, क्रियात्मक अनुसंधान से भिन्न है, इस पर अपने विचार व्यक्त करें।

एक अन्य अन्तर मूलभूत अनुसंधान एवं क्रियात्मक अनुसंधान के बीच यह होता है कि क्रियात्मक अनुसंधान अध्यापक, विद्यालय का प्राचार्य अथवा शिक्षा-जगत का कोई भी कार्यकर्ता जो समस्या से किसी प्रकार जुड़ा है, कर सकता है। उसके लिए मूलभूत अनुसंधान की भाँति विशेषज्ञ की आवश्यकता नहीं होती क्योंकि उसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया बहुत सरल होती है। मूलभूत अनुसंधान की प्रक्रिया एवं उसका आकल्प जटिल होता है। उसके अनुसार कार्य करने के लिए विशेष ज्ञान, विशेष योग्यता की आवश्यकता होती है।

मूलभूत अनुसंधान में प्रायः अनुसंधान की परिस्थितियों पर पर्याप्त नियंत्रण रखा जाता है क्योंकि उसका उद्देश्य सामान्यन एवं नियमों का प्रतिपादन करना होता है, परन्तु क्रियात्मक अनुसंधान में नियंत्रण, परिकल्पनाओं का निर्माण, आधार सामग्री का विश्लेषण आदि बहुत जटिल नहीं होता। जिन परिस्थितियों में समस्या विद्यमान है, उन्हीं में अनुसंधान की सम्पूर्ण क्रिया सम्पन्न होती है।

क्रियात्मक अनुसंधान व्यवहृत अनुसंधान (applied research) से भी एक दृष्टिकोण से भिन्न होता है। उद्देश्य दोनों का समान होता है, परन्तु शोधकर्ता कौन है इस दृष्टिकोण से दोनों में अन्तर होता है। **लेहमैन** तथा **मेहरेन** के अनुसार, क्रियात्मक अनुसंधान भी एक प्रकार से व्यवहृत अनुसंधान ही होता है, परन्तु दोनों में इतना अन्तर होता है कि क्रियात्मक अनुसंधान में जो शोधकर्ता होता है वही शोध के परिणामों का उपभोक्ता भी होता है। वही उन परिणामों के आधार पर निर्णय लेता है तथा उन्हें क्रियान्वित भी करता है। इस प्रकार क्रियात्मक अनुसंधान की एक विशेषता यह है कि उसमें शोधकर्ता तथा शोध-परिणामों का उपभोक्ता एक ही व्यक्ति होता है।

2. एक वैज्ञानिक एवं सुगठित कार्य-प्रणाली की विधि

क्रियात्मक अनुसंधान की दूसरी विशेषता यह है कि वह नियमित कार्य-प्रणाली की ही एक विधा है। किसी संस्था में कार्य करने वाले व्यक्तियों को प्रतिदिन समस्याओं का सामना करना पड़ता है। उनके समाधान हेतु उन्हें निर्णय

नोट

भी लेने पड़ते हैं तथा उन्हें क्रियान्वित भी करना पड़ता है। सामान्यत: इन निर्णयों का कोई ठोस वैज्ञानिक आधार नहीं होता। वे अपनी बुद्धि, सामान्य ज्ञान, अनुभवों के आधार पर ये निर्णय लेते हैं जो अनेक बार क्रियान्वयन के पश्चात् अनुपयुक्त सिद्ध होते हैं। क्रियात्मक अनुसंधान इस प्रकार के निर्णय लेने के वस्तुनिष्ठ, वैज्ञानिक एवं ठोस आधार प्रदान करता है। मान लीजिए किसी विद्यालय में कक्षाओं में विद्यार्थी नहीं आते, यह एक आम शिकायत अध्यापकों की है। विद्यालय के प्रधानाचार्य अध्यापकों की बैठक बुलाते हैं और सर्वसम्मति से निर्णय लेते हैं कि जो बच्चे कक्षाओं में नहीं आते उन्हें अर्थदण्ड देना होगा। इस निर्णय का कोई ठोस आधार नहीं है। अत: इसके क्रियान्वयन से स्थिति में कोई सुधार नहीं आयेगा। दूसरी वैज्ञानिक विधि है कि पहले पता लगाया जाए कि छात्रों के कक्षाओं में न आने का कारण क्या है। एक छोटा सा क्रियात्मक अनुसंधान इसके लिए पर्याप्त होगा। मान लीजिए इस अनुसंधान के आधार पर पता चला कि अध्यापक स्वयं ही कक्षाओं में नहीं जाते। अब निर्णय दूसरे प्रकार का होगा कि प्रत्येक अध्यापक को अपनी कक्षा में अवश्य जाना चाहिए तथा लगन के साथ पढ़ाना चाहिए। इस प्रकार, क्रियात्मक अनुसंधान नियमित कार्यप्रणाली को सुचारू तथा अधिक प्रभावशाली बनाने एवं निर्णयों को एक वैज्ञानिक आधार देने की विधा है। इस दृष्टिकोण से उसे संस्थागत कार्यक्रमों का अभिन्न अंग समझना चाहिए–एक अनुसंधान-आधारित स्वरूप, दिन-प्रतिदिन की समस्याओं, व्यवधानों, कठिनाइयों आदि के समाधान प्राप्त करने का, एक अनुसंधान-आधारित ढंग है।

3. विद्यालयों की स्थिति में सुधार लाने की विशिष्ट विधि

क्रियात्मक अनुसंधान की प्रमुख विशेषता यह है कि विद्यालय की स्थिति में सुधार लाने की यह एक विधि है। **कोरे** की इस संकल्पना का केन्द्र-बिन्दु ही "विद्यालय-सुधार" (to improve schools) था। अत: इसके अन्तर्गत इस बात पर बल दिया जाता है कि विद्यालय संबंधी छोटी-छोटी समस्याओं को लेकर अनुसंधान किया जाए जिनके परिणाम अधिक वस्तुनिष्ठ एवं विश्वसनीय हों तथा जिनके क्रियान्वयन से विद्यालय के प्रशासन, विद्यालय की शिक्षण-पद्धतियों, छात्रों के व्यवहारों, अध्यापकों के व्यवहारों को वांछनीय रूप से बदलने तथा विद्यालय के लिए शिक्षण-सामग्री जुटाने एवं उसके नियोजन में उपयुक्त सहायता मिल सके।

4. सम्पूर्ण शिक्षण-प्रक्रिया की महत्त्वपूर्ण कड़ी

कोरे की क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना सम्पूर्ण शिक्षण-प्रक्रिया की एक अभिन्न कड़ी है। उसे शिक्षा-प्रक्रिया से अलग की क्रिया नहीं समझा जाता है। जैसे अध्यापकों का नियमित उत्तरदायित्व पढ़ाना तथा छात्रों के विकास के प्रयास करना है, वैसे ही अपने इस उत्तरदायित्व को और अधिक प्रभावशाली ढंग से करने के लिए क्रियात्मक अनुसंधान करना भी उनका उत्तरदायित्व है। यह उनके उस कार्य में निहित है, जैसे–शिक्षण की किसी अधिक प्रभावशाली विधि का प्रयोग करना एक अच्छे अध्यापक का धर्म होता है वैसे ही क्रियात्मक अनुसंधान द्वारा अपने व्यवहारों, अपनी शिक्षण-विधियों, अपने ज्ञान को सुदृढ़ एवं अधिक प्रभावशाली बनाना भी उसका धर्म है। अध्यापक के कौन से व्यवहार छात्रों पर वांछनीय प्रभाव डालते हैं, किन व्यवहारों से छात्रों में असंतोष पैदा होता है, किस शिक्षण-विधि का प्रयोग करने से छात्र अधिक सीखते हैं, किस आयु के छात्रों में किस प्रकार की आंतरिक प्रेरणाएँ अधिक प्रबल होती हैं आदि कुछ ऐसी बातें हैं जो छोटे-छोटे वस्तुनिष्ठ अध्ययनों से पता चल सकती हैं और यह जानकारी अध्यापक को अपना उत्तरदायित्व अधिक प्रभावशाली ढंग से निभाने में बहुत सहायक हो सकती हैं। यही बात प्रधानाचार्य के विषय में भी सही है। वह अपने काम को प्रभावशाली ढंग से करने हेतु क्रियात्मक अनुसंधान के माध्यम से वांछनीय जानकारी प्राप्त कर सकते हैं जो उनके निर्णयों, योजनाओं, कार्यवाहियों को वस्तुनिष्ठ एवं ठोस आधार प्रदान करती है।

5. क्रियात्मक एवं व्यावहारिक (applied) अनुसंधान की तुलना

क्रियात्मक अनुसंधान तथा व्यावहारिक अनुसंधान के बीच प्राय: संभ्रम (confusion) उत्पन्न होता है क्योंकि दोनों का उद्देश्य उन निष्कर्षों की स्थापना होता है जिनका समस्याओं के समाधान एवं कार्य-प्रणालियों को समुन्नत बनाने

नोट

में प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु दोनों में बहुत अन्तर है। व्यावहारिक अनुसंधान वृहद् समष्टि (large population) पर आधारित होता है, उसके परिणाम अधिक व्यापक होते हैं। साथ ही अन्य कई प्रकार की औपचारिकताओं से वह बँधा होता है। क्रियात्मक अनुसंधान समस्यागत कक्षा अथवा विद्यालय की सीमाओं तक ही सीमित रहता है तथा उसके औपचारिकता के बंधन बहुत ढीले होते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the Blanks):

1. क्रियात्मक अनुसंधान में ..... समस्याओं का अध्ययन किया जाता है।
2. मूलभूत अनुसंधान का उद्देश्य सामान्यनों एवं ..... की खोज करना है।
3. कोरे की संकल्पना का केन्द्र बिन्दु ..... था।

2.6 क्रियात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया (Process of Action Research)

क्रियात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया तथा अन्य प्रकार के अनुसंधानों की प्रक्रिया में कोई मूलभूत अन्तर नहीं होता। लगभग वही पद-क्रम इसकी प्रक्रिया में रहता है जो अन्य प्रकार के अनुसंधानों की प्रक्रिया में रहता है। अन्तर इतना होता है कि प्रक्रिया के प्रत्येक स्तर पर जो कार्य किया जाता है वह सीमित, लचीला तथा कठोरता एवं औपचारिकताओं से मुक्त होता है। इन सभी प्रक्रिया-पदों का विस्तार से वर्णन पहले ही किया जा चुका है। यहाँ संक्षेप में क्रियात्मक अनुसंधान के परिप्रेक्ष्य में ही इनका उल्लेख किया जायेगा। इस अनुसंधान की प्रक्रिया को भी वैज्ञानिक रूप देने हेतु निम्न पदक्रम का पालन किया जाता है।

1. समस्या का चयन, कथन एवं परिभाषा

अनुसंधान के लिए यह सबसे पहली आवश्यकता है, परन्तु क्रियात्मक अनुसंधान में समस्याओं को ढूँढ़ना नहीं पड़ता। वे तो अध्यापकों के, प्रशासकों के दैनिक अनुभवों में विद्यमान रहती ही हैं। जो कठिनाइयाँ, बाधाएँ, परेशानियाँ, असंगत नीतियाँ एवं प्रथाएँ उनके सामने आती हैं, वही क्रियात्मक अनुसंधान की समस्याएँ होती हैं। कभी-कभी ऐसा भी संभव होता है कि कोई काम करने की अधिक सशक्त प्रणाली किसी अध्यापक अथवा प्रशासक के मस्तिष्क में आती है तो उसका परीक्षण भी क्रियात्मक अनुसंधान की समस्या हो सकती है। समस्या को खोजने के लिए संबंधित साहित्य का अध्ययन करना तथा यह विचार करना कि वह समस्या मौलिक अथवा नवीन है या नहीं आदि आवश्यक नहीं होता। हाँ! उस समस्या का सही ढंग से कथन करना तथा उसे उसी प्रकार परिभाषित करना आवश्यक होता है जैसे अन्य प्रकार के अनुसंधानों में किया गया है।

2. उद्देश्यों का निर्धारण एवं कथन

यह क्रियात्मक अनुसंधान के पद-क्रम की दूसरी कड़ी है। उद्देश्यों का निर्धारण भी वैसे ही किया जाता है जैसे अन्य अनुसंधानों में किया जाता है। इसका महत्त्व एवं आवश्यकता भी वही होती है जो अन्य अनुसंधानों में होती है। क्रियात्मक अनुसंधानों में ये उद्देश्य केवल गिने-चुने एवं सरल ही होते हैं।

3. परिकल्पनाओं का निर्माण एवं कथन

उद्देश्यों को ही परिकल्पनाओं के रूप में बदल दिया जाता है। अत: क्रियात्मक अनुसंधानों की परिकल्पनाएँ भी बहुत जटिल नहीं होतीं। उदाहरण के लिए, किसी कक्षा के छात्रों में से कुछ में अधिक अनुशासनहीनता का होना, कुछ का किसी विषय में अधिक पिछड़ा होना, कुछ का कक्षा में अनियमित रूप से उपस्थित रहना आदि समस्याओं के

नोट

कारण खोजने हेतु प्रत्येक से संबंधित कुछ परिकल्पनाओं का निर्माण कर लेना अधिक उपयुक्त होगा। तभी उपयोगी एवं संबंधित जानकारी प्राप्त करके उनका परीक्षण भी संभव हो सकेगा। यही वैज्ञानिक विधि की प्रक्रिया होती है।

4. परिकल्पनाओं का परीक्षण अथवा अध्ययन-विधि

इस पद-क्रम के अन्तर्गत कई बातें आती हैं, यथा–समष्टि की परिभाषा, न्यादर्श का चयन, चरों की परिभाषा, उनका मापन, सूचनाओं का संग्रह एवं उनका विश्लेषण। परन्तु क्रियात्मक अनुसंधान में प्राय: समष्टि की परिभाषा एवं न्यादर्श के चयन का प्रश्न नहीं उठता क्योंकि उनका उद्देश्य वृहद् समष्टि की विशेषताओं के विषय में सामान्यीकरण (generalization) करना नहीं होता। इसीलिए उनकी अनुसंधान-विधि किसी जटिल अनुसंधान आकल्प (complex research design), जिसमें अध्ययनेतर चरों का नियंत्रण आदि किया जाता है, पर आधारित नहीं होती। न ही सूचना-सामग्री के विश्लेषण हेतु अति-विशिष्ट सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है। तब भी कुछ महत्त्वपूर्ण कार्य जो इस स्तर पर करने होते हैं, वे इस प्रकार हैं–

***(i)* परिकल्पनागत चरों से संबंधित जानकारी प्राप्त करना:** इन सूचनाओं को प्राप्त करने के लिए शोधकर्ता साक्षात्कार, स्वनिर्मित परीक्षाओं, प्रश्नावलियों, अनुसूचियों, प्रेक्षणों (observations) आदि का सहारा ले सकता है। प्रमापीकृत (standardized) परीक्षाओं का प्रयोग भी कर सकता है।

***(ii)* प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण:** प्राप्त सूचनाएँ गुणात्मक (qualitative) तथा संख्यात्मक (quantitative) दोनों प्रकार की अथवा दोनों में से किसी एक प्रकार की हो सकती हैं। ये साधारणतया बहुत विस्तृत नहीं होतीं। इनका विश्लेषण उन नियमों के अनुसार किया जा सकता है जिनका उल्लेख अध्याय-7 में किया गया है। साधारण प्रकार की सांख्यिकीय विधियों तथा आवृत्ति वितरण तैयार करना, रेखाचित्रों द्वारा सामग्री की प्रस्तुति, मध्यमान, मध्यांक-मान ज्ञात करना, प्रमाप-विचलन (S.D.) की गणना, अनुबंध गुणांक निकालना आदि में से किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है। यदि शोधकर्ता चाहे तो टी-टेस्ट का भी प्रयोग कर सकता है।

***(iii)* निष्कर्ष-स्थापना:** उपरोक्त विश्लेषण के आधार पर शोधकर्ता निष्कर्षों की स्थापना करता है जो केवल समस्या, उसकी कक्षा अथवा उसके विद्यालय पर ही लागू समझे जाते हैं।

5. निष्कर्षों का क्रियान्वयन

यह क्रियात्मक अनुसंधान प्रक्रिया की अन्तिम कड़ी होती है जो अन्य प्रकार के अनुसंधानों की प्रक्रिया में साधारणतया नहीं पाई जाती। मूलभूत अनुसंधानों एवं व्यावहारिक अनुसंधानों में शोधकर्ता के लिए यह आवश्यक नहीं होता कि वह अपने द्वारा स्थापित निष्कर्षों का क्रियान्वयन भी करे, परन्तु क्रियात्मक अनुसंधान में यह आवश्यक होता है कि जो परिणाम आये हैं उनको समस्या के समाधान हेतु क्रियान्वित भी करे। अत: उन निष्कर्षों के आधार पर निर्णय लेकर उनके अनुसार वह अपना कार्य करता है। यदि सफल होता है तो ठीक है, अन्यथा पुन: दूसरी परिकल्पना का निर्माण करके दूसरा अनुसंधान करता है। इस प्रकार यह क्रिया निरन्तर चलती रहती है जब तक समस्या का सही समाधान उपलब्ध नहीं हो जाता।

कुछ लेखकों ने एन.सी.ई.आर.टी. की प्रायोगिक योजनाओं (experimental projects) को क्रियात्मक अनुसंधान मान लिया है। यह सही नहीं है। ऐसा करने से क्रियात्मक संकल्पना के संबंध में संभ्रम (confusion) पैदा होता है।

2.7 क्रियात्मक अनुसंधान की उपयोगिता (Utility of Action Research)

इसमें संदेह नहीं कि जिस उद्देश्य को लेकर क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना रची गई थी उस परिप्रेक्ष्य में उसकी बहुत उपयोगिता है। कुछ तथ्य जो क्रियात्मक अनुसंधान के पक्ष में जाते हैं, इस प्रकार हैं–

नोट

1. अनुसंधान को व्यावहारिक उपयोगिता से जोड़ता है

क्रियात्मक अनुसंधान एक ऐसा अनुसंधान है जो अनुसंधान को यथार्थता, उपयोगिता से जोड़ता है, उस खाई को पाटता है तो मूलभूत अनुसंधान एवं संस्थाओं में कार्यरत व्यक्तियों के बीच बनी हुई थी। मूलभूत एवं व्यवहृत (applied) अनुसंधानकर्ताओं का यह आरोप था कि वास्तविक परिस्थितियों में कार्यरत व्यक्ति, यथा–विद्यालयों के अध्यापक एवं प्रशासक उनके कठोर परिश्रम द्वारा किए गये अनुसंधान के परिणामों का अपने कार्य-क्षेत्रों में प्रयोग नहीं करते। दूसरी ओर इन अध्यापकों एवं प्रशासकों का यह आरोप होता था कि ये अनुसंधानकर्ता हमारी समस्याओं की ओर ध्यान नहीं देते तथा उनके अनुसंधानों की प्रक्रिया एवं परिणाम इतने जटिल होते हैं कि हमारी समझ में नहीं आते। इनके अनुसंधान अधिकतर सिद्धांतों एवं व्यापक सामान्यनों के रूप में होते हैं, व्यावहारिक नहीं होते। इस प्रकार, अनुसंधान एवं वास्तविक परिस्थितियों में उनका उपयोग दोनों अलग-अलग एक ही क्षितिज के दो छोरों पर स्थित थे। अत: शिक्षा की प्रक्रिया को सुदृढ़ बनाने में अनुसंधान का कोई योगदान नहीं हो पा रहा था जबकि उसका प्रमुख उद्देश्य यही था। स्वयं **कोरे** ने बहुत बार कहा कि ये अनुसंधानकर्ता "वैज्ञानिक होने का गर्व करते हैं तथा वास्तविक व्यावहारिक परिस्थितियों से जुड़ने को महत्त्वपूर्ण नहीं समझते"। क्रियात्मक अनुसंधान, अनुसंधान को इस आरोप से मुक्त कराता है तथा उसे व्यावहारिकता, उपयोगिता से जोड़ता है क्योंकि यह अनुसंधान उन्हीं व्यक्तियों द्वारा किए जाते हैं जो विद्यालयों में कार्य करते हैं तथा उन्हीं समस्याओं के समाधान खोजने हेतु किए जाते हैं जिनसे वे जूझ रहे होते हैं। स्वाभाविक है कि जो परिणाम उन्हें इस अनुसंधान द्वारा उपलब्ध होंगे उनका वे अपनी कार्य-प्रणाली में उपयोग भी करेंगे। इस प्रकार, क्रियात्मक अनुसंधान अध्यापकों एवं विद्यालय-प्रशासकों के दैनिक कार्य-कलाप का ही एक अंग बन गया है जो शैक्षिक-निर्णयों एवं शिक्षण पद्धतियों को वैज्ञानिक, अनुभवगत एवं तार्किक आधार प्रदान करता है तथा सम्पूर्ण शैक्षिक क्रिया को प्रभावशाली बनाने में सहयोग देता है। इस दृष्टिकोण से क्रियात्मक अनुसंधान को शिक्षा के क्षेत्र में बहुत लाभकारी एवं महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।

2. अध्यापकों की सोच एवं मानसिक दृष्टिकोणों में परिवर्तन

जब अध्यापक एवं प्रशासक अपने कार्य-क्षेत्रों में वांछनीय परिवर्तन लाने हेतु अनुसंधान करते हैं तो उस बीच जो अनुभव उन्हें होते हैं उससे उनके भीतर कुछ मनोवैज्ञानिक परिवर्तन होते हैं, उनके सोचने के ढंग, उनकी अभिरुचियाँ, अभिवृत्तियाँ बदलती हैं। इस आन्तरिक परिवर्तन के फलस्वरूप उनके व्यवहार भी बलदते हैं। अन्तत: वे शिक्षा की प्रक्रिया के साथ आन्तरिक रूप से जुड़ जाते हैं। यह क्रियात्मक अनुसन्धान का अति-महत्त्वपूर्ण लाभ समझा जाता है। मूलभूत एवं अन्य प्रकार के अनुसन्धानों के प्रतिवेदनों, सारांशों एवं संस्तुतियों का अध्ययन मात्र करने पर ऐसा नहीं हो पाता। जब स्वयं ही वे अपना अनुसन्धान करते हैं अपनी समस्या को महत्त्वपूर्ण समझते हैं। अत: इस अनुसन्धान द्वारा प्राप्त परिणामों को अपनी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि मानते हुए उसके परिणामों को व्यावहारिक परिस्थितियों में, अपनी कार्य-प्रणाली में प्रयोग करने तथा उनकी सत्यता, प्रभाविकता की जाँच करने में उनकी स्वाभाविक रुचि होती है। इन परिणामों को मन से क्रियान्वित करने का वे प्रयास करते हैं। अपने दैनिक कार्यक्रमों में इस प्रकार निरन्तर गुणात्मक परिवर्तन लाने में उनकी रुचि विकसित हो जाती है। साथ ही उनके ज्ञान में भी वृद्धि होती है क्योंकि अनुसन्धान करते हुए उन्हें अनुसन्धान के विषय में, अनुसन्धान की समस्या के विषय में बहुत कुछ पढ़ना भी पड़ता है। इन सबका परिणाम यह होता है कि अध्यापक अथवा प्रशासक जो भी क्रियात्मक अनुसन्धान से जुड़ता है, पूर्णतया बदल जाता है, एक उच्च कोटि का प्रभावशाली अध्यापक बन जाता है।

यह आवश्यक नहीं है कि किसी समस्या पर कोई एक अध्यापक, एक प्रशासक ही कार्य करे। कई एक अध्यापक एवं प्रधानाचार्य मिलकर एक टीम के रूप में भी कार्य कर सकते हैं। इस स्थिति में उस टीम के सभी सदस्यों में वे परिवर्तन हो सकेंगे जिनका उल्लेख ऊपर किया गया है। इस प्रकार सम्पूर्ण संस्था में जागृति लाई जा सकती है, सम्पूर्ण संस्था को आन्दोलित करके उसे उन्नत बनाया जा सकता है। इस दृष्टिकोण से क्रियान्वित अनुसन्धान को अत्यन्त उपयोगी माना जाता है।

नोट

3. शैक्षिक प्रक्रिया में गुणात्मक परिवर्तन की सम्भावना

क्रियात्मक अनुसन्धान के माध्यम से शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन लाने की संभावना भी प्रबल होती है। शिक्षा की गुणात्मक उन्नति से तात्पर्य होता है छात्रों में वांछनीय ज्ञान के साथ-साथ उनके व्यक्तित्व का भी विकास करना। इसके लिए आवश्यक है कि उन सारी समस्याओं को समझना एवं दूर करना जो इस मार्ग में अवरोध उत्पन्न करती हैं। इन समस्याओं को वैज्ञानिक एवं वस्तुनिष्ठ ढंग से समझने में क्रियात्मक अनुसन्धान की भूमिका निश्चित एवं महत्त्वपूर्ण समझी जाती हैं। छात्रों का पढ़ने में मन न लगना, कक्षा में नियमित रूप से उपस्थित न रहना, किसी विषय में विशेष कारण से पिछड़ा होना, अनुशासनहीन होना, अन्य छात्रों के साथ सहयोग न करना, विद्यार्थियों में असामाजिक व्यवहारों का होना, उनका गृह, समाज, स्वास्थ्य, शिक्षा, सम्बन्धी समस्याओं से आक्रांत रहना आदि ऐसे अवरोध हैं जो उनकी शिक्षा की प्रगति को अवरुद्ध करते हैं। ये सब वे परिस्थितियाँ हैं, जिन्हें समझकर उन्हें दूर करने के प्रयास करना शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन लाने के लिए आवश्यक है, परन्तु कुछ सकारात्मक प्रयास उन दिशाओं में करना भी आवश्यक होता है जिनकी ओर छात्रों को मोड़ना उनके हित में होता है, यथा–उन्हें ज्ञानोपलब्धि हेतु प्रेरित करना, पढ़ने-लिखने तथा ज्ञान-प्राप्ति में उनकी रुचि एवं लगाव व विकास करना, अच्छे व्यवहारों एवं संस्कारों को ग्रहण करना आदि। उस प्रकार की विधियों को खोजना जिनके द्वारा यह सब सम्भव होता है, इस बात पर निर्भर करता है कि छात्रों की इन समस्याओं को अध्यापक एवं प्रशासक कहाँ तक अच्छी तरह समझते हैं। इन्हें समझने एवं उन प्रभावशाली विधियों को विकसित करने में क्रियात्मक अनुसन्धान अध्यापकों एवं प्रशासकों को महती सहायता प्रदान कर सकता है।

4. मूलभूत अनुसन्धान के सिद्धान्तों के परीक्षण का माध्यम

एक और लाभ क्रियात्मक अनुसन्धान का यह है कि उसके द्वारा मूलभूत अनुसन्धानों के परिणामों एवं सिद्धांतों का परीक्षण भी किया जा सकता है। किसी वास्तविक परिस्थिति में कहाँ तक ये सिद्धांत समस्या का समाधान प्रस्तुत करने में सफल होते हैं, इसका परीक्षण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, **बी.एफ. स्किनर** की 'ऑपेरेन्ट कन्डीशनिंग थ्यौरी आफ लर्निंग' (Operant conditioning theory of learning) का एक सामान्यन (generalization) है कि 'व्यक्ति वही व्यवहार सीखता है जिसे पुरस्कृत किया जाता है।' क्रियात्मक अनुसन्धान द्वारा इसकी सत्यता की कोई भी अध्यापक जाँच कर सकता है। यदि उसके परीक्षण में तथा उसकी परिस्थितियों में यह खरा उतरता है तो निश्चित ही अध्यापक अपने छात्रों के अवांछनीय व्यवहारों को बदलने तथा वांछनीय व्यवहारों को उनमें विकसित करने में उसका प्रयोग करना चाहेगा। इस दृष्टिकोण से भी क्रियात्मक अनुसन्धान लाभकारी एवं महत्त्वपूर्ण है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. क्रियात्मक अनुसंधान की ..... के जन्मदाता स्टीफेन एम. कोरे हैं।
   (क) व्यवस्था (ख) संकल्पना (ग) सर्वेक्षण (घ) उद्देश्य
5. क्रियात्मक अनुसंधान, अनुसंधान को यथार्थता एवं ..... से जोड़ता है।
   (क) मौलिकता (ख) सामाजिकता (ग) उपयोगिता (घ) व्यावहारिकता
6. 1962 के आसपास कोरे भारत में एन.सी.ई.आर.टी. के ..... रहे।
   (क) परामर्शक (ख) व्याख्याता (ग) शिक्षक (घ) संपादक

2.8 क्रियात्मक अनुसन्धान की सीमाएँ (Limitation of Action Research)

नोट

उपरोक्त पंक्तियों में यह कहा गया है कि क्रियात्मक अनुसन्धान बहुत उपयोगी है, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि वह स्वत: ही प्रत्येक परिस्थिति में उपयोगी बन जायेगा। इसमें सन्देह नहीं कि यदि सब परिस्थितियाँ अनुकूल हों तो वह अवश्य एक अत्यंत उपयोगी क्रिया होगी। अत: क्रियात्मक अनुसन्धान की उपयोगिता कुछ परिस्थितियों पर निर्भर करती है। ये अनुकूल परिस्थितियाँ साधारणतया विद्यालयों में उपलब्ध नहीं होतीं। बस यही क्रियात्मक अनुसन्धान की सीमाएँ, कठिनाइयाँ, उसकी उपयोगिता के मार्ग के अवरोध हैं। इनका क्रमश: उल्लेख नीचे किया गया है।

1. अनुसन्धानकर्ताओं में तकनीकी ज्ञान एवं कौशल का अभाव

जब क्रियात्मक अनुसन्धान की उपयोगिता को हम स्वीकार करते हैं तो यह भी मानकर चलते हैं कि अनुसन्धानकर्ता अर्थात् अध्यापक में अनुसन्धान से सम्बन्धित वांछनीय ज्ञान एवं कुशलताएँ हैं परन्तु प्राय: ऐसा होता नहीं। विद्यालय के अध्यापकों को अधिकांशत: अनुसन्धान के सम्बन्ध में न तो जानकारी होती है और न उनमें वे कौशल होते हैं जिनकी अनुसन्धान करने में आवश्यकता पड़ती है। अधिकतर अध्यापक बी.एड. होते हैं। बी.एड. स्तर पर उन्हें अनुसन्धान के सम्बन्ध में कुछ नहीं पढ़ाया जाता। अत: इस दिशा में पग रखने की न तो वे इच्छा करते हैं और न साहस।

2. अध्यापकों पर कार्य-भार की अधिकता

दूसरी कठिनाई इस सम्बन्ध में यह आती है कि अध्यापकों पर शिक्षण एवं शिक्षण-सम्बन्धी कार्य का पहले से ही बहुत अधिक भार रहता है। अनुसन्धान हेतु समय निकालना उनके लिए प्राय: असम्भव ही होता है। कुछेक देशों को छोड़कर विश्व के सभी देशों में यही स्थिति पाई जाती है। चाहते हुए भी समाज अध्यापकों के कार्य-भार में कमी करने में सफल नहीं हो पा रहे। यही स्थिति प्रधानाचार्यों की भी है। अत: विद्यालय के अध्यापकों एवं प्रशासकों से यह आशा करना कि वे अनुसन्धान भी करें, वर्तमान परिस्थितियों में अधिक सार्थक प्रतीत नहीं होता।

3. वांछनीय स्तर की गुणवत्ता का अभाव

क्रियात्मक अनुसन्धान की एक कठिनाई यह है कि उसके परिणामों की विश्वसनीयता एवं वैधता बहुत निम्न स्तर की होती है। इसके कई कारण होते हैं। अनुसन्धान प्रक्रिया का ज्ञान न होने के कारण ये अनुसन्धानकर्ता न तो समस्या का सही ढंग से परिभाषीकरण कर पाते हैं, न परिकल्पनाओं का निर्माण उचित रूप से कर पाते हैं, न शोध-सामग्री का विश्लेषण एवं व्याख्या सही-सही कर पाते हैं। फलस्वरूप जो शोध-परिणाम उन्हें उपलब्ध होते हैं, उनके वैध एवं विश्वसनीय होने की सम्भावना बहुत कम रह जाती है। उदाहरण के लिए, "यदि कक्षा के कुछ छात्र किसी विषय में पिछड़े हुए हैं", यह समस्या है तो उनके पिछड़े होने के अनेक कारण हो सकते हैं और उन सब का ज्ञान शोधकर्ता को होना चाहिए, तभी वह उपयुक्त परिकल्पना का निर्माण कर सकता है तथा अनुसन्धान द्वारा उसका परीक्षण कर सकता है। परिकल्पना के परीक्षण के लिए भी अध्ययनेतर चरों को नियन्त्रित करना आवश्यक होता है अन्यथा परिणाम सही नहीं निकल सकता, परन्तु यह सब कैसे किया जाता है, इसका ज्ञान शोधकर्ता को होता नहीं। अत: जो निष्कर्ष उनके अनुसन्धान के निकलते हैं वे विश्वसनीय एवं वैध नहीं होते। स्पष्ट है कि उनके आधार पर लिए गये निर्णय एवं उनका व्यवहार में क्रियान्वयन समस्या का उपयुक्त समाधान प्रस्तुत नहीं कर सकते।

4. परिणामों एवं निष्कर्षों का अत्यन्त सीमित होना

क्रियात्मक अनुसंधान का आधार केवल अध्यापक की अपनी कक्षा अथवा अपना विद्यालय ही होता है। अत: परिणाम भी केवल उसी कक्षा अथवा विद्यालय पर लागू होते हैं। किसी दूसरे विद्यालय अथवा दूसरी कक्षा के छात्रों की समस्या की, उनके व्यवहारों की व्याख्या उन परिणामों के आधार पर नहीं की जा सकती। अत: यदि वह अध्यापक दूसरे विद्यालय में स्थानान्तरित हो जाता है तो उसका वह अनुसन्धान उसके लिए निरर्थक हो जाता है। इस प्रकार क्रियात्मक अनुसन्धान की उपयोगिता अत्यन्त सीमित होती है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State Whether the Following Statement are True or False):

7. क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना का विकास मौलि ने किया।
8. शिक्षा अनुसंधान का मुख्य कार्य शिक्षा प्रक्रिया में सुधार तथा विकास करना है।
9. एन.सी.इ.आर.टी. ने शैक्षिक अनुसंधान पर स्टीफेन एम. कोरे की एक पुस्तक भी प्रकाशित की।
10. क्रियात्मक अनुसंधान के माध्यम से शिक्षा में गुणात्मक परिवर्तन लाने की संभावना प्रबल होती है।

5. विद्यालयों के वातावरण का अनुकूल न होना

क्रियात्मक अनुसंधान की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि विद्यालय में अनुसंधानकर्ताओं को प्रश्रय मिले, आवश्यक सुविधाएँ मिले, उनके कार्य किसी न किसी रूप में पुरस्कृत हों परन्तु हमारे देश में विद्यालयों का वातावरण ऐसा नहीं है बल्कि इसके ठीक प्रतिकूल वातावरण है। उसमें वह सब व्याप्त है जो अध्यापकों को काम न करने की दिशा में धकेलता है। अपने देश में विशेष रूप से क्रियात्मक अनुसंधान के मार्ग में यह एक बहुत विकट अवरोध है।

क्रियात्मक अनुसंधान की उपरोक्त कठिनाइयों के आधार पर यह धारणा बनाना कि वह निरर्थक है, सही नहीं होगा बल्कि इन्हें एक चुनौती के रूप में लेकर दूर करने का प्रयास करना सकारात्मक एवं रचनात्मक दृष्टिकोण होगा। सभी कठिनाइयाँ ऐसी हैं जिनका निराकरण संभव है। अध्यापकों के कार्य-भार में कमी करना असंभव नहीं है। यह दूसरी बात है कि यह राज्य के स्तर पर ही संभव है। राज्य द्वारा अध्यापकों की संख्या में वृद्धि करके ही यह संभव हो सकता है। इसी प्रकार अध्यापकों में अनुसंधान-संबंधी ज्ञान एवं कौशलों का विकास भी कई प्रकार से किया जा सकता है। एन.सी.ई.आर.टी. द्वारा उनके लिए अल्पकालिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सकती है। मार्गदर्शक के रूप में प्रत्येक विद्यालय में अथवा प्रत्येक नगर में सभी विद्यालयों के अध्यापकों के लिए एक शोध-विशेषज्ञ की नियुक्ति की जा सकती है जो ऐसे अध्यापकों को प्रत्येक प्रकार की सलाह एवं सहायता देगा। यह भी राज्य का ही उत्तरदायित्व होगा। अध्यापकों को इस दिशा में प्रेरित एवं पुरस्कृत करने का उत्तरदायित्व तो विद्यालय के प्रधानाचार्य का ही होगा। कई प्रकार से यह कार्य भी किया जा सकता है।

व्यावहारिक दृष्टिकोण से क्रियात्मक अनुसंधान के मार्ग में कितनी ही कठिनाइयाँ क्यों न हों, सैद्धांतिक दृष्टिकोण से तो यह स्वीकार करना पड़ेगा कि क्रियात्मक अनुसंधान शिक्षा के स्तर को ऊँचा उठाने की एक प्रभावशाली विधि है। शिक्षण के साथ उसका जुड़ना प्रत्येक दृष्टिकोण से लाभकारी है। "अनुसंधानाधारित शिक्षा" शिक्षा-जगत का भावी नारा होना चाहिए तथा राज्य को इसे सफल बनाने के लिए उपयुक्त प्रयास करना चाहिए।

2.9 सारांश (Summary)

- शिक्षा-अनुसंधान के उद्देश्यों से यह स्पष्ट है कि शैक्षिक अनुसंधानों का वर्गीकरण कई प्रकार से किया जा सकता है। प्रमुख वर्गीकरण के मानदण्ड अधोलिखित हैं–योगदान की दृष्टि से, शोध-आयाम की दृष्टि से शोध निष्कर्ष की शुद्धता की दृष्टि से।
- शिक्षा-अनुसंधान का प्रमुख कार्य शिक्षा की प्रक्रिया में सुधार तथा विकास करना है। यह कार्य ज्ञान के प्रसार से किया जाता है।
- क्रियात्मक अनुसंधान की संकल्पना केवल कोरे की है तथा उसकी उत्पत्ति 1953 में लिखी गई उनकी पुस्तक "एक्शन रिसर्च टू इम्प्रूव स्कूल प्रैक्टिस" (1953) से ही मानी जाती है।

नोट

- मौलि के शब्दों में, क्रियात्मक अनुसंधान एक तत्स्थान (on the spot) अध्ययन है जिसका उद्देश्य किसी तात्कालिक समस्या का समाधान खोजना होता है अर्थात् यह एक ऐसा अनुसंधान है जो वहीं किया जाता है जहाँ वास्तव में समस्या उत्पन्न हुई है।

2.10 शब्दकोश (Keywords)

1. **अन्वेषण (Research)**–किसी विशेष विषय या समस्या की खोज या शोध करना।
2. **क्रियात्मक अनुसंधान (Action Research)**–शोध की ऐसी प्रक्रिया जिसमें समस्याओं का अध्ययन वैज्ञानिक ढंग से किया जाता है, ताकि निष्कर्ष में सुधार लाते हुए उसे सही दिशा दी जा सके।

2.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. शिक्षा अनुसंधान का वर्गीकरण करते हुए विस्तृत वर्णन करें।
2. क्रियात्मक अनुसंधान तथा उसकी संकल्पना से आप क्या समझते हैं?
3. क्रियात्मक अनुसंधान की विशेषताओं का वर्णन करें।
4. क्रियात्मक अनुसंधान की उपयोगिता से आप क्या समझते हैं?
5. क्रियात्मक अनुसंधान की सीमाओं का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. स्थानीय	2. नियमों	3. 'विद्यालय सुधार'	4. (ख) संकल्पना
5. (ग) उपयोगिता	6. (क) परामर्शक	7. असत्य	8. सत्य
9. सत्य	10. सत्य		

2.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 3: अनुसंधान-समस्या का चयन, कथन एवं स्रोत (Selection, Statement and Source of Research Problem)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

3.1 समस्या का चयन, कथन एवं परिभाषीकरण (Selection, Statement and Definition of Problem)

3.2 समस्या चयन की प्रक्रिया (Process of Problem Selection)

3.3 चयनित समस्या का मूल्यांकन (Evaluation of Selected Problem)

3.4 समस्या-कथन (Statement Problem)

3.5 समस्या का विश्लेषण एवं उसका परिभाषीकरण (Definition and Analysis of Problem)

3.6 समस्या के स्रोत (Source of the Problem)

3.7 सारांश (Summary)

3.8 शब्दकोश (Keywords)

3.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

3.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- समस्या चयन, कथन एवं परिभाषीकरण को जानने में;
- चयनित समस्या के मूल्यांकन को समझने में;
- समस्या के स्रोत को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुसंधान चाहे किसी भी क्षेत्र में किया जाए, उसकी प्रक्रिया लगभग एक-सी ही रहती है। सम्पूर्ण कार्य की क्रमबद्धता सभी क्षेत्रों के अनुसंधानों में समान होती है। व्यवहार विज्ञानों जैसे, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं शिक्षा के क्षेत्रों में तो यह सामान्यतया लगभग शत-प्रतिशत ही होती है। पुस्तक के इस भाग में अनुसंधान-प्रक्रिया के उन

नोट

विशिष्ट चरणों का उल्लेख किया गया है, जिनका पालन सभी व्यवहार-विज्ञानों में किया जाता है। साधारणतया इन क्षेत्रों के अनुसंधानों में निम्नलिखित पदक्रम रहता है–

1. समस्या का चयन, कथन एवं परिभाषीकरण।
2. समस्या-चयन हेतु संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण।
3. परिकल्पनाओं का निर्माण।
4. अनुसंधान-सूचनाओं अथवा दत्तों का संकलन।
5. अनुसंधान-सामग्री (data) का विश्लेषण।
6. निष्कर्षों की स्थापना एवं सामान्यीकरण।

3.1 समस्या का चयन, कथन एवं परिभाषीकरण (Selection, Statement and Definition of Problem)

उपयुक्त समस्या का चयन सभी शोधकर्ताओं के लिए एक कठिन कार्य होता है। आरम्भ में समस्या चयन हेतु अधिकतर शोधकर्ताओं को इधर-उधर भटकना पड़ता है। प्रायः वे यह आशा करते हैं कि उनके शोध-मार्गदर्शक (research guides) ही उन्हें अपनी ओर से शोध-समस्याएँ देंगे। इस प्रकार की सोच उचित नहीं है, क्योंकि शोध-मार्गदर्शकों के लिए भी यह कार्य सरल नहीं होता। उनके पास भी चयनित शोध-समस्याएँ नहीं होतीं। उपयुक्त समस्या का चयन करने हेतु उन्हें भी उतना ही परिश्रम करना होता है, जितना शोधकर्ता के लिए आवश्यक है। बिना परिश्रम एवं गहन अध्ययन के चुनी हुई शोध-समस्याएँ अधिकतर ऐसी होती हैं, जिन पर पहले ही पर्याप्त शोध-कार्य हो चुका होता है, जो महत्त्वहीन होती हैं, जिनके संबंध में पर्याप्त जानकारी पहले से ही उपलब्ध है, जिनके परिणाम वैध नहीं होते आदि। अतः यह जानना शोधकर्ता के लिए अत्यंत आवश्यक है कि शोध-समस्या का चयन किस प्रकार करना चाहिए, किस प्रकार की समस्याएँ शोध हेतु उपयुक्त होती हैं तथा उनकी उपलब्धता के स्रोत कौन-से होते हैं। इन सबका उल्लेख आगे किया गया है।

समस्या का स्रोत

नोट्स

शोध की समस्याएँ कई माध्यमों से उपलब्ध होती हैं। इनमें शोधकर्ता का व्यक्तिगत अनुभव, संदर्भ साहित्य का अध्ययन, पहले किए जा चुके अनुसंधानों का सर्वेक्षण, देश में घट रहे सामाजिक, तकनीकी एवं शैक्षिक परिवर्तन आदि प्रमुख हैं।

(क) व्यक्तिगत अनुभव

शोधकर्ता अपने अनुभव के आधार पर यह जानने का प्रयास कर सकता है कि शिक्षा मनोविज्ञान अथवा समाजशास्त्र के किस क्षेत्र में किस प्रकार की समस्याएँ विद्यमान हैं, जिनका समाधान खोजना आवश्यक है, कितने तथा किस प्रकार के ऐसे प्रश्न हैं, जिनके उत्तर कहीं उपलब्ध नहीं हैं, कितने ऐसे प्रकरण एवं प्रसंग हैं, जिनकी पूरी जानकारी किसी को नहीं है। यदि वह इन क्षेत्रों में कार्य करता है अथवा इन विषयों का विद्यार्थी है, तो उसके ऐसे अनेक अनुभव हो सकते हैं, जिनका संबंध इस प्रकार की समस्याओं, प्रश्नों एवं वांछनीय जानकारी से होता है। यदि उसके अनुभव में कोई समस्या आती है तथा उसका अनुभव समस्या का कोई समाधान सुझाता है, तो उसी को लेकर अनुसंधान किया जा सकता है।

नोट

उदाहरण यदि उसे लगता है कि माता-पिता के कटु व्यवहार के कारण बालकों में आक्रामकता (aggression) एवं चिड़चिड़ापन आ जाता है तो यही शोध की समस्या बन सकती है।

एक अध्यापक को विद्यालय में काम करते हुए छात्रों, सहयोगियों, प्रधानाचार्य आदि के साथ निरंतर अन्तर्क्रिया के फलस्वरूप जो अनुभव होते हैं, उन्हीं में शोध की समस्याएँ उपलब्ध हो सकती हैं। शोधकर्ताओं को मानवीय व्यवहारों के संबंध में जो अनुभव होते हैं, उनमें शोध-समस्याओं के संकेत मिल सकते हैं। समाज-व्यवस्था एवं संस्थाओं से संबंधित अनुभवों में शोध-समस्याएँ उपलब्ध हो सकती हैं। जहाँ कहीं भी अनुभवगत घटनाएँ, परिस्थितियाँ, व्यवहार, तथ्य समस्या के रूप में प्रतीत होते हैं तथा जिनके समाधान उपलब्ध नहीं हैं, उन्हें शोध समस्याओं के रूप में चुना जा सकता है।

(ख) संदर्भ साहित्य का अध्ययन

शोधकर्ता का अध्ययन शोध-समस्या के चयन का दूसरा स्रोत है। प्रत्येक क्षेत्र में विभिन्न विषयों पर बहुत-सा साहित्य उपलब्ध है। संबंधित साहित्य का अध्ययन करने पर यह पता चल जाता है कि उपलब्ध ज्ञान का कहाँ उपयोग किया जा सकता है, उसके आधार पर किन घटनाओं की व्याख्या की जा सकती है, कहाँ उसमें अपूर्णता है आदि। पढ़ते-पढ़ते कई प्रकार के प्रश्न भी मस्तिष्क में उभर कर आते हैं, जिनके उत्तर खोजना महत्त्वपूर्ण हो सकता है। प्रत्येक क्षेत्र में बहुत से ऐसे सिद्धांत (theories), कथन, सुझाव हो सकते हैं, जो पर्याप्त रूप से परीक्षित एवं वैध प्रतीत नहीं होते। अत: उन्हें लेकर शोध-समस्या का निर्धारण किया जा सकता है। बुद्धि के सिद्धांत (theories of intelligence), अधिगम-सिद्धांत, व्यक्तिगत-सिद्धांत आदि बहुत से सिद्धांतों का निरूपण शिक्षा एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में किया गया है। इनके आधार पर अनेक प्रकार के व्यवहारों, परिस्थितियों एवं समस्याओं का विश्लेषण सम्भव हो सकता है। ये संभावनाएँ भी शोध-समस्याओं का रूप ले सकती हैं। अनुसंधान के द्वारा इन सिद्धांतों की वैधता का भी परीक्षण किया जा सकता है।

(ग) पूर्ण हो चुके अनुसंधानों का सर्वेक्षण

प्रत्येक क्षेत्र में पहले ही बहुत से अनुसंधान हो चुके होते हैं। इन अनुसंधानों का अध्ययन करने पर अनुसंधान की नई समस्याएँ उभरकर सामने आती हैं। इन अनुसंधानों का अध्ययन करने पर मस्तिष्क में यह बात उभरकर आती है कि कहाँ कुछ ऐसा छूट गया है, जिसका अध्ययन करना आवश्यक है। जो अनुसंधान पूर्ण हो चुका है, उसी को आगे भी बढ़ाया जा सकता है, उसमें दूसरे महत्त्वपूर्ण चरों को जोड़कर पुन: उस समस्या पर कार्य किया जा सकता है, उसी अध्ययन को दूसरे परिप्रेक्ष्य में भी किया जा सकता है आदि। इन अनुसंधानों का अध्ययन करने पर यह भी ज्ञात होता है कि उस क्षेत्र में अनुसंधान की भावी संभावनाएँ क्या हो सकती हैं, क्योंकि प्रत्येक अनुसंधानकर्ता अपने थीसिस के अन्त में इस प्रकार के सुझाव देता है। इन सुझावों के आधार पर अनुसंधान की नई समस्या का चयन सरल हो सकता है। प्रत्येक क्षेत्र में ऐसे सर्वेक्षण प्रकाशित होते रहते हैं, जो पूर्ण हो चुके अनुसंधानों का संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत करते हैं। इनका विस्तार से उल्लेख आगे किया जाएगा।

(घ) सामाजिक, तकनीकी एवं शैक्षिक परिवर्तन

प्रत्येक देश में सामाजिक, तकनीकी एवं शैक्षिक प्रकार के अनेक परिवर्तन होते रहते हैं। शिक्षा-नीतियाँ बनती हैं तथा शिक्षा की व्यवस्था में परिवर्तन किए जाते हैं। देश में तकनीकी परिवर्तन भी होते हैं। समाज में भी बदलाव आता रहता है। इन परिवर्तनों के कारण बहुत-सी समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं। इन समस्याओं के समाधान खोजना व्यक्ति एवं समाज के विकास के दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हो सकता है। इसी पृष्ठभूमि में शोध की समस्याओं का भी जन्म होता है। इन परिवर्तनों का आलोचनात्मक दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर कितनी ही शोध-समस्याएँ उपलब्ध हो सकती हैं। उदाहरण के लिए नई शिक्षा नीति (1986) में शिक्षा के स्वरूप को बदलने के अनेक सुझाव दिए गए हैं। फलस्वरूप कितने ही नये सवाल एवं नई समस्याएँ उभरी हैं, जिनके उत्तर एवं समाधान अनुसंधान द्वारा ही खोजे जा सकते हैं। जीवन-मूल्यों का ह्रास, बढ़ती हुई धर्मान्धता, लोकतंत्र समर्थित स्वतंत्रता का दुरुपयोग तथा बिगड़ता

नोट

हुआ संस्थाओं का वातावरण, संस्थाओं में बढ़ता हुआ भ्रष्टाचार, शिक्षा संस्थाओं की घटती सार्थकता आदि अनेक ऐसे परिवर्तन हैं, जिन्होंने हमारे देश में अनेक प्रकार की समाजशास्त्रीय, मनोवैज्ञानिक एवं शैक्षिक समस्याओं को जन्म दिया है, जिन पर गम्भीरतापूर्वक अनुसंधान करने की आवश्यकता है।

शोध-समस्याओं की उपलब्धि के ये कुछ सर्वमान्य स्रोत हैं, परन्तु इसका यह अर्थ कदापि नहीं है कि इनके अतिरिक्त समस्या-चयन का और कोई माध्यम नहीं हो सकता, तो भी यह सभी स्वीकार करते हैं कि शोधकर्ता के स्वयं के गहन अध्ययन एवं मनन का तो कोई विकल्प हो ही नहीं सकता। शोध-समस्या के चयन हेतु तत्संबंधी ज्ञान-सागर में तो उसे उतरना ही होगा। जिस क्षेत्र में अनुसंधान करना है, उसके संबंध में यदि शोधकर्ता को पर्याप्त वांछनीय जानकारी नहीं है तो उपयुक्त शोध-समस्या का चयन सम्भव नहीं हो सकता।

होल्मेस का मत है कि निम्नलिखित प्रश्न शोधकर्ता को समस्या के चयन में सहायता प्रदान कर सकते हैं–

1. संबंधित क्षेत्र में जो व्यक्ति वास्तव में कार्यरत हैं, उनके समक्ष किस प्रकार की समस्याएँ उत्पन्न होती हैं?
2. वर्तमान में तथा पिछले कुछ वर्षों में किन समस्याओं पर अनुसंधान किया गया है?
3. संबंधित क्षेत्र में जो अनुसंधान हुए हैं, उनमें किस प्रकार के तथ्य, नियम एवं सामान्यन उजागर हुए हैं?
4. इन तथ्यों, नियमों तथा सामान्यनों की व्यावहारिक उपयोगिता क्या हो सकती है?
5. संबंधित क्षेत्र में किए गए अनुसंधानों के परिणामों का व्यवहार में कहाँ तक प्रयोग किया गया है?
6. किस प्रकार की नई समस्याएँ इन अनुसंधानों के द्वारा उभर कर आई हैं तथा किन पर अनुसंधान किया जाना शेष है?
7. संबंधित क्षेत्र में अनुसंधान किए जाने के मार्ग में कौन-कौन सी प्रमुख कठिनाइयाँ हैं?
8. संबंधित क्षेत्र में अनुसंधान की कौन-कौन सी तकनीकों एवं प्रक्रियाओं का विकास हुआ है?
9. कौन-कौन सी संकल्पनाएँ हैं, जो संबंधित क्षेत्र में प्रचलित हैं?
10. संबंधित क्षेत्र में किए गए अथवा किए जा रहे अनुसंधानों में किस प्रकार की अवधारणाओं (assumptions) का सहारा लिया गया है?

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. उपयुक्त समस्या का चयन सभी ..... के लिए कठिन कार्य होता है।
2. प्रत्येक देश में सामाजिक, तकनीकी एवं शैक्षिक प्रकार के ..... होते रहते हैं।
3. संभावित समस्याओं को लेकर शोध ..... के साथ गंभीरतापूर्वक विचार-विमर्श करना चाहिए।

3.2 समस्या-चयन की प्रक्रिया (Process of Problem Selection)

शोध-समस्या के चयन की प्रक्रिया में सामान्यत: निम्नलिखित चयन निहित रहते हैं–

1. सबसे पहले मोटे तौर पर यह निर्धारित करना कि किस क्षेत्र में शोध करना है। प्रत्येक विषय का ज्ञान अनेक क्षेत्रों में विभाजित रहता है। उदाहरण के लिए शिक्षा-विषय के विशिष्ट क्षेत्र मनोविज्ञान, शिक्षा-समाजशास्त्र, शिक्षा-दर्शन, शिक्षा-तकनीकी, शिक्षा-प्रबंधन, मूल्यांकन एवं मापन, अध्यापक-शिक्षा, शिक्षण-प्रक्रिया आदि हो सकते हैं। इसी प्रकार मनोविज्ञान विषय के ये क्षेत्र अधिगम, प्रेरणा, व्यवहार-परिवर्तन, प्रयोगात्मक मनोविज्ञान, मापन एवं मूल्यांकन, सृजनात्मकता, अवधान, व्यक्तिगत, संस्थागत-व्यवहार (organizational behaviour) आदि हो सकते हैं।

नोट

समाजशास्त्र के क्षेत्र में ये सामाजिक परिवर्तन, जाति-संबंध, परिवार-विघटन, संस्थाएँ एवं उनकी संरचना, सामाजिक वर्ग-भेद, सामाजिक तनाव, सामाजिक रूढ़ियाँ, आधुनिकीकरण, सामाजिक मान्यताएँ एवं परम्पराएँ आदि हो सकती हैं। अपने अध्ययन, ज्ञान एवं रुचि के आधार पर क्षेत्र का निर्णय कर लेने के पश्चात् उस क्षेत्र में से एक सीमित एवं महत्त्वपूर्ण समस्या की खोज करनी चाहिए। क्षेत्र, ज्ञान का विस्तृत रूप होता है। उसके अन्तर्गत अनेक परिप्रेक्ष्य, सिद्धांत, आयाम, प्रश्न एवं समस्याएँ आते हैं। अत: यह आवश्यक होता है कि उस समस्त ज्ञानसागर का मंथन करने के पश्चात् उस समस्या को खोज निकाला जाए, जिसका निश्चित एवं निर्विरोध समाधान अभी तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

2. एक निश्चित एवं स्पष्ट समस्या का चयन करने में दूसरा कदम चुने हुए क्षेत्र में जो अनुसंधान हो चुके हैं, उनका सर्वेक्षण करना होता है। इससे यह पता लगता है कि उस क्षेत्र में किन-किन समस्याओं को लेकर कितना और किस प्रकार का शोध कार्य हो चुका है। साथ ही यह भी पता चलता है कि कौन-से प्रश्न अभी अनुत्तरित हैं अथवा पूर्णतया उत्तरित नहीं हैं। इन प्रश्नों अथवा समस्याओं में से किसी एक का नये शोध हेतु चयन किया जा सकता है।

3. उपरोक्त प्रश्न अथवा समस्या का चयन कर लेने का अर्थ यह नहीं होता कि शोध-समस्या मिल गई। इसे केवल संभावित समस्या ही समझना चाहिये। अच्छा यह रहता है कि ऐसी कई संभावित समस्याओं का चयन किया जाए।

4. इन संभावित समस्याओं को लेकर शोध-मार्गदर्शक के साथ बैठकर गम्भीरतापूर्वक उन पर विचार-विमर्श करना चाहिए। यह समस्या-चयन की प्रक्रिया का तीसरा चरण है। समस्या का समाधान खोजना इतना कठिन नहीं होता, जितना कि समस्या का चयन एवं उसकी संरचना तैयार करना होता है। विभिन्न दृष्टिकोणों से मार्गदर्शक की सूझ-बूझ एवं सुझावों को ध्यान में रखते हुए अन्तिम रूप से समस्या का चयन इन स्तर पर हो जाता है।

3.3 चयनित समस्या का मूल्यांकन (Evaluation of Selected Problem)

शोध हेतु समस्या को अन्तिम रूप देने से पहले उसकी उपयुक्तता (suitability) पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाता है। इसे समस्या का मूल्यांकन (evaluation of the problem) कहते हैं। इसके अन्तर्गत यह विचार किया जाता है कि समस्या शोध हेतु अच्छी रहेगी अथवा नहीं। कोई समस्या कब अच्छी अथवा उपयुक्त समझी जाती है, इसकी एक कसौटी (criterion) होती है, जिसके अन्तर्गत कई बिंदु आते हैं। उन सभी बिंदुओं के दृष्टिकोणों से यदि समस्या उपयुक्त ठहरती है, तभी उसे अच्छा समझा जाता है तथा अन्तिम रूप से उसका चयन किया जाता है। **फ्रांसिस रूमेल** के अनुसार, इस कसौटी के बिंदु अथवा उपयुक्त समस्या की चार विशेषताएँ हैं–(*i*) शोधकर्ता की उस समस्या में रुचि होना, (*ii*) शोधकर्ता में वे सब योग्यताएँ होना जो उस पर शोध करने के लिए आवश्यक हैं, (*iii*) समस्या का महत्त्वपूर्ण होना तथा (*iv*) समस्या संबंधी जानकारी, सूचनाओं तथा दत्तों के उपलब्ध होने की संभावना होना। **मौलि** ने निम्नलिखित पांच बिन्दुओं का वर्णन किया है–

1. समस्या शोधकर्ता की रुचि के अनुकूल होनी चाहिए: परन्तु इसका यह अर्थ नहीं समझना चाहिए कि रुचि के अनुकूल समस्या न होने पर उस पर शोध किया ही नहीं जा सकता। यदि समस्या रुचि के अनुकूल है तो बहुत अच्छा है, परन्तु यदि समस्या महत्त्वपूर्ण है तो रुचि के अभाव में भी उसे चुना जा सकता है। उसके संबंध में अध्ययन करने, अधिक जानकारी प्राप्त कर लेने तथा कार्य के आगे बढ़ने के पश्चात् रुचि भी विकसित हो जाती है।

2. समस्या मौलिक होनी चाहिए: इसका अर्थ है कि समस्या ऐसी हो कि उस पर पहले उसी प्रकार का शोध-कार्य न हुआ हो। जिन प्रश्नों के उत्तर अनुसंधान द्वारा प्राप्त किए जा चुके हैं, उन्हें पुन: प्राप्त करने से कोई लाभ नहीं, परन्तु यदि पहले किए गए अनुसंधानों के परिणाम संदिग्ध प्रतीत होते हैं अथवा उनकी शोध-प्रक्रिया त्रुटिपूर्ण पाई जाती है अथवा उनमें समाविष्ट चरों में परिवर्तन करके अनुसंधान किया जाता है तो उसे भी मौलिकता की परिधि के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

नोट

सावधानी किसी भी शोध की उसी रूप में पुनरावृत्ति समय एवं मानव-शक्ति का अपव्यय ही है।

3. समस्या शोध-संभव (Amenable to Research) होनी चाहिए: इसका अर्थ है कि समस्या ऐसी हो कि जिस पर अनुसंधान करना संभव हो, उसके चरों (variables) का मापन किया जा सके, उसके विषय में आवश्यक एवं वांछनीय जानकारी प्राप्त की जा सके, उपलब्ध जानकारी का विश्लेषण किया जा सके आदि। यदि किसी कारण ऐसा संभव न हो तो उस समस्या को शोध हेतु उपयुक्त नहीं समझा जाता।

4. समस्या महत्त्वपूर्ण होनी चाहिए: प्रत्येक अनुसंधान का उद्देश्य होता है संबंधित क्षेत्र में ज्ञान की वृद्धि करना, अनुत्तरित प्रश्नों के उत्तर उपलब्ध कराना, पूर्वस्थापित मान्यताओं एवं सिद्धांतों का सत्यापन एवं परीक्षण करना, समस्याओं के समाधान खोजना आदि, परन्तु किसी अनुसंधान के द्वारा यदि इनमें से किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती तो उसे महत्त्वपूर्ण नहीं समझा जाता। अनेक बार शोध-समस्याएँ तुच्छ (trivial) एवं निरर्थक होती हैं। **वोल्फले** तथा कई अन्य लेखकों ने इस प्रकार की समस्याओं को लेकर अनुसंधान की तीखी निंदा की है। एन.सी.ई.आर.टी. (नई दिल्ली) के तृतीय (1986) एवं चतुर्थ (1991) शिक्षा-अनुसंधान सर्वेक्षणों में भी इसी प्रकार की आलोचना की गई है। अनुसंधान की महत्त्वपूर्ण समस्याएँ वे समझी जाती हैं, जिनके द्वारा उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति होती है तथा जिनके परिणाम संबंधित क्षेत्र की वर्तमान प्रक्रियाओं, प्रथाओं, विधियों, तकनीकों, काम के ढंगों आदि को उन्नत बनाने में सहायक होते हैं। जिस अनुसंधान के परिणामों की कोई उपयोगिता न हो, वह महत्त्वहीन है।

5. समस्या शोधकर्त्ता की योग्यता एवं क्षमताओं के अनुकूल होनी चाहिए: कोई समस्या अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं मौलिक हो सकती है, परन्तु यदि शोधकर्ता में वे सब योग्यताएँ एवं क्षमताएँ नहीं हैं, जो उस अनुसंधान को पूरा करने के लिए आवश्यक हैं तो उस समस्या को उस शोधकर्ता के लिए उपयुक्त नहीं कहा जा सकता। यह अत्यन्त आवश्यक है कि शोधकर्ता को उस समस्या से संबंधित तथ्यों, संकल्पनाओं, सिद्धांतों (theories) आदि की अच्छी जानकारी हो। यह भी आवश्यक है कि उसमें संबंधित साहित्य, अनुसंधान की रिपोर्टों, जर्नल आदि को पढ़ने एवं समझने की योग्यता हो। साथ ही अनुसंधान की तकनीकों, मनोवैज्ञानिक परीक्षणों के निर्माण, उनके प्रशासन आदि का भी उसे अच्छा ज्ञान होना चाहिए। शोध-सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण की विधियों की भी उसे अच्छी जानकारी होनी चाहिए। यदि समस्या ऐसी है कि उस पर अनुसंधान हेतु इन योग्यताओं की आवश्यकता है और शोधकर्ता में इनका अभाव है तो वह समस्या उसके लिए उपयुक्त नहीं हो सकती हैं।

क्या आप जानते हैं समस्या की उपयुक्तता समय, परिश्रम एवं धन की उपलब्धि के दृष्टिकोण से भी आंकी जाती है। यदि शोधकर्ता वांछनीय समय, परिश्रम एवं धन अनुसंधान हेतु नहीं जुटा सकता तो वह समस्या भी उसके दृष्टिकोण से उपयुक्त नहीं कही जा सकती।

उपरोक्त बिन्दु एक उपयुक्त एवं अच्छी समस्या की कसौटी प्रस्तुत करते हैं तथा शोध-समस्या के मूल्यांकन का आधार समझे जाते हैं। इन्हीं सब बिन्दुओं को **वान डालेन** ने व्यक्तिगत बिन्दु (personal consideration) तथा सामाजिक बिन्दु (social consideration) इन दो शीर्षकों के अन्तर्गत रखा है।

3.4 समस्या-कथन (Statement Problem)

समस्या-कथन से तात्पर्य होता है समस्या को शीर्षक देने से। शीर्षक जो प्रस्तावित अनुसंधान की लिखित रूपरेखा के आरंभ में लिखा जाता है तथा अनुसंधान पूरा हो जाने पर थीसिस अथवा उसकी रिपोर्ट के ऊपर लिखा जाता

नोट

है। समस्या को किस प्रकार शीर्षक के रूप में प्रस्तुत किया जाना चाहिए अर्थात् किस प्रकार उसका कथन किया जाना चाहिए, इस संबंध में भी कुछ नियम हैं। ये निम्न प्रकार हैं–

1. **वान डालेन** के अनुसार, समस्या की प्रस्तुति या तो प्रश्नों के रूप में की जानी चाहिए या सीधे एवं सरल कथनों (statements) के रूप में की जानी चाहिए। जैसे–

क्या बुद्धि बालकों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है? (प्रश्न रूप)

बुद्धि का बालकों की शैक्षिक उपलब्धि पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। (कथन)

2. **मौलि** के अनुसार, समस्या की प्रस्तुति संक्षिप्त एवं सुतथ्यत: रूप में (precisely) की जानी चाहिए। उसके कथन में निरर्थक एवं अनावश्यक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। बहुत क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग भी उचित नहीं समझा जाता।

3. समस्या का कथन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि उसे पढ़ते ही पाठक को यह स्पष्ट हो जाए कि समस्या में कौन-कौन से चर हैं, जिनके पारस्परिक संबंधों की खोज करना अनुसंधान का उद्देश्य है। जैसे, "अंग्रेजी माध्यम के विद्यालयों का अध्ययन"। इस प्रकार के समस्या-कथन में कुछ भी स्पष्ट नहीं होता कि किस बात का अध्ययन किया जाएगा। यदि इसी को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाए "अंग्रेजी माध्यम वाले विद्यालयों के बालकों तथा अन्य विद्यालयों के बालकों की शैक्षिक प्रगति का तुलनात्मक अध्ययन", तो अनुसंधान का उद्देश्य समस्या को पढ़ते ही स्पष्ट हो जाता है।

4. समस्या का कथन इस प्रकार किया जाना चाहिए कि पढ़ते ही अनुसंधान-क्षेत्र का विस्तार (scope) स्पष्ट हो जाए। जैसे, "पढ़ने वाले बालकों की बुद्धि का सर्वेक्षण"। इस कथन से यह स्पष्ट नहीं होता कि किस स्थान के विद्यालयों के बालकों, किस कक्षा अथवा आयु के बालकों की बुद्धि का सर्वेक्षण किया जाएगा। इसी को यदि इस प्रकार लिखा जाए "मेरठ शहर के आठवीं कक्षा के बालकों की बुद्धि का सर्वेक्षण" तो अनुसंधान के क्षेत्र का विस्तार स्पष्ट हो जाता है।

अनुसंधान समस्या के कथन में ही अनुसंधान कार्य की सम्पूर्ण रूपरेखा निहित होती है। उसे पढ़ते ही यह स्पष्ट हो जाना चाहिए कि शोध का प्रमुख उद्देश्य क्या है, शोध-सामग्री कहाँ से एकत्र की जाएगी, किन चरों का मापन किया जाएगा तथा शोध-सामग्री के विश्लेषण की विधि क्या होगी।

टास्क 'समस्या-कथन का तात्पर्य होता है समस्या का शीर्षकीकरण करना।' इस पर अपना दृष्टिकोण व्यक्त करें।

3.5 समस्या का विश्लेषण एवं उसका परिभाषीकरण (Definition and Analysis of Problem)

समस्या का अन्तिम रूप से चयन हो जाने के पश्चात् उसका कथन (statement) किया जाता है अर्थात् अन्तिम रूप में उसको लिखा जाता है तथा इस कथन के पश्चात् समस्या की गहराई से विश्लेषण (analysis) अर्थात् परिभाषीकरण (define) एवं वर्णन (describe) किया जाता है। कई कारणों से ऐसा किया जाना आवश्यक है। समस्या का विश्लेषण एवं परिभाषीकरण शोध की दिशाओं को स्पष्ट करता है तथा इस बात की ओर संकेत करता है कि उस अनुसंधान में किस प्रकार के चर सन्निहित हैं, उनका मापन किस प्रकार किया जाएगा तथा अनुसंधान की प्रक्रिया क्या होगी। इस प्रकार अनुसंधान-कार्य का सम्पूर्ण मानचित्र स्पष्ट एवं निश्चित हो जाता है। **भिटनी** के अनुसार, समस्या के परिभाषीकरण से तात्पर्य होता है, "समस्या को एक परिधि के भीतर सीमित करना, उसे उन

नोट

मिलते-जुलते प्रश्नों से भिन्न एवं अलग करना जो संबंधित परिस्थितियों में पाए जाते हैं।" ऐसा करने से शोधकर्ता को स्पष्ट रूप से ज्ञात हो जाता है कि समस्या वास्तव में क्या है। आरंभ में ही समस्या का इस प्रकार का विशिष्टीकरण एवं व्यावहारिक सीमांकन अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता है। इस संबंध में **मनरो** एवं **ऐंगिलहार्ट** का कथन विशेष महत्त्व का है। उनका कहना है कि समस्या के परिभाषीकरण का अर्थ है "उसका विस्तृत एवं सही-सही विशिष्टीकरण करना, प्रत्येक मुख्य एवं गौण प्रश्न जिसका उत्तर वांछनीय है, का स्पष्टीकरण करना तथा अनुसंधान की सीमाओं का निर्धारिण करना।" इसके लिए उनके अनुसार, यह आवश्यक है कि जो अनुसंधान पहले हो चुके हैं, उनकी समीक्षा की जाए ताकि यह निश्चित किया जा सके कि क्या करना है। कभी-कभी एक ऐसे शैक्षिक दृष्टिकोण अथवा शिक्षा-सिद्धांत का विकास एवं निर्माण करना भी आवश्यक हो सकता है जो प्रस्तावित अनुसंधान को एक आधार प्रदान कर सके। इसके अन्तर्गत आधारभूत अवधारणाओं को भी स्पष्ट करना आवश्यक होता है।

साधारण भाषा में समस्या के परिभाषीकरण से तात्पर्य उसके विशिष्टीकरण एवं स्पष्टीकरण से ही होता है। उसका आधार समस्या का विश्लेषण एवं स्पष्ट वर्णन होता है। उसके अन्तर्गत निम्नलिखित कार्य आते हैं–

1. समस्यागत-अनुसंधान कार्य के विस्तार (scope) को सीमित करना

इसका अर्थ है कि समस्या का वर्णन इस प्रकार करना कि उससे जितने कार्य का बोध होता है उतना कार्य शोधकर्ता की सामर्थ्य के भीतर हो। दूसरे शब्दों में, एक विस्तृत एवं व्यापक समस्या को काट-छाँटकर सीमित बनाना इसके अन्तर्गत आता है। उदाहरणार्थ, यदि समस्या है 'समस्यात्मक बालकों के व्यवहारों का अध्ययन करना', तो यह समस्या अत्यन्त अस्पष्ट, विस्तृत एवं व्यापक है। इसके अन्तर्गत अनेक प्रकार के समस्यात्मक बालकों, व्यवहार के अनेक प्रकार के कारणों, अध्ययन की कई विधियों, विभिन्न स्थानों एवं विभिन्न आयु के बालकों का अध्ययन आता है। इन सब अध्ययनों को पूरा करने में बरसों लग जायेंगे जो किसी भी शोधकर्ता के लिए संभव नहीं है। अत: समस्या को सीमित, संक्षिप्त एवं संकुचित करना आवश्यक है। किस प्रकार के समस्यात्मक बालकों, किस आयु के, कौन से विशिष्ट कारणों आदि का अध्ययन किया जाएगा, इनका विनिश्चयन एवं स्पष्ट रूप से उल्लेख किया जाना आवश्यक है। यही समस्या के परिभाषीकरण का अर्थ है। **मौलि** के अनुसार, यदि समस्या स्पष्ट नहीं है तो आगे चलकर बहुत-सी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा निष्कर्षों के सार्थक एवं महत्त्वपूर्ण होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। अत: शोध-समस्या बहुत विस्तृत एवं व्यापक (जैसे, अध्यापक शिक्षण की प्रभाविकता का अध्ययन) न होकर उस विषय के कुछ महत्त्वपूर्ण एवं विशिष्ट पक्षों तक ही सीमित होनी चाहिए। साथ ही उसे इतना संक्षिप्त एवं संकुचित भी नहीं बनाना चाहिए कि वह उपहास मात्र बनकर रह जाए।

2. समस्या-संबंधी विभिन्न अंगों (elements) का स्पष्टीकरण एवं वर्णन करना।

इसके अन्तर्गत शोधकर्ता समस्या की पृष्ठभूमि (background) का उल्लेख करता है, उसके सैद्धांतिक आधार (theoretical base) का वर्णन करता है तथा उन अवधारणाओं (assumptions) का भी स्पष्टीकरण करता है जो समस्या में सन्निहित होती हैं। साथ ही वह उन चरों, तथ्यों, परिस्थितियों, व्यक्तियों आदि का भी उल्लेख करता है, जिनको समस्या से अलग रखा जाना है। सामूहिक रूप से इन सभी पक्षों का स्पष्टीकरण एवं उल्लेख समस्या के परिभाषीकरण, विश्लेषण एवं वर्णन के अन्तर्गत आता है।

3. समस्या में प्रयुक्त शब्दों (terms) एवं संकल्पनाओं (concepts) के अर्थों को स्पष्ट करना तथा उन्हें परिभाषित करना

यह भी समस्या के परिभाषीकरण के अन्तर्गत ही आता है। यदि इनके अर्थ स्पष्ट नहीं किए जाते हैं तो यह समझना भी कठिन होगा कि समस्या है क्या। कुछ शब्द एवं संकल्पनाएँ ऐसी हो सकती हैं, जिनके भिन्न-भिन्न संदर्भों में भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं अथवा जिन्हें भिन्न-भिन्न लेखकों अथवा विशेषज्ञों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से परिभाषित किया है। बुद्धि, प्रेरणा, मनोवैज्ञानिक आवश्यकताएँ (needs), व्यक्तित्व संतुलन (personality adjustment),

नोट

पर्यावरण (climate) आदि अनेक ऐसी संकल्पनाएँ हैं, जिनके अलग-अलग अर्थ एवं परिभाषाएँ मिलती हैं। अत: शोधकर्ता को समस्या का परिभाषीकरण करते समय यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि उसकी समस्या में प्रयुक्त इन शब्दों एवं संकल्पनाओं को किस अर्थ में लिया गया है। ऐसा करने से उनका सही ढंग से मापन करना भी सरल हो जाता है। सामान्यतया इनको मूर्त एवं निश्चित व्यवहारों के रूप में परिभाषित किया जाता है। साहित्य में उन्हें किस-किस प्रकार से परिभाषित किया गया है, उन सबका उल्लेख करते हुए विशिष्ट रूप से यह बताना चाहिए कि प्रस्तावित अनुसंधान-समस्या में उन्हें किस अर्थ में लिया गया है तथा उनका मापन किस प्रकार किया जाना है, कौन-कौन से तत्व, व्यवहार, परिस्थितियाँ, घटनाएँ उनके परिचायक (indicators) होंगे आदि। उदाहरण के लिए, यदि छात्रों की "शैक्षिक उपलब्धि" एक चर है, तो यह स्पष्ट करना होगा कि उसका अर्थ छात्रों के परीक्षांक, अध्यापक द्वारा किए गए रेटिंग अथवा प्रमापीकृत निष्पत्ति-परीक्षाओं पर प्राप्त अंक आदि में से किस एक से हैं।

हिलवे ने समस्या के परिभाषीकरण हेतु निम्न चार नियमों की ओर संकेत किया है–

1. यह निश्चित करना कि समस्या का विषय-क्षेत्र न तो बहुत अधिक विस्तृत हो और न बहुत अधिक संकुचित।
2. समस्या को विशिष्ट प्रश्नों के रूप में व्यक्त करना, जिसके निश्चित उत्तर संभव हों।
3. समस्या का इस प्रकार सीमांकन करना कि जिन पक्षों एवं तत्वों का समस्या से संबंध नहीं है, वे स्पष्ट रूप से उससे अलग हो जाएँ।
4. उन सब शब्दों को जो विशिष्ट हैं तथा जिनका प्रयोग समस्या में हुआ है, परिभाषित करना।

उपरोक्त प्रकार से समस्या का विश्लेषण एवं परिभाषीकरण करने पर उसके प्रत्येक पक्ष का निश्चयन एवं स्पष्टीकरण हो जाता है। तब समस्या का कथन अथवा यों कहें कि उसे जो शीर्षक दिया गया है, उसका वास्तव में क्या अर्थ है, पूर्णतया सुनिश्चित एवं स्पष्ट हो जाता है। साधारणतया समस्या-कथन के पश्चात् उसकी विस्तार से व्याख्या की जाती है। इसी को समस्या का परिभाषीकरण करना कहते हैं। इसी को प्रस्तावित अनुसंधान परियोजना, सारांश रूप (synopsis) अथवा एजेण्डम (agendum) भी कहा जाता है, जिसे अनुसंधान-कार्य आरंभ करने से पूर्व ही तैयार कर लिया जाता है। इसके आवश्यक अंग निम्नलिखित होते हैं–

1. समस्या-कथन।
2. समस्या का सैद्धांतिक आधार (theoretical framework)।
3. समस्या का महत्त्व अथवा औचित्य।
4. तकनीकी शब्दों की परिभाषाएँ।
5. आधारभूत अवधारणाएँ।
6. क्षेत्र का सीमांकन (delimitations)।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following statement are True or False):

4. समस्या का अंतिम रूप से चयन हो जाने के पश्चात् उसका कथन किया जाता है।
5. बुद्धि बालकों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित नहीं करती है।
6. अनुसंधान के द्वारा किसी भी उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती तो उसे महत्त्वपूर्ण समझा जाता है।
7. समस्या के परिभाषीकरण से तात्पर्य उसके विशिष्टीकरण एवं स्पष्टीकरण से होता है।

3.6. समस्या के स्रोत (Sources of the Problem)

नोट

जे.सी. अलमाक (J.C. Almack) ने समस्या ढूँढ़ने के निम्नलिखित चार साधनों की चर्चा की है :

1. ऐतिहासिक अभिलेखों के साथ जो कुछ ज्ञात है, उसका विश्लेषण किया जाए।

2. व्याख्या में जो कमी रह गयी है, उसे अथवा अंधकारपूर्ण क्षेत्र को ढूँढ़ निकाला जाए।

3. अनियमितताओं, विरोधाभास, मत-भिन्नता के स्थल तथा ऐसे स्थलों को ढूँढ़ निकाला जाए जिनके निष्कर्षों की विधिवत् जांच नहीं की गयी है।

4. विषय से संबंधित गोष्ठी, अध्ययन तथा चिन्तन को विकसित किया जाए तथा उन बातों पर दृष्टि रखी जाए जिनमें क्रियाएँ अधिक हुई हैं तथा जो उपेक्षित हैं। पद्धति को भी ध्यान में रखा जाए। इस विश्लेषण से हम समस्या को प्राप्त कर सकते हैं।

एच.एच. अबेलसन (H.H. Abelson) ने समस्या के स्रोत के संबंध में निम्नलिखित चार सुझाव दिये हैं–

1. जो शिक्षा पा रहा है, शिक्षा की प्रक्रिया का अध्ययन कर रहा है अथवा किसी प्रकार का शिक्षा संबंधी कार्य कर रहा है, उसके अनुभव में अन्तर्द्वन्द्व (conflicts in experience) एक प्रमुख साधन है। जिज्ञासा तथा अन्तर्द्वन्द्व उसके सामने अनेक समस्याएँ स्वयं प्रस्तुत करता रहेगा।

2. दूसरा प्रमुख साधन शोध-प्रबंधों के अन्त में दिये गये भावी अध्ययन संबंधी सुझाव (suggestions for further study) हैं। सभी शोध-प्रबंधों (dissertations) के अंत में इस प्रकार के सुझावों की एक सूची दी होती है कि इस क्षेत्र में और क्या कार्य हो सकता है। इसके अध्ययन के द्वारा भी समस्या को ढूँढ़ निकाला जा सकता है।

3. अनुसंधान-कार्य जो पूरा हो चुका है (Research work already completed) तथा इनका निचोड़ अथवा इनकी लघु रूपरेखा को देखकर बुद्धिमान व्यक्ति अनेक समस्याएँ ढूँढ़ निकालते हैं।

4. चौथा प्रमुख साधन उन क्षेत्रों को ढूँढ निकालना है जो आज तक उपेक्षित रह गये हैं और जिन पर कार्य हुआ ही नहीं है।

कोलम्बिया यूनिवर्सिटी टीचर्स कॉलेज के **डब्ल्यू. ए. मैक्काल** (W.A. McCall) ने प्रयोगात्मक समस्याओं को ढूँढने के निम्न पाँच मार्ग बताये हैं–

1. प्रयोगात्मक समस्या ढूँढने का सबसे उत्तम उपाय यह है कि जितना शीघ्र सम्भव हो, किसी विशेष क्षेत्र के जिज्ञासु छात्र (Scholar) बन जायें और उस क्षेत्र का गहन अध्ययन करें।

2. दूसरा उपाय यह है कि आलोचनात्मक ढंग से साहित्य का अध्ययन करें, लोगों की चर्चा सुनें तथा आलोचनात्मक दृष्टिकोण से ही कार्य करें।

3. समस्या को ढूँढने का तीसरा ढंग प्रत्येक बाधा को, जो चिन्तन अथवा कार्य-क्षेत्र में आ रही हो, महत्त्व प्रदान करना है।

4. चौथी पद्धति यह हो सकती है कि अनुसन्धान-कार्य प्रारम्भ कर दिया जाए और फिर उसमें उत्पन्न कठिनाइयों को जिज्ञासापूर्वक देखा जाए।

5. पाँचवीं विधि यह है कि अब तक उस क्षेत्र में जो कुछ भी प्राप्त हुआ है, उस सम्पूर्ण पर अधिकार किया जाए क्योंकि उसमें एक दिशा प्राप्त होगी। इसका तात्पर्य यह है कि जो समस्याएँ तथा विचार आये हैं, उनका एक व्यवस्थित अभिलेख तैयार किया जाए।

नोट

जॉन डब्ल्यू. बेस्ट (John W. Best) के अनुसार, शिक्षा-क्षेत्र में समस्या के निम्नलिखित स्रोत हैं–

1. कक्षा, विद्यालय अथवा समाज स्वयं में एक साधन है। प्रत्येक शिक्षक नित्य अनेक समस्याओं का सामना करता रहता है। जो कुछ भी हम कर रहे हैं, वैसा क्यों? जो पाठ्यक्रम पढ़ा रहे हैं, वही क्यों पढ़ाया जाए? क्या हमारी शिक्षण-विधि प्रभावपूर्ण है? क्या छात्रों में आवश्यक परिवर्तन लाने में हम समर्थ हो रहे हैं? यदि नहीं तो क्यों? बाधाएँ क्या हैं? आदि अनेक समस्याओं का सामना वह नित्य करता रहता है। यदि वह जिज्ञासु है और उसकी अनुसन्धान में रुचि है तो किसी पर भी कार्य कर सकता है।

2. प्राविधिक परिवर्तन तथा सामाजिक विकास भी नित्य नयी समस्याएँ तथा अनुसन्धान हेतु व्यापक क्षेत्र प्रस्तुत कर रहे हैं। शिक्षा के क्षेत्र में नयी विधियाँ, टीचिंग मशीन, टेलीविजन आदि के प्रयोग कहाँ तक शिक्षा में क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकते हैं, यह अनुसन्धान का विषय है।

3. स्नातकीय शैक्षिक अनुभव के द्वारा अनुसन्धानकर्ता में खोजपूर्ण आलोचनात्मक दृष्टिकोण का विकास हो जाना चाहिए। यह प्रवृत्ति उसमें वर्तमान कार्य-पद्धति के प्रति आलोचनात्मक दृष्टिकोण पैदा करती है और उसमें समस्या की जानकारी बढ़ती है। कक्षा के व्याख्यान (class lectures), वाद-विवाद (discussions), परिचर्चा-प्रतिवेदन (seminar reports) तथा कक्षा के बाहर अपने मित्रों एवं प्राध्यापकों से चर्चा के बीच उसे अनेक समस्याओं की जानकारी हो सकती है। इनके अतिरिक्त जिज्ञासु छात्रों के लिए पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन, विशेष कार्य (special assignments), प्रतिवेदन (reports), Encyclopedia of Educational Research, Psychological Abstracts, The Review of Educational Research, The Journal of Experiment Education, The Journal of Educational Researches, स्नातकोत्तर शोध-प्रबन्ध तथा इनकी सूची आदि अनेक प्रकाशन ऐसे हैं जिनके अध्ययन से समस्याएँ ढूँढ़ी जा सकती हैं।

4. समस्या की खोज का चौथा साधन उस क्षेत्र के अधिकारी विद्वानों, शिक्षकों तथा अनुसन्धान-निर्देशकों से परामर्श करना है। ये लोग अनुसन्धानकर्ता की इस क्षेत्र में पर्याप्त सहायता कर समस्या का चुनाव सरल कर सकते हैं।

'गुड, बार और स्केट्स' (Good, Bar and Scates) का कहना है कि शिक्षा के क्षेत्र में अनुसन्धान के लिए समस्याओं को ढूँढ़ने हेतु सबसे महत्त्वपूर्ण सुझाव यह है कि निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखते हुए उपलब्ध शैक्षिक साहित्य का गहन अध्ययन किया जाए–

1. शिक्षा के विभिन्न क्षेत्रों में कितना अनुसन्धान-कार्य हो चुका है;
2. पूर्ण अनुसन्धान-कार्य का आधिकारिक वर्णन;
3. नवीन प्रवृत्तियों का विश्लेषण;
4. किसी क्षेत्र-विषय में प्राप्त आलोचनात्मक निबन्ध-पत्र, पत्रिकाएँ तथा टिप्पणियाँ;
5. शिक्षा सम्बन्धी भविष्यवाणी;
6. अनुसन्धान, जिस पर कार्य हो रहा है; तथा
7. अनुसन्धान की आवश्यकता।

इन बातों का ध्यान रखकर किया गया आलोचनात्मक अध्ययन समस्या को ढूँढ़ने में सहायक हो सकेगा।

गुड तथा स्केट ने अनुसन्धान की समस्या के निम्न सात स्रोत बताये हैं–

1. विशेष अध्ययन (Specialization),
2. शैक्षिक कार्यक्रम का अनुसरण (Pursuation of educational programme),

नोट

3. अध्ययन कार्यक्रम (Programme of reading),
4. ज्ञान के किसी क्षेत्र का विश्लेषण (Analysis of any area of knowledge),
5. वर्तमान क्रियाओं और आवश्यकताओं पर विचार (Consideration of existing practices and needs),
6. अनुसन्धान की पुनरावृत्ति अथवा प्रसार (Repetition or extension of research),
7. अध्ययनान्तर्गत विभिन्न क्षेत्र ('Offshoots' of studies underway)।

3.7 सारांश (Summary)

- शोध हेतु समस्या को अंतिम रूप देने से पहले उसकी उपयुक्तता पर गंभीरतापूर्वक विचार किया जाता है।
- फ्रांसिस रुमेल के अनुसार, उपयुक्त समस्या की चार विशेषताएँ होती हैं–(*i*) शोधकर्ता की उस समस्या में रुचि होना, (*ii*) शोधकर्ता में वे सब योग्यताएँ होना जो उस पर शोध करने के लिए आवश्यक हैं, (*iii*) समस्या का महत्त्वपूर्ण होना तथा (*iv*) समस्या संबंधी जानकारी, सूचनाओं तथा दत्तों के उपलब्ध होने की संभावना होना।
- मौलि के अनुसार, समस्या की प्रस्तुति संक्षिप्त एवं सुतथ्यत: रूप में (precisely) की जानी चाहिए। उसके कथन में निरर्थक एवं अनावश्यक शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। बहुत क्लिष्ट शब्दों का प्रयोग भी उचित नहीं समझा जाता।
- समस्या का विश्लेषण एवं परिभाषीकरण शोध की दिशाओं को स्पष्ट करता है तथा इस बात की ओर संकेत करता है कि उस अनुसंधान में किस प्रकार के चर सन्निहित हैं, उनका मापन किस प्रकार किया जाएगा तथा अनुसंधान की प्रक्रिया क्या होगी।

3.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **परीक्षित एवं वैध (Examined and Valid)**–ऐसी सामग्री या सिद्धांत जिसकी जाँच की जा चुकी हो तथा जिसकी प्रामाणिकता सिद्ध हो चुकी हो।
2. **अनुसंधान सर्वेक्षण (Research Survey)**–किये गए अनुसंधान का पुन: अध्ययन करने पर उसकी कमियाँ तथा भावी संभावनाओं का पता लगाना।

3.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. शोध समस्या के चयन से आप क्या समझते हैं?
2. चयनित समस्या का मूल्यांकन करें।
3. समस्या कथन पर टिप्पणी लिखें।
4. समस्या विश्लेषण एवं उसके परिभाषीकरण से आप क्या समझते हैं।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. शोधकर्ताओं	2. परिवर्तन	3. मार्गदर्शक	4. सत्य
5. असत्य	6. असत्य	7. सत्य	

नोट

3.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
2. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 4 : संबंधित साहित्य की समीक्षा, आवश्यकता एवं स्रोत (Review of Related Literature Need and Sources)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

4.1 समीक्षा के उद्देश्य (Purpose of the Review)

4.2 संबंधित साहित्य का अभिज्ञान (Identification of the Related Literature)

4.3 पुस्तकालय के माध्यम से सूचना के स्रोतों का स्थापन (Locating Sources of Information Through Library)

4.4 संदर्भ सामग्री (Reference Manual)

4.5 अनुसंधान लेख (शोध लेख) व विवेचना (Thesis and Dissertations)

4.6 संबंधित साहित्य की व्यवस्था (Organizing the Related Literature)

4.7 सारांश (Summary)

4.8 शब्दकोश (Keywords)

4.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

4.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- संबंधित साहित्य की समीक्षा का उद्देश्य एवं अभिज्ञान को समझने में;
- सूचना के स्रोतों का स्थापन तथा संदर्भ सामग्री को जानने में;
- अनुसंधान लेख की विवेचना व संबंधित साहित्य की व्यवस्था को जानने में।

प्रस्तावना (Introduction)

इस अध्याय में तीन भाग हैं। पहले भाग में संबंधित साहित्य की समीक्षा के स्पष्ट उद्देश्यों का वर्णन है। दूसरा भाग अनुसंधायक को पुस्तकालय में उपलब्ध मुख्य व अनुपूरक सूचना स्रोतों का स्थापना, चयन व उपयोग के लिए दिशा-निर्देश प्रदान करता है। अन्तिम व तीसरा भाग उस प्रक्रिया से संबंधित है जो अनुसंधायक द्वारा संबंधित साहित्य को व्यवस्थित रूप में एकत्र करने में अपनाई जानी चाहिए।

नोट

सतत् मानव प्रयासों से भूतकाल में एकत्रित ज्ञान का लाभ अनुसंधान में मिलता है। अनुसंधायक द्वारा प्रस्तावित अध्ययन से, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप में, संबंधित समस्याओं पर पहले किए कार्य से बिना जोड़े, स्वतंत्र रूप से अनुसंधान कार्य नहीं हो सकता। किसी भी अनुसंधान अध्ययन की योजना के महत्त्वपूर्ण कदमों में एक अनुसंधान जर्नलों (Journals), पुस्तकों, अनुसंधान विवेचना (dissertations), शोधलेख (thesis) व अन्य सूचना स्रोतों की सावधानीपूर्वक समीक्षा है। जैसा पिछले अध्याय में इंगित है, किसी अच्छे नियोजित अनुसंधान अध्ययन से पहले संबंधित साहित्य की समीक्षा अति-आवश्यक है।

4.1 समीक्षा के उद्देश्य (Purpose of the Review)

नोट्स

संबंधित साहित्य की समीक्षा अनुसंधायक को, जिस क्षेत्र में वह अनुसंधान करने वाला है, उसमें वर्तमान ज्ञान से परिचित कराती है।

संबंधित साहित्य की समीक्षा निम्न विशिष्ट उद्देश्य पूर्ण करती है–

1. संबंधित साहित्य की समीक्षा से अनुसंधायक को अपने क्षेत्र की सीमा निर्धारण करने में सहायता मिलती है। उसे अपनी समस्या के परिसीमन व उसकी परिभाषा करने में भी सहायता मिलती है। अनुरूपता के **ऐरी** व अन्य द्वारा दिए उदाहरण में अनुसंधायक कह सकता है–

"A, B तथा C ने मेरे प्रश्न के बारे में इतना खोज लिया है; D की जांच से हमारे ज्ञान में इतनी वृद्धि और हुई है। मैं 'D' के कार्य से आगे निम्न प्रकार से काम करना चाहता हूँ।"

संबंधित साहित्य के ज्ञान से, अनुसंधायक अन्य व्यक्तियों द्वारा किए गए कार्य से पूर्ण परिचित हो जाता है और वह अपने उद्देश्यों का स्पष्ट व संक्षिप्त रूप से वर्णन कर सकता है।

2. संबंधित साहित्य के अध्ययन से अनुसंधायक अलाभप्रद व अनुपयोगी समस्याओं से बच सकता है। वह ऐसे क्षेत्र चुन सकता है जिनमें लाभदायक खोज हो सकेगी और उसके प्रयासों से ज्ञान में सार्थक वृद्धि होगी।

3. संबंधित साहित्य की समीक्षा से वह पहले से ही सिद्ध कार्यों को अनजाने दोहराने से बच सकेगा। यदि अध्ययन के परिणामों की स्थिरता व वैधता भली प्रकार सिद्ध हो चुकी हैं तो उसे दोहराना निरर्थक है।

4. संबंधित साहित्य की समीक्षा से अनुसंधायक अनुसंधान प्रक्रिया को समझता है जिससे यह ज्ञान होता है कि अध्ययन किस प्रकार करना है। उसे पहले अध्ययनों में प्रयुक्त यंत्र व औजारों की भी जानकारी मिलती है जो सफल व उपयोगी रहे थे। उसे उन सांख्यिकी विधियों की अंतदृष्टि भी मिल जाती है जिनके द्वारा परिणामों की वैधता सिद्ध की जाती है।

5. संबंधित साहित्य की समीक्षा करने का अन्तिम व महत्त्वपूर्ण विशेष कारण यह जानना भी है कि पिछले अनुसंधायकों ने अपने अध्ययन में और आगे अनुसंधान के लिए क्या अनुशंसाएँ की थीं।

4.2 संबंधित साहित्य का अभिज्ञान (Identification of the Related Literature)

संबंधित साहित्य की समीक्षा में पहला कार्य यह पहचान करने का है कि किस सामग्री को पढ़ा व मूल्यांकन किया जाए। पुस्तकालय में उपलब्ध **मुख्य** व **गौण** स्रोतों के प्रयोग से यह अभिज्ञान किया जा सकता है।

नोट

सूचना के मुख्य स्रोतों में, लेखक अपने कार्य को सीधे ही अनुसंधान लेख, पुस्तकों, एक विषयक लेखों, अनुसंधान विवेचना (dissertations) या शोधलेख के माध्यम से प्रतिवेदित करता है। ऐसे स्रोत अन्य कहीं भी उपलब्ध सूचनाओं से अधिक सूचनाएँ प्रदान करते हैं। मुख्य स्रोतों से अनुसंधायक को अध्ययन के बारे में अपने निर्णय का आधार मिलता है। यद्यपि अनुसंधायक को ऐसे स्रोतों की सहायता लेने में काफी समय व्यय करना पड़ता है, किन्तु उसे अपनाई गई अनुसंधान विधियों के विषय में अच्छी सूचना मिल जाती है।

गौण स्रोतों में अनुसंधायक अन्य व्यक्तियों द्वारा अध्ययन से प्राप्त परिणामों को संक्षिप्त रूप में बनाकर उनकी व्याख्या करता है। उनमें लेखक प्राय: उस क्षेत्र के सभी महत्त्वपूर्ण अध्ययनों के बारे में, 'शिक्षा का विश्वकोष', 'शिक्षा सूचकों', सारांश, पुस्तकों की सूची व संदर्भ और उद्धृत कथनों से संदर्भ के रूप में चर्चा करता है। गौण स्रोतों पर कार्य करने में अधिक समय नहीं लगता क्योंकि पढ़ने के लिए सामग्री कम होती है। इसमें सबसे बड़ी हानि यह है कि पाठक अध्ययन के महत्त्वपूर्ण व सार्थक पक्षों में किसी अन्य के निर्णय व विचारों पर अवलम्बित हो जाता है।

यह निर्णय कि मुख्य व गौण स्रोत में से किस का उपयोग किया जाए, अनुसंधायक द्वारा चुने हुए अध्ययन की प्रकृति पर निर्भर होता है। यदि वह ऐसे क्षेत्र के बारे में है जिसमें काफी अनुसंधान कार्य हो चुका है तो मुख्य स्रोत की समीक्षा ही प्रथम चरण होना तर्कसंगत होगा। दूसरी ओर यदि अध्ययन ऐसे क्षेत्र का है जिसमें अनुसंधान कार्य बहुत कम या बिल्कुल नहीं हुआ है तो गौण स्रोतों की समीक्षा ही अधिक तर्कसंगत होगी। सूचनाओं के दोनों स्रोत, चाहे मुख्य हो या गौण, पुस्तकालय में ही मिलते हैं। अनुसंधायक को आवश्यक स्रोतों को, बिना समय या शक्ति नष्ट किए, प्रयोग करने में दक्षता प्राप्त कर लेनी चाहिए। अनुसंधायक को संसाधनों को जुटाने, चुनने व उपयोग में सहायतार्थ, उनकी शिक्षा अनुसंधान में उपयोग के अनुसार, अध्ययन मार्गदर्शक प्रदान कर दिया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. संबंधित साहित्य की ..... से अनुसंधायक, अनुसंधान प्रक्रिया को समझता है।
2. सूचनाओं के दोनों स्रोत, मुख्य हो या गौण ..... में ही मिलते हैं।
3. अनुसंधायक वांछित स्रोत की प्रतिलिपि मंगाने का अनुरोध ..... से करता है।

4.3 पुस्तकालय के माध्यम से सूचना के स्रोतों का स्थापन (Locating Sources of Information Through Library)

अनुसंधायक को पुस्तकालय में उपलब्ध सुविधाओं व सेवाओं का पूरा ज्ञान होना चाहिए। उसे सामग्री के उपयोग व परिसंचारण के नियम व अधिनियमों से भी परिचित होना चाहिए। बहुत से पुस्तकालयों में छपे हुए निर्देश उपलब्ध होते हैं जिनमें लाभप्रद सूचनाएँ मिल जाती हैं। इसमें एक नक्शा भी होता है, जिसमें पुस्तकों के संचयन का स्थान, आवधिक पत्रिकाएँ अनुभाग, संदर्भ अनुभाग, अध्ययन कक्ष, पुस्तकों का विशेष संग्रह, माइक्रोकार्ड यंत्र, हस्तलिपि ग्रंथ, छोटी पत्रिकाओं के स्थान दिखाए होते हैं। निर्देश में ऐसी आवधिक पत्रिकाओं की सूची होती है जो पुस्तकालय में ली जाती हैं और विशेष सूचकांकों, सारांशों व अन्य संदर्भ सामग्री के नाम सूचीबद्ध होते हैं। संचयन स्थानों व आरक्षित पुस्तकों के उपयोग के अधिनियम, पुस्तकालय में उपलब्ध संदर्भ सामग्री प्राप्त करने का तरीका या किसी अन्य पुस्तकालय से उधार ली जा सकने की विधि भी इस निर्देश में दिए होते हैं।

अनुसंधायक या अन्य पाठकों को प्राय: एक पुस्तकालय कार्ड दे दिया जाता है जिससे वह संचयन स्थल पर जा सकें। वह पुस्तकालय कर्मियों की सहायता से या स्वयं स्वतंत्र रूप से वांछित पुस्तकों व अन्य संदर्भ सामग्री को ढूँढ सकते हैं। पुस्तकों के प्रयोग के बाद उन्हें मेजों पर छोड़ देना ही वांछनीय होता है जिससे वहाँ के कर्मी उन्हें उनके निर्धारित स्थान पर वापस रख सकें।

नोट

कभी-कभी कोई संदर्भ, पुस्तकालय में उपलब्ध नहीं होता। ऐसी स्थिति में पाठक को 'यूनियन' सूची-पत्र देखना चाहिए जिसमें दूसरे पुस्तकालयों में प्राप्य संदर्भों की सूची होती है। ऐसे संदर्भ पुस्तकालय द्वारा निम्न विधि से मँगाए जा सकते हैं–

1. अन्तर्पुस्तकालय उधार रीति द्वारा (By inter-library loan system): पाठक के पुस्तकालय अधीक्षक से अनुरोध पर जिस पुस्तकालय में उपलब्ध है, वहाँ से उधार मंगा लिया जाता है।

2. फोटो प्रतिलिपि का अनुरोध करके (By requesting a photo-static copy): इसमें पाठक जिस पन्ने या पन्नों की प्रतिलिपि की आवश्यकता है, उनको वांछित स्रोत से मंगाने का अनुरोध, पुस्तकालय अधीक्षक से करता है।

3. वांछित संदर्भ के कुछ भाग के सारांश या अनुवाद का अनुरोध करके (By requesting an abstract or translation of the portion of a desired reference): कुछ पुस्तकालयों में सारांश या अनुवाद निकालने की सुविधाएँ होती हैं जिनसे आवश्यक भाग के सारांश या अनुवाद निर्दिष्ट शुल्क जमा करके प्राप्त हो जाते हैं।

4. माइक्रोफिल्म या माइक्रोफाइक के लिए अनुरोध करने पर (By requesting microfilm or microfiche): पाठक एक माइक्रोफिल्म खरीद कर पुस्तकालय के उपकरण पर देख सकता है। माइक्रोफाइक, फिल्म की चादर होती है जिस पर छपी हुई हस्तलिपि या पुस्तक की सूक्ष्म प्रतिबिंब अंकित होते हैं। इसके विकास से पुस्तकालय व सूचना सेवाओं को एक अति-महत्त्वपूर्ण योगदान मिला है, जिससे लंबे-लंबे विद्वतापूर्ण सामग्रियों के सस्ते व सुविधापूर्ण भंडारण व वितरण की व्यवस्था मिलती है।

अन्तर्राष्ट्रीय मानकीकृत माइक्रोफाइक का आकार 105 मि.मी. × 148 मि.मी. होता है जिसमें 98 प्रतिबिंब होते हैं (7 पंक्तियों में 14 सूक्ष्म प्रतिबिंब) व 24 × गुणा छोटा करने की क्षमता होती है। इसे अमरीकी राष्ट्रीय माइक्रोग्राफ़िक्स सभा ने अनुमोदित किया है जबकि ब्रिटेन के मानक माइक्रोफ़ाइक का आकार छोटा होता है और उसमें 60 प्रतिबिंब (BS 4187 : 1973) हो सकते हैं।

हाल ही में नेशनल कैश रजिस्टर की पी.सी.एम.आई. विधि से विकसित *सुपर फाइक* में 75 × घटाव अनुपात होती है और उसमें एक 4″ × 6″ के पारदर्शी कार्ड पर 1000 तक छपे हुए पन्नों की सामग्री हो सकती है।

इससे भी अधिक महत्त्व का विकास *अल्ट्राफाइक* है। उसमें घटाव अनुपात 150 × होता है और उसकी क्षमता 3200 पन्ने प्रति फाइक होते हैं। फिल्मों पर सूक्ष्म प्रतिबिंब बनाने में विभिन्न प्रकार के कैमरे प्रयोग किए जाते हैं।

प्लेनेटेरी (ग्रह संबंधी) कैमरा 35 मि.मी. या 16 मि.मी का स्थिर कैमरा होता है जो लम्बरूपी स्तंभ पर बंधा होता है और घटाव अनुपात को 10 × से 50 × तक बदलने के लिए ऊपर नीचे किया जा सकता है। एक बार में उसमें 100 फुट रोल फिल्म लगाई जा सकती है। इसका मूल्य अधिक नहीं होता।

स्टेप एंड रिपीड कैमरा अधिक मूल्य का होता है। यह स्वत: माइक्रोफाइक पर एक के बाद एक सूक्ष्म प्रतिबिंब अंकित कर देता है।

रोटरी कैमरा: यह प्लेनेटेरी कैमरे की भांति रोल फिल्म पर सूक्ष्म प्रतिबिंब अंकित करता है और घटाव अनुपात को आवश्यकतानुसार बदलने की क्षमता होती है।

फ्लो कैमरा, प्लेनेटरी कैमरे के आधे मूल्य का होता है। उसका घटाव अनुपात निश्चित होता है।

इन सभी कैमरों में सूक्ष्म प्रतिबिंब अंकित करने के लिए *सिल्वर, डियाज़ो या वेसीक्यूलर* फिल्मों का प्रयोग होता है।

माइक्रोफिल्म या माइक्रोफाइक को पढ़ने के लिए सामान्यत: 6 प्रकार के *रीडर* का प्रयोग होता है।

नोट

(*i*) *कडली माइक्रोफाइक रीडर* एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता है और इसे गोद में रख कर प्रयोग किया जा सकता है। यह बहुत सस्ता होता है और पुस्तकालय के सदस्यों को निवास पर प्रयोग के लिए दिया जा सकता है।

(*ii*) *माइक्रोफिल्म व माइक्रोफाइक रीडर*

(*iii*) *युनिवर्सल मशीन*

(*iv*) *रीडर/प्रिन्टर* दबाने वाले बटन युक्त मशीन होती है जो न केवल माइक्रोफिल्म व माइक्रोफाइक के पढ़ने में सहायक है बल्कि पर्दे पर बनी आकृति को पूरी साइज के कागज पर उतार सकती है।

(*v*) *प्रोडक्शन प्रिन्टर/एनलार्ज प्रिन्टर:* यह स्वचालित मशीन होती है जो माइक्रोफिल्म या उसके किसी भाग की आवश्यक संख्या में प्रतिलिपि छाप सकती है। यह बड़े पैमाने पर माइक्रोफिल्म की पूरे आकार की प्रतिलिपियाँ बनाने में प्रयोग होती है।

(*vi*) *जीरोक्स कापीफ्लो मशीन:* यह महंगी मशीन है और इस कारण साधारण पुस्तकालयों की पहुँच के बाहर है। यह माइक्रोफिल्म को पठनीय साइज में छाप सकती है। इससे किसी भी वांछित अभिलेख की एक प्रति कम खर्च व कम समय में मिल जाती है।

पुस्तकालय में सूची कार्ड (The Card Catalog in the Library)

क्या आप जानते हैं सूची कार्ड पुस्तकालय के सभी संग्रह का सूचकांक होता है। क्रमवार प्रकाशित आवधिक पत्रिकाओं को छोड़कर इसमें सभी प्रकाशित सामग्री की सूची होती है।

सामान्यत: कार्ड में, लेखक, शीर्षक व विषयक कार्डों का वर्णमाला क्रम में व्यवस्थित विवरण होता है। किसी पुस्तक के बारे में काफी सूचना इन कार्डों में मिल जाती है। पुस्तक के शीर्षक व लेखक के नाम के अतिरिक्त इसमें लेखक की जन्मतिथि, संस्करण, प्रकाशन तिथि, पृष्ठों की संख्या तथा प्रकाशक का नाम व पता भी मिल जाता है। कार्डों में अन्य सूचनाएँ जैसे संबंधित/संदर्भित पुस्तकों के नाम, मानचित्र, रूपचित्र, निदर्श-चित्र, तालिकाएँ, श्रृंखलाएँ जिनमें पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं, पुस्तक का संक्षिप्त विवरण–क्या पुस्तक अनुवादित है और अनुवादक का नाम आदि भी अंकित रहती हैं।

पुस्तकालय की वर्गीकरण रीति (Library Classification Systems)

वर्गीकरण विधि में पुस्तकों को विधिवत रखने व ढूँढने की प्रणाली बनाई जाती है। प्रत्येक प्रणाली ऐसी विधि पर आधारित होती है जो तर्कसंगत और सूक्ष्मतम विवरण युक्त हो।

उदाहरण 'अमरीका में पुस्तकालय में वर्गीकरण की दो मुख्य प्रणालियाँ प्रचलित हैं–'डेवे डेसिमल' प्रणाली व 'कांग्रेस पुस्तकालय' प्रणाली।

'डेवे डेसिमल' प्रथा में दशमलव प्रणाली है जिसमें संख्याएँ 001 से 999.99 तक होती हैं। दूसरी 'कांग्रेस पुस्तकालय' प्रथा अधिकतर बड़े पुस्तकालयों में प्रयोग होती हैं। इसमें 'डेवी डेसिमल' प्रणाली के 10 वर्गों के स्थान पर बीस मुख्य वर्ग हैं। इसमें मुख्य वर्ग के लिए अक्षर और उपवर्ग के लिए संख्या का प्रयोग होता है।

पुस्तकालय में लेखक, विषय या शीर्षक कार्ड के ऊपरी बाएँ कोने में व पुस्तक के पीछे सभी पुस्तकों के लिए एक-एक काल नम्बर या अक्षर होता है। इन काल नम्बर या अक्षरों का प्रयोग, पुस्तकालय की आल्मारियों में पुस्तकों

नोट

को क्रमवार लगाने में किया जाता है और एक वर्ग में पुस्तकें लेखक के अन्तिम नाम के पहले अक्षर के अनुसार वर्णमाला क्रम में व्यवस्थित की जाती हैं।

पुस्तकालय में खोज के लिए दिशा-निर्देश (Library Searching Guidelines)

अनुसंधायक के लिए समस्या से संबंधित सर्वेश्रेष्ठ उपलब्ध स्रोतों की पहचान व उनमें से आवश्यक सूचना निकाल पाना एक अति-महत्त्वपूर्ण कार्य है। इसके लिए उसे पुस्तकालय में खोज तकनीक का विकास करना चाहिए जिससे वह समय व प्रयासों को बचा सके। **वान डलेन** ने अनुसंधायक के लिए निम्न मूल्यवान दिशा-निर्देश सुझाए हैं:

1. पुस्तकालय के प्रयोग से पहले, अपने आप को उसके विभिन्न भागों, सुविधाओं सेवाओं और अधिनियमों से परिचित करा लें।
2. माइक्रोफोर्म रीडर, फोटोकापी मशीन और अन्य यांत्रिकी यंत्रों को प्रयोग करना सीख लें।
3. पुस्तकों के संचयन कक्ष, आवधिक पत्रिकाओं, संदर्भ पुस्तकों व आरक्षित पुस्तकों व विरली पुस्तकों के कक्ष में यह पता कर लें कि जिन पुस्तकों की प्राय: आवश्यकता होगी वह किस स्थान पर रखी हैं।
4. अपने पुस्तकालय के कार्यकाल को इस प्रकार निर्धारित करें जिसमें संसाधनों व सेवाओं पर अधिक भीड़ न हो।
5. एक दिन के कार्यक्रम में जिन-जिन पुस्तकों की आवश्यकता होगी उनके मांग प्रपत्रों को प्रारम्भ में ही बना लें।
6. आपके लिए प्रत्येक संदर्भ की व्यवस्था करने में पुस्तकालय अधीक्षक को पूर्ण सूचनाओं की प्रति दें और आवधिक पत्रिकाओं की निर्देशिनी या कार्ड सूची बंद करने से पहले जांच लें। यदि कोई कमी रह गई हो तो उसे ठीक कर लें।
7. एक विशिष्ट विषय को समाप्त करने में जितना भी समय आवश्यक हो, एक ही बार लगाकर पूरा करें।
8. यदि उपलब्ध समय कम हो तो ऐसे प्रश्नों को लें जिनके उपलब्ध संदर्भ पुस्तकों की सहायता से जल्दी-जल्दी उत्तर दिए जा सकते हैं।
9. पुस्तकालय में सामग्री की खोज प्रारंभ करने से पहले उन सभी प्रश्नों को लिख लें जो सभी अपेक्षित सूचनाओं को पूरा करे। प्रश्नों को इस प्रकार पुस्तकालय के कक्षों की स्थिति के अनुसार सूचीबद्ध करें जहाँ से उनके उत्तर मिल सकते हैं।
10. एक सूची ऐसी बनाएँ जिसमें आवधिक पत्रिकाओं, संस्थाओं, सरकारी एजेंसी, अनुसंधान एजेंसी, सांख्यिकी संग्रहणकर्ता, पुस्तकालयों, विशेष संग्रहित सामग्री के अजायबघरों और अपने क्षेत्र के प्राधिकारियों के वर्तमान और पिछले नाम हों।
11. अपने विशिष्ट क्षेत्र की सर्वश्रेष्ठ संदर्भ पुस्तकों, क्रम सूचियों, हस्तपुस्तकों, ऐतिहासिक अध्ययनों व विधिक संदर्भों की एक सूची तैयार रखें।
12. अपने विषय की सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों की सूची व महत्त्वपूर्ण अनुसंधानों के अध्ययनों की प्रतियाँ अपनी फाइल में रखें।
13. यह भी मालूम करें कि कौन सी आवधिक पत्रिकाएँ नियमित या कभी-कभी विषय की सर्वोत्तम पुस्तकों, साहित्य की समीक्षाओं या अन्य संदर्भ सामग्री को छापती हैं और यह उनके किन अंकों में प्रकाशित होती हैं।

नोट

टास्क अनुसंधान में समस्या से संबंधित श्रेष्ठ उपलब्ध स्रोतों की सूचना पाने के लिए अपने सुझाव दें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. रोटरी कैमरा, ... कैमरे की भाँति रोल फिल्म पर सूक्ष्म प्रतिबिंब अंकित करता है।
   (क) फ्लो (ख) प्लेनेटेरी (ग) स्टेप एवं रिपीट (घ) युनिवर्सल मशीन
5. प्रोडक्शन प्रिंटर/एनलार्ज प्रिंटर ..... मशीन होती है।
   (क) हस्तचालित (ख) पैरचालित (ग) स्वचालित (घ) बिजली रहित
6. 'डेवे डेसिमल' प्रथा ..... प्रणाली है।
   (क) शून्य (ख) दशमलव (ग) अक्षर (घ) शब्द
7. सूची कार्ड पुस्तकालय के सभी संग्रहों का ..... होता है।
   (क) मापक (ख) समीक्षक (ग) निर्देशक (घ) सूचकांक

4.4 संदर्भ सामग्री (Reference Manual)

शिक्षा के क्षेत्र में अनेक संदर्भ होते हैं जो अनुसंधायक को उपयोगी होते हैं। ऐसी सामग्री को खोजने के लिए अनुसंधायक को निम्नलिखित सावधानीपूर्वक संकलित पुस्तकों को पढ़ना चाहिए–

कान्सटेन्स एम. विनचेल–*ए गाइड टू रेफरेंस बुक्स* (A Guide to Reference Books)–आठवाँ संस्करण शिकागो: अमरीकी पुस्तकालय सभा 1967। यह व्यापक पुस्तक दो वर्ष में एक बार अनुपूरक पृष्ठ छापती है जिसमें अनेक भाषाओं में आधुनितकम सूचनाएँ होती हैं। इसमें 7500 संदर्भों का विवरण व मूल्यांकन होता है और इसमें एक भाग शिक्षा के संबंध में होता है।

एलबर्ट जे. वालफोर्ड: *गाइड टू रेफरेंस मैटीरियल* (Guide to Reference Material): यह दो पुस्तकों में विभाजित है (1) विज्ञान व तकनीकी, (1966) तथा (2) दर्शन व मनोविज्ञान, धर्म, सामाजिक विज्ञान, भूगोल व इतिहास (1968)।

मेरी एंड बार्टन तथा मेरियो वी. बेल (1962): संदर्भ पुस्तकें: *रेफरेंस बुक्स: ए.ब्रीफ़ गाइड फॉर स्टूडेंट्स एंड अदर यूजर्स आफ़ दि लायब्रेरी* (Reference Books: A Brief Guide for Students and Other Users of the Library): यह प्रदर्शक लाभदायक है परन्तु बहुत छोटा है।

शैक्षिक प्रलेखन के लिए अन्तर्राष्ट्रीय पथ-प्रदर्शक (1955-1960): *इंटरनेशनल गाइड टू एजुकेशनल डोकूमेंटेशन,* (1955-1960), (International Guide to Educational Documentation) यूनेस्को 1963 यह शिक्षा पुस्तकों, पुस्तिकाओं, आवधिक-पत्रिकाओं, आकस्मिक लेखों, फिल्म व ध्वनि रेकार्डरों पर एक खंडीय अन्तर्राष्ट्रीय पथ-प्रदर्शक है।

आरविंड बर्क व मेरी बर्क, *डोकूमेंटेशन इन एजुकेशन:* (Documentation in Education): यह प्रदर्शक शिक्षा जगत के साहित्य का अभूतपूर्व परिचय प्रदान करता है।

नोट

दि स्टैंडर्ड पीरीयडिकल्स डाइरेक्ट्री (The Standard Periodicals Directory) **न्यूयार्क:** आक्सब्रिज प्रकाशन कंपनी 1964। अब तक इसमें 30,000 से अधिक प्रविष्टियाँ हैं। स्थानीय समाचार पत्रों को छोड़कर इसमें सभी प्रकार की आवधिक पत्रिकाओं का समायोजन है। यह हर वर्ष प्रकाशित होती है और 200 वर्गों में विषयवार वर्णन है। वर्णमालानुसार क्रम सूची दी गई है।

क्रिसटीन एल. वीनर, *गाइड टू रेफ़रेंस बुक्स फॉर स्कूल मीडिया सेंटर्स* (Guide to Reference Books for School Media Centres) *लिटिलटन, कोलो :* लाइब्रेरीज अनलिमिटेड 1973। इस प्रदर्शक में 2575 प्रविष्टियाँ संदर्भ पुस्तकों व चयन औजारों पर मूल्यांकन टिप्पणी सहित हैं जो शिक्षा संस्थानों में काम आते हैं। इसकी सूचकांकों में लेखक, विषय व शीर्षक हैं।

विश्वकोश (Encyclopedias) यह सूचनाओं का भंडार है जिसमें विशेषज्ञों द्वारा तैयार अच्छी चर्चा, चयनित पुस्तकों की सूची दी होती है। यह विषय अनुसार वर्णमाला क्रम में होती है। अनुसंधान के प्रत्येक क्षेत्र के लिए किए गए कार्य का क्रांतिक आकलन प्रस्तुत होता है। इसके साथ-साथ वह क्षेत्र में आवश्यक अनुसंधान को भी चिह्नित करती है और एक वरणात्मक पुस्तकों की सूची भी देती है।

अनुसंधायकों के लिए शिक्षा क्षेत्र में उपयोगी विश्वकोशों की प्रतिदर्श सूची निम्नलिखित है–

ए साइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशन (A Cyclopedia of Education): शिक्षा का विश्वकोश, पॉल मोनरो, 5 खंडों में (न्यूयार्क: मैकमिलन 1911-13) यह पॉल मोनरो द्वारा संपादित है जिसमें विभागीय संपादकों और 1000 से अधिक व्यक्तिगत लेखकों ने योगदान दिया है। उसमें सर्वश्रेष्ठ पुस्तकों की सूची है और ऐतिहासिक व जीवनी लेख संबंधी प्रयोजनों के लिए अति उत्तम है।

दि एंसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशन: (The Encyclopedia of Education): शिक्षा का विश्वकोश, संपादक **ली.सी. डेटन** (न्यूयार्क: दि मैकमिलन कं. एंड फ्री प्रेस, 1971): इसमें 1000 से अधिक लेख हैं। उससे संस्थाओं व व्यक्तियों का, विधाएँ व उत्पाद का जो शिक्षा प्रणाली में मिलते हैं, ज्ञान होता है। लेखों में इतिहास, सिद्धांत अनुसंधान, दर्शनशास्त्र और शिक्षा के स्वरूप व संविन्यास के विषय सम्मिलित हैं।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ माडर्न एजुकेशन: (Encyclopedia of Modern Education): आधुनिक शिक्षा का विश्वकोश: **हेनरी डी. खिलिन तथा एच. शूलर** (न्यूयार्क: फिलॉसाफिकल लाइब्रेरी, 1943): लगभग 200 प्राधिकारों का व्यापक कार्य हेनरी डी. खिलिन व एच. शूलर ने संकलित किया है। इसमें आज की समस्याओं, प्रवृत्ति, सिद्धांतों व पद्धतियों पर बल दिया गया है। लेखों के साथ संक्षिप्त पुस्तकों की सूची है और पारस्परिक संदर्भ की प्रणाली है।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशनल रिसर्च: (Encyclopedia of Educational Research): शिक्षा अनुसंधान का विश्वकोश: **वाल्टर स्कॉट मोनरो** संशोधित संस्करण (न्यूयार्क: मैकमिलन, 1950): यह विश्वकोश अमरीकी शिक्षा अनुसंधान सभा के तत्वाधान में तैयार की गई थी। इसका लक्ष्य शिक्षा क्षेत्र के अनुसंधान अध्ययनों का क्रांतिक मूल्यांकन, संकलन व व्याख्या है। सभी लेख वर्णमाला के क्रमानुसार व्यवस्थित हैं और उनके साथ पुस्तकों की सूचियाँ हैं।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशन रिसर्च: (Encyclopedia of Educational Research): शिक्षा अनुसंधान का विश्वकोश: **चेस्टर हेरिस** तीसरा संस्करण (न्यूयार्क: मैकमिलन, 1960): यह विश्वकोश भी अमरीकी शिक्षा अनुसंधान सभा के तत्वाधान में बनाई गई। यह पहले संस्करणों का केवल संशोधित रूप न होकर बिल्कुल नए सिरे से लिखी गयी पुस्तक है जिसमें विषय का नया चित्रण किया है।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशनल रिसर्च: (Encyclopedia of Educational Research): शिक्षा अनुसंधान का विश्वकोश: **राबर्ट एल. एबेल चौथा** संस्करण (न्यूयार्क : मैकमिलन 1969): इस विश्वकोश में अनुसंधान के

नोट

संक्षिप्त विवरण दिए हैं और भावी अनुसंधान कार्य के लिए अनेक संदर्भ दिए हैं। लेखों में आग्रही शिक्षा समस्याओं व क्रमिक शिक्षा में चिन्ताओं का विवेचन है।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशनल रिसर्च: (Encyclopedia of Educational Research): शिक्षा अनुसंधान का विश्वकोश: **हैराल्ड ई. मिज़ेल** पाँचवां संस्करण (न्यूयार्क: दि फ्री प्रेस: मैकमिलन कं. का एक अंग-1982) इस विश्वकोश में विषयों को 18 मुख्य शीर्षकों में वर्णमाला क्रमानुसार वर्गीकृत किया गया है जो 'शिक्षा संबंधी एजेंसी व संस्थाओं' से लेकर, 'परामर्श', 'स्वास्थ्य', व 'मनोवैज्ञानिक सेवाएँ', 'पाठ्यक्रम के क्षेत्र' आदि व 'शिक्षक और अध्यापन' तक फैला है। नए विचार व विषय जैसे 'कंप्यूटर आधारित शिक्षा', 'नशे के दुरुपयोग पर शिक्षा', 'शिक्षा में समानता' 'मानव जाति वर्णना' (Ethnography) व 'स्नायु विज्ञान' भी इस पुस्तक में सम्मिलित किए गए हैं। यह प्रकाशन विश्व में आधुनिक घटनाओं और उन्नति का प्रतिबिंब है जिसमें शिक्षा दी जानी चाहिए।

दि इंटरनेशनल एंसाइक्लोपीडिया ऑफ एजुकेशन: (The International Encyclopedia of Education): **टार्सटेन, हुसेन व टी. नेविल पोस्लेथवेट** (न्यूयार्क: परागामन प्रेस, 1985)

विश्व की शिक्षा क्षेत्र की समस्याओं, अभ्यासों व संस्थाओं का आधुनिक परिदृश्य प्रस्तुत करने की दिशा में यह प्रकाशन पहला प्रयास है। इसमें उपलब्ध सूचनाएँ तीन मौलिक प्रश्नों के उत्तर प्रदान करती हैं। शिक्षा जगत के विभिन्न क्षेत्रों में कला की क्या स्थिति है? क्या-क्या प्रबल व वैध सूचनाएँ उपलब्ध हैं? शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर और किस अनुसंधान की आवश्यकता है?

दि एंसाइक्लोपीडिया ऑफ कम्पेरेटिव एजुकेशन एंड नेशनल सिस्टम्स ऑफ एजुकेशन: (The Encyclopedia of Comparative Education and National Systems of Education): तुलनात्मक शिक्षा व शिक्षा की राष्ट्रीय पद्धति का विश्वकोश **टी. नेविल पोस्टलेथवेट** (न्यूयार्क: आक्सफोर्ड प्रेस, 1988)

यह विश्वकोश दो भागों में है। पहले भाग में तुलनात्मक शिक्षा पर लेखों की शृंखला प्रस्तुत की गई है; दूसरे भाग में विभिन्न देशों की 159 भिन्न शिक्षा प्रणालियों का वर्णन दिया गया है।

इंटरनेशनल एंसाइक्लोपीडिया ऑफ दि सोशल साइन्सेज: (International Encyclopedia of the Social Sciences): सामाजिक विज्ञान का अन्तर्राष्ट्रीय विश्वकोश (न्यूयार्क: मैकमिलन कं. 1968) यह 10 विद्वत समितियों के निर्देशन में बनाया गया था। इस संदर्भ पुस्तक में सभी सामाजिक विज्ञान के विषयों पर चर्चा है।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ चाइल्डकेयर एंड गाइडेंस: (Encyclopedia of Childcare and Guidance): बाल देखभाल व मार्गदर्शन का विश्वकोश (गार्डन सिटी, न्यूयार्क: डबलडे एंड कं. 1968) इस में बाल्यकाल की समस्याओं की प्रकृति पर पूरी चर्चा है। इसमें इन समस्याओं के निराकरण/निदान की विधियों को भी सुझाया गया है।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशलवर्क: (Encyclopedia of Social Work: सामाजिक कार्य का विश्वकोश (न्यूयार्क: सामाजिक कार्यकर्ताओं की राष्ट्रीय सभा, 1965) इस पुस्तक में सामाजिक कार्य क्षेत्र के सभी पहलुओं पर विस्तृत लेख दिए गए हैं।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी: (Encyclopedia of Philosophy): दर्शनशास्त्र का विश्वकोश (न्यूयार्क: मैकग्रा-हिल बुक कं., 1971) इस विश्वकोश में 2000 से अधिक लेखकों के 7000 से अधिक लेख, विज्ञान व यांत्रिकी, के सभी विषयों पर संकलित हैं।

एंसाइक्लोपीडिया ऑफ फिलॉसफी: (Encyclopedia of Philsophy) (न्यूयार्क : मैकमिलन-फ्री प्रेस, 1967): यह एक प्राधिकृत व व्यापक संदर्भ पुस्तक है जिसमें दोनों, पाश्चात्य व पूर्वी, विचारधाराओं–पुरातन, मध्यकालीन व आधुनिक का समावेश है।

शब्दकोश (Dictionaries): यह सदा अनुसंधानकर्ता को पथ-प्रदर्शन का कार्य करती हैं। कुछ प्रचलित शब्दकोशों (dictionaries) की सूची नीचे वर्णित है–

नोट

डिक्शनरी ऑफ एजुकेशन (Dictionary of Education) (न्यूयार्क: मैक्ग्रा-हिल बुक कं., 1973): इसमें 3300 तकनीकी व व्यावसायिक शब्दावली दी गई है। शिक्षा में विभिन्न देशों में प्रचलित शब्द भी दिए गए हैं।

कम्प्रेहेंसिव डिक्शनरी ऑफ साइक्लोजिकल एंड साइको-एनेलिटिकल टर्म्स (Comprehensive Dictionary of Psychological and Psycho-analytical Terms) (न्यूयार्क: डेविड मैके कं.): इसमें 13000 से अधिक शब्दावली दी गई है। शब्दों को तकनीकी शब्दों में परिभाषित किया गया है।

रोगेज़ इंटरनेशनल थेसोरस ऑफ वर्ड्स एंड फ्रेजेज (Roget's International Thesaurs of Words and Phrases) (न्यूयार्क: क्रावेल, कालियर व मैकमिलन): थेसोरस, शब्दकोश का विपरीत होता है। यदि किसी को शब्द के अर्थ का ज्ञान तो है परन्तु प्रयोग करने के लिए सटीक शब्द नहीं है तो थेसोरस की सहायता ली जाती है। थेसोरस में शब्द के समरूप व विपरीत अर्थ के शब्द दिए होते हैं। अनुसंधानकर्ता को थेसोरस व एक अच्छे शब्दकोश के साथ पढ़ना चाहिए जिससे सही भाव प्रदर्शित हो सकें।

इअर बुक्स, आलमानक्स एंड हैंडबुक्स (Yearbooks, Almanacs and Handbooks): शिक्षा समस्याओं, विचार व पद्धतियों पर अधिकांश सामयिक सूचनाएँ वार्षिक पुस्तकों, कैलेन्डरों व छोटी पुस्तिकाओं में मिल जाती हैं। कुछ वार्षिक पुस्तकों में प्रत्येक वर्ष चालू अभिरुचि का नया विषय प्रकाशित होता है और कुछ अन्य में घटनाचक्र पर सामान्य समीक्षा होती है। कुछ वार्षिक पुस्तकों, कैलेन्डरों व छोटी पुस्तिकाओं की सूची निम्नवत् है–

दि हैंडबुक ऑफ रिसर्च ऑन टीचिंग (The Handbook of Research on Teaching): **एन.एल. गागे** (शिकागो: रेन्ड मेकनाली एंड कं., 1963) यह पुस्तक शिक्षण पर एक व्यापक अनुसंधान सूचना प्रस्तुत करती है और साथ में विस्तीर्ण ग्रंथ सूची भी होती है।

दि रंड मेकनाली हैंडबुक ऑफ एजुकेशन (The Rand McNally Handbook of Education): **आर्थर डब्लू, फोशे**, (शिकागो: रेन्ड मेकनाली एंड कं., 1963)। यह अमरीका में शिक्षा संबंधी अधिकांश महत्त्वपूर्ण तथ्यों का सुविधाजनक स्रोत संकलन है। इस पुस्तक द्वारा द्रुत संदर्भ से इंग्लैंड, फ्रांस व रूस में शिक्षा की तुलना प्रस्तुत होती है।

एजुकेशन इअरबुक (Education Yearbook) (न्यूयार्क : मैकमिलन कंपनी 1972-अब तक) यह एक वार्षिक प्रकाशन है। इसमें मुख्य शिक्षा समस्याओं व आंदोलनों के सांख्यिकी आंकड़े दिए हैं और साथ ही विस्तृत ग्रंथ सूची व संदर्भ पथ-प्रदर्शक भी हैं।

मेंटल मेज़रमेंट इअरबुक (Mental Measurement Yearbook) (हाइलैन्ड पार्क, न्यू जरसी: ग्रेफान, प्रेस 1938-आज तक): इसका संकलन **आस्कार के. बूरोज** ने किया है। इसमें मनोवैज्ञानिक माप तथा मानकीकृत परीक्षण व तालिकाओं का सारांश दिया गया है। यह चार वर्ष में प्रकाशित होती है और इसमें मापन की महत्त्वपूर्ण पुस्तकों की समीक्षा तथा व्यवसायिक जर्नलों में छपी पुस्तक समीक्षाओं के उद्धृत अंश दिए गए हैं।

इंडियन मेंटल मेज़रमेंट हैंडबुक (Indian Mental Measurement Handbook): बुद्धि व अभिक्षमता परीक्षण (नई दिल्ली: राष्ट्रीय समिति शिक्षा अनुसंधान व प्रशिक्षण (NCERT), 1991)

यह पुस्तिका राष्ट्रीय पुस्तकालय शिक्षा व मनोवैज्ञानिक परीक्षण का अनुसंधायकों के लिए किया गया एक बड़ा प्रयास है जिसमें मानक परीक्षणों की समीक्षा, विशेषकर 'बुद्धि' व 'अभिक्षमता' के क्षेत्रों में की गई है। यह भारत में विकसित परीक्षणों व विदेशी परीक्षणों को भारतीय स्थितियों के अनुकूल ढालने के बारे में व्यवस्थित सूचनाएँ प्रस्तुत करती है। इसमें केवल वह व्यवसायिक परीक्षण ही नहीं आते जिनकी प्रयोगकर्ता मांग करते हैं या जो सीमित प्रयोग के लिए उपलब्ध हैं, बल्कि वह परीक्षण भी सम्मिलित हैं जिनके केवल आदर्श प्रतिरूप उपलब्ध हैं। इस पुस्तिका में परीक्षणों की समीक्षा भी दी गई है जिससे पाठक परीक्षणों का और अधिक क्रांतिक मूल्यांकन कर सकें।

नोट

दि स्टूडेंट साइक्लोजिस्ट्स हैंडबुक: विद्यार्थी मनोवैज्ञानिक की हस्तपुस्तिका: स्रोतों का पथ-प्रदर्शक (कैम्ब्रिज, मास: शेन्कमैन पब्लिशिंग कं., 1969) इस पुस्तक में मनोविज्ञान के मुख्य विषयों का वर्णन है जिसमें सूचनाओं के स्रोतों, आंकड़े संग्रहण की विधियों और संदर्भ सामग्री के प्रयोग को भी बताया गया है।

डाटा प्रोसेसिंग इअर बुक (Data Processing Yearbook) (डेटारायट: फ्रैंक एच. गिले, 1952–आज तक): इस वार्षिक पुस्तक का प्रकाशन अनियमित है। इसमें आंकड़ों के संसाधन (Data processing) के उपकरणों, तकनीक व निर्माण पर लेख होते हैं। इसमें ऐसी संस्थाओं के नाम होते हैं जो आंकड़ों के संसाधन (Data Processing) व कंप्यूटर पाठ्यक्रम प्रदान करते हैं।

युनाइटेड नेशन्स स्टैटिसटिकल इअरबुक (United Nations Statistical Yearbook): संयुक्त राष्ट्र सांख्यिकी वार्षिक पुस्तक (न्यूयार्क: युनाइटेड नेशन्स 1949-अब तक) यह वार्षिक प्रकाशन है। यह जनसंख्या, व्यापार, वित्त, दूर संचार, स्वास्थ्य व शिक्षा के संबंध में आंकड़े प्रस्तुत करती है।

वर्ल्ड अलमानक-बुक ऑफ फैक्ट्स (World Almanac-Book of Facts): तथ्यों की विश्व कैलेन्डर-पुस्तक (न्यूयार्क: समाचार पत्र उद्योग सभा, 1968-अब तक) यह संदर्भ प्रदर्शक वार्षिक प्रकाशन है। इसमें सामाजिक, शिक्षण, राजनैतिक, धार्मिक, भौगोलिक, व्यावसायिक, वित्तीय व अर्थशास्त्र के क्षेत्रों में घटनाओं की प्रगति व स्थितियों पर नवीनतम सांख्यिकी व आंकड़े प्रस्तुत होते हैं।

दी स्टैन्डर्ड एजुकेशन एलमानक (The Standard Education Almanac): यह शिक्षा के लगभग हर पहलू पर तथ्यों व सांख्यिकी का अभिलेख है।

डाइरेक्ट्रीज़ एंड बिबलियोग्राफ़ीज़ (Directories and Bibliographies): निर्देशिकाएँ व ग्रंथ सूचियाँ: जब अनुसंधायक को वित्तीय सहायता या अनुसंधान सामग्री व यंत्रों की सूचनाएँ एकत्रित करनी होती हैं, तो व्यक्तियों, आवधिक पत्रिकाओं, प्रकाशकों या संगठनों के नाम व पते जानने के लिए उसे निर्देशिका का प्रयोग करना होता है। निर्देशिका की सहायता से अनुसंधायक को उन व्यक्तियों या संस्थाओं का पता चल सकता है जिनके व्यवसायिक हित उसके जैसे हैं या जो उसे उसकी समस्या के निराकरण में मदद कर सकते हैं या उसके प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं।

अमरीका व ब्रिटेन में कुछ प्रमुख निर्देशिकाएँ निम्न हैं–

अमेरिकी शिक्षा निर्देशिकाओं का पथ-प्रदर्शक (गाइड टू अमेरिकन एजुकेशनल डाइरेक्ट्रीज): इसकी एक पुस्तक में 12000 से अधिक शिक्षा की व संबंधित निर्देशिकाओं की सूची हैं। यह निर्देशिकाएँ वर्णमाला अक्षरों के क्रम में विषयों के शीर्षकों के अन्तर्गत व्यवस्थित हैं।

एजुकेशन डाइरेक्ट्री: शिक्षा निर्देशिका (वाशिंगटन: अमरीकी कार्यालय शिक्षा; अधीक्षक प्रलेखन, 1912-आज तक) यह निर्देशिका हर वर्ष पाँच भागों में प्रकाशित होती है। इसमें नाम, शिक्षा एजेंसियाँ, अधिकारी, संस्थाएँ व अन्य सूचनाएँ होती हैं।

एन.ई.ए. हैंडबुक फॉर लोकल, स्टेट एंड नेशनल एसोसियेशन्स: एन.ई.ए. की स्थानीय, राजकीय व राष्ट्रीय सभाओं के लिए हैंडबुक (वाशिंगटन डी.सी. : राष्ट्रीय शिक्षा सभा, 1945-आज तक) यह वार्षिक प्रकाशन है। इसमें सम्बद्ध सभाओं व विभागों के राजकीय व राष्ट्रीय-अधिकारियों की सूची व व्यापक रिपोर्ट होती है।

एजुकेटर्स वर्ल्ड (एन्जिलवुड, कोलो: फिशर पब्लिशिंग कं., 1972-आज तक): यह 1600 से अधिक शिक्षा सभाओं, प्रकाशकों, अनुसंधान केन्द्रों व कार्यालयों की वार्षिक मार्गदर्शक है।

नेशनल फैकल्टी डाइरेक्ट्री (डिटेरायट: गाले रिसर्च कं., 1964-आज तक): इस वार्षिक प्रकाशन में वर्णमाला अक्षर क्रम में 30,000 से अधिक, अमरीका के कालिजों व विश्वविद्यालयों में कार्यरत, पूर्णकालिक व अंशकालिक, विभागीय सदस्यों व प्रशासनिक विश्वविद्यालयों में कार्यरत, पूर्णकालिक व अंशकालिक, विभागीय सदस्यों व प्रशासनिक अधिकारियों के नाम व पते हैं।

नोट

एनसाइक्लोपीडिया ऑफ एसोसियेशन्स (डेटेरायट: गाले रिसर्च कं., 1964-आज तक) इस निर्देशिका में अमरीका की 14,000 से अधिक राष्ट्रीय सभाओं की वर्णमाला अक्षर क्रम में व्यवस्थित सूची है। इसमें इनके कार्यपालक सचिवों की सदस्यता की सूचना, पते व नाम और इन सभाओं के उद्देश्य दिए होते हैं।

डाइरेक्ट्री ऑफ एक्सेप्शनल चिल्ड्रन (बोस्टन: पोर्टर सारजेन्ट पब्लिशिंग कं., 1962-आज तक): इसमें अमरीका में स्कूलों, कैम्पों, गृहों, दवाखानों व अस्पतालों का वर्णन तथा सामाजिक तिरस्कृत, मानसिक अर्द्धविकसित या शारीरिक विकलांग व्यक्तियों के लिए सेवाओं का वर्णन दिया होता है।

मेन्टल हेल्थ डाइरेक्ट्री (वाशिंगटन, डी.सी. : राष्ट्रीय संस्था-मानसिक स्वास्थ्य, सरकारी प्रिंटिंग कार्यालय, 1964-आज तक): इस वार्षिक प्रकाशन में अमेरिका में राष्ट्रीय, राजकीय व स्थानीय मानसिक स्वास्थ्य एजेंसियों की सूची होती है।

अमेरिकन लाइब्रेरी डाइरेक्ट्री: अमेरीकी पुस्तकालय निर्देशिका (न्यूयार्क: आर.आर. बौकर कं., 1923-आज तक): यह निर्देशिका वर्ष में दो बार, अमरीका व कनाडा में, निजी सरकारी, नगर पालिका, संस्थागत व कालिज पुस्तकालयों का मार्गदर्शन करती है। इसमें विशेष संग्रह, होलडिंग्स की संख्या, कर्मचारियों का वेतन, बजट व सम्बद्धता पर सूचनाएँ सम्मिलित हैं।

केली, टामस, सिलेक्ट बिबलियोग्राफ़ीज़ ऑफ एडल्ट एजुकेशन इन ग्रेट ब्रिटेन (लन्दन: राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान, 1952): ब्लैकवेल ए.एम. ब्रिटेन व आयरलैंड में युनिवर्सिटी की उच्चतर डिग्री के लिए शिक्षा मनोविज्ञान में 1918 से हुए अनुसंधानों की सूची, (लन्दन: न्यून्स एजुकेशनल पब्लिशिंग कं., 1950)।

भारत में राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षा अनुसंधान की सहायतार्थ बहुत ही कम ग्रंथ-सूचियाँ प्रकाशित हुई हैं। हाल ही में भारत के अन्तर विश्वविद्यालय परिषद् द्वारा, भारतीय विश्वविद्यालयों द्वारा 1946-48 व 1948-50 के लिए स्वीकृत डाक्ट्रेट थीसीज इन साइन्स व आर्टस की पुस्तकों की सूची (बिबलियोग्राफी) प्रकाशित हुई है। यह विभिन्न विश्वविद्यालयों के अन्तर्गत, विषयों के उपशीर्षकों में जिनमें शिक्षा भी है, सूचीबद्ध हैं।

दि इंडेक्स: आवधिक सूचकांक वही कार्य करता है जो किसी पुस्तक की क्रम सूची या पुस्तकालय का कार्ड फाइल। यह पुस्तक या लेख का स्रोत, शीर्षकों के वर्णमाला क्रम में लेखक के अन्तर्गत चिह्नित करता है। पाठकों को संदर्भ निकालने के लिए पुस्तकालय के सभी निर्देशों को पढ़ लेना चाहिए।

कुछ शिक्षा संबंधी सूचकांकों की सूची निम्नलिखित है:

एजुकेशन इंडेक्स (न्यूयार्क: एच. डब्लू विल्सन कं., 1929-आज तक) शिक्षा सूचकांक शिक्षकों के लिए बनाई गई महत्त्वपूर्ण व कार्य बचाने वाली मार्गदर्शक है। यह मासिक प्रकशन है (सितम्बर-जून) जो वार्षिक संचयित कर दिया जाता है और प्रत्येक तीन वर्ष बाद यही प्रक्रिया अपनाई जाती है। इस सूची में 250 से अधिक शिक्षा संबंधी आवधिक पत्रिकाएँ, अनेक वार्षिक पुस्तकें, बुलेटिन व मोनोग्राफ होते हैं जो अमरीका, कनाडा, ब्रिटेन में प्रकाशित हुए हैं। इस सूचकांक में प्रौढ़ शिक्षा, व्यापारिक शिक्षा, पाठ्यक्रम, शिक्षा प्रबंध, शिक्षा मनोविज्ञान, शिक्षा अनुसंधान, असाधारण बच्चे, उच्चतर शिक्षा, मार्गदर्शन, स्वास्थ्य व शारीरिक शिक्षा, अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षा, धार्मिक शिक्षा, माध्यमिक शिक्षा व अध्यापकों की शिक्षा आदि विषय सम्मिलित हैं।

कनाडियन एजुकेशन इंडेक्स: कनाडा में शिक्षा सूचकांक (ओटावा, ओन्टेरिओ: कनाडा की शिक्षा अनुसंधान समिति, 1965-आज तक) इस सूची का प्रकाशन तीन माह बाद होता है और सूची में कनाडा में प्रकाशित आवधिक पत्रिकाएँ, पुस्तकें, छोटी पुस्तिकाएँ व रिपोर्ट हैं।

करेंट इंडेक्स टू जर्नल्स इन एजुकेशन: शिक्षा में जर्नलों की वर्तमान सूचकांक: (न्यूयार्क: मैकमिलन इन्फॉर्मेशन, 1969-आज तक) यह सूचकांक मासिक प्रकाशित होती है और 6 माह बाद व एक वर्ष बाद संचायित की जाती हैं। इसमें 700 से भी अधिक शिक्षा व उससे संबंधी जर्नलों से लगभग 20,000 लेख, लेखक व विषयों के शीर्षकों में सूचीबद्ध होते हैं।

नोट

एरिक एजुकेशन डकुमेंट्स इंडेक्स (वाशिंगटन, डी.सी. : नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन, राजकीय प्रकाशन कार्यालय, 1966–आज तक)। यह सूची वार्षिक प्रकाशित होती है। यह शिक्षा संसाधन सूचना केन्द्र के संग्रह में सभी अनुसंधान लेखों की मार्गदर्शक है।

इन्डेक्स ऑफ डाक्टोरल डिसरटेशनल इन्टरनेशनल (एन.आरबर, मिच : जीरोक्स युनिवर्सिटी माइक्रोफ़िल्म्स, 1956–आज तक): यह हर वर्ष डिसरटेशन एब्सट्रेक्ट्स इन्टरनेशनल का 13वां अंक के रूप में प्रकाशित होता है जिसमें अमरीकी, कनाडा की व कुछ यूरोपीय विश्वविद्यालयों द्वारा मान्य एक शिक्षा सत्र में प्रकाशित सभी विवेचनाओं (dissertations) की और जो माइक्रोफिल्म्स में उपलब्ध होते हैं, उनकी संपिंडित एक सूची होती है।

इन्टरनेशनल गाइड टू एजुकेशनल डकुमेन्टेशन: (पेरिस: यूनेस्को) यह मार्गदर्शक प्रति पाँच वर्ष में प्रकाशित होता है। यह टीका सहित पुस्तकों की सूची बनाता है जिसमें मुख्य प्रकाशन, पुस्तक सूची व राष्ट्रीय निर्देशिकाएँ जो अंग्रेजी, फ्रांसीसी व स्पेन की भाषाओं में लिखित हों, सम्मिलित होती हैं।

ब्रिटिश एजुकेशन इन्डेक्स वाल्यूम I, अगस्त, 1954 से नवम्बर, 1958: यह सूचकांक शिक्षा संस्थाओं के पुस्तकालय अधीक्षकों (लाइब्रेरियन्स) द्वारा संकलित की जाती है और इसमें चार वर्ष में शिक्षा हित में छपे लेखों का संदर्भ रहता है। इस सूची में 50 से अधिक आवधिक पत्रिकाएँ होती हैं।

इंडेक्स टू सिलेक्टेड ब्रिटिश एजुकेशनल पीरियडिकल्स (लीड्स: लाइब्रेरियन्स ऑफ इंस्टीट्यूट्स ऑफ एजुकेशन, 1945–अब तक): यह सूची वर्ष में तीन बार प्रकाशित होती है और इसमें 41 शिक्षा संबंधी आवधिक पत्रिकाएँ (पीरीयडिकल्स) अंतर्विष्ट होते हैं, परन्तु प्राइमरी शिक्षा व प्रौढ़ शिक्षा छोड़ दिए गए हैं।

अनुसंधान आवधिक पत्रिकाएँ (Research Periodicals)

नए विचारों और विकास की सूचनाएँ पुस्तकों से पहले प्राय: पत्रिकाओं में आ जाती हैं। शिक्षा व उससे संबंधित क्षेत्रों में अनेक आवधिक पत्रिकाएँ हैं जो नवीनतम अनुसंधान अध्ययनों की रिपोर्टों की सर्वोत्तम स्रोत हैं। ऐसी पत्रिकाओं में शिक्षा के संबंध में सामान्य प्रश्नों के, पुस्तकों की तुलना में, अच्छे आधुनिकतम हल मिल जाते हैं। वह अस्थायी, स्थानीय या सीमित रुचि के लेख भी प्रकाशित करती हैं जैसा पुस्तकों में नहीं होता। कोई समकालीन मत व स्थिति–वर्तमान या भूतकालीन–जानने के लिए निश्चित तिथियों वाली पत्रिकाएँ ही सर्वोत्तम स्रोत होती हैं।

यह अनुमान है कि केवल शिक्षा क्षेत्र से संबंधित लगभग 2100 जर्नल हैं। इन सभी जर्नलों में मनोविज्ञान, दर्शनशास्त्र, समाजशास्त्र व अन्य विषयों में अभिरुचि वालों को भी लेख मिल जाते हैं।

सावधानी शिक्षा अनुसंधान में कार्यरत व्यक्तियों को कुछ शिक्षा संबंधी आवधिक पत्रिकाओं का ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिए और उनकी सूचकांकों को प्रयोग करना भी सीख लेना चाहिए।

पत्रिका की उपयोगिता का अनुमान उसके संपादक के संबंध में ज्ञान, लेखकों के नाम और प्रकाशक, सभा या संस्थाओं के नाम जानकर, लगाया जा सकता है।

युलरिक्स पीरियडिकल्स डाइरेक्ट्री: ए क्लासिफाइड गाइड टू ए सिलेक्टेड लिस्ट ऑफ करेन्ट पीरियडिकल्स, विदेशी व स्वदेशी, 12वां संस्करण (न्यूयार्क: बौकर, 1967) में शिक्षा संबंधी आवधिक पत्रिकाओं की व्यापक सूची दी है। इस डाइरेक्टरी में पत्रिकाओं को विषयानुसार वर्गीकृत करके, वर्णमाला अक्षर क्रम में व्यवस्थित किया गया है। प्रत्येक प्रविष्टि में शीर्षक, उपशीर्षक, पहले प्रकाशन की तिथि, प्रकाशन की आवृत्ति, वार्षिक सूचकांक, संचयी सूचकांक और प्रत्येक पत्रिका की मद-विशेषताएँ दी जाती हैं।

नोट

भारत में कुछ सभाओं या संस्थाओं द्वारा अनेक आवधिक पत्रिकाएँ प्रकाशित की जाती हैं। यह शिक्षा अनुसंधान के प्रचार हेतु व इस क्षेत्र व संबंधित क्षेत्रों व व्यवसायों में रुचि लेने वाले अनुसंधायकों, शिक्षकों, विद्वानों आदि के अनुभवों के आदान-प्रदान के माध्यम के रूप में कार्य करती हैं।

सारांश (Abstracts)

इसमें अनुसंधान अध्ययन या लेख के मुख्य विषय का संक्षिप्त सार होता है। अनुसंधायक के लिए यह सर्वाधिक उपयोगी संदर्भ पथ-प्रदर्शक का कार्य करता है और उसे अपने क्षेत्र व संबंधित क्षेत्रों में किए जा रहे कार्य से पूर्ण परिचित रखता है।

अमरीका में इन संदर्भों में सर्वाधिक उपयोगी निम्नलिखित हैं–

उदाहरण '*दि रिव्यू ऑफ एजुकेशनल रिसर्च*' यह इस क्षेत्र में किए गए कार्यों का उत्कृष्ट सर्वेक्षण प्रदान करता है और नवीनतम घटनाओं से परिचित कराता है।

1931 से 1969 के मध्य इस प्रकाशन ने प्रति तीसरे वर्ष निम्न ग्यारह मुख्य शिक्षा क्षेत्रों की समीक्षा की: (*i*) प्रशासन (*ii*) पाठ्यक्रम (*iii*) शिक्षण माप (*iv*) शिक्षा मनोविज्ञान (*v*) शिक्षा समाजशास्त्र (*vi*) मार्गदर्शन व परामर्श (*vii*) भाषा कला, सूक्ष्म कला, नैसर्गिक विज्ञान व गणित (*viii*) अनुसंधान विधियाँ (*ix*) विशेष कार्यक्रम (*x*) मानसिक व शारीरिक विकास तथा (*ix*) शिक्षक कर्मी।

जून 1970 से शिक्षा अनुसंधान समीक्षा ने नीति अपनाई है कि अनुसंधान के विषय, लेखकों की स्वेच्छा के हों और समीक्षाएँ भी स्वेच्छा से प्रकाशित की जाएँ। इस प्रकाशन की जो पहले भूमिका रही थी वह अब शिक्षा-अनुसंधान की वार्षिक समीक्षा ने ले ली है।

रिसर्च इन एजुकेशन (शिक्षा में अनुसंधान) (आर.आई.ई.) आज शिक्षा जगत में अनुसंधान सामग्री प्रकाशित करने वाला यह व्यापक प्रकाशन है। आर.आई.ई. का प्रकाशन 1966 से मासिक होता है और इसे (ERIC) शिक्षा संसाधनों का सूचना केन्द्र प्रकाशित कराता है और वार्षिक सूचकांक बनाता है। प्रत्येक मासिक प्रकाशन तीन भागों में विभाजित होता है:

(*i*) प्रलेख अनुभाग (*ii*) योजना अनुभाग (*iii*) अभिगम संख्या अनुभाग।

साइकोलोजिकल एब्सट्रैक्ट्स, मनोवैज्ञानिक सारांश: यह उपयोगी संदर्भ अमरीकी मनोवैज्ञानिक समिति द्वारा 1927 से प्रकाशित हो रहा है। यह पाक्षिक प्रकाशन है और इसमें 530 से अधिक जर्नलों में छपे लेखों के सारांश, जिनमें अधिकांश शिक्षा की आवधिक पत्रिकाएँ हैं, होते हैं। छमाही अंकों में (जनवरी-जून, जुलाई-दिसम्बर), लेखक व विषय दोनों के सूचकांक होते हैं।

शिक्षा सारांश: यह यूनेस्को का प्रकाशन है जो 1949 से आरंभ हुआ और जुलाई, अगस्त को छोड़कर मासिक प्रकाशित होता है। प्रत्येक परिचयात्मक निबंध शिक्षा के विशिष्ट पक्ष को समर्पित होता है जिसके अन्त में उसी विषय पर विभिन्न देशों के चयनित पुस्तकों व प्रलेखों के संक्षिप्त होते हैं।

उपरोक्त आवधिक पत्रिकाओं के अतिरिक्त, अनुसंधायक निम्न प्रकाशनों से परामर्श ले सकता है–

1. *मनोविज्ञान की वार्षिक समीक्षा* (1950-अब तक)
2. *बाल विकास संक्षिप्त व ग्रंथ सूची* (1927-अब तक)
3. *मनोवैज्ञानिक बुलेटिन* (1904-अब तक)
4. *सामाजिक संक्षिप्त* (1962-अब तक)
5. *शिक्षा प्रशासन संक्षिप्त* (1966-अब तक)
6. *शिक्षा सामाजिकी संक्षिप्त* (1964-अब तक)

नोट

7. *मानसिक गतिरोध संक्षिप्त* (1964–अब तक)

8. *अन्तर्राष्ट्रीय विवेचना संक्षिप्त* (1952–अब तक)

भारत में, सरकार का शिक्षा व समाज कल्याण मंत्रालय (अब मानव संसाधन विकास मंत्रालय), नई दिल्ली 1955 से लगातार भारतीय शिक्षा संक्षिप्त त्रिमासिक निकालता रहा है। इसमें भारत में शिक्षा पर अंग्रेजी व हिन्दी में छपी पुस्तकों व आवधिक पत्रिकाओं के सारांश प्रस्तुत होते हैं। विभिन्न अंकों में लगभग सभी भारतीय जर्नलों की सूची दी जाती है। सारांश निम्न विषय-शीर्षकों के अन्तर्गत होते हैं: शिक्षा का दर्शन (Philosophy of Education), शिक्षण मनोविज्ञान, माप व परीक्षण, परीक्षाएँ, विद्यार्थी व विद्यार्थी संगठन, शिक्षण व व्यवसायिक मार्गदर्शन, अध्यापक शिक्षा व प्रशिक्षण पाठ्यक्रम, बेसिक शिक्षा, स्वास्थ्य व शारीरिक शिक्षा, प्राइमरी, माध्यमिक, उच्चतर, व्यावसायिक व प्राविधिक शिक्षा व सामाजिक शिक्षा।

भारत व विदेशों में अनेक व्यावसायिक आवधिक पत्रिकाएँ व वार्षिक पुस्तकें अपनी शृंखला के किसी या सभी अंकों में शिक्षा समस्याओं पर हुए अनुसंधान व तकनीकी परिचर्चा की समीक्षाएँ भी छापते हैं। ऐसे कुछ प्रकाशनों की सूची निम्न हैं–

अमरीका; जर्नल ऑफ एजुकेशन रिसर्च, एन.ई.ए. रिसर्च बुलेटिन, एजुकेशनल एंड साइकोलोजिकल मेजरमेंट, जर्नल ऑफ एक्सपेरिमेंटल एजुकेशन, रिसर्च क्वार्टरली, जर्नल ऑफ रिसर्च इन म्यूजिक एजुकेशन, अमरीकन एजुकेशनल, रिसर्च जर्नल, रीडिंग रिसर्च क्वार्टरली, जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकोलोजी, जर्नल ऑफ एपलाइड साइकोलोजी, जर्नल ऑफ सोशल साइकोलोजी, सोशोलोजी ऑफ एजुकेशन, अमेरीकन जर्नल ऑफ सोशोलोजी, अमेरीकन सोशोलोजिकल रिव्यू, सोशोलोजी व सोशल रिसर्च, हावर्ड एजुकेशनल रिव्यू, जर्नल ऑफ टीचर एजुकेशन, एलीमेन्ट्री स्कूल जर्नल, हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन क्वार्टरली तथा एजुकेशनल फोरम।

ब्रिटेन: ब्रिटिश जर्नल ऑफ एजुकेशनल साइकोलोजी

भारत: भारतीय शिक्षा समीक्षा, मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों का जर्नल, व्यावहारिक मनोविज्ञान का भारतीय जर्नल, क्रियात्मक मनोविज्ञान का भारतीय जर्नल, शिक्षा व मनोविज्ञान का जर्नल, शिक्षा त्रिमासिक, शिक्षा के संदर्भ, शिक्षा नियोजन व प्रशासन जर्नल, विश्वविद्यालय समाचार, उच्चतर शिक्षा जर्नल।

4.5 अनुसंधान लेख (शोध लेख) व विवेचना (Thesis and Dissertations)

लेखकों को स्नातकोत्तर व डाक्ट्रेट डिग्री देने वाली विश्वविद्यालय सामान्यत: लेखकों के शोध लेखों व विवेचनाओं को अपने पास सुरक्षित रख लेती है। कभी-कभी यह अध्ययन पूर्ण रूप या आंशिक रूप से विभिन्न शिक्षण पत्रिकाओं या जर्नलों में प्रकाशित किया जाता है। चूंकि अनेक अनुसंधान अध्ययन कभी भी प्रकाशित नहीं किए जाते, विभिन्न एजेंसियों द्वारा निकाली गई शोध लेखों व विवेचनाओं की वार्षिक सूचियों की जांच करना शोध/अनुसंधान साहित्य में सभी को स्थान दिलाने के लिए आवश्यक हो जाता है।

अमरीका में डाक्ट्रेट डिग्री के शिक्षा सहित सभी क्षेत्रों में शोध विवेचनाओं के संदर्भ विभिन्न एजेन्सियों द्वारा संकलित स्रोतों में मिल जाते हैं। 1912 से 1938 तक की अवधि में लाइब्रेरी ऑफ कांग्रेस ने अमरीकी डाक्ट्रेट के प्रकाशित अध्ययनों की विवेचनाओं की वार्षिक सूची प्रकाशित की थी। दि एसोसियेशन ऑफ लाइब्रेरीज ने 1933–34 से 1954–55 तक अमरीकी विश्वविद्यालयों द्वारा स्वीकृत डाक्ट्रेट विवेचनाओं की सूची प्रकाशित की। यह सेवा अमेरीकी डाक्ट्रेट डिसरटेशन्स 1956–63 की सूचकांक के रूप में चलती रही और वही अमरीकी डाक्टोरल डिसरटेशन्स 1963–64 से अब तक के नाम से जानी गई। इसमें अमेरीकी व कनाडा के विश्वविद्यालयों व शिक्षा संस्थाओं द्वारा स्वीकृत डाक्टोरल विवेचनाओं की सूची है।

शोध लेख सारांश अन्तर्राष्ट्रीय मई-1970 (Dissertation Abstracts International May-1970): इसमें मानव जाति, सामाजिक विज्ञान, भौतिक विज्ञान व इन्जीनियरिंग विषयों पर अनुसंधान/शोध लेखों का संक्षिप्त है। यह

नोट

मासिक प्रकाशन है। प्रत्येक लेख का 600 शब्दों में सारांश है जो अनुसंधायक की आवश्यकता पूरी करने के लिए काफी सूचना प्रदान करता है। यदि कोई अनुसंधायक शोध लेख सारांश अन्तर्राष्ट्रीय में छपे लेख को पूरी तरह पढ़ना चाहे तो वह विश्वविद्यालय की माइक्रोफिल्म से एक माइक्रोफिल्म या जीरोक्स कापी खरीद सकता है। खरीदने के लिए आर्डर देने के लिए संदर्भ संख्या व उसका मूल्य सारांश में दिया हुआ है।

भारत में कुछ ही विश्वविद्यालय अपने यहाँ पूरे किए गए अनुसंधान लेखों के सारांश प्रकाशित करते हैं।

कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय (हरियाणा) ने यह प्रकाशित किए: एम.एड. शोध लेख सारांश भाग I, 1966; एम.एड. शोध लेख भाग II 1967; भाग III, 1968; भाग IV, 1969; भाग V, 1979; एम.एड. शोध लेख व पी.एच.डी. शोध लेख भाग VI, 1973।

एम.बी. बुश (संपादक) भारत में शिक्षा अनुसंधान सर्वेक्षण, शिक्षा अग्रगत अध्ययन केन्द्र बड़ौदा: एम.एस. विश्वविद्यालय, 1973। इसमें भारतीय विश्वविद्यालयों में 1972 तक पूरे किये गये सभी शिक्षा अनुसंधान अध्ययन प्रस्तुत किए गए हैं। इसमें विभाजन इस प्रकार हैं–462 पी.एच.डी अध्ययन व 269-योजना अनुसंधान। सभी अध्ययनों को शिक्षा के अर्थपूर्ण क्षेत्रों के 17 वर्गों में बांटा गया है। वह हैं–(*i*) शिक्षा में दर्शन (*ii*) शिक्षा का इतिहास (*iii*) शिक्षा की सामाजिकी (*iv*) शिक्षा में अर्थशास्त्र (*v*) तुलनात्मक शिक्षा (*vi*) व्यक्तित्व, अध्ययन व अभिप्रेरणा (*vii*) मार्गदर्शन व परामर्श (*viii*) परीक्षण व मापन (*ix*) पाठ्यक्रम, विधियाँ व पाठ्यपुस्तकें (*x*) शिक्षा तकनीक (*xi*) उपलब्धि के पारस्परिक संबंध (*xii*) शिक्षा का मूल्यांकन व परीक्षा (*xiii*) शिक्षण व शिक्षण व्यवहार (*xiv*) अध्यापक शिक्षा (*xv*) शिक्षा प्रशासन (*xvi*) उच्चतर शिक्षा तथा (*xvii*) अनौपचारिक शिक्षा।

एम.बी. बुश, शिक्षा अनुसंधान द्वितीय सर्वेक्षण (1972-1978) बड़ौदा: शिक्षा अनसुंधान व विकास समिति (1979)–इस प्रकाशन में 1972-78 की अवधि में पूर्ण की गई 839 अनुसंधान अध्ययनों को सम्मिलित किया है और शिक्षा अनुसंधान सर्वेक्षण 1973 की भांति 17 अनुसंधान क्षेत्रों को व्यवस्थित किया गया है। पहले अध्याय में शिक्षा के विकास के लिए अनुसंधान का स्थान व कार्य का विस्तीर्ण संदर्श प्रस्तुत किया गया है; साथ ही भारत में शिक्षा अनुसंधान के विकास का इतिहास भी दिया है। इसके बाद के प्रत्येक अध्याय में क्षेत्र विशेष की अनुसंधान अध्ययनों के सारांश की रिपोर्ट, अनुसंधान की अभिवृत्ति व उसमें कमियाँ दी गई हैं और बताया गया है कि लेखक के अनुसार अनुसंधान में क्या प्राथमिकताएँ होनी चाहिए। सारांश प्रत्येक क्षेत्र के लिए वर्णमाला अक्षर क्रमानुसार व्यवस्थित हैं और पूरी पुस्तक को एक क्रम में संख्या दी गई है। प्रत्येक सारांश में अध्ययन का शीर्षक (विषय), उसके लक्ष्य या परिकल्पना जिनका परीक्षण किया गया, परीक्षण विधि-प्रतिदर्श (sample), अनुसंधान के औजार, सांख्यिकी तकनीक जिसे प्रयोग किया गया तथा परिणाम दिए गए हैं। इस प्रकाशन की विशेषता यह है कि शिक्षा समस्या पर विश्वविद्यालय के शिक्षा विभाग के अतिरिक्त, सामाजिक विज्ञान व मानवजाति विभागों द्वारा पूर्ण किये गये अनेकों अध्ययनों को भी स्थान दिया गया है। प्रवृत्ति रिपोर्ट 1972-1978 में पूर्ण किये गये अनुसंधानों पर आधारित न होकर 1940-1978 के बीच कुल अनुसंधान क्रियाकलापों पर आधारित है।

एम.बी. बुश: शिक्षा अनुसंधान तीसरा सर्वेक्षण 1978-1983 नई दिल्ली: एन.सी.ई.आर.टी. 1987

इस प्रकाशन में 20 अध्याय हैं जिसका प्रारंभ भारत में अध्ययनों के गुणात्मक व परिमाणात्मक विश्लेषण पर आधारित शिक्षा अनुसंधान के सामान्य प्रवृत्ति की व्यापक समीक्षा से किया गया है। क्षेत्रों की प्रवृत्ति (trends) की रिपोर्ट विख्यात शिक्षाविदों द्वारा 1943 से 1983 के मध्य चार दशकों में किए गए अध्ययनों पर आधारित कर तैयार की गई है। कुल 1481 अनुसंधान सारांशों को 17 क्षेत्रों में वर्गीकृत किया गया है। प्रत्येक सारांशों में संक्षिप्त में समस्या, अध्ययन का उद्देश्य, अपनाई गई अनुसंधान तकनीक और उनके परिणाम व निष्कर्ष दिए गए हैं। इस पुस्तक की विशेषता 'विदेशों में भारतीय शिक्षा पर अनुसंधान' शीर्षक वाला अध्याय है जिसमें 2 दशकों में अमरीका व ब्रिटिश विश्वविद्यालयों को दी गई 192 डाक्ट्रेट के लिए शोधलेखों की समीक्षा है। इसकी दूसरी विशेषता 'शिक्षा अनुसंधान में प्राथमिकताएँ' का अध्याय है। इस पुस्तक में 1983 तक भारत में किये गये शिक्षा अनुसंधानों की पूरी सूची एक स्थान पर दी हुई है।

नोट

एम.बी. बुश: शिक्षा में अनुसंधान: चौथा सर्वेक्षण (1983–1988) नई दिल्ली एन.सी.ई.आर.टी., 1991

दो खंडों में छपे इस प्रकाशन में 31 अध्यायों में 1988 तक हुए सभी शिक्षा अनुसंधान के सामान्य प्रवृत्ति की व्यापक समीक्षा से आरंभ करके, विख्यात शिक्षा शास्त्रियों ने साढ़े चार दशकों में (1943–1988) हुए अध्ययनों के आधार पर विभिन्न शिक्षा क्षेत्रों में प्रवृत्ति की रिपोर्टों को तैयार किया है। कुल 1652 अनुसंधान सारांश, 29 क्षेत्रों में विभाजन करके दिए गए हैं। पुस्तक में भारत में 1943 से हुये कुल 4703 शिक्षा अनुसंधानों की पूरी सूची दी गई है। चौथे सर्वेक्षण को एक नया आयाम दिया गया है। एक अध्याय में भारतीय विश्वविद्यालयों में एम.फिल. स्तर पर किये गये अनुसंधानों की समीक्षा दी गई है।

समाचार पत्र व पत्रिकाएँ (News Papers and Pamphlets)

अनुसंधायक की अभिरुचि के अनेक लेख समाचार पत्रों व पत्रिकाओं में मिल सकते हैं। वर्तमान समाचार पत्रों में भाषणों, गोष्ठियों, सभाओं, नई प्रवृत्ति व अनेकों विषयों पर नवीनतम सूचनाएँ उपलब्ध होती हैं। पुराने समाचार पत्रों में पिछली घटनाओं, आंदोलनों व विचारों का विशेष रूप से ऐतिहासिक जानकारी के लिए, लेखा सुरक्षित रहता है। कुछ पुस्तकालय अपने संदर्भ अनुभाग में पत्रिकाओं व समाचार पत्रों की सूची भी रखते हैं।

सरकारी प्रलेख (Government Documents)

सरकारी प्रलेख भी सूचना के धनी स्रोत होते हैं। उनमें सांख्यिकीय आंकड़े, अनुसंधान अध्ययन, सरकारी रिपोर्ट, नियम आदि ऐसी सामग्री होती हैं जो किन्हीं अन्य स्थानों पर सदा उपलब्ध नहीं होतीं। यह सामग्री, राष्ट्रीय क्षेत्रीय, राजकीय या स्थानीय स्तर के सरकारी कार्यालयों में उपलब्ध होती हैं।

मोनोग्राफ्स (Monographs)

चल रहे अनुसंधान की सूचनाओं का मोनोग्राफ एक मुख्य स्रोत है। अमरीका में, विश्वविद्यालय व अध्यापकों के कालिज शिक्षा क्षेत्र के अनेक अनुसंधान अध्ययनों को एक विषयक पुस्तक के रूप में प्रकाशित करती हैं। इसके कुछ उदाहरण हैं–सेप्लीमेन्ट्री एजुकेशनल मोनोग्राफ्स, एजुकेशनल रिसर्च मोनोग्राफ्स व लिन्कन स्कूल मोनोग्राफ्स। इंग्लैण्ड में भी विभिन्न शिक्षा संस्थाएँ समय-समय पर मोनोग्राफ प्रकाशित करते हैं। भारत में केवल कुछ विश्वविद्यालय और शोध संस्थाएँ गिने-चुने मोनोग्राफ्स प्रकाशित करती हैं।

कम्प्यूटर जनित संदर्भ सामग्री (Computer-generated Reference Material)

स्कूल रिसर्च इन्फॉर्मेशन सर्विस (SRIS), डायरेक्ट एक्सेस टू रेफरेन्स इनफॉर्मेशन (DATRIX) तथा साइकोलोजिकल एब्सट्रैक्ट सर्च एंड रिट्रीवल सर्विस (PASAR), अमरीका में कम्प्यूटर जनित अनेक संदर्भ स्रोत प्रदान करती हैं जिनसे अनुसंधायक के समय व प्रयासों में बचत होती है। SRIS जो फाई डेल्टा कप्पा (ब्यूमिंगिटन इन्डियाना) द्वारा संचालित है, थोड़े से व्यय से सारांशों का कम्प्यूटर प्रिन्ट प्रदान कर देता है। युनिवर्सिटी माइक्रोफिल्म द्वारा निर्मित DATRIX (एन.आरबर, मिशीगन) 1928 से अब तक के शोध लेखों के सारांशों को कम्प्यूटर द्वारा ढूंढने की सेवा प्रदान करती है। अनुसंधायक यदि चाहे तो पैसा देकर, वांछित शोधलेख की पूरी कापी, युनिवर्सिटी माइक्रोफिल्म्स द्वारा माइक्रोफाइक या जोरोग्राफिक पर करवा सकता है। PASAR सेवा भी मनोवैज्ञानिक जर्नल के लेखों के सारांश, मोनोग्राफ्स, रिपोर्ट और पुस्तक के भागों की छपी हुई प्रतियाँ बहुत सामान्य दर पर प्रदान करते हैं।

4.6 संबंधित साहित्य की व्यवस्था (Organizing the Related Literature)

संबंधित साहित्य का व्यापक सर्वेक्षण करने के बाद अनुसंधायक का अगला पग उपयुक्त सूचनाएँ व्यवस्थित रूप में एकत्र करना होता है। यह इस प्रकार करना चाहिए कि अध्ययन से यह स्पष्ट दिखे कि उस विषय में क्या बातें पहले ही ज्ञात हैं और क्या खोजना है। **अरी** व अन्य के अनुसार,

नोट

परिकल्पना, संबंधित साहित्य की व्यवस्था को प्राधार प्रदान करता है। अन्वेषक के रूप में व्यक्ति को अपनी यात्रा प्रारंभ करने से पहले मानचित्र में ज्ञात क्षेत्र को अंकित करके उसे अज्ञात का मार्ग अंकित करना होता है जिसे वह खोजना चाहता है। यदि अध्ययन के कई पक्ष हैं या एक से अधिक परिकल्पनाओं की जाँच करनी है, तो प्रत्येक के लिए वही प्रक्रिया अपनानी होगी।

अनुसंधायक को यह लालच त्याग देना चाहिए कि वह पूरे साहित्य को सारांशों की शृंखला के रूप में प्रस्तुत कर दे। बल्कि उसे इस प्रकार प्रस्तुत करे कि अध्ययन के लिए एक व्यवस्थित आधार बन सके।

संबंधित साहित्य की व्यवस्था के अन्तर्गत आवश्यक संदर्भ सामग्री के संलेखन और उसे अध्ययन की प्रस्तावित रूपरेखा के अनुसार व्यवस्थित करना होता है।

संदर्भ सूचनाओं का संलेखन (Recording Reference Information)

उपयुक्त सूचनाओं के चिह्नित होने के बाद, अनुसंधायक को सामग्री का स्थान ढूँढने हेतु कुछ आवश्यक सूचनाएँ 3 × 5 इंच के सूची कार्ड (Index Card) पर अंकित कर लेनी चाहिए, जो *संदर्भ ग्रंथ सूची कार्ड* का कार्य कर सके। अन्तिम रिपोर्ट के लेखन को सरल बनाने के लिए, यह उचित होगा कि ग्रंथ में अंकित सूचना, अंतर्वस्तु व लेखन शैली, ठीक वैसी ही हो जैसी अन्तिम रिपोर्ट में होगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची कार्ड में जो आवश्यक मूल सूचनाएँ होनी चाहिए वह हैं–लेखक का नाम–अन्तिम नाम पहले, लेख या पुस्तक का शीर्षक, प्रकाशन का नाम (लेखों के लिए), प्रकाशक का नाम, प्रकाशन तिथि, खंड संख्या, पृष्ठों की संख्या तथा पुस्तकालय का काल नम्बर (पुस्तकों के लिए)। यदि इनमें से कुछ सूचना उपलब्ध न हों तो आवश्यक स्थान खाली छोड़ दिया जाए ताकि संदर्भ मिल जाने पर वह सूचना तुरन्त भरी जा सके।

संदर्भ सामग्री का संलेखन (Recording of Content of References)

संदर्भ ग्रंथ सूची कार्डों में आवश्यक सूचना अंकित करने के बाद पुस्तकालय में सामग्री के स्थान के अनुसार कार्डों को व्यवस्थित करना आवश्यक है। उदाहरण के लिए, पत्रिकाओं के अनुभाग में उपलब्ध सामग्री के सभी कार्ड एक साथ सूचीबद्ध कर लेने चाहिए। इसी प्रकार आरक्षित अनुभाग में उपलब्ध सामग्री की अलग सूची बनाई जाए और इसी प्रकार अन्य अनुभागों की। इसके बाद अनुसंधायक को एक अनुभाग में रखी सामग्री की विधिवत समीक्षा करनी चाहिए और सूची के प्रत्येक संदर्भ की समीक्षा के बाद दूसरी सूची पर यही कार्य होना चाहिए।

अन्तिम रिपोर्ट में प्रयुक्त होने वाली संभावित सूचनाओं को 4″ × 6″ के कार्ड पर अंकित कर लेना चाहिए। यह कार्ड *सामग्री कार्ड* के नाम से जाना जाएगा। सामग्री कार्ड पर अंकित होने वाली सूचना उस स्रोत पर निर्भर करेगी जिससे वह प्राप्त हुई है। अगर वह मुख्य स्रोत से है तो उसमें पुस्तकों की संक्षिप्त सूची जिसमें लेखक का अन्तिम नाम; रिपोर्ट का संक्षिप्त शीर्षक; उन पृष्ठों की संख्याएँ जिन पर सूचना उपलब्ध है; समस्या का एक वाक्य में प्रकथन: अध्ययन का संक्षिप्त वर्णन; खोज का प्रकथन या परिणाम या दोनों; कार्ड की कूट संख्या जिससे अनुसंधान का वह पक्ष इंगित हो जिससे सामग्री का निकट संबंध है, होनी चाहिए।

यदि स्रोत गौण है तो अंकित की जाने वाली सूचनाएँ प्रधान स्रोत से भिन्न होंगी। **टरनी** व **रोब्ब** ने गौण स्रोतों की सूचनाएँ अंकित करने के लिए निम्न सुझाव दिए हैं:

1. संक्षिप्त ग्रंथ सूची सूचना दें (प्रधान स्रोत के अनुरूप ही)।

2. एक कार्ड पर केवल वह सूचनाएँ अंकित करें जो एक ही शीर्षक से संबंधित हैं (यदि सभी सूचनाएँ एक कार्ड पर नहीं आ पाती तो दूसरा कार्ड प्रयोग करें और उसे पहले के साथ नत्थी करें)।

3. अति प्रासंगिक विचारों को पूर्ण प्रकथन में, अपने शब्दों में लिखें। लेखक के सीधे उद्धरण (quotations) केवल तब दें यदि वह संक्षिप्त व प्रभावशाली हों और अपने शब्दों में व्यक्त करने में अर्थ ही बदल जा रहे हों।

नोट

4. प्रत्येक पृथक् प्रकथन के बाद पृष्ठ संख्या व अनुच्छेद संख्या दें जिससे संदर्भ में उसके स्थान का पता चल सके और यदि उसे पुनः समीक्षा की आवश्यकता हो तो किया जा सके।

5. कार्डों पर (ऊपरी दाएँ कोने में) उन विषयानुसार कूट संख्या डाल दें जिनका निकट संबंध है।

संबंधित साहित्य की रिपोर्ट की तैयारी (Preparation of the Related Literature Report)

संबंधित साहित्य की रिपोर्ट बनाने में, अनुसंधायक को ग्रंथ सूची कार्डों व सामग्री कार्डों को समस्या की प्रस्तावित रूपरेखा के अनुसार व्यवस्थित कर लेना चाहिए। ऐसा कार्डों की कूट संख्या की सहायता से किया जा सकता है।

संबंधित साहित्य की रिपोर्ट का आरंभ परिचयात्मक अनुच्छेद से होना चाहिए जिसमें रिपोर्ट की व्यवस्था का वर्णन हो। परिचय के बाद अनुसंधायक को समस्या की प्रस्तावित रूपरेखा के प्रत्येक बिन्दु के सुसंगत अध्ययन को प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसे अध्ययनों जिनके परिणाम समरूप हों या विरोधी हों, को साथ-साथ बिना अधिक स्थान दिए, प्रस्तुत करना चाहिए।

4.7 सारांश (Summary)

- सतत् मानव प्रयासों से भूतकाल में एकत्रित ज्ञान का लाभ अनुसंधान में मिलता है। किसी भी अनुसंधान अध्ययन की योजना में महत्त्वपूर्ण कदमों में एक अनुसंधान जर्नलों (Journals), पुस्तकों, अनुसंधान विवेचना (dissertations), शोधलेख (thesis) व अन्य सूचना स्रोतों की सावधानीपूर्वक समीक्षा है।
- संबंधित साहित्य की समीक्षा से अनुसंधायक अनुसंधान प्रक्रिया को समझता है जिससे यह ज्ञान होता है कि अध्ययन किस प्रकार करना है।
- सूचना के मुख्य स्रोतों में, लेखक अपने कार्य को सीधे ही अनुसंधान लेख, पुस्तकों, एक विषयक लेखों, अनुसंधान विवेचना (dissertations) या शोधलेख के माध्यम से प्रतिवेदित करता है। ऐसे स्रोत अन्य कहीं भी उपलब्ध सूचनाओं से अधिक सूचनाएँ प्रदान करते हैं।
- संबंधित साहित्य का व्यापक सर्वेक्षण करने के बाद अनुसंधायक का अगला पग उपयुक्त सूचनाएँ व्यवस्थित रूप में एकत्र करना होता है।

4.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **समीक्षा (Review)**–किसी साहित्य या विषय की विवेचना या समालोचना करना।
2. **अनुसंधायक (Researcher)**–किसी विषय या समस्या पर शोध या खोज करके निष्कर्ष निकालने वाला।
3. **अजायबघर (Museum)**–संग्रहालय, म्यूजियम, जहाँ पर पुरानी, ऐतिहासिक एवं अनूठी चीजों का संग्रह हो।
4. **निर्देशिनी (Directory)**–निर्देश पुस्तिका, जिसमें अन्वेषण या सामग्री के निर्देश छपे हों।

4.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. संबंधित साहित्य की समीक्षा तथा अभिज्ञान से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
2. अनुसंधान में अनुसंधायक के लिए उपयोगी संदर्भ सामग्री (संकलित पुस्तक) का वर्णन करें।
3. अनुसंधान लेख की विवेचना करें।
4. संबंधित साहित्य की व्यवस्था पर प्रकाश डालें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. समीक्षा
2. पुस्तकालय
3. पुस्तकालय अधीक्षक
4. (ख) प्लेनेटेरी
5. (ग) स्वचालित
6. (ख) दशमलव
7. (घ) सूचकांक

4.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
3. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शिक्षा तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 5 : अनुसंधान की विधियाँ (Methods of Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

5.1 अनुसंधान विधियों का वर्गीकरण (Classification of Research Method)

5.2 मूलभूत एवं व्यावहारिक अनुसंधान (Basic and Applied Research)

5.3 सारांश (Summary)

5.4 शब्दकोश (Keywords)

5.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- अनुसंधान विधियों के वर्गीकरण को समझने में;
- मूलभूत एवं व्यावहारिक अनुसंधान को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रत्येक क्षेत्र में अनुसंधान का विशिष्ट स्थान है। वर्तमान एवं पुरातन ज्ञान के परीक्षण, सत्यापन एवं मूल्यांकन का यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माध्यम है। साथ ही नवीन ज्ञान के सृजन का भी सशक्त आधार है। पिछले दो-तीन दशकों में व्यवहार विज्ञानों के क्षेत्र में उसने केन्द्रीय स्थान प्राप्त कर लिया है। इन विज्ञानों के क्षेत्र में लिखी जा रही पुस्तकें अत्यधिक शोध-प्रधान होती जा रही हैं। अनुसंधानों की तेजी से बढ़ती हुई संख्या के साथ-साथ उसकी गुणवत्ता में भी वृद्धि हो रही है। विशेष रूप से उसकी विधि एवं प्रक्रिया के क्षेत्र में पिछले कुछ वर्षों में बहुत अधिक उन्नति हुई है। आज की अधिकतर अध्ययनगत समस्याएँ यथार्थता से जुड़ी पाई जाती हैं, उनकी विधि एवं प्रक्रिया भी अधिक सार्थक दिखती हैं तथा उसमें उच्च-स्तरीय सांख्यिकी का प्रयोग किया जा रहा है। शोधकर्ताओं में पहले की तुलना में अनुसंधान का अधिक अच्छा ज्ञान एवं अधिक अच्छी कुशलताएँ भी पाई जाती हैं, तो भी अनुसंधान की विधि एवं तकनीकों में अभी बहुत सुधार की आवश्यकता है।

शिक्षा का क्षेत्र अत्यंत विशद् एवं व्यापक है। अनेक ज्ञान-क्षेत्रों की सीमाओं का उसमें अतिक्रमण एवं समावेश होता है। अत: अनेक प्रकार की समस्याएँ उसके क्षेत्र को आच्छादित करती हैं। उनके समाधान हेतु अनेक प्रकार की अनुसंधान विधियों एवं तकनीकों का प्रयोग उसके क्षेत्र में किया जाता है।

नोट

नोट्स सत्य की खोज ही अनुसंधानों का ध्येय होता है।

5.1 अनुसंधान विधियों का वर्गीकरण (Classification of Research Method)

इन विधियों का एक निश्चित एवं सर्वमान्य, वर्गीकरण नहीं हो सका है और न यह सम्भव है। जैसा कि **बार** का कहना है शिक्षा-अनुसंधान की विधियों का कई दृष्टिकोणों से वर्गीकरण किया जा सकता है, यथा–उद्देश्यों के आधार पर, शोध-सामग्री-संग्रह के तकनीकों के दृष्टिकोण से, सामग्री के विश्लेषण के आधार पर, चरों के नियंत्रण की मात्रा के दृष्टिकोण से, सामग्री के स्रोत एवं अन्य बहुत से आधारों पर। भिन्न-भिन्न लेखकों ने अपने-अपने ढंग से इनका वर्गीकरण किया है। किन्हीं-किन्हीं ने प्रयोगशालागत एवं क्षेत्राधारित, मूलभूत एवं व्यावहारिक, विशुद्ध (pure) एवं क्रियात्मक अनुसंधान वर्गीकरणों का प्रयोग किया है।

उदाहरण शिक्षा के किस क्षेत्र में अनुसंधान किया गया है इस दृष्टिकोण से दार्शनिक अनुसंधान, समाजशास्त्रीय अध्ययन, पाठ्यक्रम-अनुसंधान आदि वर्गीकरण के रूप हो सकते हैं।

एक आधारभूत वर्गीकरण **बेर्स्ट** (1959) का है जिसमें शिक्षा-अनुसंधान को तीन भागों में वर्गीकृत किया गया है। ये वर्ग हैं– (*i*) ऐतिहासिक, (*ii*) सर्वेक्षण एवं (*iii*) प्रयोगात्मक। **मौलि** ने भी इस वर्गीकरण को अपनाया है। **वान डालेन** ने भी लगभग इसी वर्गीकरण को स्वीकार किया है। उन्होंने सर्वेक्षण के स्थान पर "वर्णनात्मक" शीर्षक का प्रयोग किया है। **हिलवे** (1956) ने एक चौथा वर्ग भी इसमें जोड़ दिया है जो "केस स्टडी" है। इसी प्रकार **गुड** तथा **स्केट** (1954) ने कार्य-कारण संबंधी एक-दूसरे वर्ग को जोड़ा है जिसके अन्तर्गत कारणवाची तुलनात्मक अध्ययनों, सहसंबंधात्मक अध्ययनों, केस स्टडी एवं जननीय अध्ययनों को सम्मिलित किया है। **ट्रैवर्स** (1958) ने एक दूसरे ही ढंग से इन विधियों का वर्गीकरण किया है। उन्होंने ऐतिहासिक अनुसंधानों को किसी वर्ग में सम्मिलित नहीं किया है। **कौरनेल** एवं **मनरो** (1953) ने पाँच वर्गों में इन अनुसंधान विधियों को बाँटा है। ये हैं– (*i*) वर्णनात्मक, (*ii*) मीटरिक, (*iii*) क्लीनिकल, (*iv*) सहसंबंधात्मक तथा (*v*) प्रयोगात्मक। साथ ही एक छठे वर्ग की संभावना व्यक्त की है। स्पष्ट है कि शिक्षाशास्त्री अनुसंधान की विधियों के वर्गीकरण के संबंध में एकमत नहीं हैं। यह न आवश्यक है और न सम्भव क्योंकि वर्गीकरण का कोई एक आधार नहीं हो सकता। अत: सुविधा के दृष्टिकोण से ही इस अध्याय में इन विधियों का वर्गीकरण किया गया है। अधिकांश लेखकों ने जिस वर्गीकरण को अपनाया है उसी को इसमें भी अपनाया गया है। यह वर्गीकरण है–

1. मूलभूत एवं व्यावहारिक अध्ययन
2. वर्णनात्मक अनुसंधान
   (क) सर्वेक्षण
   (ख) अन्तर्संबंधात्मक अध्ययन
   (ग) विकासात्मक अध्ययन
3. ऐतिहासिक अध्ययन
4. प्रयोगात्मक अनुसंधान

5.2 मूलभूत एवं व्यावहारिक अनुसंधान (Basic and Applied Research)

अनुसंधान विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु एवं विभिन्न स्तरों पर किया जाता है। अनुसंधान का स्तर (level) इस पर निर्भर करता है कि शोधकर्ता का उद्देश्य क्या है। सामान्यत: अनुसंधान के दो स्तर होते हैं–

नोट

1. मूलभूत, शुद्ध अथवा सैद्धांतिक (Basic, fundamental, pure or theory-oriented) तथा

2. व्यावहारिक अथवा उपयोगी (Applied)

ट्रैवर्स ने इन दोनों प्रकार के अनुसंधानों के बीच इस प्रकार अन्तर किया है– "मूलभूत अनुसंधान का उद्देश्य वैज्ञानिक ज्ञान के संगठित कलेवर में वृद्धि करना होता है। आवश्यक रूप से ऐसे परिणाम उपलब्ध कराना उसका कार्य नहीं होता जो तुरन्त व्यावहारिक महत्त्व के हों। व्यावहारिक अनुसंधान तात्कालिक व्यावहारिक समस्याओं के समाधान खोजने हेतु किए जाते हैं। वैज्ञानिक ज्ञान का विस्तार करना उनका गौण उद्देश्य होता है।"

टास्क मूलभूत अनुसंधान की विशेषताएँ बताएँ।

मूलभूत अनुसंधान (Basic Research)

मूलभूत अनुसंधान की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. इन अनुसंधानों में नियमों (laws) एवं सिद्धांतों (theories) की खोज पर बल दिया जाता है। इनमें वैज्ञानिकों की मान्यता रहती है कि समस्त सृष्टि तथा उसकी समस्त घटनाएँ एक निश्चित व्यवस्था में बँधी नियम-नियंत्रित हैं। अत: उन नियमों, व्यवस्था के सिद्धांतों की खोज आवश्यक एवं मानव-हित में है।

2. इन अनुसंधानों का उद्देश्य ज्ञान का विकास होता है। "ज्ञान के लिए ज्ञान" उनका नारा होता है। अनुसंधान द्वारा उपलब्ध ज्ञान किस काम में जाएगा, उसकी क्या उपयोगिता होगी, इस प्रकार का चिंतन ये अनुसंधानकर्ता नहीं करते।

3. सत्य (truth) की खोज ही इन अनुसंधानों का ध्येय होता है। 'ऐसा क्यों होता है, किस प्रकार होता है' आदि प्रश्नों के उत्तरों की खोज करके समान घटनाओं के कारणों की सूत्र रूप में व्याख्या करना उनका प्रमुख लक्ष्य होता है।

सावधानी मूलभूत अनुसंधान विधि एवं प्रक्रिया के दृष्टिकोण से प्राय: अधिक जटिल होते हैं तथा पूरा होने में बहुत समय लेते हैं।

व्यावहारिक अनुसंधान (Applied Research)

1. इन अनुसंधानों का उद्देश्य प्रमुख रूप से उन समस्याओं के समाधान खोजना होता है जिनका विभिन्न क्षेत्रों में काम करने वालों को प्रतिदिन सामना करना पड़ता है। ये समस्याएँ महत्त्वपूर्ण होती हैं एवं उनके समाधानों की तत्काल आवश्यकता होती है। लम्बे समय तक उनके समाधानों के लिए प्रतीक्षा करते रहना सम्भव नहीं होता।

2. व्यावहारिक अनुसंधान का उद्देश्य प्रमुख रूप से सिद्धान्त-निरूपण (theory building) नहीं होता।

3. इनके परिणाम अधिकांशत: ऐसे होते हैं कि उनका नीतियों के निर्धारण में, निर्णय लेने में, किसी कार्यविधि अथवा शिक्षण-विधि के निर्माण में प्रयोग किया जाता है। साथ ही वर्तमान रीतियों, विधियों एवं तकनीकों को व्यावहारिक इसलिए कहा जाता है कि इनके परिणामों की व्यावहारिक दृष्टिकोण से उपयोगिता होती है।

उपरोक्त दोनों प्रकार के अध्ययनों में कौन श्रेष्ठ एवं महत्त्वपूर्ण है, इस बात को लेकर वैज्ञानिक दो वर्गों में बँट गए हैं। कुछ ऐसे हैं जैसे **हक्सले** तथा **बेकन** जो व्यावहारिक अनुसंधान को अनुसंधान ही नहीं मानते तथा कहते हैं कि मूलभूत अध्ययन ही अनुसंधान की कसौटी पर खरे उतर सकते हैं। दूसरी ओर कुछ ऐसे भी लेखक एवं शोधकर्ता

नोट

हैं जिनका मानना है कि अनुसंधान वर्तमान समस्याओं के समाधान खोजने की तथा मानव एवं समाज के विकास की प्रक्रिया है (थौमसन)। अत: उसके परिणामों का इस दृष्टिकोण से उपयोगी होना अर्थात् उसका व्यावहारिक होना अत्यन्त आवश्यक है।

वास्तव में ये अतिवादी दृष्टिकोण हैं। अत: इस विवाद को बहुत महत्त्व नहीं दिया जाना चाहिये। दोनों प्रकार के अध्ययनों का अपना-अपना महत्त्व है तथा अधिकांशत: वे एक-दूसरे के पूरक हैं।

क्या आप जानते हैं ओपेन हैमर ने इस समन्वयकारी दृष्टिकोण का प्रतिपादन किया है।

इतिहास साक्षी है कि मूलभूत अनुसन्धान के माध्यम से उपलब्ध सिद्धांतों एवं ज्ञान का मानव समाज की प्रगति में बहुत अधिक योगदान है। समस्त आधुनिक विकास इन्हीं सिद्धांतों एवं ज्ञान के आधार पर हुआ है, परन्तु उसमें व्यावहारिक अनुसन्धानों का भी उतना ही सहयोग रहा है। इन सिद्धांतों एवं ज्ञान के आधार पर जिन विधियों तथा तकनीकों का विकास किया गया उन्हें व्यावहारिक अनुसन्धान के माध्यम से परखा गया तथा उपयोगी सिद्ध होने पर ही उन्हें अपनाया गया। **स्किनर** के मूलभूत अनुसन्धानों के द्वारा व्यवहार के सिद्धांतों का निरूपण किया गया, परन्तु कितने ही अन्य लोगों ने उन सिद्धांतों का प्रयोग करके व्यवहार परिवर्तन की तकनीकी विधियों का निर्माण किया तथा उन्हें व्यावहारिक अनुसन्धानों के आधार पर परखा, सुधारा, विकसित किया। इसी प्रकार समाजशास्त्री किशोरों के समस्यात्मक व्यवहारों, वृद्धों की समस्याएँ, गुटों की समस्याओं आदि का अध्ययन करते हैं, परन्तु यदि मूलभूत अनुसन्धान की दिशा में जाते हैं तो वे इस बात की खोज करते हैं कि उनकी ये समस्याएँ क्यों और कैसे पैदा होती हैं, किन सिद्धांतों के आधार पर उनकी उत्पत्ति होती है। यदि व्यावहारिक अनुसन्धान की दिशा में जाते हैं तो यह जानने का प्रयास करते हैं कि इन समस्याओं के समाधान क्या हो सकते हैं जिससे कि इन समस्याओं को दूर किया जा सके। परन्तु मूलभूत अनुसन्धानों द्वारा उपलब्ध कराये गये ज्ञान एवं सिद्धांतों का सहारा लिये बिना वे ऐसा नहीं कर सकते। इस प्रकार ज्ञान के लिये अनुसन्धान (मूलभूत) तथा जीवन के लिये अनुसन्धान (व्यावहारिक) दोनों ही आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हैं। दूसरी ओर मूलभूत अनुसन्धान के क्षेत्र में कार्य करने वाले शोधकर्ता भी व्यावहारिक अनुसन्धान से लाभान्वित होते हैं। व्यावहारिक अनुसन्धान के परिणाम कई बार वैकल्पिक उपकल्पनाओं को जन्म देते हैं। मूलभूत अनुसन्धान उनको लेकर नियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोग करके सिद्धांतों का निरूपण कर सकता है। व्यावहारिक अनुसन्धान आधारभूत सिद्धांतों के निरूपण में भी सहायक हो सकते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. अनुसंधान वर्तमान, पुरातन ज्ञान के परीक्षण, सत्यापन एवं ..... का महत्त्वपूर्ण माध्यम है।
2. अनुसंधान के दो स्तर होते हैं, मूलभूत एवं .....।
3. मूलभूत अनुसंधान का नारा होता है .....।
4. समन्वयकारी दृष्टिकोण का प्रतिपादन ..... ने किया है।

5.3 सारांश (Summary)

- प्रत्येक क्षेत्र में अनुसंधान का विशिष्ट स्थान है। वर्तमान एवं पुरातन ज्ञान के परीक्षण, सत्यापन एवं मूल्यांकन का यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण माध्यम है। साथ ही नवीन ज्ञान के सृजन का भी सशक्त आधार है।

नोट

- अनेक ज्ञान-क्षेत्रों की सीमाओं का उसमें अतिक्रमण एवं समावेश होता है। उनके समाधान हेतु अनेक प्रकार की अनुसंधान विधियों एवं तकनीकों का प्रयोग उसके क्षेत्र में किया जाता है।
- अधिकांश लेखकों ने जिस वर्गीकरण को अपनाया है उसी को इसमें भी अपनाया गया है। यह वर्गीकरण है–1. मूलभूत एवं व्यावहारिक अध्ययन 2. वर्णनात्मक अनुसंधान (क) सर्वेक्षण (ख) अन्तर्संबंधात्मक अध्ययन (ग) विकासात्मक अध्ययन 3. ऐतिहासिक अध्ययन 4. प्रयोगात्मक अनुसंधान।

5.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **कलेवर (Design)**–वैज्ञानिक ज्ञान का संगठित स्वरूप या ढ़ाँचा।
2. **सिद्धांत निरूपण (Principle Formation)**–किसी निश्चित मत की विवेचना कर अंतिम निष्कर्ष पर पहुँचना।

5.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अनुसंधान विधियों का वर्गीकरण करें तथा इसमें प्रयुक्त होने वाली मुख्य विधियाँ कौन-कौन सी हैं?
2. मूलभूत एवं व्यावहारिक अुनसंधान विधियों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. मूल्यांकन 2. व्यावहारिक 3. 'ज्ञान के लिए ज्ञान' 4. ओपेन हैमर

5.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल कौल, विकास पब्लिशिंग।*

नोट

इकाई 6 : वर्णनात्मक अनुसंधान (Descriptive Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

6.1 वर्णनात्मक अनुसंधान का स्वरूप एवं अर्थ (Meaning and Structure of Descriptive Research)

6.2 सर्वेक्षण अध्ययन (Survey Studies)

6.3 अंतर्संबंधात्मक अध्ययन (Inter-relation Studies)

6.4 सारांश (Summary)

6.5 शब्दकोश (Keywords)

6.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

6.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- वर्णनात्मक अनुसंधान के स्वरूप एवं अर्थ को समझने में;
- सर्वेक्षण अध्ययन को समझने में;
- अंतर्संबंधात्मक या सहसंबंधात्मक अध्ययन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुसंधान का यह सबसे अधिक प्रचलित प्रकार है। शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रत्येक तीसरे अध्ययन को वर्णनात्मक अनुसंधान की श्रेणी में रखा जा सकता है। शोध के क्षेत्र को परिसीमित करने के लिए इस अनुसंधान में भी जनसंख्या समष्टि एवं न्यादर्श की परिभाषा एवं विधि का स्पष्टीकरण किया जाता है। **वान डालेन** ने वर्णनात्मक अनुसंधान के तीन प्रकारों का वर्णन किया है वे हैं–सर्वेक्षण अध्ययन, अन्तर्संबंधात्मक अध्ययन एवं विकासात्मक अध्ययन।

6.1 वर्णनात्मक अनुसंधान का स्वरूप एवं अर्थ (Meaning and Structure of Descriptive Research)

(1) स्वरूप एवं अर्थ: वर्णनात्मक अनुसंधान प्रमुख रूप से घटना, परिस्थिति, संस्था अथवा किसी विशेषता का केवल वर्णन मात्र करता है। शोध पूरा होने के पश्चात् वह इनके विषय में केवल इस बात की व्याख्या करता है

नोट

कि "वह क्या है?" विगत काल में कुछ ऐसी परम्परा रही है कि वर्तमान परिस्थितियों के विश्वसनीय एवं वैध मूल्यांकन को वर्णनात्मक अनुसन्धान के अन्तर्गत रखा जाता रहा है। इसी प्रकार गत्यात्मक (dynamic) प्रक्रियाओं के स्वरूप को निर्धारित करना तथा व्यक्तियों, संस्थाओं एवं तंत्रों की व्याख्या करना भी इसी प्रकार के अनुसंधान के अन्तर्गत समझा जाता रहा है, परन्तु वर्तमान में विभिन्न घटनाओं, चरों एवं स्थितियों के पारस्परिक सम्बन्धों को ज्ञात करना तथा उनकी व्याख्या करना भी वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत माना जाता है।

अन्य प्रकार के अनुसंधानों की भाँति वर्णनात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया का पदक्रम भी निम्नलिखित प्रकार का होता है–

1. समस्या का चयन एवं उसकी परिभाषा करना,
2. उद्देश्यों एवं 'उपकल्पनाओं' का निर्धारण करना,
3. सम्बन्धित एवं आवश्यक सूचना सामग्री (data) एकत्र करना,
4. सामग्री का विश्लेषण करना,
5. विश्लेषण के आधार पर निष्कर्ष निर्धारित करना।

शोध के क्षेत्र को परिसीमित करने हेतु इस अनुसंधान में भी जनसंख्या समष्टि (population) एवं न्यादर्श (sample) की परिभाषा एवं विधि का स्पष्टीकरण किया जाता है। न्यादर्श-चयन की जो विधियाँ अन्य अनुसंधानों में प्रयोग में लाई जाती हैं उन सबका प्रयोग वर्णनात्मक अनुसंधान में भी किया जाता है।

वर्णनात्मक अनुसंधान के प्रकार– वान डालेन ने इस अनुसंधान के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है। ये हैं–

(क) सर्वेक्षण अध्ययन,

(ख) अन्तर्संबंधात्मक अध्ययन,

(ग) विकासात्मक अध्ययन।

6.2 सर्वेक्षण अध्ययन (Survey Studies)

(1) अर्थ एवं स्वरूप– कर्लिंगर के अनुसार, सर्वेक्षण अध्ययनों के उद्देश्य होते हैं–

1. किसी घटना (incidence) की व्यापकता, गम्भीरता, घटने की सम्भावना, उसका विवरण आदि का पता लगाना तथा
2. समाजशास्त्रीय एवं मनोवैज्ञानिक चरों के पारस्परिक संबंधों का वर्णन करना।

नोट्स सर्वेक्षण अध्ययन **मुख्यतः** घटनाओं (phenomena), चरों (variables) एवं विशेषताओं (characteristics) की वर्तमान स्थिति (status) का वर्णन करते हैं।

किसी विशिष्ट मानव-समुदाय, किसी संस्था, किसी परिपाटी (practice), नीति (policy) अथवा योजना की आलोचनात्मक ढंग से व्याख्या करना आदि सब सर्वेक्षण अध्ययन के उदाहरण हैं। कभी-कभी इन अध्ययनों के अन्तर्गत उपरोक्त के वर्तमान स्तर की किसी स्वीकृत मानक (standard) के साथ तुलना करके सुधार के सुझाव देना भी सर्वेक्षण का उद्देश्य होता है। समाजशास्त्र के क्षेत्र में जो सर्वेक्षण किए जाते हैं वे विधि एवं तकनीक के दृष्टिकोण से पर्याप्त वैज्ञानिक होते हैं तथा स्तर-सर्वेक्षण (staus surveys) से काफी भिन्न होते हैं।

नोट

अधिकतर सर्वेक्षण अध्ययनों में न्यादर्शों के आधार पर सम्पूर्ण जनसृष्टि अथवा उसके बड़े भाग का अध्ययन किया जाता है। एक न्यादर्श के अध्ययन से जो निष्कर्ष प्राप्त होते हैं उनका सम्पूर्ण जन-सृष्टि अथवा उस न्यादर्श से अधिक विस्तृत इकाई संख्या के लिए सामान्यीकरण किया जाता है। इसलिए इस बात पर विशेष बल दिया जाता है कि न्यादर्श का चयन इस प्रकार किया जाए कि वह उस सृष्टि का प्रतिनिधित्व करता हो। इस प्रकार के सर्वेक्षण-अध्ययनों को न्यादर्श-सर्वेक्षण (sample surveys) कहा जाता है।

(2) सर्वेक्षण-अध्ययनों के प्रकार: सर्वेक्षण-अध्ययनों के माध्यम से अनेक बातों का अध्ययन किया गया है। उनका स्पष्ट रूप में वर्गीकरण करना कठिन है। तो भी कुछ इस प्रकार उनका वर्गीकरण किया गया है–

1. संस्थागत सर्वेक्षण,
2. व्यवसायों के सर्वेक्षण,
3. जन-समुदायों के सर्वेक्षण (community surveys),
4. दस्तावेजों के सर्वेक्षण,
5. जनमत सर्वेक्षण (opinion surveys),
6. जनसंख्या सर्वेक्षण,
7. समाजशास्त्रीय सर्वेक्षण (sociological surveys),
8. मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण।

दस्तावेजों के सर्वेक्षण को विषय-वस्तु विश्लेषण (content analysis), कार्य विश्लेषण (activity analysis) भी कहा जाता है जो ऐतिहासिक अनुसंधान से बहुत मिलते-जुलते होते हैं। समाजशास्त्रीय अध्ययनों के केन्द्र सामाजिक तथ्य होते हैं जैसे सामाजिक धारणाएँ, अभिवृत्तियाँ, लोगों की आदतें, रीति-रिवाज आदि। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण अध्ययनों का उद्देश्य मनोवैज्ञानिक चरों (variables) के वर्तमान स्तर (status) एवं उनके वितरण (distribution) पर प्रकाश डालना होता है। किसी कक्षा के विद्यार्थियों की औसत बुद्धि का पता लगाना तथा बुद्धि का कक्षा के विद्यार्थियों में वितरण ज्ञात करना मनोवैज्ञानिक सर्वेक्षण का एक उदाहरण है।

(3) सर्वेक्षण अध्ययनों की विधि (Methodology)– सर्वेक्षण अध्ययन की विधि में न्यादर्श-चयन की प्रक्रिया को बहुत अधिक महत्त्व दिया गया है। न्यादर्श का चयन (sample design) किस प्रकार किया जाए इसकी विस्तार से व्याख्या की गई है। अध्ययन-प्रक्रिया की सम्पूर्ण रूपरेखा जिन तत्वों से मिलकर बनती है, वे हैं–

1. उद्देश्यों का विशिष्टीकरण,
2. उपकल्पनाओं का निर्धारण,
3. सूचना-सामग्री एकत्र करने का विधान निश्चित करना।

सूचना-सामग्री (data) एकत्र करने के कई माध्यम होते हैं, जैसे–प्रश्नावली, कथनावली, मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ, साक्षात्कार, व्यक्तिगत गमन (personal visits), आलेखों की जाँच एवं मूल्यांकन आदि। सम्पूर्ण प्रक्रिया कुछ प्रश्नों के उत्तरों पर आधारित होती है, जैसे–लक्ष्य **क्या** है, उस लक्ष्य की प्राप्ति हेतु किस प्रकार की सूचनाएँ आवश्यक होंगी, उन्हें **किनसे, कहाँ से, किस प्रकार** प्राप्त किया जा सकता है, इस सूचना-सामग्री का तालिकाकरण (tabulation) एवं विश्लेषण (analysis) किस प्रकार किया जाएगा आदि।

सर्वेक्षण-अध्ययनों को अन्य प्रकार के अध्ययनों की तुलना में किसी प्रकार भी हीन अथवा कम महत्त्व का नहीं समझना चाहिए। विशिष्ट परिस्थितियों में उनकी बहुत उपयोगिता होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें: (Fill in the blanks):

1. शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रत्येक तीसरे अध्ययन को ..... अनुसंधान की श्रेणी में रखा जाता है।
2. समाजशास्त्र के क्षेत्र में जो सर्वेक्षण किये जाते हैं वे विधि एवं तकनीक की दृष्टि से पर्याप्त ..... होते हैं।
3. सर्वेक्षण अध्ययन विधि में ..... की प्रक्रिया को बहुत महत्त्व दिया गया है।

6.3 अन्तर्सम्बन्धात्मक अध्ययन (Inter-relational Studies)

ये अध्ययन सर्वेक्षण-अध्ययनों की तुलना में थोड़ा आगे जाते हैं। सर्वेक्षण की भाँति इनका उद्देश्य घटनाओं एवं तथ्यों का केवल वर्णन करना मात्र ही नहीं होता। वरन् वे उससे आगे जाकर तथ्यों के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रकाश डालते हैं। **वान डालेन** ने इस प्रकार के अध्ययनों को तीन श्रेणियों में बाँटा है। ये हैं–

1. एकक वृत्त अध्ययन (Case studies)।
2. कारणवाची-तुलनात्मक अध्ययन (Causal comparative studies)।
3. सह-संबंधात्मक अध्ययन (Correlational studies)।

1. एकक वृत्त अध्ययन (Case Studies)

इस प्रकार के अध्ययन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें एक समय में केवल एक इकाई का अत्यन्त गहराई से अध्ययन किया जाता है। वह इकाई एक व्यक्ति भी हो सकता है और एक समूची संस्था अथवा कोई नीति, प्रक्रिया, प्रथा आदि भी हो सकती है। इसी प्रकार किसी एक परिवार, एक जन-समूह, एक जाति-विशेष, धर्म आदि का व्यापक रूप से किया गया अध्ययन भी एकक अध्ययन के अन्तर्गत आता है। इन अध्ययनों का उद्देश्य उस इकाई का प्रत्येक दृष्टिकोण से गहन अध्ययन करके इस बात पर प्रकाश डालना होता है कि वास्तव में समस्या क्या है, वह किस प्रकार उत्पन्न हुई है, उसे जन्म देने वाले कारक, तत्व एवं प्रक्रियाएँ क्या हैं तथा वे किस प्रकार गतिशील रही हैं। लक्ष्यानुसार अनुसंधानकर्ता उस इकाई के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित तथा विभिन्न स्रोतों से सूचना-सामग्री एकत्र करता है। उस सूचना-सामग्री का उपयुक्त विधि से विश्लेषण करके लक्ष्यानुसार निष्कर्षों का निर्धारण करता है। तमाम सामग्री को लक्ष्य-केन्द्रित प्रश्नों के सन्दर्भ में वर्गीकृत करके समायोजित करता है तथा आलोचनात्मक विश्लेषण के आधार पर ही निष्कर्ष पर पहुँचता है।

एकक वृत्त अध्ययन अनेक प्रकार के हो सकते हैं। किसी भी वस्तु अथवा घटना का गहराई से किया गया अध्ययन एकक-वृत्त अध्ययन होगा। इस अध्ययन की प्रक्रिया के पद-क्रम में ये निम्न कार्य सम्मिलित होते हैं–

1. समस्या अथवा प्रकरण का निर्धारण।
2. लक्ष्य-निर्धारण।
3. समस्या का निदान (diagnosis)।
4. सम्बन्धित वांछनीय सूचनाएँ एकत्र करना।
5. सूचनाओं का वर्गीकरण एवं विश्लेषण।
6. निष्कर्षों का निर्धारण।

नोट

इन अध्ययनों को एकक इसलिए कहते हैं कि एक समय में केवल एक ही इकाई का गहन अध्ययन किया जाता है। वृत्त अध्ययन इसलिए कहते हैं कि अध्ययन के अन्तर्गत व्यक्ति, संस्था समुदाय के विषय में विगत काल की पूरी जानकारी एकत्र की जाती है। उसके इतिहास का भी अध्ययन किया जाता है।

इन अध्ययनों को अन्तर्सम्बन्धात्मक अध्ययनों के अन्तर्गत इसलिए रखा गया है कि इनमें विभिन्न परिस्थितियों एवं चरों का समस्या के साथ यदि कोई सम्बन्ध है तो उस पर प्रकाश डाला जाता है।

उदाहरण किसी एक बालक की चोरी करने की आदत के कारणों का अध्ययन, किसी विद्यालय की शिक्षा के स्तर की गिरावट के कारणों का अध्ययन, किसी शिक्षा-नीति की प्रभाविकता का अध्ययन आदि इस प्रकार के अध्ययनों के उदाहरण हो सकते हैं।

इन सभी में कारणों का पता लगाने हेतु कुछ सम्भावित कारक, परिस्थितियों, तत्वों, चरों की खोज की जाती है और फिर यह जानने का प्रयास किया जाता है कि उनका उपरोक्त समस्याओं के साथ क्या सम्बन्ध है, क्या वे समस्या का कारण हैं, यदि हैं, तो वे किस प्रकार समस्या को जन्म देती हैं। अत: इन अध्ययनों को अन्तर्सम्बन्धात्मक अनुसंधान की श्रेणी में रखा गया है। एकक वृत्त अध्ययनों का शिक्षा, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, उद्योगों, सामाजिक कार्य, मार्गदर्शन आदि क्षेत्रों में बहुत अधिक प्रचलन है। मार्गदर्शन एवं परामर्श के क्षेत्र में समस्यात्मक बालकों के वृत्त अध्ययन किए जाते हैं जिनमें यह जानने का प्रयास किया जाता है कि बालकों की ये समस्याएँ क्यों और कैसे उत्पन्न होती हैं। सामाजिक कार्यकर्ता यह जानने का प्रयास करते हैं कि कोई सामाजिक समस्या, वाद अथवा प्रकरण क्यों और कैसे उत्पन्न होता है। उनके समाधान के वे सुझाव भी प्रस्तुत करते हैं। अर्थशास्त्र के क्षेत्र में अर्थनीतियों के क्रियान्वयन का अध्ययन किया जाता है। उद्योगों के क्षेत्र में इन अध्ययनों का उद्देश्य यह जानना रहता है कि कोई उद्योग क्यों प्रगति कर रहा है अथवा क्यों असफल हो रहा है।

यदि सर्वेक्षण अध्ययनों से एकक वृत्त अध्ययनों की तुलना की जाए तो यह कहा जा सकता है कि सर्वेक्षण अध्ययन का कार्य क्षैतिज (horizontal) होता है तथा एकक अध्ययनों में कार्य लम्बीय (vertical) होता है। सर्वेक्षण में अनेक इकाइयों का केवल वर्तमान में ही अध्ययन किया जाता है जबकि एकक वृत्त अध्ययन में केवल एक इकाई का वर्तमान एवं विगतकाल दोनों में अत्यन्त गहराई से अध्ययन किया जाता है। उसमें गहराई (depth) रहती है जबकि सर्वेक्षण में फैलाव एवं चौड़ाई (width) रहता है। एकक वृत्त अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य उपचारात्मक (therapeutic) होता है जबकि सर्वेक्षण का उद्देश्य संस्थाओं अथवा व्यक्तियों के वर्तमान स्तर, वर्तमान स्थिति का वर्णन करना मात्र होता है। एकक वृत्त अध्ययनों में कारक तत्वों के पारस्परिक सम्बन्धों, उनके समस्या के साथ सम्बन्धों आदि पर प्रकाश डालना महत्त्वपूर्ण समझा जाता है जबकि सर्वेक्षण में सूचना सामग्री के वर्गीकरण, तालिकाकरण एवं व्यवस्थितिकरण के आधार पर सामान्यीकरण (generalization) पर बल दिया जाता है। सामान्यीकरण तो दोनों प्रकार के अध्ययनों में रहता है, परन्तु एकक वृत्त अध्ययनों में यह सामान्यीकरण समस्या के कारक तत्वों (कारणों) के विषय में होता है तथा सर्वेक्षण में यह व्यक्तियों एवं संस्थाओं की विशेषताओं के विषय में होता है।

टास्क सर्वेक्षण अध्ययन एवं एकक वृत्त अध्ययन पर अपने तुलनात्मक विचार दें।

कुछ परिस्थितियों में एकक वृत्त अध्ययन बहुत महत्त्वपूर्ण होते हैं। उदाहरण के लिए बालकों की व्यवहारात्मक समस्याओं के कारणों एवं उनकी गत्यात्मकता (dynamics) को जानने, संस्थाओं की उथल-पुथल, उनकी प्रभाविकता (effectiveness), सफलता-असफलता आदि को जानने में इन अध्ययनों का बहुत महत्त्व है। इन उद्देश्यों की उपलब्धि के सन्दर्भ में अन्य प्रकार के अध्ययनों से काम नहीं चलता, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि

नोट

इस अध्ययन में कमियाँ एवं दोष नहीं हैं। लेखकों ने एकक–वृत्त अध्ययनों के दोषों का उल्लेख इस प्रकार किया है: प्रथम, इन अध्ययनों की बाह्य वैधता (external validity) बिल्कुल नहीं होती। अर्थात् इनके आधार पर प्राप्त निष्कर्ष केवल उसी एक इकाई तक सीमित रहते हैं जिसका अध्ययन किया गया है। उन निष्कर्षों को अन्य समान इकाइयों पर लागू नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, निष्कर्षों का सामान्यीकरण व्यापक नहीं होता। दूसरा दोष इन अध्ययनों का यह है कि इनके निष्कर्ष व्यक्तिनिष्ठ (subjective) होते हैं अर्थात् उन निष्कर्षों में शोधकर्ता की अपनी व्यक्तिगत धारणाओं, मनोवैज्ञानिक विशेषताओं एवं दुर्बलताओं का पुट बहुत अधिक रहता है। निष्कर्ष इस बात पर निर्भर करते हैं कि शोधकर्ता शोध–सामग्री (data) का विश्लेषण किस प्रकार करता है। एक ही शोध–सामग्री का विश्लेषण कई शोधकर्ता भिन्न–भिन्न ढंग से कर सकते हैं। अत: इन शोधों के निष्कर्ष स्थायी नहीं होते। बहुत कुछ वे शोधकर्ता की अपनी सूझ–बूझ, अपनी कल्पना पर निर्भर करते हैं, तो भी ऐसा नहीं कहा जा सकता कि इन अध्ययनों की कोई उपयोगिता नहीं है। यदि उपरोक्त दोषों को ध्यान में रखते हुए शोधकर्ता वस्तुनिष्ठ रूप में शोध–सामग्री का विश्लेषण करता है तथा अपनी धारणाओं, दुर्बलताओं एवं पूर्वाग्रहों से प्रभावित नहीं होता है तो परिणाम अधिक विश्वसनीय एवं वाह्य वैधता पर्याप्त संतोषजनक हो सकती हैं।

2. कारणवाची तुलनात्मक अध्ययन (Causal Comparative Studies)

यह अन्तर्सम्बन्धारित वर्णनात्मक अनुसंधान का दूसरा प्रकार है। इस प्रकार के अध्ययनों में भी घटना के कारण की खोज का प्रयास किया जाता है। इसीलिए इसे कारणवाची (causal) कहा गया है, परन्तु कारण का निर्धारण जिस विधि के आधार पर किया जाता है वह तुलनात्मक (comparative) होती है। इसलिए उसे कारणवाची–तुलनात्मक अध्ययन की संज्ञा दी जाती है। इस दृष्टिकोण से इन अध्ययनों को कारण–प्रभाव–सम्बन्ध (cause-effect-relationship) अध्ययनों की श्रेणी में भी रखा जा सकता है। वास्तव में कारण–प्रभाव–सम्बन्ध का अध्ययन प्रयोगात्मक अनुसंधान (experimental research) के अन्तर्गत आता है। दोनों प्रकार के अध्ययनों का उद्देश्य समान है। केवल अध्ययन–विधि में अन्तर होता है। कारणवाची–तुलनात्मक अध्ययन की विधि तुलनात्मक होती है तथा प्रयोगात्मक अनुसंधान के नियम एवं कसौटी का उसमें पालन नहीं होता। अत: इस प्रकार के अध्ययनों को वर्णनात्मक अनुसंधान की श्रेणी में रखा जाता है।

(I) अर्थ एवं स्वरूप: इन अध्ययनों का प्रमुख उद्देश्य यह जानना होता है कि कुछ निर्धारित अथवा चयनित तत्वों, परिस्थितियों अथवा कारकों एवं शोधगत समस्या, विषय अथवा घटना के बीच कोई कारण–परिणाम (cause-effect) सम्बन्ध है अथवा नहीं। इसके लिए बहुत–सी समान घटनाओं को लेकर उनके बीच समानताओं एवं अन्तरों की तुलना के आधार पर निश्चित निष्कर्ष निकाला जाता है। इस दृष्टिकोण से ये अध्ययन प्रयोगात्मक अनुसंधान से बहुत मिलते–जुलते होते हैं क्योंकि प्रयोगात्मक अनुसंधान प्रमुख रूप से कारण–सम्बन्ध स्थापित करने की व्यूह–रचना (strategy) है, परन्तु शोध–विधि एवं तकनीक के दृष्टिकोण से दोनों में जमीन–आसमान का अन्तर होता है। प्रयोगात्मक अनुसंधान में शोधकर्ता स्वतन्त्र चर (independent variable) का यथेच्छ प्रयोग (manipulate) करके आश्रित चर (dependent variable) पर उसके प्रभाव का अध्ययन करता है, अर्थात् स्वतन्त्र चर के कई स्तर अथवा श्रेणियाँ बनाकर प्रत्येक के आश्रित चर पर पड़ने वाले प्रभाव की एक–दूसरे के साथ सांख्यिकीय विधियों के आधार पर तुलना करते हुए उनका मूल्यांकन करता है। इस प्रकार इसमें आश्रित चर का स्तर अथवा स्थिति पूर्वनिर्धारित नहीं होती, परन्तु कारणवाची–तुलनात्मक अध्ययन में आश्रित चर पूर्वनिर्धारित स्वभाविक रूप से, यथास्थिति रूप में स्वयं उत्पन्न हुआ उपलब्ध होता है, इसमें घटना को अध्ययन हेतु उसे कोई घटाता नहीं। वह स्वयं घटी हुई (naturally occurring) उपलब्ध होती है। उस घटित घटना को लेकर शोधकर्ता आगे बढ़ता है तथा यह खोजने का प्रयास करता है कि कौन–से तत्व, परिस्थितियाँ, कारक रूप में उससे जुड़ी हैं। जैसे–शोधकर्ता छात्रों

नोट

की अध्यापकों के प्रति नकारात्मक अभिवृत्तियों के कारण जानना चाहता है तो वह कुछ ऐसे बच्चे लेता है जिनमें नकारात्मक अभिवृत्तियाँ हैं और फिर तुलनात्मक विधि का प्रयोग करके उनके कारणों की खोज करता है। यहाँ नकारात्मक अभिवृत्तियाँ जिस रूप में विकसित हुई हैं उसी रूप में शोधकर्ता को आश्रित (dependent) चर के रूप में स्वीकार करना होगा। अपनी ओर से इन्हें छात्रों में उत्पन्न करना सम्भव नहीं होगा। जैसा भी, जिस रूप में भी यह चर उपलब्ध है उसी रूप में उसको लेकर तथा उन छात्रों से तुलना करके जिनमें अभिवृत्तियाँ नरकारात्मक नहीं हैं अथवा सकारात्मक हैं उनके कारणों का निर्धारण करना पड़ेगा। दोनों समूहों के विद्यार्थियों के पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियों की तुलना करके यह निश्चित करना होगा कि किन-किन बातों में वे समान हैं तथा किन में एक-दूसरे से भिन्न। जिन तत्वों पर वे भिन्न पाए जाते हैं वे तत्व उन नकारात्मक अभिवृत्तियों के कारक हो सकते हैं। यह विधि **मिल** की विधि पर आधारित है जिसके अन्तर्गत कहा गया है कि "ऐसी दो घटनाएँ जिनमें से एक में शोधगत चर विद्यमान हों तथा दूसरी में न हों यदि एक को छोड़कर अन्य सभी विशेषताओं पर समान हों तो वह विशेषता जिस पर उनमें भिन्नता पाई जाती है शोधगत चर का कारक हो सकती है।" **मिल** ने ऐसे कई और भी नियमों का निरूपण किया है जिनका उपयोग इन अध्ययनों की शोध-सामग्री के विश्लेषण करने तथा तदाधारित निष्कर्षों के निर्धारण में किया जा सकता है।

(II) महत्त्व–इन अध्ययनों का कई परिस्थितियों में विशेष महत्त्व है। शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में अनेक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनमें प्रयोगात्मक विधि (experimental method) का प्रयोग सम्भव नहीं होता। वहाँ कारणवाची-तुलनात्मक अध्ययन का ही सहारा लेना पड़ता है।

सावधानी जीवन की वास्तविक परिस्थितियाँ अधिकतर ऐसी ही हैं जिनमें स्वतन्त्र चर का यथेच्छ प्रयोग (manipulation) सम्भव नहीं होता।

उदाहरण के लिए, छात्रों में नकारात्मक अभिवृत्तियों को अपनी ओर से विभिन्न स्तरों पर उत्पन्न करना सम्भव नहीं है। अत: इन परिस्थितयों में केवल कारणवाची तुलनात्मक विधि का ही प्रयोग करना पड़ता है। इस दृष्टिकोण से इन अध्ययनों का अपना महत्त्व है।

(III) इन अध्ययनों के दोष–यद्यपि इन अध्ययनों की अपनी उपयोगिता है, तो भी उनके दोषों, कमियों की जानकारी होना भी आवश्यक है। इन अध्ययनों में स्वतन्त्र चर का यथेच्छ प्रयोग सम्भव नहीं होता। इससे उनकी उपयोगिता घट जाती है। दूसरे उनमें ऐसे चरों को नियन्त्रित करना भी सम्भव नहीं होता जो आश्रित चर एवं स्वतन्त्र चर के पारस्परिक सम्बन्ध को अवांछनीय रूप से प्रभावित करते हैं। इन दो कमियों के कारण जो निष्कर्ष इन अध्ययनों से प्राप्त होते हैं वे अधिक विश्वसनीय एवं वैध नहीं होते। इनके परिणामों को अध्ययनेतर इकाइयों पर लागू नहीं किया जा सकता अर्थात् परिणामों की सामान्यीकरण की सम्भावना बहुत सीमित होती है। दूसरे अर्थ में, इन अध्ययनों की बाह्य वैधता निम्न स्तर की होती है। इसी प्रकार इनकी आन्तरिक वैधता (internal validity) अथवा शुद्धता (precision) भी अधिक नहीं होती। इसलिए इन अध्ययनों में घटना का जो कारक तत्व उभरकर आता है उसे नि:संदेह नहीं समझा जा सकता।

3. सह-संबंधात्मक अध्ययन (Correlational Studies)

वर्णनात्मक एवं अन्तर्सम्बन्धात्मक अनुसंधान की श्रेणी में ही सह-संबंधात्मक अध्ययन (correlational studies) भी आते हैं। इन अध्ययनों का उद्देश्य भी चरों के बीच संबंध ज्ञात करना होता है। चर परस्पर संबंधित हैं अथवा नहीं यह तो अन्य प्रकार के अध्ययनों के माध्यम से भी जाना जा सकता है, परन्तु सह-संबंधात्मक अध्ययनों की यह विशेषता है कि वे केवल यही नहीं बताते कि दो या दो अधिक चर परस्पर संबंधित हैं, बल्कि यह भी बताते हैं कि यह संबंध कितना गहरा अथवा अधिक है।

नोट

क्या आप जानते हैं सहसंबंधात्मक अध्ययन सांख्यिकी की एक विशिष्ट विधि पर आधारित होती है जिसके माध्यम से संबंध को एक गणितीय संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है जिसे अनुबंध गुणांक (coefficient of correlation) कहते हैं।

यह गुणांक ± 1.0 की सीमा के भीतर ही होता है। गुणांक $+ 1.0$ का अर्थ होता है **पूर्ण एवं सकारात्मक संबंध** एवं $- 1.0$ का अर्थ होता है **पूर्ण परन्तु नकारात्मक संबंध**। इनके बीच में जो गुणांक होते हैं वे पूर्ण से कम सकारात्मक एवं नकारात्मक संबंध के परिचायक होते हैं। सकारात्मक संबंध का अर्थ होता है दोनो चरों का एक ही दिशा में घटना अथवा बढ़ना। जैसे–बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच यदि सकारात्मक संबंध है तो इसका अर्थ होगा कि बुद्धि बढ़ती है तो शैक्षिक उपलब्धि भी बढ़ेगी। यदि नकारात्मक अथवा विपरीत सह-संबंध है तो स्थिति यह होगी कि यदि बुद्धि बढ़ती है तो शैक्षिक उपलब्धि घटती है।

ये अध्ययन सांख्यिकीय विधियों पर आधारित होते हैं। इनका प्रयोग अत्यन्त जटिल (complex) संबंधों को ज्ञात करने में भी किया जाता है तथा इनके आधार पर बहुचरीय विश्लेषण (multivariate analysis) तथा पूर्वकथन अध्ययन (predictive studies) किए जाते हैं।

इन अध्ययनों की एक कमी यह है कि इनमें चरों के बीच के केवल संबंध की ही जानकारी प्राप्त होती है। यह नहीं ज्ञात किया जा सकता कि कौन किसका कारण है। अत: इनमें कारण-परिणाम का अध्ययन नहीं किया जा सकता। इस दृष्टिकोण से ये अध्ययन प्रयोगात्मक अध्ययनों से बिल्कुल भिन्न होते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statements are True or False):

4. किसी भी घटना अथवा वस्तु का गहराई से किया गया अध्ययन एकक वृत्त अध्ययन कहलाता है।
5. अर्थशास्त्र के क्षेत्र में बाल विकास का अध्ययन किया जाता है।
6. सर्वेक्षण अध्ययन का कार्य क्षैतिज होता है तथा एकक वृत्त अध्ययनों के कार्य लंबीय होते हैं।
7. एकक वृत्त अध्ययन में फैलाव एवं चौड़ाई होता है।

6.4 सारांश (Summary)

- अनुसंधान का यह सबसे अधिक प्रचलित प्रकार है। शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में प्रत्येक तीसरे अध्ययन को वर्णनात्मक अनुसंधान की श्रेणी में रखा जा सकता है।
- वर्णनात्मक अनुसंधान प्रमुख रूप से घटना, परिस्थिति, संस्था अथवा किसी विशेषता का केवल वर्णन मात्र करता है। शोध पूरा होने के पश्चात् वह इनके विषय में केवल इस बात की व्याख्या करता है कि "वह क्या है?"
- वर्णनात्मक अनुसंधान के प्रकार– वान डालेन ने इस अनुसंधान के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है। ये हैं– (क) सर्वेक्षण अध्ययन, (ख) अन्तर्संबंधात्मक अध्ययन, (ग) विकासात्मक अध्ययन।

6.5 शब्दकोश (Keywords)

1. **सर्वेक्षण अध्ययन**–किसी घटना की व्यापकता, गंभीरता, घटने की संभावना, उसके विवरण आदि का पता लगाना।

नोट

2. **कारणवाची**–घटना के कारण की खोज का प्रयास करना।
3. **सहसंबंधात्मक**–इसका अभिप्राय चरों के बीच संबंध ज्ञात करना होता है।

6.6 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. वर्णनात्मक अनुसंधान से आप क्या समझते हैं? इसके प्रकारों का वर्णन करें।
2. अंतर्संबंधात्मक अध्ययन का विस्तृत वर्णन करें।
3. कारणवाची तुलनात्मक अध्ययन पर निबंधात्मक टिप्पणी लिखें।
4. एकक वृत्त अध्ययन से आप क्या समझते हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. वर्णनात्मक	2. वैज्ञानिक	3. न्यादर्श चयन	4. सत्य
5. असत्य	6. सत्य	7. असत्य	

6.7 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
2. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
3. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 7 : विकासात्मक एवं घटनोत्तर अनुसंधान (Developmental and Ex-Post Facto Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

7.1 विकासात्मक अध्ययन (Developmental Studies)

7.2 उपनत्यात्मक अध्ययन (Trend Studies)

7.3 घटनोत्तर अनुसंधान (Ex-Post Facto Research)

7.4 सत्य प्रयोग से अंतर (Different from True Experiment)

7.5 मूल्यांकन (Evaluation)

7.6 सारांश (Summary)

7.7 शब्दकोश (Keywords)

7.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

7.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- विकासात्मक एवं उपनत्यात्मक अध्ययन को समझने में;
- घटनोत्तर अनुसंधान को समझने में;
- प्रयोगशालागत प्रयोग से अन्तर एवं मूल्यांकन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

वर्णनात्मक अनुसंधान का तीसरा प्रकार विकासात्मक अध्ययन है। इस प्रकार के अध्ययनों का उद्देश्य होता है यह जानना कि किसी निश्चित अथवा निर्धारित समय के अन्तराल में किसी व्यक्ति, संस्था अथवा सामाजिक प्रक्रिया के विकास में कितना और किस प्रकार का परिवर्तन आया है। इसी के साथ इसमें यह व्याख्या भी की जाती है कि जो परिवर्तन उत्पन्न हुए हैं वे किन कारणों से तथा किस प्रकार उत्पन्न हुए हैं। **वान डालेन** ने इन अध्ययनों के दो प्रकारों का वर्णन किया है–एक है वृद्धि एवं विकासात्मक अध्ययन (growth studies) तथा दूसरा है उपनत्यात्मक अध्ययन (trend studies)।

नोट

7.1 विकासात्मक अध्ययन (Developmental Studies)

इस प्रकार के अध्ययन किसी भी क्षेत्र में किए जा सकते हैं, परन्तु बालकों की वृद्धि एवं विकास के संदर्भ में उन्हें विशेष रूप से उपयोगी पाया गया है। अत: इस क्षेत्र में उनका प्रचलन अधिक है। इन अध्ययनों में इस बात पर प्रकाश डाला जाता है कि बालकों के व्यक्तित्व का विकास किस प्रकार होता है, किस आयु में किस प्रकार की मनोवैज्ञानिक विशेषताएँ उनमें विकसित होती हैं, कैसे-उनमें समयानुसार परिवर्तन होता है तथा कौन-कौन से तत्व इन परिवर्तनों को प्रभावित करते हैं। विकासात्मक अध्ययन भी दो प्रकार के होते हैं–अनुप्रस्थ-छेदीय (cross-sectional) तथा अन्वायामी (longitudinal)।

नोट्स अन्वायामी अध्ययनों में एक ही बालक की अथवा बालकों के समूह की किसी निश्चित विशेषता अथवा विशेषताओं का मापन भिन्न-भिन्न आयु पर कई बार किया जाता है तथा यह जानने का प्रयास किया जाता है कि उसमें कितना परिवर्तन हुआ है।

इस प्रकार ये अध्ययन लंबे समय तक चलते रहते हैं। उदाहरण के लिए, बालकों के एक निश्चित समूह की बुद्धि, आदतों, संवेगात्मक स्थायित्व, आत्म-बोध, (self-concept), रुचियों अथवा व्यक्तित्व की अन्य विशेषताओं का मापन 5, 6, 7, 8, 9, 10, 11 वर्ष की प्रत्येक आयु पर किया जा सकता है तथा यह देखा जा सकता है कि किस आयु पर उनमें क्या परिवर्तन होता है। विभिन्न आयु-स्तरों पर लिए गए मापों की पारस्परिक तुलना के आधार पर इन विशेषताओं के क्रमिक विकास का तथा उनके पीछे विद्यमान नियमों एवं सिद्धांतों का वर्णन किया जा सकता है।

अनुप्रस्थ-छेदीय अध्ययनों में एक ही समय में विभिन्न आयु के बालकों के अलग-अलग समूहों को चुनकर उनकी उपरोक्त विशेषताओं का एक ही साथ मापन किया जाता है। इन मापों की फिर परस्पर तुलना की जाती है और यह जानने का प्रयास किया जाता है कि किस आयु के बालकों में कौन विशेषता अधिक अथवा कम है। इस प्रकार किस आयु के बालको में कौन-सी विशेषताएँ प्रबल रूप में पाई जाती हैं, इसका वर्णन किया जा सकता है। अनेक शोधकर्ताओं ने बालकों के विकास का अध्ययन इसी प्रकार किया है। ये अध्ययन थोड़े समय में ही पूर्ण हो जाते हैं। अन्वायामी अध्ययनों की भाँति लंबे समय तक परिणामों की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

उदाहरण विभिन्न आयु के बालकों का अध्ययन कर उनकी विशेषताओं का एक-साथ मापन कर परस्पर उनकी तुलना की जाती है कि किस आयु में कौन-सी विशेषताएँ प्रबल रूप से पाई जाती हैं।

उपरोक्त दोनों प्रकार के विकासात्मक अध्ययनों में कौन अधिक अच्छा अथवा उपयोगी है, यह कहना कठिन है। प्रत्येक के अपने गुण-दोष हैं। अन्वायामी अध्ययन के जहाँ कुछ लाभ हैं वहाँ उसके कुछ दोष भी हैं। मानव-विकास की विशेषताओं का इनमें अधिक सही अध्ययन हो पाता है, परन्तु उनका यह एक दोष है कि परिणामों के लिए लंबे समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। दूसरे इतने लंबे समय तक सभी बालकों को अध्ययनगत रखना कठिन हो जाता है। उनमें से बहुत से अन्त तक उपलब्ध नहीं हो पाते। इसका परिणामों की विश्वसनीयता पर कुप्रभाव पड़ता है। इन अध्ययनों के परिणामों की बाह्य वैधता भी अधिक नहीं होती।

अनुप्रस्थ-छेदीय अध्ययनों में समय तो कम लगता है और वे सरलता से सम्पादित हो जाते हैं जिसके कारण शोधकर्ता अधिकतर उन्हीं को अपनाते हैं, परन्तु उनका सबसे बड़ा दोष यह है कि उनमें विभिन्न आयु के जिन समूहों की परस्पर तुलना की जाती है वे समान न होने के कारण तुलनीय नहीं होते। इस कारण जो परिणाम प्राप्त होते हैं वे न अधिक विश्वसनीय होते हैं और न वैध।

तो भी दोनों प्रकार के अध्ययनों को महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। दोनों का प्रयोग अनुसंधान के क्षेत्र में पाया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. बालकों के वृद्धि एवं विकास के अध्ययन में ..... बहुत उपयोगी होता है।
2. विकासात्मक अध्ययन दो प्रकार के होते हैं–अनुप्रस्थ-छेदीय तथा .....।
3. अनुप्रस्थ छेदीय अध्ययन कम ..... में पूर्ण हो जाती है।

7.2 उपनत्यात्मक अध्ययन (Trend Studies)

यह विधि भी विकासात्मक अध्ययन का ही रूप है। इनमें भी इस बात का अध्ययन किया जाता है कि विकास की प्रवृत्ति कैसी है, कौन-सी विशेषता किस वर्ष में अधिक पाई जाती है अथवा किस प्रकार उस विशेषता का क्रमिक विकास कालान्तर में होता है, परन्तु इन अध्ययनों का कार्य इस प्रकार के वर्णन तक ही सीमित नहीं रहता। इससे आगे इन अध्ययनों में इस बात पर भी प्रकाश डाला जाता है कि यदि विकास की वर्तमान प्रवृत्ति ऐसी है तो भविष्य में उसकी क्या स्थिति होगी। साथ ही उनके परिणामों के आधार पर ऐसे सुझाव भी दिए जाते हैं कि यदि विकास की प्रवृत्ति यही रही तो आगामी वर्षों में उसका संस्था, संस्था के वातावरण, उसके आर्थिक-सामाजिक पहलुओं पर क्या प्रभाव पड़ेगा? उदाहरण के लिए, यदि विद्यालयों में छात्र-प्रवेश दर का पिछले दस वर्षों का अध्ययन किया जाता है तथा यह पाया जाता है कि प्रति वर्ष छात्रों की प्रवेश-माँग में दस प्रतिशत की वृद्धि होती रही है, तो उसके आधार पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विद्यालयी शिक्षा के व्यय में प्रतिवर्ष अथवा पाँच वर्षों में कितनी वृद्धि होगी। उसी के अनुरूप फिर शिक्षा-नीति का निर्माण करना भी सम्भव हो सकता है।

क्या आप जानते हैं उपनत्यात्मक अध्ययन (trend studies) अधिकांशत: भविष्योन्मुखी होती हैं।

इन अध्ययनों में शोध सामग्री एकत्र करने हेतु अन्य कई प्रकार के अनुसंधानों जैसे–ऐतिहासिक, सर्वेक्षण आदि अध्ययनों की विधियों एवं तकनीकों का प्रयोग किया जाता है। विद्यालयों की छात्र-प्रवृष्टि, जनसंख्या वृद्धि की प्रवृत्ति, व्यवसायों के अवसर, सामाजिक परिवर्तनों की प्रवृत्ति आदि के अध्ययन इस श्रेणी के अन्तर्गत आते हैं। भावी योजनाओं के निर्माण के दृष्टिकोण से इस प्रकार के अध्ययनों का बहुत महत्त्व होता है।

7.3 घटनोत्तर अनुसंधान (Ex-post Facto Research)

इन अध्ययनों में भी घटनाओं के बीच कार्यात्मक (functional) संबंधों को ज्ञात किया जाता है तथा घटनाओं के घटने के कारणों को खोजने का प्रयास किया जाता है।

अर्थ एवं स्वरूप

घटनोत्तर अनुसंधान (ex-post facto research) भी एक ऐसा अध्ययन होता है जिसमें स्वतंत्र एवं आश्रित चरों के बीच कार्य-कारण संबंध की स्थापना की जाती है। अत: इसे भी प्रयोगात्मक अनुसंधान की श्रेणी में रखा गया है, परन्तु सत्य प्रयोगों की श्रेणी में इसे नहीं रखा जाता क्योंकि प्रयोगों में स्वतंत्र चर के प्रहस्तन अथवा यथेच्छ प्रयोग की शोधकर्ता को स्वतंत्रता होती है जो घटनोत्तर अनुसंधान में नहीं होती। प्रयोग में स्वतंत्र चर के कई स्तर बनाकर इकाइयों को उतने ही समूहों में समसंभाविक रीति से वितरित किया जाता है। इसमें तुलनीय समूह स्वतंत्र चर के आधार पर बनाए जाते हैं, परन्तु घटनोत्तर अनुसंधान में ये समूह आश्रित चर के आधार पर बनाए जाते हैं अर्थात्

नोट

अनुसंधान की प्रक्रिया आश्रित चर से प्रारंभ होती है। इसीलिए **मौलि** ने घटनोत्तर अनुसंधान को "प्रतिवर्तित प्रयोग" (experiment in reverse) कहा है क्योंकि इसमें स्वतंत्र एवं आश्रित चर का क्रम प्रयोगाधीन क्रम के ठीक विपरीत हो जाता है। प्रयोग में स्वतंत्र चर पर पहले विचार किया जाता है तथा उसके आधार पर तुलनीय समूह बनाए जाते हैं जबकि घटनोत्तर अध्ययनों में आश्रित चर पहले आता है अर्थात् पहले उसके आधार पर तुलनीय समूह बनाए जाते हैं। प्रयोग में तुलनीय समूहों की आश्रित चर के आधार पर तुलना की जाती है। ठीक इसके विपरीत घटनोत्तर अध्ययनों में तुलनीय समूहों की तुलना स्वतंत्र चर के आधार पर की जाती है।

घटनोत्तर अनुसंधान के आश्रित चर पर समूह वास्तव में बनाए नहीं जाते बल्कि वे परिवेश में बने-बनाए उपलब्ध होते हैं जो एक-दूसरे से भिन्न होते हैं, जैसे–लड़के-लड़कियाँ, ग्रामवासी-नगरवासी, अमीर-गरीब, निम्न-उपलब्धिधारी, उच्च-उपलब्धिधारी, अधिक-बुद्धिमान-कम-बुद्धिमान आदि। इनमें अन्तर-भिन्नता होने का कारण खोजने हेतु तत्पश्चात् उपकल्पित चरों (स्वतंत्र चरों) पर उनकी तुलना की जाती है। उदाहरण के लिए, यदि हमें छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि-प्रेरणा के निम्न स्तर का कारण ज्ञात करना हो तो हम निम्न स्तरीय प्रेरणा वाले तथा उच्च स्तरीय प्रेरणा वाले छात्रों के समूहों को चुन लेंगे तथा उनकी तुलना किसी उपकल्पित चर (जैसे, बुद्धि अथवा छात्रों का पारिवारिक परिवेश) पर करेंगे।

घटनोत्तर का शाब्दिक अर्थ ही है घटना (आश्रित चर) के बाद अर्थात् आश्रित चर स्वाभाविक स्थिति में उपलब्ध होता है। तत्पश्चात् उसके कारण का (स्वतंत्र चर के साथ संबंध) पता लगाया जाता है। जैसे, उपरोक्त उदाहरण में घटना प्रेरणा का निम्न अथवा उच्च स्तर पहले ही परिवेश में स्वाभाविक रूप में उपलब्ध है। ऐसे छात्र विद्यालयों में हैं ही। कारणवाची-तुलनात्मक अध्ययनों में भी ऐसा ही किया जाता है, परन्तु उसमें कारण की खोज की विधि इन अध्ययनों की विधि से भिन्न होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. घटनोत्तर अनुसंधान में घटनाओं के बीच ..... संबंधों को ज्ञात किया जाता है।
   (क) अकार्यात्मक (ख) कार्यात्मक (ग) विकल्पात्मक (घ) गुणात्मक
5. मौलि ने घटनोत्तर अनुसंधान को ..... कहा है।
   (क) परिवर्तित प्रयोग (ख) अपरिवर्तित प्रयोग (ग) सकारात्मक प्रयोग (घ) नकारात्मक प्रयोग
6. घटनोत्तर का शाब्दिक अर्थ है–
   (क) घटना के समय (ख) घटना से पहले (ग) घटना के बाद (घ) तीनों
7. घटनोपरांत अध्ययन का शिक्षा, मनोविज्ञान तथा ..... के क्षेत्र में बहुत महत्त्व है।
   (क) अर्थशास्त्र (ख) समाजशास्त्र (ग) सांख्यिकी (घ) राजनीतिशास्त्र

7.4 सत्य प्रयोग से अन्तर (Different from True Experiment)

प्रयोगशाला में जो प्रयोग किए जाते हैं उनसे घटनोत्तर अध्ययन निम्नलिखित दृष्टिकोणों से भिन्न होते हैं–

1. प्रयोगशालागत प्रयोगों में स्वतंत्र चर का यथेच्छ प्रयोग अर्थात् प्रहस्तन सम्भव होता है तथा उसके आश्रित चर पर पड़े प्रभाव का मापन एवं अध्ययन किया जाता है। घटनोत्तर अध्ययनों में आश्रित चर के विभिन्न स्तरों पर समूह बनाए जाते हैं तथा स्वतंत्र चर पर उनकी तुलना की जाती है।

नोट

2. प्रयोगशालागत प्रयोगों में अध्ययन बाह्य (extraneous) तत्वों के प्रभाव को समसंभाविक विधि (randomization) एवं समानीकरण (matching) आदि के द्वारा यथासम्भव नियंत्रित करने का प्रयास किया जाता है जिसके परिणामस्वरूप विभिन्न उपचारों (treatments) को स्वतंत्र चर द्वारा उत्पन्न हुआ स्वीकार करना सम्भव होता है। घटनोत्तर अध्ययनों में यह नियंत्रण सर्वथा संभव नहीं होता। अत: इनके परिणाम अधिक विश्वसनीय नहीं होते। नियंत्रण की उपरोक्त दोनों विधियाँ घटनोत्तर अध्ययनों में संभव नहीं होतीं।

3. दोनों प्रकार के अध्ययनों में विभिन्न समूहों के सृजन हेतु इकाइयों का समष्टि (population) में से तो समसंभाविक विधि द्वारा चयन किया जाना संभव है, परन्तु घटनोत्तर अध्ययनों में उन्हें समूहों में इस विधि द्वारा वितरित करना संभव नहीं होता जबकि प्रयोगशालागत प्रयोगों में यह संभव होता है। घटनोत्तर अध्ययनों में इकाइयाँ स्वयं ही समूहों में समागत रहती हैं। अध्ययनगत आश्रित चर के आधार पर वे स्वयं अपने-अपने वर्ग में बँट जाती हैं। **कर्लिंगर** के अनुसार, इन अध्ययनों में "इकाइयाँ" एवं उपचार पहले से ही समूहों में बँटे हुए रहते हैं।

टास्क प्रयोगशालागत प्रयोग एवं घटनोत्तर अध्ययन में अन्तर स्पष्ट करें।

7.5 मूल्यांकन (Evaluation)

इन अध्ययनों की तीन प्रमुख दुर्बलताएँ हैं–

1. स्वतंत्र चर के यथेच्छ प्रयोग की संभावना का अभाव।
2. इकाइयों के समसंभाविक विधि द्वारा वितरण की संभावना का अभाव।
3. अध्ययन बाह्य चरों के नियंत्रण की कठिनाइयाँ।

इन दुर्बलताओं के कारण इन अध्ययनों की आन्तरिक वैधता बहुत कम होती है। इसलिए **मौलि** ने कहा है कि ये अध्ययन एक साथ कई एक उपकल्पनाओं का और कभी-कभी तो विरोधी उपकल्पनाओं का भी समर्थन करते हैं क्योंकि इनकी शोध-सामग्री अत्यन्त अनियंत्रित परिस्थितियों में एकत्र की जाती हैं। इसी कारण कई वैकल्पिक उपकल्पनाएँ उससे निसृत होती हैं।

सावधानी **मौलि** का कहना यह भी है कि इन अध्ययनों को सर्वेक्षण अनुसंधान के अन्तर्गत रखना चाहिए जिनकी उपयोगिता केवल इस दृष्टिकोण में समझी जानी चाहिए कि वे उपकल्पनाओं को जन्म देते हैं–उन कल्पनाओं को जिनका बाद में प्रयोगों द्वारा सत्यापन किया जा सकता है।

सभी लेखकों एवं विद्वानों का यह मानना है कि घटनोपरांत अध्ययनों में आश्रित एवं स्वतंत्र चर के बीच संबंध की जो जानकारी उपलब्ध होती है वह प्रयोग की तुलना में बहुत कम विश्वसनीय होती है। परन्तु साथ ही उनका यह भी कहना है कि प्रयोग के परिणाम यद्यपि विश्वसनीय तो बहुत होते हैं परन्तु उनके सामान्यीकरण (external validity) की संभावना सीमित होती है।

इन सब दुर्बलताओं के होते हुए भी घटनोपरांत अध्ययनों का शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में बहुत महत्त्व है क्योंकि इन क्षेत्रों में अधिकतर शोध-परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं कि उनमें प्रयोगों की व्यवस्था नहीं की जा सकती। उदाहरण के लिए, इन क्षेत्रों में अनेक चर हैं जिनका यथेच्छ प्रयोग (प्रहस्तन) नहीं किया जा सकता। बुद्धि,

नोट

चिंता, प्रेरणा, व्यक्तित्व की अनेक विशेषताएँ आदि ऐसे ही चर हैं। इसी प्रकार, सामाजिक दबाव एवं तनाव, सामाजिक अभिवृत्तियाँ, सामाजिक आर्थिक स्तर, जाति, धर्म आदि भी ऐसे चर हैं जिनका यथेच्छ प्रयोग नहीं किया जा सकता। विद्यालयों का परिवेश, अध्यापकों की विशेषताएँ आदि भी ऐसे ही चर हैं। संक्षेप में, बहुत कम परिस्थितियाँ इन क्षेत्रों में ऐसी हैं जिनमें प्रयोगों की संभावना हो सकती है। अत: अधिकतर परिस्थितियाँ ऐसी ही हैं कि जिनमें घटनोत्तर अध्ययन ही संभव हो पाते हैं।

7.6 सारांश (Summary)

- वर्णनात्मक अनुसंधान का तीसरा प्रकार विकासात्मक अध्ययन है। इस प्रकार के अध्ययनों का उद्देश्य होता है यह जानना कि किसी निश्चित अथवा निर्धारित समय के अन्तराल में किसी व्यक्ति, संस्था अथवा सामाजिक प्रक्रिया के विकास में कितना और किस प्रकार का परिवर्तन आया है।
- विकासात्मक अध्ययन भी दो प्रकार के होते हैं–अनुप्रस्थ-छेदीय (cross-sectional) तथा अन्वायामी (longitudinal)।
- दोनों प्रकार के विकासात्मक अध्ययनों में कौन अधिक अच्छा अथवा उपयोगी है, यह कहना कठिन है। प्रत्येक के अपने गुण-दोष हैं।
- घटनोत्तर अनुसंधान (ex-post facto research) एक ऐसा अध्ययन है जिसमें स्वतंत्र एवं आश्रित चरों के बीच कार्य-कारण संबंध की स्थापना की जाती है। अत: इसे भी प्रयोगात्मक अनुसंधान की श्रेणी में रखा गया है।

7.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **घटनोत्तर**–घटना के उपरांत या बाद, घटनाओं के बीच कार्यात्मक संबंधों को ज्ञात करना।
2. **प्रवृष्टि**–किसी स्कूल या संस्था में दाखिला या नामांकन।

7.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. विकासात्मक अनुसंधान से आप क्या समझते हैं?
2. घटनोत्तर अनुसंधान पर प्रकाश डालें।
3. घटनोत्तर अनुसंधान का मूल्यांकन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. विकासात्मक अनुसंधान
2. अन्वायामी
3. समय
4. (ख) कार्यात्मक
5. (क) प्रतिवर्तित प्रयोग
6. (ग) घटना के बाद
7. (ख) समाजशास्त्र।

7.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
2. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*

नोट

इकाई 8 : ऐतिहासिक अनुसंधान (Historical Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

8.1 ऐतिहासिक अनुसंधान का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Structure of Historical Research)

8.2 ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया (Process of Historical Research)

8.3 ऐतिहासिक अनुसंधान की शोध-सामग्री (Data of Historical Research)

8.4 साक्ष्य समालोचना (Criticism)

8.5 ऐतिहासिक अनुसंधान का मूल्यांकन (Evaluation of Historical Research)

8.6 सारांश (Summary)

8.7 शब्दकोश (Keywords)

8.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

8.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- ऐतिहासिक अनुसंधान के अर्थ एवं स्वरूप को समझने में;
- ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया एवं शोध-सामग्री को समझने में;
- साक्ष्य समालोचना एवं मूल्यांकन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सृष्टि में जो कुछ भी है उसका अतीत भी होता है, वर्तमान भी एवं भविष्य भी। कोई भी घटना, संस्था, विचार, धारणा, नीति, आर्थिक-सामाजिक विशेषता, सिद्धांत अथवा परिपाटी ऐसी नहीं जिसका अतीत न हो, जिसका इतिहास न हो, साथ ही कुछ भी ऐसा नहीं है जिसका इतिहास उसके वर्तमान एवं भविष्य से न जुड़ा हो। अत: किसी भी घटना, प्रक्रिया अथवा परम्परा को भली-भाँति समझने के लिए कई बार उसके अतीत में झाँककर देखना भी

नोट

आवश्यक होता है। दूसरे, मनुष्य की यह जिज्ञासा बहुत स्वभाविक होती है कि जो उसके अनुभव की सीमा में आता है वह उसके अतीत को भी जानना चाहता है। इसी पृष्ठभूमि में ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक अनुसंधान का सूत्रपात एवं विकास हुआ। शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्रों में भी ये अनुसंधान महत्त्वपूर्ण समझे गए। आज इन क्षेत्रों में अनेक ऐसे अध्ययन उपलब्ध हैं जो इस श्रेणी में आते हैं।

8.1 ऐतिहासिक अनुसंधान का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Structure of Historical Research)

जो बीत चुका है, अतीत बन चुका है उसका वर्णन, लेखन एवं अध्ययन इतिहास के नाम से जाना जाता है। शिक्षा एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में ऐसा बहुत कुछ है जिसकी जड़ें अतीत की घटनाओं तक फैली हैं। अत: उसके वर्तमान स्वरूप को पूर्णतया समझने के लिए उसके इस अतीत को जानना भी आवश्यक है। ऐसा न भी हो तो भी शैक्षिक एवं समाजशास्त्रीय प्रक्रियाओं एवं परम्पराओं के अतीत स्वयं में महत्त्वपूर्ण एवं जानने योग्य होते हैं। वे स्वयं मानवीय जिज्ञासा उत्पन्न करते हैं। अनेक बार अतीत के अध्ययन भविष्य में वांछनीय परिवर्तनों की दिशा की ओर भी संकेत करते हैं। अत: ऐतिहासिक अनुसंधान की परिभाषा इस प्रकार की जाती है–"ऐसे अनुसंधान जिनमें उन घटनाओं, प्रक्रियाओं एवं परम्पराओं का अध्ययन किया जाता है जो अतीत में घटी होती हैं।" **स्मिथ** एवं **स्मिथ** के अनुसार, ऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य अतीत का सही-सही वर्णन करना होता है बीते सत्य की विद्वत्तापूर्ण खोज करना, अर्थात् जिज्ञासा का वह स्वरूप जिसमें शोधकर्ता जानना चाहता है कि "अतीत में इसका रूप, इसकी स्थिति कैसी थी, क्यों और कैसे ऐसा हुआ"। **मौलि** के अनुसार, ऐतिहासिक अनुसंधान का उद्देश्य वर्तमान की घटनाओं को और अधिक स्पष्ट परिप्रेक्ष्य प्रदान करना होता है।

नोट्स **बोर्ग** के अनुसार, ऐतिहासिक अनुसंधान "अतीत की घटनाओं के संबंध में निष्कर्ष उपलब्ध कराने एवं तथ्यों का सत्यापन करने हेतु ऐतिहासिक साक्ष्यों का वस्तुनिष्ठ एवं विधिपूर्वक खोजा जाना, उनका मूल्यांकन एवं संश्लेषण है।"

शिक्षा के क्षेत्र में उसके किसी भी पक्ष को लेकर उसकी विगतकालीन स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है। वैदिक काल में गुरु-शिष्य सम्बन्ध, मुगलकालीन शिक्षा की कुछ विशेषताएँ, प्रथम पंचवर्षीय योजना में शिक्षा-नीति, वैदिक काल की शिक्षा के उद्देश्य, मध्यकालीन शिक्षा के उद्देश्य, मुस्लिम काल में मदरसों की सामाजिक विकास में भूमिका आदि अनेक समस्याएँ ऐसी हो सकती हैं जिनका अतीत के संदर्भ में अध्ययन किया जा सकता है। ये सब अध्ययन ऐतिहासिक अनुसंधान की श्रेणी में आते हैं।

सभी ऐतिहासिक अध्ययन वर्णनात्मक (descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (analytical) प्रकार के होते हैं। उनमें घटना के अतीत की जानकारी देने वाले प्रलेखों, प्रपत्रों, स्मारकों, पुस्तकों, अभिलेखों, ऐतिहासिक अवशेषों आदि का अध्ययन किया जाता है। उनके आधार पर भाँति-भाँति के तथ्यों एवं साक्ष्यों को एकत्र किया जाता है तथा उनका विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

ऐतिहासिक अध्ययन का नियोजन (Planning)

जैसा अन्य प्रकार के अध्ययनों के साथ होता है इन अध्ययनों की भी काम प्रारंभ करने से पहले एक पूरी योजना विधिवत तैयार करनी पड़ती है।

नोट

सावधानी समस्या-चयन के विषय में अन्तिम निर्णय लेने से पूर्व यह निश्चित कर लेना अत्यन्त आवश्यक होता है कि उससे संबंधित पर्याप्त साक्ष्य, साक्ष्य के स्रोत उपलब्ध हैं अथवा नहीं।

ऐसा नहीं होगा तो अध्ययन संभव ही नहीं होगा। इसके साथ ही समस्या से संबंधित उपलब्ध साहित्य एवं अब तक किए गए अनुसंधानों का अध्ययन एवं उनकी समीक्षा करना भी आवश्यक होता है। उनके आधार पर ही अध्ययन के उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उपकल्पनाओं का सृजन सम्भव हो पाता है। **हेमैन** के अनुसार, इसी स्तर पर सुस्पष्ट उपकल्पनाओं का सृजन एवं सैद्धांतिक विकास (theoretical development) का भी प्रयास किया जाना चाहिए। **हेमैन** ने भी इन अध्ययनों में उपकल्पना के महत्त्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।

8.2 ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया (Process of Historical Research)

इस प्रकार के अध्ययनों में भी प्रक्रिया का लगभग वही पदक्रम रहता है जो वर्णनात्मक विधि में अपनाया जाता है। **वान डालेन** ने निम्नलिखित पाँच पदों का उल्लेख किया है–

(*i*) समस्या का निर्धारण, उसकी परिभाषा एवं विस्तृत व्याख्या करना।

(*ii*) आधारभूत सामग्री (source material) एकत्र करना जिसके आधार पर समस्या संबंधी-शोध-सामग्री एकत्र की जानी है, समस्या संबंधी जानकारी एवं सूचनाएँ प्राप्त की जानी हैं।

(*iii*) आधारभूत सामग्री का आलोचनात्मक (criticism) मूल्यांकन।

(*iv*) उपकल्पनाओं का सृजन (formulation of hypotheses) जिनके आधार पर वस्तु-स्थिति की व्याख्या की जानी है।

(*v*) सामग्री का विश्लेषण, निष्कर्षों का निरूपण एवं आख्या तैयार करना।

आंशिक परिवर्तन के साथ एवं कुछ भिन्न शब्दों में इन्हीं पदों का उल्लेख **मौलि** ने भी किया है। **हौकेट** ने त्रिपदी प्रक्रिया का वर्णन किया है। ये तीन पद हैं–

(*i*) शोध-सामग्री एकत्र करना।

(*ii*) उसका मूल्यांकन करना।

(*iii*) लिखित आख्या तैयार करना।

8.3 ऐतिहासिक अनुसंधान की शोध-सामग्री (Data of Historical Research)

ऐतिहासिक अनुसंधान की शोध-सामग्री (data) ऐतिहासिक तत्व एवं घटनाएँ ही होती हैं। अन्य अनुसंधानों में इस सामग्री का स्रोत मूलत: मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ, प्रश्नावलियाँ, साक्षात्कार आदि होते हैं, परन्तु ऐतिहासिक अनुसंधान में यह ऐतिहासिक तथ्यों, घटनाओं एवं जानकारी के रूप में होती हैं, जिन्हें अनेक स्रोतों से एकत्र किया जाता है।

उदाहरण ऐतिहासिक जानकारी के आधार पर ही समस्या से जुड़े प्रश्नों के उत्तर एवं तत्संबंधी उपकल्पनाओं की जांच हेतु साक्ष्य प्रस्तुत किए जाते हैं।

नोट

मौलि ने ऐतिहासिक जानकारी अथवा साक्ष्य के स्रोतों को दो श्रेणियों में बाँटा है–

(*i*) ऐतिहासिक प्रलेख (documents, प्रपत्र)।

(*ii*) ऐतिहासिक अवशेष (relics or remains)।

एक-दूसरे दृष्टिकोण से **वान डालेन** ने ऐतिहासिक शोध-सामग्री के इन माध्यमों को प्राथमिक (primary) एवं **अत्तरज** (secondary) इन दो श्रेणियों में बाँटा है। "प्राथमिक स्रोत", **वान डालेन** के अनुसार, "ऐतिहासिक अनुसंधान की मूलभूत सामग्री होती है।" मूलभूत सामग्री अथवा गौण (secondary) स्रोत बन जाता है। उसमें प्रस्तुतकर्त्ता के अपने दृष्टिकोण, अपनी धारणाओं का पुट भी रहता है। उस स्थिति में उसे कुछ कम विश्वसनीय माना जाता है तो भी उसका महत्त्व कम नहीं हो जाता।

प्रलेखीय स्रोत के अन्तर्गत बहुत से प्रकार के अभिलेख आते हैं, जैसे–

(*i*) सरकारी अभिलेख।

(*ii*) व्यक्तिगत अभिलेख।

(*iii*) विभिन्न प्रकार के चित्र, नक्शे, ड्राइंग, फोटो आदि।

(*vi*) प्रकाशित सामग्री।

(*vii*) यांत्रिक सामग्री जैसे–टेप, वीडियो कैसेट आदि।

अवशेषों के अन्तर्गत भी कई प्रकार की वस्तुएँ आती हैं, जैसे–

***(i)* स्थूल वस्तुएँ:** इमारतें, फर्नीचर, बहुत-से प्रकार के उपकरण, परिधान, औजार, मृत शरीरों के अवशेष आदि।

***(ii)* प्रकाशित सामग्री।**

***(iii)* हस्तलिखित सामग्री आदि।**

उपरोक्त सभी स्रोत वह समस्त जानकारी, सूचनाएँ (data) प्रस्तुत करते हैं जिनके आधार पर समस्यागत प्रश्नों के उत्तर प्राप्त किये जाते हैं एवं उपकल्पनाओं की जांच की जाती है, परन्तु विश्वसनीय एवं वैध निष्कर्ष प्राप्त करने हेतु यह आवश्यक है कि साक्ष्य के ये आधार भी विश्वसनीय हों। अन्य प्रकार के अनुसंधानों में जिस प्रकार यह आवश्यक है कि मनोवैज्ञानिक परीक्षण, प्रश्नावली आदि विश्वसनीय तथा वैध हों, उसी प्रकार ऐतिहासिक अध्ययनों में उपरोक्त-साक्ष्य-स्रोतों का भी विश्वसनीय एवं वैध होना आवश्यक समझा जाता है तथा शोध-सामग्री का विश्लेषण करने से पहले उसकी विश्वसनीयता एवं वैधता निर्धारित करना महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। इसकी प्रमुख विधि साक्ष्य-समालोचना (criticism) होती है।

टास्क ऐतिहासिक अनुसंधान की शोध-सामग्री पर एक टिप्पणी लिखें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. सृष्टि में जो कुछ भी है, उसका अतीत भी होता है, वर्तमान भी और ..... भी।
2. जो अतीत बन चुका है उसका वर्णन, लेखन एवं अध्ययन ..... कहलाता है।

नोट

3. सभी ऐतिहासिक अध्ययन वर्णनात्मक एवं ..... प्रकार के होते हैं।
4. ऐतिहासिक अध्ययन में ..... के महत्त्व को स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है।

8.4 साक्ष्य समालोचना (Criticism)

ऐतिहासिक अनुसंधान में जो प्रलेख अथवा अवशेष उपलब्ध होते हैं उन्हें एकदम प्रामाणिक मान लेना ठीक नहीं समझा जाता। अत: शोधकर्ता बड़ी बारीकी से पहले उनकी प्रामाणिकता निर्धारित करता है। वह निर्धारित करता है कि वह प्रलेख अथवा अवशेष मौलिक, असंदिग्ध एवं वास्तविक हैं या नहीं। इसका निर्धारिण दो प्रकार की समालोचना के आधार पर किया जाता है–

1. एक, बाह्य समालोचना।
2. दूसरी, आन्तरिक समालोचना।

1. बाह्य समालोचना: साक्ष्य समालोचना के बाह्य रूप के अन्तर्गत प्रलेख अथवा अवशेष की वैधता, सत्यता अथवा शुद्धता की जांच की जाती है। इसमें शोधकर्ता को इस प्रश्न का उत्तर मिलता है कि "क्या यह वही है जो दिखती है अथवा जैसी मूलरूप में उत्पन्न हुई है" कहीं यह वह न होकर कोई धोखा तो नहीं है? मुख्य रूप से इसके अन्तर्गत प्रलेख अथवा अवशेष के मूल लेखक अथवा स्रोत का निर्धारण किया जाता है। वह किस युग में और कब लिखा अथवा बनाया गया, किसने बनाया, किन परिस्थितियों में बनाया गया, क्या यही इसका मूलरूप है आदि पक्षों पर साक्ष्य एकत्र करके यह निर्धारित किया जाता है कि वह मौलिक एवं प्रामाणिक है। लेखक के विषय में विशेष रूप से जांच की जाती है।

क्या आप जानते हैं प्रलेख अथवा उसकी पाण्डुलिपि की भाषा, विधा, छपाई आदि उस प्रलेख के प्रकाशन की तिथि अथवा समय को निश्चित करने में बहुत सहायक होते हैं।

प्रलेखों एवं अवशेषों की प्रामाणिकता निर्धारित करने में इतिहास, भाषा-विज्ञान, रसायनशास्त्र, नृशास्त्र, पुरातत्व विज्ञान, साहित्य, कला, भवन-निर्माण शास्त्र आदि अनेक क्षेत्रों के अच्छे ज्ञान की सहायता लेनी पड़ती है। ध्यान देने की बात यह है कि इसमें केवल यह निर्धारित अथवा सत्यापित किया जाता है कि प्रलेख अथवा अवशेष मौलिक, वास्तविक तथा प्रामाणिक हैं अथवा नहीं। उसकी विषय-वस्तु का मूल्यांकन इसके अन्तर्गत नहीं आता।

2. आन्तरिक समालोचना: आन्तरिक समालोचना के अन्तर्गत प्रलेख अथवा अवशेष की विषय-वस्तु (content), जो कुछ उसमें कहा गया है अथवा जिस प्रकार की जानकारी वह देता है उसका मूल्यांकन किया जाता है। वह जानकारी जो उसकी विषय-वस्तु में पाई जाती है कहाँ तक सार्थक, सही एवं विश्वसनीय है यह निर्धारित करना आन्तरिक समालोचना का उद्देश्य होता है। लेखक ने जो कुछ कहा है वह कहाँ तक वैध है, उसमें कितनी सच्चाई है, कहाँ तक वह वस्तुनिष्ठ है, कहाँ तक लेखक ने तथ्यों की सही-सही व्याख्या की है आदि कुछ ऐसी समस्याएँ होती हैं जिन पर शोधकर्ता गंभीरता से विचार करता है तथा निश्चित करता है कि प्रलेख की विषय-वस्तु कहाँ तक वैध एवं विश्वसनीय है। यह बहुत कुछ लेखक की अपनी ख्याति, पद एवं स्तर के आधार पर, लेखक के लिखने के अभिप्राय पर, परिस्थितियाँ जिनमें लिखा गया आदि के आधार पर निर्धारित किया जाता है। यदि अन्य लेखकों ने भी उसके संबंध में कुछ लिखा है तो उसे भी आधार बनाया जा सकता है।

नोट

उपकल्पनाओं का सृजन

प्रलेखों एवं अवशेषों आदि के माध्यम से जो जानकारी उपलब्ध होती है उसका विश्लेषण करके समस्यागत प्रश्नों के उत्तर अथवा समाधान खोजने होते हैं, परन्तु इससे पहले समस्त एकत्रित तथ्यों का वर्गीकरण एवं पुनर्गठन करना आवश्यक होता है। इसके लिए दिशा-बोधक संकेतक आवश्यक होते हैं। यह कार्य उपकल्पनाओं (hypotheses) के माध्यम से संभव होता है। उन एकत्र किए गए ऐतिहासिक तथ्यों एवं सम्पूर्ण जानकारी को ध्यानपूर्वक पढ़कर शोधकर्ता कुछ उपकल्पनाओं का निर्माण करता है जो समस्त एकत्रित सामग्री को विशिष्ट वर्गों में समाहित करने तथा उनके विश्लेषण के आधार पर निष्कर्षों का निष्पादन करने में शोधकर्ता की सहायता करते हैं। ऐतिहासिक अध्ययनों में भी उपकल्पना का अपना महत्त्व है, यद्यपि उनका होना अपरिहार्य नहीं है। **वान डालेन** ने इनके महत्त्व पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला है। **मौलि** ने भी गौण रूप में उसके महत्त्व को स्वीकार किया है। ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रक्रिया के पद-क्रम की चर्चा करते हुए पद-क्रम (step) चार में उनका यह कहना है कि "जिस किसी उपकल्पना अथवा सिद्धांत (theory) का शोध-सामग्री समर्थन करती है उसी के संदर्भ में उसका विश्लेषण किया जाना चाहिए।" उपकल्पना के महत्त्व को स्वीकार करना ही है, परन्तु यह नहीं सोचना चाहिए कि ऐतिहासिक अनुसंधान में उपकल्पना का होना प्रत्येक परिस्थिति में अनिवार्य है। बिना उपकल्पना के भी ये अनुसंधान सम्भव हो सकते हैं। एक बात और ध्यान में रखने की है। यदि उपकल्पनाओं का सृजन किया गया है तो उनकी जांच (testing) की विधियाँ प्रयोगात्मक अनुसंधान की विधियों से भिन्न होती हैं। इन विधियों में सांख्यिकी का प्रयोग न करके केवल उन सामग्री, सूचनाओं एवं तथ्यों का विवेचनात्मक विश्लेषण किया जाता है जो उपकल्पना का समर्थन करती हैं अथवा उसे नकारती हैं। उसी के आधार पर निष्कर्ष निकाले जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

5. ऐतिहासिक अनुसंधान की शोध-सामग्री ऐतिहासिक तत्व एवं घटनाएँ होती हैं।
6. शिक्षा के क्षेत्र में उसकी विगत कालीन स्थिति का अध्ययन नहीं किया जा सकता।
7. साक्ष्य-समालोचना अनुसंधान की विधि नहीं है।
8. बाह्य साक्ष्य-समालोचना के अंतर्गत अवशेष की वैधता तथा सत्यता की जाँच की जाती है।

8.5 ऐतिहासिक अनुसंधान का मूल्यांकन (Evaluation of Historical Research)

प्राय: यह प्रश्न उठाया जाता है कि क्या ऐतिहासिक अनुसंधान वैज्ञानिक अनुसंधान है। कुछ लोग उसे वैज्ञानिक मानते हैं, कुछ नहीं मानते, परन्तु सभी यह स्वीकार करते हैं कि आंशिक रूप में वैज्ञानिक है। हौकेट के अनुसार, वैज्ञानिक अनुसंधान की तीन विशेषताएँ होती हैं–

(*i*) निरीक्षण,

(*ii*) उपकल्पना,

(*iii*) परीक्षण।

ये थोड़े बहुत हेर-फेर के साथ ऐतिहासिक अनुसंधान में भी विद्यमान रहती हैं। कुछ विद्वानों का मानना है कि ऐतिहासिक अनुसंधान में कारण-कार्य (cause-effect) संबंध का निर्धारण नहीं किया जा सकता। अत: वह वैज्ञानिक अनुसंधान की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता, परन्तु बहुत से इतिहासकारों का कहना है कि इन अनुसंधानों

नोट

में घटना के कारणों का भी निर्धारिण किया जा सकता है। इसी प्रकार कुछ का कहना है कि ऐतिहासिक अध्ययनों में भविष्यवाणी (prediction) सम्भव नहीं है, परन्तु कुछ इतिहासकार मानते हैं कि कुछ विशिष्ट परिस्थितियों में पूर्वकथन अथवा भविष्यवाणी भी सम्भव है।

मौलि का मत है कि "ऐतिहासिक अनुसंधान को अवैज्ञानिक कहकर नकारना बुद्धिमानी की बात नहीं है।" उनका यह भी कहना है कि शिक्षा की महत्त्वपूर्ण समस्याओं के समाधान खोजने हेतु ऐतिहासिक अनुसंधान एक परिप्रेक्ष्य (perspective), एक पृष्ठभूमि प्रदान कर सकते हैं। कुछ विद्वानों का यह भी कहना है कि ऐतिहासिक अनुसंधानों के आधार पर मोटे तौर से सामान्यीकरण एवं नियम-निरूपण (derivation of laws) भी संभव है। **थ्युसीडाइड्र्स** की भाँति उनका भी कहना है कि "मानव-स्वभाव के अनुरूप जो घट चुका है वह पुन: घटेगा ही।"

तो भी अनेक कारणों से ऐतिहासिक अनुसंधान को वैज्ञानिक अनुसंधान विशेषरूप से प्रयोगात्मक अनुसंधान के समकक्ष नहीं रखा जा सकता क्योंकि उनके परिणामों की विश्वसनीयता एवं वैधता असंदिग्ध नहीं हो सकती। अध्ययनों की अपनी बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं जिनको दूर करना सरल कार्य नहीं है। अत: इन अध्ययनों की सीमाओं को स्वीकार करना ही विवेकपूर्ण होगा।

8.6 सारांश (Summary)

- सृष्टि में जो कुछ भी है उसका अतीत भी होता है, वर्तमान भी एवं भविष्य भी। किसी भी घटना, प्रक्रिया अथवा परम्परा को भली-भाँति समझने के लिए कई बार उसके अतीत में झाँककर देखना भी आवश्यक होता है। इसी पृष्ठभूमि में ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में ऐतिहासिक अनुसंधान का सूत्रपात एवं विकास हुआ।
- शिक्षा एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में ऐसा बहुत कुछ है जिसकी जड़ें अतीत की घटनाओं तक फैली हैं। अत: उसके वर्तमान स्वरूप को पूर्णतया समझने के लिए उसके अतीत को जानना भी आवश्यक है।
- सभी ऐतिहासिक अध्ययन वर्णनात्मक (descriptive) एवं विश्लेषणात्मक (analytical) प्रकार के होते हैं। उनमें घटना के अतीत की जानकारी देने वाले प्रलेखों, प्रपत्रों, स्मारकों, पुस्तकों, अभिलेखों, ऐतिहासिक अवशेषों आदि का अध्ययन किया जाता है।

8.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **अत्तरज (Secondary)**–ऐतिहासिक शोध-सामग्री के गौण स्रोत।
2. **विगतकालीन**–जो घटनाएँ अतीत में घटित हुई हों।

8.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. ऐतिहासिक अनुसंधान के अर्थ एवं स्वरूप को स्पष्ट करते हुए उसकी प्रक्रिया का वर्णन करें।
2. ऐतिहासिक अनुसंधान की प्रमुख विधि 'साक्ष्य-समालोचना' का वर्णन करें।
3. ऐतिहासिक अनुसंधान का मूल्यांकन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. भविष्य	2. इतिहास	3. विश्लेषणात्मक	4. उपकल्पना
5. सत्य	6. असत्य	7. असत्य	8. सत्य।

8.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*

नोट

इकाई 9 : प्रयोगात्मक अनुसंधान (Experimental Research)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

9.1 प्रयोग: अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Structure of Experiment)

9.2 प्रयोगशालागत प्रयोग (True Experiment)

9.3 क्षेत्र-प्रयोग (Field Experiment)

9.4 क्षेत्र-अध्ययन (Field Studies)

9.5 प्रयोगात्मक सिमुलेशन (Experimental Simulation)

9.6 सारांश (Summary)

9.7 शब्दकोश (Keywords)

9.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

9.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- प्रयोगात्मक अनुसंधान के अर्थ एवं स्वरूप को समझने में;
- प्रयोगशालागत प्रयोग एवं क्षेत्र-प्रयोग को समझने में;
- क्षेत्र-अध्ययन एवं प्रयोगात्मक सिमुलेशन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

प्रयोगात्मक अनुसंधान में वर्णनात्मक एवं ऐतिहासिक अनुसंधान के विपरीत शोधकर्ता अध्ययन की किसी परिस्थिति का जिसे वह उपयुक्त समझता है यथेच्छ रूप में प्रयोग (manipulate) करता है। **हेमैन** के अनुसार, वह स्वयं किसी परिस्थिति अथवा घटना को यथेच्छ उत्पन्न करता है तथा उसके प्रभाव का अध्ययन करता है। प्रयोगात्मक अनुसंधान की रूपरेखा स्पष्ट करने के लिए यह बताना अत्यन्त आवश्यक है कि प्रयोग किसे कहते हैं।

9.1 प्रयोग: अर्थ एवं स्वरूप (Experiment: Meaning and Structure)

नोट

सत्य अथवा वास्तविक प्रयोग (true experiment) केवल प्रयोगशाला में ही किया जा सकता है क्योंकि उसकी मान्य प्रक्रिया (standard procedure) का पालन करना प्रयोगशाला में ही संभव हो सकता है। शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्रों में इस मान्य प्रक्रिया का पूर्णतया पालन किया जाना संभव नहीं हो पाता क्योंकि इन क्षेत्रों में अधिकतर जिन को लेकर अध्ययन किए जाते हैं बहुत जटिल होते हैं, तथा प्रयोगशाला में उनका अध्ययन नहीं किया जा सकता।

प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य अत्यन्त नियंत्रित परिस्थितियों में दो चरों, एक स्वतंत्र तथा दूसरा आश्रित के बीच क्रियात्मक (functional) संबंधों को ज्ञात करना होता है, अथवा यों कहें कि किसी घटना के घटने के पीछे जो परिस्थितियाँ कारक रूप में रहती हैं उनकी खोज करना प्रयोग का उद्देश्य होता है। क्या परिस्थिति 'क' परिस्थिति 'ख' का कारण है? क्या चर 'क' चर 'ख' से संबंधित है? इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने हेतु प्रयोग का सहारा लिया जाता है। एक मोटे उदाहरण के लिए "क्या बालकों की बुद्धि का स्तर उनकी शैक्षिक उपलब्धि का कारण होता है?" "क्या सुबह-सुबह चाय पीने से ताजगी आती है?"

उदाहरण "क्या माता-पिता के आपसी झगड़े उनके बच्चों में व्यवहार संबंधी समस्याएँ उत्पन्न करते हैं?"

ऐसी समस्याएँ हैं जिनके समाधान प्रयोगात्मक अनुसंधान के माध्यम से ही संभव होते हैं। अत: प्रयोग एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत एक चर (स्वतंत्र) के दूसरे चर (आश्रित) पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन कुछ अन्य प्रमुख चरों (नियंत्रित चरों) को नियंत्रित करके किया जाता है। जहाँ यह नियंत्रण अत्यन्त कठोर होता है तथा स्वतंत्र चर को यथेच्छ प्रयोग करने की पूर्ण स्वतंत्रता शोधकर्ता को होती है (जैसे प्रयोगशाला में) उसे सत्य अथवा वास्तविक (True Experiment) प्रयोग कहते हैं। जैसे-जैसे यह नियंत्रण एवं स्वतंत्रता घटती जाती है, अध्ययन वास्तविक प्रयोग की स्थिति से दूर हटता जाता है। ऐसे प्रयोगों को अपूर्ण अथवा अर्धसत्य प्रयोग (quasi experiment) कहते हैं। **स्नौडग्रास-बर्गर-हाइडन** के अनुसार, इस दृष्टिकोण से सम्पन्न प्रयोगों में बहुत भिन्नता पाई जाती है। एक छोर पर सत्य अथवा वास्तविक प्रयोग (laboratory experiments) हैं तो दूसरे छोर पर अति अनियंत्रित सहसंबंधात्मक (correlational) एवं निरीक्षणात्मक (observational) प्रयोग। इन लेखकों के अनुसार प्रयोग की द्वितत्वी कसौटी का उल्लेख किया गया है। ये दो तत्व हैं–

(*i*) कम से कम दो परिस्थितियों अथवा तुलनीय समूहों का होना तथा

(*ii*) स्वतंत्र चर जिसके आधार पर तुलना हेतु समूह बनाए जाते हैं, के यथेच्छ प्रयोग एवं प्रहस्तन की स्वतंत्रता।

स्वतंत्र चर के यथेच्छ प्रयोग से तात्पर्य है कि शोधकर्ता अध्ययनगत किसी भी इकाई को स्वतंत्र चर-आधारित किसी भी समूह, उपचार (treatment) के अन्तर्गत रख सके। ऐसा सम्भव न होने की स्थिति में शोधकर्ता को इकाइयों के समूहों को उसी रूप में स्वीकार करना पड़ता है जिस रूप में वे वातावरण में स्थिर पाए जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि यह अध्ययन करना है कि कैफीन का व्यक्ति की क्रियाशीलता पर क्या प्रभाव पड़ता है तो कैफीन (स्वतंत्र चर) पर हम तीन समूह बनाते हैं। एक उन व्यक्तियों का जिन्हें बहुत अधिक कैफीन दी जाती है, दूसरा जिन्हें कम तथा तीसरा जिन्हें बहुत कम कैफीन दी जाती है। फिर उनकी क्रियाशीलता का मापन करते हैं तथा उसके आधार पर तीनों समूहों की तुलना करते हैं। यदि क्रियाशीलता में भी वही क्रम मिलता है अर्थात् सबसे अधिक कैफीन वाले समूह की क्रियाशीलता कुछ कम तथा सबसे कम कैफीन वाले समूह की क्रियाशीलता सबसे कम पाई जाती है तो यह कहा जा सकता है कि कैफीन क्रियाशीलता को बढ़ाती है अर्थात् कैफीन का क्रियाशीलता पर प्रभाव पड़ता है। इसमें ध्यान देने की बात यह है कि शोधकर्ता को किसी भी व्यक्ति को किसी भी समूह में रखने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। वह समसंभाविक विधि (randomly) से किसी भी व्यक्ति को किसी समूह अथवा उपचार के अन्तर्गत

नोट

रख सकता है। दूसरे शब्दों में, किसी भी उपचार (treatment) अथवा स्वतंत्र चर की स्थिति जिसका वह स्वयं सृजन करता है, को किसी भी अध्ययनगत इकाई (व्यक्ति) पर आरोपित कर सकता है। इसी क्रिया को स्वतंत्र चर का प्रहस्तन अथवा यथेच्छ प्रयोग (manipulation of independent variable) कहते हैं। परन्तु यदि हम व्यक्तियों की संवेगात्मक तीव्रता का उनकी क्रियाशीलता पर पड़े प्रभाव का अध्ययन करते हैं तो यह यथेच्छ प्रयोग संभव नहीं होगा क्योंकि व्यक्तियों की संवेगात्मक तीव्रता को नहीं बदला जा सकता। अत: उन्हें यथा-इच्छा किसी भी समूह में नहीं रखा जा सकता। जिसमें संवेगात्मक तीव्रता बहुत अधिक है उसे केवल बहुत तीव्रता वाले समूह में ही रखा जा सकता है, कम अथवा बहुत कम तीव्रता वाले समूह में नहीं। सत्य प्रयोग की यह सबसे बड़ी विशेषता है कि उसमें स्वतंत्र चर का प्रहस्तन अथवा यथेच्छ प्रयोग सम्भव होता है जिसके द्वारा प्रयोग में नियंत्रण बढ़ता है तथा त्रुटि घटती है।

सत्य प्रयोग की उपरोक्त विशेषता के कारण उसके परिणामों की आन्तरिक वैधता (internal validity) अथवा सुतथ्यता (precision) बढ़ जाती है अर्थात् यह कहना अधिक सही होता है कि अध्ययन अथवा आश्रित चर घटना (dependent variable) उसी तत्व (independent variable) के कारण घटती है जिसके प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है।

परन्तु सभी परिस्थितियों में यह यथेच्छ प्रयोग संभव नहीं होता। किन्हीं परिस्थितियों में यह अव्यावहारिक एवं अनैतिक भी हो सकता है। तब शोधकर्ता के समक्ष नैसर्गिक रूप में वातावरण में स्थित (naturally occuring) समूहों को लेने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह जाता, परन्तु इस परिस्थिति में किए गए प्रयोगों को सत्य प्रयोग न मानकर उनको अर्ध-सत्य अथवा सहसंबंधात्मक अथवा केवल निरीक्षणात्मक अध्ययनों की श्रेणी में ही रखा जाता है। उनमें केवल संबंध तो स्थापित होता है, परन्तु कार्य-कारण की स्थापना नहीं हो पाती। वास्तव में कारणान्वेषण का नियम प्रयोग की सबसे बड़ी विशेषता है जो **मिल** के "एक-चरी नियम" (law of single variable) पर आधारित होता है, जिसका अर्थ है आश्रित चर को प्रभावित करने वाले समस्त चरों को नियंत्रित करके केवल एक चर को प्रभावी अथवा क्रियाशील रहने दिया जाना। यह सही है कि इतना नियंत्रण शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्रों में किए जाने वाले प्रयोगों में सम्भव नहीं हो पाता, परन्तु इसके साथ ही यह बात भी सही है कि संबंधित तत्वों एवं चरों का प्रभाव परिणामों की शुद्धता को कुप्रभावित करता है तथा प्रयोग में त्रुटि की मात्रा को बढ़ाता है।

प्रयोगात्मक अनुसंधान के प्रकार

नोट्स प्रयोगात्मक अनुसंधान का प्रयोग ही मूलभूत आधार होता है।

प्रयोग की उपरोक्त विशेषताओं एवं नियमों के दृष्टिकोण से प्रयोगात्मक अनुसंधान के निम्नलिखित भेद किए गए हैं–

1. प्रयोगशालागत प्रयोग (True Experiment)
2. क्षेत्र-प्रयोग (Field Experiment)
3. क्षेत्राध्ययन (Field Studies)
4. घटनोत्तर अध्ययन (Expost-facto studies)
5. प्रयोगात्मक सिमुलेशन (Experimental Simulation)।

नोट

उपरोक्त सभी प्रकार के अध्ययन प्रयोगात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत आते हैं क्योंकि सभी में चरों के बीच कारण-कार्य संबंध स्थापित करना उद्देश्य रहता है, परन्तु अध्ययन कहाँ और किस प्रकार किया जाता है, इस दृष्टिकोण से उनमें परस्पर अन्तर पाया जाता है। प्रत्येक की विस्तृत व्याख्या आगे की गई है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. सत्य अथवा वास्तविक प्रयोग केवल ..... में ही किया जा सकता है।
2. प्रयोग का मुख्य उद्देश्य नियंत्रित परिस्थितियों में दो चरों के बीच ..... संबंधों को ज्ञात करना है।
3. कारणान्वेषण का नियम ..... के 'एक-चरी नियम' पर आधारित है।

9.2 प्रयोगशालागत प्रयोग (True Experiment)

प्रयोगशाला में किए गए प्रयोगों के माध्यम से जो अनुसंधान किए जाते हैं, उन्हें सत्य अथवा वास्तविक (true) प्रयोगात्मक अध्ययन के रूप में स्वीकार किया गया है क्योंकि अध्ययन की सम्पूर्ण परिस्थिति अत्यधिक नियंत्रित होती हैं। अन्य प्रयोगात्मक अध्ययनों से प्रयोगशाला में किए गए प्रयोग कई प्रकार से भिन्न होते हैं–

सावधानी प्रयोगात्मक अध्ययन केवल प्रयोगशाला में ही किए जाते हैं।

दूसरे इनमें स्वतंत्र चर का यथेच्छ प्रयोग, समसंभाविक विधि से इकाइयों का समूहों में विभाजन तथा उपचारों (treatments) को इकाइयों पर आरोपित करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है।

दूसरे शब्दों में, स्वतंत्र एवं आश्रित चरों के पारस्परिक संबंधों को प्रभावित करने वाले तत्वों को लगभग पूर्ण रूप से नियंत्रित करना संभव होता है। फलस्वरूप उपलब्ध परिणाम की व्याख्या का एक ही रूप रहता है कि 'क' कारण है 'ख' का। इसके अतिरिक्त यदि कोई और व्याख्या संभव होती है तो उस सीमा तक परिणाम को वैध नहीं कहा जा सकता अर्थात् यदि परिणाम ऐसा है कि 'ख' का कोई और कारण भी संदिग्ध है तो वह विश्वसनीय एवं वैध नहीं समझा जा सकता। यह एक आदर्श स्थिति है। यथार्थता यह है कि प्रयोगात्मक अध्ययनों का शत-प्रतिशत वैध होना बहुत कठिन है। कुछ न कुछ त्रुटि प्रत्येक प्रयोग में रहती ही है, परन्तु प्रयोगशाला में किए गए प्रयोग जिस बात में दूसरे प्रयोगात्मक अध्ययनों से भिन्नता रखते हैं वह है उनकी मानव-निर्मित व्यवस्था (contrived setting)। **कर्लिंगर** के अनुसार, प्रयोगशालागत प्रयोग के तीन प्रमुख लक्ष्य होते हैं–

(*i*) शुद्ध एवं दोषरहित परिस्थितियों में घटनाओं के बीच क्रियमाण (functional) संबंध को ज्ञात करना,

(*ii*) दूसरे अध्ययनों एवं सिद्धांतों के आधार पर प्रस्तावित भविष्यवाणियों का परीक्षण करना,

(*iii*) सिद्धांतों एवं उपकल्पनाओं की परिभाषा करना, नयी उपकल्पनाओं का सृजन करना तथा सैद्धांतिक तंत्र (theoretical system) का निर्माण करना।

प्रयोगात्मक अनुसंधान मूलत: सिद्धांत-निरूपण से संबंधित है। नवीनतम विश्वसनीय एवं वैध ज्ञान के सृजन का अत्यन्त उपयोगी एवं प्रभावशाली माध्यम है, परन्तु यह बात तभी सही होती है जब प्रयोग पूर्णतया नियंत्रित ढंग से किया जाता है जोकि प्रत्येक परिस्थिति में सम्भव नहीं होता। इसीलिए कुछ प्रयोगात्मक अध्ययन अधिक विश्वसनीय एवं वैध होते हैं तथा कुछ कम।

नोट

9.3 क्षेत्र-प्रयोग (Field Experiment)

क्या आप जानते हैं जब कोई प्रयोग प्रयोशाला में किया जाता है तो उसे प्रयोगशाला प्रयोग (laboratory experiment) अथवा सत्य प्रयोग (true experiment) कहते हैं। जब प्रयोग प्रयोगशाला से बाहर खुले क्षेत्र (field) में किया जाता है तो उसे क्षेत्र-प्रयोग कहते हैं।

क्षेत्र प्रयोगशाला से बहुत भिन्न होता है और यह भिन्नता क्षेत्र-प्रयोग के स्वरूप को भी प्रभावित करती है। प्रयोगशाला में शोधकर्ता के लिए प्रत्येक परिस्थिति को नियंत्रित करना संभव होता है। वह जब चाहे अध्ययन की व्यवस्था में अभीष्ट परिवर्तन कर सकता है। इसके विपरीत क्षेत्र बहुत विस्तृत होता है तथा उसमें अनेक तत्व, परिस्थितियाँ, चर क्रियाशील रहते हैं तथा उनको नियंत्रित कर पाना शोधकर्ता के लिए संभव नहीं होता। अनेक क्षेत्रीय शक्तियाँ (field forces) एक-दूसरे को एक साथ प्रभावित करते रहते हैं। इन्हें नियंत्रित करना तो दूर रहा यह जानना भी सरल नहीं होता कि किसी अध्ययन की स्थिति में कौन-कौन से तत्व कार्य कर रहे हैं तथा परिणामों को प्रभावित कर रहे हैं। अत: प्रयोगशाला से बाहर क्षेत्र में किए गए प्रयोग उनसे भिन्न होते हैं जो प्रयोगशाला में किए जाते हैं। इन प्रयोगों को क्षेत्र-प्रयोग कहा जाता है।

अर्थ एवं स्वरूप

इन प्रयोगों का भी तार्किक आधार तो वही होता है जो प्रयोगशालागत प्रयोगों का होता है। इनमें भी एक या दो स्वतंत्र चरों का यथेच्छ प्रयोग किया जाता है। इनमें भी शोधकर्ता स्वतंत्र चर के कई स्तर बनाकर अनुसंधानगत इकाइयों (subjects) को तदाधारित समूहों में रखकर आश्रित चर पर उनका मापन करता है तथा परिणामों की तुलना करके निष्कर्ष प्राप्त करता है। इसमें सत्य प्रयोग की भाँति तुलनीय समूह स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तरों के आधार पर बनाए जाते हैं। अधिकतर तो यह समूह बने बनाए निश्चित रहते हैं, अर्थात् कौन इकाइयाँ किस समूह में रहेंगी, यह निश्चित रहता है। शोधकर्ता उनका केवल चयन करता है। जैसे, अधिक बुद्धिमान तथा कम बुद्धिमान दो समूह बनाने पर अधिक बुद्धिमान बच्चे अधिक बुद्धिमान वर्ग में ही रहेंगे। शोधकर्ता को उनमें से कुछ को अध्ययन हेतु केवल चुनना भर होता है। परन्तु कुछ परिस्थितियों में समसंभाविक विधि से इच्छानुसार किसी भी समूह (उपचार) में इकाइयों का वितरण संभव होता है। इस दृष्टिकोण से क्षेत्र-प्रयोग, प्रयोगशालागत प्रयोग के समान ही होता है, परन्तु उसे वह इस दृष्टिकोण से भिन्न होता है कि उसकी व्यवस्था, प्रक्रिया को क्षेत्र के नैसर्गिक वातावरण में इकाइयों के स्वाभाविक व्यवहारों के आधार पर सम्पन्न किया जाता है। अत: क्षेत्र के वातावरण में व्याप्त बहुत-सी उन परिस्थितियों का नियंत्रण नहीं हो पाता जिससे उनके पारिवारिक वातावरण के प्रभाव का अध्ययन करना है तो पारिवारिक वातावरण (स्वतंत्र चर) के आधार पर अनुकूल एवं प्रतिकूल वातावरण में रहने वाले बालकों के दो समूह बनाए जा सकते हैं। यहाँ यह संभव नहीं है कि बालकों को समसम्भाविक विधि द्वारा (randomly) इस अथवा उस समूह में रखा जा सके। जो जिस वर्ग का है उसी में रहेगा। ये तो बालकों के नैसर्गिक समूह हैं जो पहले से विद्यमान हैं। हाँ! यह सम्भव है कि दो-तीन अन्य संबंधित (correlated) चरों पर दोनों समूहों के बालकों में समानता स्थापित कर ली जाए, परन्तु अपनी इच्छा से समूहों का निर्माण सम्भव नहीं है।

प्रयोग की विभेदक विशेषता यह है कि उसमें शोधकर्ता स्वतंत्र चर से आरंभ करके आश्रित चर की ओर जाता है, अर्थात् पहले वह स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तर चुनकर उनके आधार पर प्रयोगाधीन समूहों का सृजन करता है। तत्पश्चात् उन समूहों के आश्रित चराधारित व्यवहारों का मापन करता है। इस दृष्टिकोण से क्षेत्र-प्रयोग तथा प्रयोगशाला में किए गए प्रयोग एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। क्षेत्र-प्रयोग में समसंभाविक विधि द्वारा स्वतंत्र चर पर इकाइयों के समूह बनाने, अर्थात् स्वतंत्र चर के यथेच्छ प्रयोग की संभावना कम होती है। साथ ही संबंधित चरों के

नोट

नियंत्रण की सम्भावना भी उसमें कम होती है। अत: प्रयोगशालागत प्रयोगों की तुलना में क्षेत्र-प्रयोगों के परिणामों की शुद्धता (precision) एवं वैधता कम होती है। अनियंत्रित चरों के प्रभाव के कारण परिणाम अधिक त्रुटिपूर्ण होते हैं। यह अन्तर इसलिए होता है कि क्षेत्र-प्रयोग प्रयोगशाला के बाहर क्षेत्र में किए जाते हैं जिसके अनेक तत्वों पर शोधकर्ता नियंत्रण नहीं कर पाता।

मूल्यांकन

यद्यपि क्षेत्र-प्रयोगों की विश्वसनीयता एवं वैधता प्रयोगशालागत प्रयोगों की तुलना में कम होती है तथा उनकी अपनी सीमाएँ हैं तो भी शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में उनकी उपयोगिता बहुत अधिक है। इन क्षेत्रों में जो अध्ययन किए गए हैं उनमें से अधिकतर क्षेत्र-प्रयोग ही मिलेंगे। इन क्षेत्रों में अधिकतर शोध परिस्थितियाँ ऐसी हैं जिनमें प्रयोगशालागत प्रयोग किए ही नहीं जा सकते। केवल क्षेत्र-प्रयोग ही सम्भव हैं। इसलिए इन क्षेत्रों में उनका विशेष महत्त्व है। यदि सतर्कता से मध्यवर्ती (intervening) एवं संबंधित (correlated) चरों को नियंत्रित करने का प्रयास किया जाए तो उनके दोषों को बहुत हद तक कम किया जा सकता है तथा प्रयोगशालागत प्रयोगों के लगभग समकक्ष लाया जा सकता है।

क्षेत्र-प्रयोग इस दृष्टिकोण से अधिक उपयोगी होते हैं कि उनमें अध्ययनगत इकाइयों के व्यवहार नैसर्गिक होने के कारण परिणामों की बाह्य वैधता (सामान्यीकरण की व्यापकता) बढ़ जाती है जो प्रयोगशालागत प्रयोगों में अतिनियंत्रणाधीन होने एवं शोधकर्ता द्वारा उत्पन्न किए जाने के फलस्वरूप, इकाइयों के व्यवहार अस्वाभाविक होने के कारण सदैव कम रहती है।

दूसरा लाभ क्षेत्र-प्रयोगों का यह है कि उन छोटे समूहों की गत्यात्मकता एवं स्वाभाविक सामाजिक प्रक्रियाओं का अधिक प्रभावपूर्ण ढंग से अध्ययनन किया जा सकता है जो प्रयोगशाला के प्रयोगों में न तो सम्भव होती है और न सार्थक।

तीसरा लाभ यह है कि व्यावहारिक समस्याओं के समाधान खोजने एवं सिद्धांतों के सत्यापन हेतु ये अधिक उपयुक्त हैं। साथ ही उनकी प्रक्रिया अधिक लचीली होने के कारण बहुत से प्रकार की परिस्थितियों में उनका प्रयोग संभव है।

इन प्रयोगों के दो ही दोष हैं–एक तो इनमें स्वतंत्र चर के यथेच्छ प्रयोग (manipulation) की सम्भावना कम होती है तथा दूसरे उनमें इकाइयों को समसंभाविक विधि (randomization) द्वारा समूहों में वितरित करना भी संभव नहीं हो पाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. प्रयोगात्मक अनुसंधान मूलत: ..... निरूपण से संबंधित है।
   (क) व्यवस्था (ख) सिद्धांत (ग) प्रयोग (घ) क्षेत्र
5. जब कोई प्रयोग, प्रयोगशाला में किया जाता है तो उसे ..... प्रयोग कहते हैं।
   (क) क्षेत्र (ख) अध्ययन (ग) सत्य (घ) निरीक्षण
6. प्रयोगशालागत प्रयोग की तुलना में क्षेत्र प्रयोग की शुद्धता एवं वैधता ..... होती है।
   (क) अधिक (ख) कम (ग) बिल्कुल नहीं (घ) इनमें से कोई नहीं
7. व्यावहारिक समस्याओं के समाधान खोजने एवं ..... के सत्यापन हेतु क्षेत्र प्रयोग अधिक उपयुक्त है।
   (क) सिद्धांत (ख) अध्ययन (ग) परीक्षण (घ) व्यवस्थापन।

नोट

9.4 क्षेत्र-अध्ययन (Field Studies)

क्षेत्र-अध्ययन (field studies) भी प्रयोगात्मक अनुसंधान की श्रेणी में आते हैं क्योंकि उनमें भी कारण-कार्य संबंध स्थापित करने का प्रयास किया जाता है, परन्तु ये भी प्रयोगशाला प्रयोग (true experiment) (सत्य प्रयोग) एवं क्षेत्र प्रयोग से भिन्न होते हैं।

अर्थ एवं स्वरूप

कर्लिंगर के अनुसार, क्षेत्र-अध्ययन (field studies) घटनोत्तर अध्ययन (expost facto studies) ही हैं जिनका उद्देश्य वास्तविक सामाजिक व्यवस्था में क्रियमाण समाजशास्त्रीय, शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक चरों के बीच संबंधों तथा अन्त:क्रियाओं की खोज करना होता है। स्पष्ट है कि क्षेत्र-अध्ययन (*i*) घटनोत्तर अध्ययन होते हैं तथा (*ii*) जीवन की यथार्थ परिस्थितियों में ही अर्थात् व्यवहारों के वास्तविक परिवेश (setting) जैसे विद्यालय, परिवार, समुदाय आदि में ही उन्हें किया जाता है। व्यवहार-परिवेश में कोई हेर-फेर नहीं किया जाता है तथा अध्ययनगत व्यवहार जिनका निरीक्षण एवं मापन किया जाता है वास्तविक एवं नैसर्गिक होते हैं। उन्हें शोधकर्ता द्वारा किसी प्रक्रिया के माध्यम से उत्पन्न नहीं किया जाता। **बार्कर** (1965) के अनुसार, इन अध्ययनों में शोधकर्ता केवल एक हस्तक्षेपक (transducer) मात्र होता है। इन अध्ययनों की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इनमें व्यवहार का उसी रूप में अध्ययन किया जाता है जिस रूप में वह घटित होता है। **कर्लिंगर** के शब्दों में, इन अध्ययनों में शोधकर्ता किसी स्वतंत्र चर का यथेच्छ प्रयोग (manipulation) नहीं करता।

क्षेत्र-अध्ययन तथा क्षेत्र-प्रयोग दोनों में तथा क्षेत्र-अध्ययन और प्रयोगशालागत प्रयोग में अन्तर यह होता है कि क्षेत्र-अध्ययन में तुलनागत समूहों का सृजन आश्रित चर के आधार पर किया जाता है जबकि अन्य दोनों में उनका सृजन स्वतंत्र चर के आधार पर किया जाता है। जैसे, यदि बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच कारण-कार्य संबंध का अध्ययन करना है तो क्षेत्र-अध्ययन में कम उपलब्धि तथा अधिक उपलब्धि वाले छात्रों के समूह बनायेंगे तथा दोनों समूहों की बुद्धि के आधार पर तुलना करेंगे। अन्य दोनों प्रकार के प्रयोगों में कम बुद्धिमान तथा अधिक बुद्धिमान दो समूह बुद्धि के आधार पर बनायेंगे और फिर उपलब्धि के आधार पर उनकी तुलना करेंगे।

काज ने इन अध्ययनों के दो प्रकारों का उल्लेख किया है–

1. समन्वेषी (Exploratory) एवं
2. उपकल्पना-परीक्षक (Hypothesis testing)।

समन्वेषी अध्ययनों में "क्या है" की व्याख्या की जाती है जबकि उपकल्पना-परीक्षक अध्ययनों में चरों के पारस्परिक संबंधों को ज्ञात करने का प्रयास किया जाता है। छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि की खोज, संस्थागत वातावरण को प्रभावित करने वाले तत्वों की खोज आदि उपकल्पना-परीक्षक अध्ययनों के उदाहरण हो सकते हैं।

मूल्यांकन

कर्लिंगर का मत है कि क्षेत्र-अध्ययनों में "यथार्थता, महत्त्व, चरों की सुदृढ़ता, सिद्धांतोन्मुखता एवं प्रश्नवाची विशेषता अधिक होती है।" क्योंकि ये अध्ययन जीवन की वास्तविक परिस्थितियों में किए जाते हैं, अत: उनके परिणाम अन्य समान परिस्थितियों पर भी लागू माने जा सकते हैं। इस दृष्टिकोण से वे यथार्थता के काफी समीप माने जाते हैं। महत्त्वपूर्ण इसलिए माने जाते हैं कि उनके द्वारा अध्ययनगत घटनाओं के विषय में बहुत सारी जानकारी प्राप्त होती है जिसको लेकर बाद में बहुत-से नियंत्रणपूर्ण प्रयोग किए जा सकते हैं। चरों की सुदृढ़ता से तात्पर्य यह है कि नैसर्गिक परिवेश में वास्तविक व्यवहारों का अध्ययन होने के कारण चरों की व्यवहारों में अभिव्यक्ति अधिक स्पष्ट रूप से हो पाती है। प्रयोगशाला में ये व्यवहार दब जाते हैं। इनमें चरों की पूर्ण अभिव्यक्ति नहीं हो पाती। उदाहरण के लिए, यदि हम विद्यार्थियों की उपलब्धि की प्रेरणा का मापन स्कूल में करें तो वह अधिक उभरकर आएगी। प्रयोगशाला में उसकी अभिव्यक्ति उतनी अच्छी नहीं होगी। इन अध्ययनों में केवल तथ्यों का ही संकलन

नोट

नहीं होता, बल्कि सिद्धांत-निरूपण की संभावना भी पर्याप्त रहती है। प्रश्नवाची होने का अर्थ है कि इन अध्ययनों के परिणाम बहुत-से नये प्रश्नों को जन्म देते हैं, जिनके उत्तर प्राप्त करने हेतु पुनः और अध्ययन करने की आवश्यकता होती है। जैसे, यदि किसी अध्ययन में यह परिणाम निकलता है कि बालकों के आत्मबोध (self-concepts) उनके पारिवारिक परिवेश से प्रभावित होते हैं तो इससे कई नये प्रश्न उभर कर आते हैं: क्या ऐसा बालक तथा उसके माता-पिता के बीच के संबंधों के कारण होता है, क्या परिवार के बच्चों के पारस्परिक संबंधों के कारण होता है, क्या परिवार की आर्थिक-सामाजिक स्थिति इसका कारण है आदि।

टास्क क्षेत्र-अध्ययन का मूल्यांकन करें।

इन सब सद्‌गुणों के होते हुए भी इन अध्ययनों के कुछ दोष भी हैं। वे सभी दोष जिनका उल्लेख घटनोत्तर अनुसंधान के विषय में किया गया है, क्षेत्र-अध्ययनों में भी हैं। प्रयोगशालागत प्रयोगों एवं क्षेत्र-प्रयोगों की तुलना में क्षेत्र-अध्ययनों के परिणाम कम विश्वसनीय एवं वैध होते हैं। इसका कारण यही है कि इनमें न तो स्वतंत्र चर का यथेच्छ प्रयोग होता है और न समसंभाविक विधि द्वारा निर्माण। नियंत्रण का अभाव ही इन दोषों का कारण होता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False)

8. प्रयोग का उद्देश्य घटना के कारणों की खोज करना है।
9. सत्य प्रयोग खुले क्षेत्र में किये जाते हैं।
10. कर्लिंगर के अनुसार क्षेत्र अध्ययन, घटनोत्तर अध्ययन ही हैं।
11. प्रयोगात्मक सिमुलेशन का प्रयोग व्यवहार-विज्ञान में कुछ वर्षों पहले आरंभ हुआ।

9.5 प्रयोगात्मक सिमुलेशन (Experimental Simulation)

यह भी प्रयोगात्मक अनुसंधान की एक विधि है। कुछ क्षेत्रों में इसका प्रयोग बहुत पहले से होता आ रहा है, परन्तु व्यवहार-विज्ञान के क्षेत्र में उसका प्रयोग अभी कुछ ही वर्षों से होना आरंभ हुआ है।

अर्थ एवं स्वरूप

इन अध्ययनों में अध्ययनगत व्यवहारों जिनमें अध्ययनगत चरों की अभिव्यक्ति होती है, के परिवेशों का अस्वाभाविक सृजन किया जाता है जो वास्तविक परिवेशों के बहुत समान होता है। जैसे, यह जानने के लिए कि कोई शिक्षण-विधि नवीं कक्षा को पढ़ाने हेतु कितनी प्रभावशाली है–छात्राध्यापक वास्तविक कक्षा में उसका प्रयोग न करके अपने साथियों को ही बैठाकर उसे कक्षा 9 ही समझकर पढ़ाते हैं तथा कुछ दिन बाद उस शिक्षण विधि का मूल्यांकन करते हैं, यह प्रयोग सिमुलेशन प्रयोग कहलाएगा। इसमें यह आवश्यक है कि अस्वाभाविक परिस्थिति अधिक से अधिक वास्तविक परिस्थिति के समान हो।

प्रयोगशालागत अनुसंधान की भाँति सिमुलेटिड प्रयोग में भी चरों का नियंत्रण, स्वतंत्र चर का यथेच्छ प्रयोग तथा समसंभाविक विधि आदि का समावेश रहता है। प्रबंधन (management) विज्ञान के क्षेत्र में बहुत से खेलों का आविष्कार किया गया है जो प्रबंधन-विज्ञान के सूत्रों, नियमों आदि के क्रियान्वयन एवं उनकी सफलता को दर्शाने के सशक्त माध्यम हैं।

नोट

मूल्यांकन

सिमुलेटिड अनुसंधान व्यवहार-विज्ञान के क्षेत्र में अधिक प्रचलित नहीं हैं। सम्भवत: इसका कारण यह है कि व्यवहार-विज्ञान के क्षेत्र में इस प्रकार के अध्ययनों की सम्भावना कम है तथा उनके परिणामों को वास्तविक परिस्थितियों में हस्तांतरित करने पर उनकी उपयोगिता अधिक नहीं पाई जाती है।

अन्तिम निष्कर्ष

इस अध्याय में अनुसंधान की छ: विधियों का उल्लेख किया गया है। इनमें से प्रत्येक के अपने गुण-दोष हैं। यह सोचना उचित नहीं है कि यह विधि सर्वोत्तम है तथा वह विधि अनुपयुक्त है। कौन सर्वोत्तम विधि है यह अध्ययन के उद्देश्यों एवं परिस्थितियों पर निर्भर करता है। व्यवहार-विज्ञानों से संबंधित अनुसंधानों की वास्तविकता यह है कि शोधकर्ता को उनमें सदैव शुद्धता (precision) तथा यथार्थता (realism) के बीच, आन्तरिक एवं बाह्य वैधता के बीच, नियंत्रित व्यवस्था एवं नैसर्गिक व्यवस्था के बीच समझौता करना पड़ता है। इस परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर प्रतीत होता है कि क्षेत्र-अध्ययनों में सबसे अधिक यथार्थता एवं व्यवहारों की वास्तविकता रहती है। क्षेत्र-प्रयोग इनसे थोड़ा हटकर चरों के नियंत्रण एवं यथेच्छ प्रयोग की दिशा में चले जाते हैं। प्रयोगशालागत प्रयोग जैसा है उसे एवं स्वाभाविक व्यवहार-व्यवस्था को पूर्णतया नकारकर यथार्थता से बहुत दूर चले जाते हैं। सिमुलेटिड प्रयोग यथार्थता से सबसे अधिक दूर होते हैं।

प्रत्येक शोधकर्ता को एक बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिए कि "यथार्थता", "शुद्धता" एवं "सामान्यीकरण" प्रत्येक अध्ययन में अति वांछनीय हैं, परन्तु सबकी एक साथ वृद्धि संभव नहीं है। प्रयोगशालागत प्रयोगों में **शुद्धता, नियंत्रण** तथा **यथेच्छ प्रयोग**, सबसे अधिक होता है, परन्तु क्रमश: सिमुलेटिड प्रयोग, क्षेत्र-प्रयोग तथा क्षेत्र अध्ययनों में ये तीनों विशेषताएँ कम होती जाती हैं और इसके विपरीत उनमें उसी क्रम में यथार्थता तथा स्वाभाविक व्यवहार-व्यवस्था बढ़ती जाती हैं। ये तीनों विशेषताएँ शुद्धता, नियंत्रण एवं यथेच्छ प्रयोग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं, परन्तु तीनों की एक ही अध्ययन में वांछनीय समान वृद्धि संभव नहीं हो सकतीं। इस बिन्दु पर आकर शोधकर्ता एक बड़ी विषम परिस्थिति में फंस जाता है। यदि वह एक विशेषता में वृद्धि करने का प्रयास करता है तो दूसरी स्वत: ही घटने लगती है। अत: कौन-सी सही विधि है, इस झमेले में न पड़कर उसे उस विधि को अपनाना चाहिए जो अध्ययन के उद्देश्यों एवं परिस्थितियों के संदर्भ में सबसे अच्छी हो। उसका चयन करके उसके दोषों को यथासंभव कम करके तथा उसके गुणों को सबल बनाकर उसे अधिक से अधिक उपयोगी बनाने का प्रयास करना चाहिए। अनुसंधान विधि के चयन में यही सबसे अच्छा एवं सकारात्मक दृष्टिकोण प्रतीत होता है।

9.6 सारांश (Summary)

- प्रयोग का प्रमुख उद्देश्य अत्यन्त नियंत्रित परिस्थितियों में दो चरों, एक स्वतंत्र तथा दूसरा आश्रित के बीच क्रियमाण (functional) संबंधों को ज्ञात करना होता है।
- किसी भी उपचार (treatment) अथवा स्वतंत्र चर की स्थिति जिसका वह स्वयं सृजन करता है, को किसी भी अध्ययनगत इकाई (व्यक्ति) पर आरोपित कर सकता है। इसी क्रिया को स्वतंत्र चर का प्रहस्तन अथवा यथेच्छ प्रयोग कहते हैं।
- क्षेत्र-प्रयोगों की विश्वसनीयता एवं वैधता प्रयोगशालागत प्रयोगों की तुलना में कम होती है तथा उनकी अपनी सीमाएँ हैं तो भी शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में उनकी उपयोगिता बहुत अधिक है।
- **कर्लिंगर** के अनुसार, क्षेत्र-अध्ययन (field studies) घटनोत्तर अध्ययन (ex-post facto studies) ही हैं जिनका उद्देश्य वास्तविक सामाजिक व्यवस्था में क्रियमाण समाजशास्त्रीय, शैक्षिक एवं मनोवैज्ञानिक चरों के बीच संबंधों तथा अन्त:क्रियाओं की खोज करना होता है।

9.7 शब्दकोश (Keywords)

नोट

1. **यथेच्छ**–इच्छा के अनुरूप प्रयोग करना (स्वतंत्र चर का)।
2. **सिमुलेटिड प्रयोग**–अध्ययनगत व्यवहारों में स्वाभाविक परिवेश के समान अस्वाभाविक परिवेश का सृजन।
3. **नैसर्गिक**–प्राकृतिक, स्वाभाविक।

9.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. प्रयोगात्मक अनुसंधान से आप क्या समझते हैं तथा ये कितने प्रकार के होते हैं?
2. क्षेत्र प्रयोग से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
3. क्षेत्र अध्ययन पर प्रकाश डालें।
4. प्रयोगात्मक सिमुलेशन पर टिप्पणी लिखें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. प्रयोगशाला	2. क्रियमाण	3. मिल	4. (ख) सिद्धांत
5. (ग) सत्य	6. (ख) कम	7. सिद्धांतों	8. सत्य
9. असत्य	10. सत्य	11. सत्य	

9.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
3. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 10 : प्रयोगात्मक आकल्प (Experimental Design)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

10.1 प्रयोगात्मक आकल्प का वर्गीकरण (Classification of Experimental Design)

10.2 सत्य प्रयोगात्मक आकल्प (True Experimental Design)

10.3 अर्ध-सत्य प्रयोगात्मक आकल्प (Quasi True Experimental Design)

10.4 एकल व्यक्ति अध्ययन: कुछ कठिनाइयाँ (Individual Study: Some Challanges)

10.5 एकल व्यक्ति अनुसंधान आकल्प: अंतिम मूल्यांकन (Individual Research Design: Final Evaluation)

10.6 सारांश (Summary)

10.7 शब्दकोश (Keywords)

10.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

10.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- प्रयोगात्मक आकल्प के वर्गीकरण को समझने में;
- सत्य तथा अर्ध-सत्य प्रयोगात्मक आकल्प को समझने में;
- एकल व्यक्ति अध्ययन की कठिनाइयों एवं मूल्यांकन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुसंधान-कार्य आरंभ करने से पूर्व उसकी एक विस्तृत रूपरेखा तैयार करना आवश्यक समझा जाता है। उसके अन्तर्गत अनुसंधान के उद्देश्य, उसकी उपकल्पनाएँ, न्यादर्श-चयन की विधि, शोध-सामग्री एकत्र करने के साधन, शोध-सामग्री के विश्लेषण की विधियाँ आदि का सुनिश्चित उल्लेख किया जाता है। इस विस्तृत रूपरेखा को अनुसंधान का आकल्प (design) कहते हैं। प्रत्येक प्रकार के अनुसंधान की एक विस्तृत रूपरेखा, एक आकल्प

नोट

होता है। प्रयोगात्मक अनुसंधान में आकल्प का विशेष महत्त्व होता है तथा पुस्तकों में उसका प्रयोगात्मक आकल्प (experimental designs) शीर्षक के अन्तर्गत वर्णन किया गया है। पुस्तकों में यह वर्णन दो भिन्न क्षेत्रों में बँटा मिलता है–

1. प्रयोगात्मक अनुसंधानों की संरचनाएँ (lay-out), तथा
2. प्रयोगात्मक अनुसंधानों के सांख्यिकीय आकल्प (statistical designs)

संरचनाओं के अन्तर्गत इस बात की व्याख्या की जाती है कि अनुसंधान को किस प्रकार किया जाये, उसमें कितने समूह होंगे, उनकी अनुसंधान में व्यवस्था किस प्रकार की होगी, एक ही समूह रहेगा अथवा साथ में नियंत्रित समूह भी रखा जायेगा आदि। उनके गुण-दोषों की चर्चा भी साथ में रहती है। सांख्यिकी आकल्पों के अन्तर्गत प्रयोगात्मक शोध-सामग्री के विश्लेषण की बहुत-सी सांख्यिकीय विधियों का उल्लेख किया जाता है। प्रस्तुत अध्ययन में संरचना के दृष्टिकोण से आकल्पों के वर्गीकरण एवं प्रकारों का वर्णन किया गया है।

प्रयोगात्मक अनुसंधान के पिछले अध्याय में की गई व्याख्या से स्पष्ट हो गया होगा कि प्रयोगात्मक अनुसंधान की प्रक्रिया कितनी जटिल है, कितनी बातों का उसमें ध्यान रखना पड़ता है। अत: ऐसा कोई भी आकल्प, कोई भी व्यूह-रचना नहीं हो सकती जिसमें उन सभी नियमों को क्रियान्वित किया जा सके, जो सब परिस्थितियों में सर्वोत्तम हो। अनुसंधान की प्रत्येक परिस्थिति विशिष्ट होती है। इसलिए उसके अनुरूप ही आकल्प का चयन करना होता है। विभिन्न प्रकार के आकल्पों का उल्लेख पुस्तकों में किया गया है उन सबके अपने-अपने लाभ एवं दोष हैं।

10.1 प्रयोगात्मक आकल्पों का वर्गीकरण (Classification of Experimental Design)

प्रयोगात्मक आकल्पों का वर्गीकरण कई दृष्टिकोण से किया जा सकता है। निम्नलिखित वर्गीकरण अधिक उपयुक्त लगता है–

1. प्रयोगात्मक एवं अप्रयोगात्मक आकल्प।
2. एक त्रि-आयामी वर्गीकरण।
3. पूर्वपरीक्षण-पश्चपरीक्षण आकल्प।
4. सहसंभाविक एवं सहसंबंधित समूह आकल्प।
5. अचल एवं चल समूह आकल्प।

प्रत्येक का विस्तार से वर्णन नीचे किया गया है–

1. प्रयोगात्मक एवं अप्रयोगात्मक आकल्प

क्या आप जानते हैं प्रयोगात्मक (experimental) एवं अप्रयोगात्मक (non-experimental) आकल्पों को सत्य (true) एवं अर्ध-सत्य (quasi-experimental) आकल्प भी कहते हैं।

सत्य आकल्प अनुसंधान की वह स्थिति है जिसमें अनुसंधानकर्ता के लिये यह सम्भव हो कि वह अनुसंधान हेतु इकाइयों का समसम्भाविक विधि से चयन कर सके तथा इसी विधि से अनुसंधानाधीन समूहों में उन्हें वितरित कर सके। **कर्लिंगर** का कहना है कि यदि किसी अनुसंधान की स्थिति में शोधकर्ता को उपरोक्त स्वतंत्रता अथवा अधिकार नहीं है तो वह अनुसंधान प्रयोग तो हो सकता है, परन्तु सत्य प्रयोग नहीं हो सकता। सत्य प्रयोगात्मक आकल्प की दो अनिवार्य शर्तें हैं–

नोट

(*i*) समसंभाविक विधि (randomization), तथा

(*ii*) स्वतंत्र चर का प्रहस्तन (manipulation)।

कर्लिंगर के अनुसार, सत्य प्रयोगात्मक आकल्प में कम से कम एक स्वतंत्र चर का प्रहस्तन अवश्य होना चाहिए। **कार्ल स्मिथ**, **एल्सर्थ** तथा **आरोंसन** का कहना है कि प्रयोगात्मक अध्ययन अन्य प्रकार के अध्ययनों से भिन्न होते हैं क्योंकि उनमें अध्ययन की परिस्थितियों का शोधकर्ता स्वयं सृजन करता है जबकि अन्य अध्ययनों में नैसर्गिक रूप से परिवेश में उपलब्ध परिस्थितियों पर निर्भर करना पड़ता है। प्रयोगात्मक अध्ययन में शोधकर्ता को अध्ययन की परिस्थितियों में परिवर्तन करने की पूर्ण स्वतंत्रता होती है। सत्य प्रयोग की सबसे महत्त्वपूर्ण विशेषता यह होती है कि उसमें शोधकर्ता का अध्ययन की परिस्थितियों एवं अध्ययनेतर चरों पर पर्याप्त नियंत्रण सम्भव होता है। इस प्रकार–

(*i*) स्वतंत्र चर का प्रहस्तन (manipulation)

(*ii*) इकाइयों के चयन एवं उनके समूहों में वितरण में समसंभाविक विधि का प्रयोग (randomization) तथा

(*iii*) अध्ययनेतर चरों का नियंत्रण।

ये तीन प्रकार की व्यवस्थाएँ सत्य प्रयोगात्मक आकल्प की पहचान, उसके आदर्श एवं आधार होते हैं। इन तीन विशेषताओं के कारण ही यह कहना सम्भव होता है कि आश्रित चर पर समूहों के बीच जो अन्तर आते हैं वे स्वतंत्र चर द्वारा उत्पन्न होते हैं अथवा स्वतंत्र चर आश्रित चर के कारण हैं। इस प्रकार इन आकल्पों के आधार पर स्वतंत्र एवं आश्रित चरों के कार्य-कारण संबंधों के विषय में अधिक विश्वसनीय एवं वैध कथन किया जा सकता है। दूसरे शब्दों में, इन आकल्पों के माध्यम से उपलब्ध परिणाम अधिक विशिष्ट (specific), शुद्ध (precise) एवं संगत (relevant) होते हैं। संक्षेप में, सत्य प्रयोगात्मक आकल्पों की विशेषताएँ निम्नलिखित होती हैं–

1. शोधकर्ता-आधारित अध्ययन-व्यवस्था (setting), अर्थात् नैसर्गिक व्यवस्था की बजाय मानव-निर्मित (contrived) व्यवस्था।

2. अध्ययनेतर चरों का नियंत्रण।

3. स्वतंत्र चर का प्रहस्तन (manipulation)।

4. विधि से उनका समूहों में वितरण तथा इसी विधि से उपचारों (treatments) का समूहों पर आरोपण।

5. कार्य-कारण (cause-effect) संबंध की स्थापना।

उपरोक्त विशेषताओं के कारण इन आकल्पों के निम्नलिखित लाभ होते हैं–

1. परिणाम अधिक शुद्ध एवं विश्वसनीय होते हैं क्योंकि परिणामों की त्रुटि-विचलनता बहुत कम हो जाती है।

2. सत्य प्रयोगात्मक आकल्पों पर आधारित अध्ययनों की आतंरिक वैधता सबसे अधिक होती है।

3. इनके परिणामों के आधार पर आश्रित चर के कारण की स्थापना असंदिग्ध रहती है।

परन्तु जहाँ सत्य प्रयोगात्मक आकल्पों के उपरोक्त लाभ हैं, वहीं उनके कुछ दोष भी हैं। सबसे बड़ा दोष यह है कि इनका प्रयोग अनुसंधान की इन परिस्थितियों में नहीं किया जा सकता जिनमें स्वतंत्र चर का प्रहस्तन संभव नहीं है। मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं शिक्षा के क्षेत्र में अनेक ऐसे चर हैं जिनका प्रहस्तन संभव नहीं है, जैसे–लिंग, सामाजिक-आर्थिक स्तर, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, व्यक्तित्व की समस्त विशेषताएँ, विद्यार्थियों की उपलब्धियाँ आदि, परन्तु इनके प्रभाव व्यापक होते हैं तथा उनका अध्ययन भी आवश्यक होता है। व्यवहार-वैज्ञानिकों एवं शोधकर्ताओं के समक्ष यदि इन चरों से संबंधित प्रश्न हैं तो उनके उत्तर प्राप्त करने हेतु उन्हें अप्रयोगात्मक (non-experimental) आकल्पों का ही सहारा लेना पड़ेगा। प्रेम, घृणा, ईर्ष्या, मनोरोग, मनोवैज्ञानिक उपचारों की प्रभावशीलता, व्यवहार-समस्याओं के कारण, सीखना अथवा अधिगम, बालकों में भाषा का विकास आदि अनेक ऐसे

नोट

चर एवं परिस्थितियाँ हैं जिनको प्रयोगशाला में उत्पन्न नहीं किया जा सकता और इसलिए उनका सत्य प्रयोगात्मक-आकल्पों के माध्यम से अध्ययन नहीं किया जा सकता। उनका अध्ययन तो नैसर्गिक परिस्थितियों में ही किया जा सकता है। इन परिस्थितियों में अप्रयोगात्मक अनुसंधान आकल्प ही अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। इस दृष्टिकोण से अप्रयोगात्मक अनुसंधान-आकल्पों का भी महत्त्व कम नहीं होता। यह बात सही है कि इन आकल्पों पर आधारित परिणाम उतने विश्वसनीय नहीं होते जितने सत्य प्रयोगात्मक आकल्प के होते हैं, तो भी व्यवहार-विज्ञानों के क्षेत्र में अनुसंधान हेतु अधिकतर प्रयोग इन्हीं आकल्पों का होता है।

अप्रयोगात्मक अनुसंधान आकल्पों में भी बहुत विभिन्नता पाई जाती है। कुछ बहुत साधारण होते हैं जिनमें किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं होता, तो कुछ में पर्याप्त नियंत्रण रहता है और वे सत्य प्रयोगात्मक अनुसंधान से थोड़ा ही अन्तर रखते हैं। वास्तव में, सत्य प्रयोगात्मक आकल्प एवं अप्रयोगात्मक अनुसंधान अथवा अर्धसत्य आकल्पों में अन्तर नियंत्रण के आधार पर ही किया जाता है।

उदाहरण अप्रयोगात्मक आकल्पों में नियंत्रित समूह नैसर्गिक एवं पूर्वस्थित होते हैं जबकि सत्य प्रयोगात्मक आकल्पों में उन्हें शोधकर्ता द्वारा प्रहस्तन के आधार पर बनाया जाता है।

स्पष्ट है कि किसी अनुसंधान आकल्प में स्वतंत्र एवं अध्ययनेतर चरों पर जितना अधिक नियंत्रण होगा तथा आश्रित चर के मापन की विधियाँ एवं परिस्थितियाँ जितनी प्रामाणिक (standardized) होंगी उतना ही वह सत्य प्रयोगात्मक आकल्प के समीप होगा।

कर्लिंगर ने अप्रयोगात्मक आकल्पों को अर्धसत्य प्रयोगात्मक आकल्प (quasi-experimental design), दोषपूर्ण प्रयोगात्मक आकल्प (faulty designs) तथा अपूर्ण (inadequate) आकल्पों की संज्ञा दी है, परन्तु अर्धसत्य प्रयोगात्मक आकल्प शीर्षक ही पुस्तकों में अधिक प्रयुक्त हुआ है। घटनोत्तर अनुसंधानों को भी **कर्लिंगर** ने अपूर्ण अनुसंधान आकल्पों की श्रेणी में रखा है। उसने उन्हें दोषपूर्ण (faulty) आकल्प भी कहा है।

इस दृष्टिकोण से प्रयोगात्मक अनुसंधानों के आकल्पों को निम्न दो श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है–

1. सत्य प्रयोगात्मक अनुसंधान आकल्प एवं
2. अर्ध-सत्य प्रयोगात्मक अनुसंधान आकल्प।

अर्थात् जैसा **वॉन डालेन** ने कहा है, वे आकल्प जिनमें नियंत्रण जटिल होता है तथा वे जिनमें नियंत्रण अपर्याप्त होता है।

2. त्रि-आयामी वर्गीकरण

लेवी-वर्गर-हाइडन ने प्रयोगात्मक आकल्पों का वर्गीकरण तीन आधारों पर किया है–

1. स्वतंत्र चरों की संख्या,
2. स्वतंत्र चरों के स्तर (levels) तथा
3. इकाइयों का सम संभाविक अथवा पुनरावृत्यात्मक वितरण।

स्वतंत्र चरों की संख्या के दृष्टिकोण से, (*i*) एकचरीय, (*ii*) द्विचरीय, तथा (*iii*) बहुचरीय आकल्प होते हैं। स्वतंत्र चर के स्तरों के दृष्टिकोण से आकल्पों को स्तर × उपचार (levels × treatment) आकल्प अथवा फैक्टोरियल आकल्प के नाम से पुकारा जाता है। इकाइयों को समूहों में सम संभाविक विधि से वितरित किया गया है तो उन आकल्पों को सम सम्भाविक समूह आकल्प (randomized groups design) कहते हैं। यदि इकाइयों का एक ही समूह विभिन्न उपचारों के लिए प्रयुक्त किया जाता है तो उन्हें पुनरावृत्यात्मक अथवा पुनर्माप (repeated

नोट

measures) आकल्प कहते हैं। इकाइयों को समानीकृत करके, उनका वितरण समूहों में करने पर उस आकल्प को समानीकृत समूह आकल्प (matched group design) कहते हैं। यदि एक चर पर इकाइयों को समानीकृत करके तथा दूसरे पर समसंभाविक विधि से वितरित किया जाता है तो उसे मिश्रित (mixed) आकल्प कहते हैं।

उपरोक्त प्रकारों को पूर्वोक्त त्रि-आयामों पर वर्गीकृत करने पर कई प्रकार के योग बनते हैं तथा प्रत्येक की शोध -सामग्री के विश्लेषण हेतु भिन्न प्रकार की सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग होता है। यह निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा–

(क) एक स्वतंत्र चर– (*i*) एक स्वतंत्र चर+सम संभाविक समूह+स्वतंत्र चर के दो स्तर–इसमें टी-टेस्ट (स्वतंत्र समूह) वाली विधि का प्रयोग होगा।

(*ii*) एक स्वतंत्र चर+समानीकृत अथवा पुनरावृत्यात्मक मापन+दो स्तर–इसमें भी टी-टेस्ट (परन्तु सहसंबंधित समूह) वाली विधि का प्रयोग होगा।

(*iii*) एक स्वतंत्र चर+सम संभाविक समूह+दो से अधिक स्तर–इस स्थिति में एकल दिशि विचलन-विश्लेषण विधि (ANOVA) = one way विधि का प्रयोग होगा।

(*iv*) एक स्वतंत्र चर+समानीकृत अथवा पुनरावृत्यात्मक मापन+स्वतंत्र चर के दो से अधिक स्तर–इस स्थिति में भी एक दिशि विचलन-विश्लेषण परन्तु समसंबंधी समूहों अथवा पुनरावृत्यात्मक मापन विधि का प्रयोग होगा।

(ख) दो स्वतंत्र चर– (*i*) दो चर+सम संभाविक समूह अथवा अन्तर इकाइयाँ (between subject) दोनों चरों पर+दो स्तर।

इस स्थिति में पूर्णतया सम-संभाविक (completely randomized) द्वि-दिशि वि.वि. (ANOVA) का प्रयोग होगा।

(*ii*) दो चर+पुनरावृत्यात्मक मापन अर्थात् अन्त:इकाई (within subject) परन्तु समसंभाविक समूह अर्थात् अन्तरइकाई (betwen subjects) दूसरे पर।

इस स्थिति में द्वि-दिशि वि.वि. (mixed ANOVA) का प्रयोग होगा।

(*iii*) दो चर+ सम सम्भाविक समूह एक चर पर, परन्तु पुनरावृत्यात्मक मापन समूह दूसरे पर।

इस स्थिति में भी द्वि-दिशि मिश्रित वि.वि. का प्रयोग होगा।

(*iv*) दो चर+पुनरावृत्यामक मापन समूह दोनों पर।

इस स्थिति में पूर्णतया पुनरावृत्यात्मक मापन समूह पर लागू होने वाले द्वि-दिशि वि.वि. का प्रयोग होगा।

इस प्रकार सांख्यिकीय विश्लेषण की विधि का चयन करने से पहले यह जानना आवश्यक होता है कि आकल्प उपरोक्त में से किस प्रकार का है।

3. पूर्व-परीक्षण-पश्च-परीक्षण आकल्प

यह आकल्पों के वर्गीकरण का तीसरा प्रकार है। यह वर्गीकरण इस बात पर आधारित है कि आश्रित चर का मापन कब किया जाता है। यदि समूह अथवा समूहों पर आश्रित चर पर पहले मापन करके उसके पश्चात् उन्हें उपचाराधीन किया जाता है और उपचार की समय-सीमा समाप्त होने के बाद पुन: उनके आश्रित चर पर माप लिये जाते हैं तथा पहले तथा अन्तिम मापों के अन्तर के आधार पर विश्लेषण किया जाता है तो इसे पूर्व-परीक्षण-पश्च-परीक्षण प्रकार का आकल्प कहते हैं।

नोट

नोट्स समूहों का उपचार के बाद केवल एक बार ही मापन किया जाता है तथा उसी के आधार पर विश्लेषण किया जाता है तो इसे केवल पश्च-परीक्षण (post-test only) आकल्प कहते हैं।

इन आकल्पों को (before-after) तथा (after only) आकल्प भी कहते हैं।

4. सम-संभाविक तथा सहसंबंधी समूह आकल्प

यदि तुलनीय समूहों में इकाइयों का वितरण सम-संभाविक विधि से किया जाता है तथा सब समूहों की इकाइयाँ अलग-अलग रहती हैं तो उस आकल्प को सम-संभाविक समूह आकल्प (randomized groups design or between groups design) कहते हैं। इसके विपरीत यदि वही इकाइयाँ सब समूहों में बनी रहती हैं अथवा इकाइयों को समानीकृत करके समूहों में वितरित किया जाता है तो उस आकल्प को अन्त:समूह (within groups) सह-संबंधी समूह (correlated groups) अथवा पुनरावृत्यात्मक मापन (repeated mesure) आकल्प कहते हैं। इस श्रेणी में मिश्रित (mixed) आकल्प भी आता है जिसमें एक चर पर समूह सह-संभाविक होते हैं तथा दूसरे पर सह-संबंधित होते हैं।

5. अचल (static) एवं चल (rotational) समूह आकल्प

अचल आकल्प में समूहों में अलग-अलग इकाइयाँ रहती हैं। इस प्रकार इकाइयों के समूह बनाकर उन्हें उपचाराधीन किया जाता है तथा उपचार के बाद आश्रित चर पर उनका मापन किया जाता है जिसके आधार पर उनकी परस्पर तुलना की जाती है। दो समूहों का इस प्रकार का एक उदाहरण यह हो सकता है कि एक समूह को उपचार दिया जाता है तथा दूसरे को नहीं, अथवा एक को एक उपचार दिया जाता है और दूसरे को दूसरा। उसके बाद इनकी तुलना की जाती है। इसके विपरीत चल समूह आकल्प में समूहों को इस प्रकार परिभ्रामी अथवा चक्रित (rotate) किया जाता है कि प्रत्येक समूह को प्रत्येक उपचार मिल सके। उदाहरण के लिए पहले एक समूह (क) को विधि-1 से तथा समूह (ख) को विधि-2 से पढ़ाया जाये, उसके एक महीने पश्चात् समूह (ख) को विधि-1 से तथा समूह 'क' को विधि-2 से पढ़ाया जाये। इस प्रकार प्रत्येक समूह को दोनों विधियों से पढ़ाकर, अन्त में परीक्षा लेकर विधि-1 तथा विधि-2 के मापांकों की तुलना करना।

यद्यपि प्रयोगात्मक विधियों के अनेक संयोजन (combinations) हो सकते हैं, परन्तु **मौलि** का कहना है कि मूलभूत (basic) आकल्प चार प्रकार के होते हैं–

1. एक चरीय आकल्प,
2. समानान्तर समूह (parallel groups) आकल्प,
3. चल समूह आकल्प तथा
4. हत आकल्प (factorial design)।

इस प्रकार विभिन्न दृष्टिकोणों से आकल्पों का वर्गीकरण किया जा सकता है, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि एक आकल्प दूसरे प्रकार का नहीं हो सकता। ये सारे प्रकार अनन्य (exclusive) नहीं है। एक आकल्प की कई विशेषताएँ हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, एक आकल्प एक चरीय अर्ध-सत्य प्रयोगात्मक, पूर्व-परीक्षण, पश्च-परीक्षण अथवा नियंत्रित समूह पूर्वपरीक्षण-पश्चपरीक्षण आदि किसी का भी हो सकता है। इसी प्रकार यह समसंभाविक नियंत्रित समूह पूर्व एवं पश्च-परीक्षण का भी हो सकता है। इस प्रकार के संयोजन के आधार पर ही

नोट

उन्हें संज्ञा, नाम दिया जाता है, परन्तु चूंकि उनकी संख्या बहुत हो सकती है इसीलिए किसी न किसी प्रकार के वर्गीकरण को अपनाना सुविधाजनक होता है। सबसे अधिक प्रचलित वर्गीकरण–(*i*) सत्य प्रयोगात्मक आकल्प तथा (*ii*) अर्धसत्य प्रयोगात्मक आकल्प हैं। आगे कुछ ऐसे विशिष्ट आकल्पों का वर्णन किया गया है जो इन दो श्रेणियों के अन्तर्गत आते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. अनुसंधान कार्य आरंभ करने से पूर्व जो विस्तृत रूपरेखा तैयार की जाती है उसे ..... कहते हैं।
2. प्रयोगात्मक अनुसंधानों के आकल्प दो तरह के होते हैं–सत्यप्रयोगात्मक अनुसंधान आकल्प एवं ..... आकल्प।
3. इकाइयों को समानीकृत करके, उनका वितरण समूहों में करने पर उन्हें ..... आकल्प कहते हैं।

10.2 सत्य प्रयोगात्मक आकल्प (True Experimental Design)

ये वे आकल्प होते हैं जिनमें चरों का नियंत्रण बहुत कठोर होता है। **क्रिस्टेनसेन** इन्हीं को उपयुक्त (appropriate) आकल्प मानता है। **कर्लिंगर** इन्हें मूलभूत (basic) एवं उनके रूपान्तर (variants) मानता है। **मौलि** ने इनमें से कुछ को "मूलभूत आकल्प" की श्रेणी में ही रखा है। **क्रिस्टेनसेन** का वर्णन पर्याप्त रूप से विस्तृत एवं व्यापक है। अत: इस अध्याय में सत्य प्रयोगात्मक आकल्पों का वर्णन **क्रिस्टेनसेन** के वर्गीकरण के अनुरूप ही किया गया है। जिन आकल्पों का उन्होंने इस वर्ग के अन्तर्गत वर्णन किया है वे हैं–

1. केवल पश्च-परीक्षण (after only) आकल्प

इस आकल्प की संरचना के अनुसार, इकाइयों को प्रयोगात्मक (experimental) तथा नियंत्रित (control) समूहों में सम-संभाविक विधि द्वारा वितरित किया जाता है, उसके पश्चात् प्रयोगात्मक समूह को उपचार दिया जाता है, परन्तु नियंत्रित समूह जैसा है उसे वैसा ही छोड़ दिया जाता है। उसे कोई उपचार नहीं दिया जाता। उपचार की समय-सीमा समाप्त होने पर दोनों समूहों का आश्रित चर पर मापन किया जाता है। मापांकों के बीच प्राप्त अन्तर की सार्थकता ज्ञात करके निष्कर्ष निकाला जाता है। स्मरण हो कि सभी सत्य प्रयोगात्मक आकल्पों में समरूप नियंत्रित समूह अवश्य रहता है। यह आकल्प अचल समूह आकल्प की भाँति है। बस अन्तर इतना है कि इसमें दोनों समूहों में इकाइयों का वितरण सम-संभाविक विधि द्वारा किया जाता है, जबकि अचल समूह आकल्प में दोनों समूहों की समानता आवश्यक नहीं है।

व्यवहार-विज्ञान के क्षेत्र में अनुसंधान हेतु इस आकल्प का बहुत अधिक प्रयोग होता है। इसकी लोकप्रियता के कारण हैं–

(*i*) इसके कई प्रकार के रूपान्तर हो सकते हैं जिनका विभिन्न परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है।

(*ii*) समसंभाविक विधि द्वारा इकाइयों का समूहों में वितरण इसकी प्रमुख विशेषता है जो त्रुटि-विचलन (error variance) को कम कर देता है।

(*iii*) नियंत्रित समूह का प्रावधान होने के कारण प्राप्त अन्तर का मूल्यांकन सम्भव होता है।

(*iv*) इकाइयों को समानीकृत करके समसंभाविक विधि से उनका समूहों में वितरण करने पर परिणामों की शुद्धता और भी बढ़ाई जा सकती है।

नोट

(*v*) इसमें बाह्य वैधता संतोषजनक होती है जिसे विस्तृत जन-सृष्टि में से इकाइयों का चयन करके और भी व्यापक बनाया जा सकता है।

(*vi*) इसकी आन्तरिक वैधता भी पर्याप्त रूप से अधिक होती है।

2. पूर्व-परीक्षण एवं पश्च-परीक्षण आकल्प

इस आकल्प में इकाइयों को सम-संभाविक विधि से दो या दो से अधिक समूहों में वितरित करके आश्रित चर पर उनका मापन कर लिया जाता है। फिर प्रयोगात्मक समूह को उपचार दिया जाता है, परन्तु नियंत्रित समूह को कोई उपचार नहीं दिया जाता। उपचार समाप्त होने के पश्चात् दोनों समूहों को पुन: उसी आश्रित चर पर मापन किया जाता है। दोनों समूहों के पूर्व-परीक्षण तथा पश्च-परीक्षण के मापांकों की तुलना की जाती है। तुलना प्रगति के आधार पर की जाती है। प्रयोगात्मक समूह की प्रगति (G_E) तथा नियंत्रित समूह की प्रगति (G_C) निकालकर G_E–G_C का अन्तर निकाला जाता है। यदि प्रयोगात्मक समूह की प्रगति अधिक है तो उसे स्वतंत्र चर का प्रभाव माना जाता है। इसे एक श्रेष्ठ एवं अधिक उपयुक्त आकल्प माना जाता है क्योंकि इसमें बहुत-से अध्ययनेतर चरों जैसे–इतिहास, परिपक्वता, मापन-त्रुटि, प्रतिगमन, चयन संबंधी त्रुटि आदि का नियंत्रण हो जाता है, परन्तु इसका एक दोष भी है कि इसमें स्वतंत्र चर के प्रभाव का मूल्यांकन (G_E–G_C) बहुत सही नहीं होता। **क्रौनबाक** तथा **फर्बी** (1970) का कहना है कि इन प्रगति मापांकों (change scores) का प्रयोग उचित नहीं। उन्होंने प्रतिगमन-प्रगति मापांक (regression gain scores) के प्रयोग तथा प्रतिगमन विश्लेषण (regression analysis) एवं सह-विचलन-विश्लेषण (analysis of covariance) विधियों की संस्तुति की है, परन्तु इनका प्रयोग पर्याप्त जटिल है। दूसरा दोष इस आकल्प का यह है कि पूर्व-परीक्षण के कारण समूह बाह्य वैधता संदिग्ध हो जाती है।

3. पूर्व-परीक्षण पश्च-परीक्षण चतुर्थसमूह आकल्प

सोलोमन (1949) ने इस आकल्प को प्रस्तुत किया था। **कैम्पबेल** (1957) ने इसके प्रयोग की जोरदार शब्दों में सिफारिश की है तथा कहा है कि "समाज-वैज्ञानिकों के लिए एक नये आदर्श के रूप में उभरा है।" इस आकल्प में चार समूह होते हैं–एक प्रयोगात्मक तथा तीन नियंत्रित (नि.-1, नि.-2, नि.-3)। इसकी संरचना को नीचे दर्शाया गया है–

क ..... ख ..... प्रयोगात्मक समूह

उपचार

क ..... ख ..... नि. 1

उपचार रहित

..... ख ..... नि. 2

उपचार

..... ख ..... नि. 3

उपचार रहित

उपरोक्त में 'क' पूर्व-परीक्षण का मध्यमान तथा 'ख' पश्च-परीक्षण का मध्यमान होते हैं।

उपरोक्त रेखाचित्र में स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि यह आकल्प पूर्वगत दोनों आकल्पों का संयोजन (combination) है। प्रयोगात्मक समूह तथा प्रथम नियंत्रित समूह को मिलाकर देखें तो पूर्व-परीक्षण पश्च-परीक्षण आकल्प हो जाता है। यदि नि. 2 तथा नि. 3 को मिला दें तो केवल पश्च-परीक्षण आकल्प बन जाता है। अत: इस आकल्प में पिछले दोनों आकल्पों के लाभ समाहित हो जाते हैं। **कर्लिंगर** के अनुसार, चार कारणों से यह एक सशक्त आकल्प बन जाता है। ये चार कारण हैं–

नोट

(*i*) पहली दो पंक्तियों एवं अन्तिम दो पंक्तियों के आधार पर समूहों के बीच तुलना की माँग अच्छी तरह पूरी हो जाती है।

(*ii*) समसंभाविक विधि द्वारा इकाइयों के वितरण के कारण समूहों का समरूप होना संभव हो जाता है।

(*iii*) प्रथम दो पंक्तियों के द्वारा इतिहास तथा परिपक्वता नियंत्रित हो जाती है।

(*iv*) पहली तीन पंक्तियों द्वारा पूर्व-परीक्षण का प्रभाव नियंत्रित हो जाता है।

(*v*) क तथा ख के बीच के अस्थिर एवं समकालीन प्रभाव भी चौथी पंक्ति जोड़ देने से नियंत्रित हो जाती हैं।

कर्लिंगर का कहना है कि प्रयोगात्मक समूह का 'ख' यदि नि.-1 के 'ख' से अधिक है तथा नि.-2 का 'ख' समूह नि.-3 के 'ख' सार्थक रूप से अधिक हैं और ये परिणाम अविरोध रूप से (consistently) मिलते हैं तो इसे अनुसंधान उपकल्पना के सत्य होने का सशक्त साक्ष्य समझना चाहिए। **सोलोमन** तथा **लेसाक** (1949) का मानना है कि विकासात्मक प्रक्रियाओं के अध्ययन में इस आकल्प का प्रयोग बहुत उपयुक्त हो सकता है क्योंकि इसमें पूर्व-परीक्षण के प्रभाव तथा प्रयोगात्मक उपचार के प्रभाव दोनों का मूल्यांकन सम्भव होता है।

तो भी इस आकल्प के प्रयोग की कुछ कठिनाइयाँ तो हैं ही। प्रथम तो यह है कि चार समूहों का सृजन करने में बहुत अधिक इकाइयों की आवश्यकता होती है तथा प्रयोग को पूरा करने में बहुत समय लगता है। इसे दोष न भी कहें तो एक प्रकार से व्यावहारिक कठिनाई तो है ही। दूसरी कठिनाई यह है कि छः प्राप्त मापांकों को एक साथ लेकर उनके विश्लेषण की कोई सांख्यिकीय विधि उपलब्ध नहीं है। इस कठिनाई को **सोलोमन** (1949) ने भी स्वीकार किया है। **कैम्पबेल** तथा **स्टैनले** (1963) ने इस समस्या का समाधान प्रस्तुत किया है। उनका कहना है कि द्वि-दिशि, विचलन-विश्लेषण (two = way analysis of variance) का प्रयोग किया जा सकता है जिसमें चारों समूहों के चार पश्च-परीक्षण-मापांकों को लेकर स्तम्भों के मध्यमान तथा पंक्तियों के मध्यमान की तुलना की जा सकती है। स्तम्भों के मध्यमानों की तुलना उपचारों के प्रभाव को प्रकाश में ला सकती है तथा पंक्तियों के मध्यमानों की तुलना पूर्व-परीक्षण के प्रभाव को दर्शायेगी। **सोलोमन** (1949) ने चार 'ख' मापांकों को लेकर 2×2 फैक्टोरियल विचलन-विश्लेषण सांख्यिकीय विधि का प्रयोग करने का भी सुझाव दिया है। इन सबके होते हुए भी **कर्लिंगर** का मत है कि यह आकल्प "अनुसंधान-चिंतन का श्रेष्ठ उदाहरण है, आकल्प एवं विश्लेषण का एक सुन्दर सम्मिश्रण है।"

4. त्रि-समूह पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प

इस आकल्प का उल्लेख **कर्लिंगर** ने किया है। **सोलोमन** के चतुर्समूह आकल्प की प्रथम तीन पंक्तियों द्वारा इस आकल्प को दर्शाया जा सकता है। इस आकल्प में पूर्व-परीक्षण की अन्तर्क्रिया के फलस्वरूप उत्पन्न प्रभाव को दूसरे नियंत्रित समूह द्वारा (तीसरी पंक्ति) दूर किया जा सकता है। यदि प्रयोगात्मक समूह का मध्यमान प्रथम नियंत्रित समूह (दूसरी पंक्ति) के मध्यमान से सार्थक रूप से अधिक है तो इसे असंदिग्ध रूप से उपचार का प्रतिफल नहीं माना जा सकता क्योंकि यह पूर्व-परीक्षण के प्रभाव के कारण भी उत्पन्न हो सकता है, परन्तु यदि दूसरे नियंत्रित समूह (तीसरी पंक्ति) का मध्यमान प्रथम समूह (दूसरी पंक्ति) के मध्यमान से सार्थक रूप से अधिक है तो यह निश्चित हो जाता है कि पूर्व-परीक्षण का प्रभाव शून्य है तथा उपचार का प्रभाव पूर्व-परीक्षण के प्रभाव से कहीं अधिक है।

5. साधारण सम-संभाविक समूह आकल्प

यह केवल पश्च-परीक्षण प्रकार का आकल्प है जिसमें स्वतंत्र चर के एक से अधिक स्तर (levels) रहते हैं। कभी-कभी अनुसंधान की परिस्थिति ऐसी होती है कि स्वतंत्र चर को कई स्तरों में विभाजित कर उनके आश्रित चर पर अलग-अलग प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन करना होता है। जैसे–विभिन्न प्रकार के स्तर की चिंता तथा निम्न

नोट

स्तरीय चिंता एवं पुरस्कारों (निश्चित धनराशि, प्रशंसा, पुस्तकें आदि) का बालकों की शैक्षिक उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है इसका अध्ययन। इसी प्रकार शिक्षण की तीन या चार विशिष्ट विधियों का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़े प्रभाव का अध्ययन करना। इसमें सभी समूहों में इकाइयों का वितरण सम-संभाविक विधि से करके प्रत्येक समूह को वांछनीय उपचार दिया जाता है। कुछ समय पश्चात् उन सभी समूह का (नियंत्रित समूह सहित) आश्रित चर पर मापन कर मापांकों की तुलना की जाती है। तुलना हेतु विचलन-विश्लेषण विधि का प्रयोग किया जा सकता है। सम्पूर्ण संरचना को निम्नलिखित प्रकार से दर्शाया जा सकता है–

समूह	उपचार	आश्रित चर पर प्राप्तांक
1. नियंत्रित समूह	नहीं	आ.-1
2. प्रयोगात्मक समूह-1	उ-1	आ.-3 सबकी
3. प्रयोगात्मक समूह-2	उ-2	आ. तुलना
4. प्रयोगात्मक समूह-3	उ-3	आ.-4

इस आकल्प में एक नियंत्रित समूह का होना आवश्यक है। इसमें एक स्वतंत्र चर होता है, परन्तु उसके स्तर कितने ही हो सकते हैं। विचलन-विश्लेषण विधि का प्रयोग शोध-सामग्री के विश्लेषण हेतु किया जाता है।

6. हत-आकल्प (Factorial Design)

यह आकल्प भी एक प्रकार से केवल पश्च-परीक्षण आकल्प का विस्तार समझा जा सकता है, परन्तु इसमें एक से अधिक स्वतंत्र चरों तथा प्रत्येक के एक से अधिक स्तरों की समाविष्टि रहती है। इसमें एक से अधिक स्वतंत्र चरों के आश्रित चर पर अलग-अलग प्रभावों एवं उनके एक-दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया करते हुए प्रभावों का अध्ययन किया जा सकता है। **कर्लिंगर** के शब्दों में, ये आकल्प "ऐसी शोध-संरचनाएँ होती हैं जिनमें दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों का संनिधान (juxtaposition) रहता है तथा आश्रित चर पर उनके अलग-अलग तथा अन्तर्क्रियात्मक (interactive) प्रभाव का अध्ययन किया जाता है।" मान लीजिये कि बालकों के व्यक्तिगत समायोजन का अभिभावक-बालक संबंधों, बालकों के आत्मबोध एवं उनकी मानसिक योग्यताओं के संदर्भ में अध्ययन करना है। इस समस्या में तीन स्वतंत्र चर (factors) हैं। आश्रित चर व्यक्तिगत समायोजन है। अब मान लीजिये प्रत्येक स्वतंत्र चर के दो स्तर (उच्च तथा निम्न) लिये गये हैं। इस आकल्प को $2 \times 2 \times 2$ इस प्रकार व्यक्त किया जायेगा। स्पष्ट है कि 3 स्वतंत्र चर हैं तथा प्रत्येक के दो स्तर हैं। इसी प्रकार $3 \times 2 \times 3$ आकल्प का अर्थ होगा स्वतंत्र चर, पहले के तीन स्तर, दूसरे के दो तथा तीसरे के तीन स्तर। इसी प्रकार $3 \times 3 \times 3, 2 \times 3 \times 3 \times 3, 3 \times 2 \times 3 \times 2$ आदि अनेक प्रकार के ये आकल्प हो सकते हैं जिन्हें स्वतंत्र चरों की संख्या एवं उनके स्तरों के रूप में उपरोक्त प्रकार से लिखा जाता है।

एक $2 \times 2 \times 2$ आकल्प में छः समूह (cells) बनते हैं। इकाइयों का इन समूहों में वितरण समसंभाविक विधि द्वारा किया जाता है। उनका मापन आश्रित चर पर किया जाता है तथा मापांकों को तालिका में व्यवस्थित करके सांख्यिकीय विधि से उनका विश्लेषण किया जाता है। इस विश्लेषण के आधार पर आश्रित चर पर तीन चरों के तीन मुख्य अथवा स्वतंत्र प्रभावों का, 3 प्रथम क्रम (first order) अथवा द्वि-तत्वीय (two factor) अन्तर्क्रियात्मक प्रभावों का तथा एक द्वितीय-क्रम (second order) अथवा त्रि-तत्व (three-factor) अन्तर्क्रियात्मक प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। विश्लेषण-विधि का वर्णन पुस्तक के दूसरे भाग में किया गया है। अन्तर्क्रियात्मक प्रभाव की संकल्पना को समझना थोड़ा कठिन है। उसकी व्याख्या भी पुस्तक के दूसरे भाग में की गई है।

इन आकल्पों की महत्त्वपूर्ण वांछनीय विशेषता यह है कि ये जीवन की यथार्थता के बहुत समीप होते हैं। वास्तविकता यह है कि जीवन की किसी भी परिस्थिति में मानव-व्यवहार किसी एक तत्व, एक परिस्थिति अथवा एक चर के द्वारा निर्धारित नहीं होता, बल्कि प्रत्येक व्यवहार चाहे वह कितना ही साधारण क्यों न हो, कई-कई तत्वों के साथ

नोट

मिलकर कार्य करने के फलस्वरूप उत्पन्न होता है। व्यवहार कई प्रकार के तत्वों की पारस्परिक अन्तर्क्रिया का प्रतिफल होता है। अत: व्यवहार के कारक तत्वों का अध्ययन भी इसी संदर्भ में होना चाहिए। विभिन्न कारक तत्व जब एक-दूसरे के साथ मिलकर कार्य करते हैं (अन्तर्क्रिया) तो उनके प्रभाव आवश्यक रूप से वैसे ही नहीं बने रहते जैसे–अलग-अलग मूल रूप में होते हैं।

सावधानी किसी तत्व के मूल प्रभाव को जानने के साथ-साथ यह जानना भी आवश्यक है कि कौन तत्व किस तत्व के साथ किस प्रकार की अन्तर्क्रिया करता है।

अत: कुछ तत्वों को नियंत्रित करके दूसरे तत्वों के आश्रित चर पर बड़े प्रभाव का अध्ययन करना अस्वभाविक तथा यथार्थता से परे की बात है। अधिक सार्थक, संगत एवं उपयोगी है विभिन्न संदर्भों में अधिक से अधिक तत्वों के पारस्परिक अन्तर्क्रिया प्रभावों को जानना। प्रयोगात्मक अनुसंधान के तत्वीय आकल्पों (factorial designs) में यह सम्भव होता है। इसीलिए वे यथार्थ से जुड़े एवं अधिक व्यावहारिक माने जाते हैं।

एक कठिनाई जो इन आकल्पों के प्रयोग करने में आती है, यह है कि इनके प्रयोग में बहुत बड़े न्यादर्श की, बहुत-सी इकाइयों की आवश्यकता पड़ती है, परन्तु यहाँ इन आकल्पों का दोष नहीं कहा जा सकता। दूसरी कठिनाई तब उत्पन्न होती है जब स्वतंत्र चरों की संख्या कई हो जाती हैं तथा प्रत्येक के दो से अधिक स्तर होते हैं। उस स्थिति में द्वि-तत्वीय अन्तर्क्रिया प्रभावों की संख्या बढ़ जाती है तथा उनकी व्याख्या कठिन हो जाती है। तीसरी कठिनाई त्रि-तत्वीय (third order) अन्तर्क्रिया प्रभावों की व्याख्या करने में आती है। इन्हें सार्थक एवं बोधगम्य बनाना बहुत कठिन होता है।

इन कठिनाइयों के होते हुए भी तत्वीय आकल्प बहुत प्रचलित हैं तथा बहुत-से अनुसंधानों में उनका प्रयोग होता है। इसका कारण उनकी कुछ विशेषताएँ ही हैं। उपरोक्त के अतिरिक्त एक लाभ इनका यह है कि इनमें कई स्वतंत्र चरों का एक साथ अध्ययन किया जा सकता है तथा कई उपकल्पनाओं का एक साथ परीक्षण किया जा सकता है। दूसरा लाभ यह है कि इनमें समाकुलित (confounded) चरों के नियंत्रण की व्यवस्था भी हो जाती है। तीसरा लाभ है कि इनके परिणाम एक-चक्रीय आकल्प की अपेक्षा अधिक शुद्ध होते हैं। चौथा लाभ यह है कि अन्तर्क्रियात्मक प्रभावों के रूप में आश्रित चर के कारकों-संबंधित अधिसूचना इनमें प्राप्त होती है। यह भी मालूम होता है कि एक स्वतंत्र चर विभिन्न स्तरों पर आश्रित चर को किस प्रकार प्रभावित करता है जो एक चरीय आकल्प में सम्भव नहीं होता।

क्या आप जानते हैं अनुसंधान कार्य आरंभ करने से पूर्व उसकी एक विस्तृत रूप-रेखा तैयार की जाती हे, उसे ही अनुसंधान आकल्प कहते हैं।

7. सह-संबंधी समूह आकल्प

इसे अन्त:इकाई (within subject) आकल्प भी कहते हैं। इसकी संरचना इस प्रकार की होती है कि आश्रित चर पर समूहों के मापांकों के बीच सह-संबंध उत्पन्न हो जाता है। ऐसा तब होता है जब किसी ऐसे चर पर जो आश्रित चर के साथ सह-संबंध रखता है, समूहों की इकाइयों के प्राप्तांकों के बीच सह-संबंध होता है। जब एक ही इकाइयों को विभिन्न समूहों में रखा जाता है अथवा इकाइयों को समानीकृत करके समूहों में वितरित किया जाता है तो यह सह-संबंध घटित हो जाता है तथा इन समूहों को सह-संबंधित समूह कहा जाता है। जिन आकल्पों में ऐसे समूहों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें सह-संबंधी समूह आकल्प (correlated groups designs) कहते हैं। यह

नोट

आकल्प एक समूह पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प के ही समान होता है। इसे पुनर्माप आकल्प (repeated measures design) भी कहते हैं। इसमें इकाइयों के एक ही समूह को विभिन्न उपचारों हेतु प्रयोग किया जाता है। अत: **क्रिस्टेनसन** का कहना है कि जो दोष एक-समूह पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प के होते हैं, वे इसमें भी पाये जाते हैं, परन्तु इसमें अध्ययनेतर एक या दो चरों का नियंत्रण सम्भव हो जाता है जिससे उपचारों के प्रभाव अधिक स्पष्ट हो जाते हैं। इसकी संरचना की रूपरेखा कुछ निम्न प्रकार की होती है–

तालिका 10.1

Subject	*T–1*	*T–2*	*T–3*
1	Y–1	Z–1	X–1
2	Y–2	Z–2	X–2
3	Y–3	Z–3	X–3
:	:	:	:
n	Y–*n*	Z–*n*	X–*n*
Sums	Y	Z	X

उपरोक्त तालिका की सामग्री का सह-संबंधित समूह विचलन-विश्लेषण (correlated groups ANOVA) विधि द्वारा विश्लेषण किया जाता है। इस विधि का विस्तृत वर्णन पुस्तक के भाग-2 में किया गया है।

8. मिश्रित समूह आकल्प

जब द्वि-चरीय आकल्प में समूहों का सृजन एक स्वतंत्र चर पर सम-संभाविक विधि से तथा दूसरे पर सह-संबंधित विधि से किया जाता है तो उसे मिश्रित समूह (mixed groups) अथवा सह-संबंधित-सम-संभाविक समूह (correlated-randomized groups) आकल्प कहते हैं। इसे तत्वीय सह-संबंधित-समूह आकल्प (factorial correlated groups design) भी कहते हैं। इसके वही लाभ हैं जिनका उल्लेख तत्वीय आकल्पों के अन्तर्गत किया गया है। साथ ही जो लाभ सह-संबंधी-समूह-आकल्पों के होते हैं उनका भी समावेश इनमें हो जाता है। इस प्रकार इनके परिणामों की शुद्धता और बढ़ जाती है।

10.3 अर्ध-सत्य प्रयोगात्मक आकल्प (Quasi True Experimental Design)

इस वर्ग मे आने वाले आकल्पों को भिन्न-भिन लेखकों ने अलग-अलग नाम दिये हैं। **कर्लिंगर** ने उनको "दोषपूर्ण आकल्प" (faulty designs) कहा है। वान डालेन ने उन्हें "अति न्यून नियंत्रण वाले आकल्प" (designs with minimal control) कहा है। **क्रिस्टेनसन कैम्पबेल** एवं **स्टैनले** (1966) तथा अन्य कुछ ने उन्हें "अर्ध-सत्य आकल्प" कहा है। **कार्ल्स-स्मिथ-एल्सवर्थ-आरोनसन** उन्हें "अप्रयोगात्मक आकल्प" (non-experimental designs) के अन्तर्गत रखते हैं।

कैम्पबेल के अनुसार, प्रयोगात्मक अनुसंधान में जब नियंत्रण की वांछनीयताएँ (requirements) पूरी नहीं होतीं तो उन्हें अर्ध-सत्य आकल्प कहते हैं। व्यवहार-विज्ञानों के क्षेत्र में अनुसंधान की अनेक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं जिनमें नियंत्रण के कठोर नियमों का तथा प्रयोगात्मक विधि की प्रामाणिक प्रक्रिया का पालन करना संभव नहीं होता। उदाहरण के लिए, जैसाकि **क्रिस्टेनसन** का भी कहना है, नैसर्गिक व्यवस्थाओं (naturally settings) में जहाँ बहुत से अनियोजित तथा नियोजित प्रभाव घटित होते हैं, यह संभव नहीं हो सकता कि इकाइयों को समूहों में समसंभाविक विधि द्वारा वितरित किया जाये तथा न यह ही संभव है कि अध्ययनेतर चरों के प्रभाव को दूसरी

नोट

तकनीकों के माध्यम से नियंत्रित किया जाये। इन परिस्थितियों में शोधकर्ता कुछ कम प्रामाणिक अनुसंधान संरचनाओं के माध्यम से उपचारों के प्रभाव को जानने के लिए विवश होते हैं जिन्हें वे 'अर्ध-सत्य आकल्पों' की संज्ञा देते हैं। कारणवाची निष्कर्ष इन आकल्पों अथवा अनुसंधान-संरचनाओं के आधार पर भी निकाले जा सकते हैं, यद्यपि ये उतने शुद्ध एवं वैध नहीं माने जाते जितने कि सत्य प्रयोगात्मक आकल्पों के माध्यम से प्राप्त होते हैं। इस दृष्टिकोण से समस्त घटनोत्तर अनुसंधान अर्धसत्य आकल्पों की श्रेणी में आते हैं। कर्लिगर ने विस्तार से घटनोत्तर अध्ययनों एवं सत्य प्रयोगात्मक अनुसंधान के अन्तर का वर्णन किया है तथा कहा है कि घटनोत्तर अध्ययनों में इकाइयाँ तथा उपचारों को समसंभाविक विधि से समूहों में वितरित नहीं किया जा सकता क्योंकि स्वतंत्र चर पहले ही घटित हो चुके होते हैं। कुछ विशिष्ट अर्धसत्य आकल्पों का वर्णन आगे किया गया है–

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. सत्य प्रयोगात्मक आकल्प को मौलि ..... की श्रेणी में रखा है।
   (क) मूलभूत आकल्प (ख) परीक्षण आकल्प (ग) व्यापक आकल्प (घ) समूह आकल्प
5. ..... को श्रेष्ठ एवं उपयुक्त आकल्प माना जाता है।
   (क) पूर्व-परीक्षण आकल्प (ख) पश्च-परीक्षण आकल्प
   (ग) पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प (घ) इनमें से कोई नहीं।
6. ..... आकल्प को पश्च-परीक्षण आकल्प का विस्तार समझा जाता है।
   (क) समूह आकल्प (ख) हत आकल्प
   (ग) नियंत्रित आकल्प (घ) पूर्व-परीक्षण आकल्प।

1. एक-समूह आकल्प (One-way Design)

कैम्पबेल एवं **स्टैनले** ने इसे एक-गोलिका वृत्त अध्ययन (one-shot case study) कहा है जिसमें एक समय में केवल एक ही समूह का अध्ययन किया जाता है। इसकी आलोचना करते हुए **कार्ल्समिथ-एल्सवर्थ-आरोनसन** ने कहा है कि "इस प्रकार का अध्ययन करना वैसा ही है जैसे दलदल पर महल बनाना।" इसके अन्तर्गत किसी एक समूह, व्यक्ति अथवा घटना के विषय में बहुत सारी जानकारी एकत्र की जाती है। उसे तालिकाओं में सजाया जाता है तथा उसका विश्लेषण बहुत अच्छे ढंग से प्रस्तुत किया जाता है जिससे कि पढ़ने वाले, जो निष्कर्ष निकाले गये हैं, उन पर विश्वास कर लें। पाठक उसे पढ़ते समय यह भूल जाते हैं कि उसमें किसी अन्य तुलनीय व्यक्ति अथवा समूह का अध्ययन नहीं किया गया था। पाठक यह विचार नहीं करता कि जो निष्कर्ष प्रस्तुत किये गये हैं वे ऐसी ही दूसरी इकाइयों के विषय में भी सच होंगे या नहीं। इस प्रकार के अध्ययनों में चरों के बीच कार्य-कारण संबंध की स्थापना नहीं की जा सकती, तो भी ये आकल्प सर्वथा बेकार नहीं समझे जाते। कुछ परिस्थितियों में कुछ और सम्भव न होने पर जैसा भी है, वही अच्छा समझा जाता है। किन्हीं परिस्थितियों में इनके द्वारा एकत्र की गई बहुत-सी जानकारी भी उपयोगी सिद्ध हो सकती है।

2. एक-समूह पूर्व-पश्च परीक्षण आकल्प

कैम्पबेल तथा **स्टैनले** ने इस प्रयोगात्मक आकल्प को भी अर्धसत्य प्रयोगात्मक आकल्पों की श्रेणी में रखा है। जैसा कि **कर्लिंगर** का मानना है इस आकल्प में एक समूह की उसी के साथ तुलना की जाती है। इस आकल्प की संरचना

नोट

इस प्रकार की होती है–एक चयनित समूह की इकाइयों का किसी आश्रित चर पर पहले मापन कर लिया जाता है (पूर्व परीक्षण)। उसके बाद उस समूह को पूर्व निश्चित उपचार दिया जाता है। उपचार समाप्त होने के बाद उसी आश्रित चर पर समूह की इकाइयों का पुन: मापन किया जाता है (पश्च-परीक्षण)। पूर्व-परीक्षण तथा पश्च-परीक्षण के मापांकों के अन्तर की सांख्यिकीय सार्थकता का परीक्षण किया जाता है। यदि पश्च परीक्षण-मापांक सार्थक रूप से अधिक पाये जाते हैं तो उपचार को उस अन्तर का (आश्रित चर का) कारण माना जाता है।

इस आकल्प की कई कमियाँ हैं। अत: इनके परिणामों की शुद्धता एवं वैधता सदैव निम्न स्तर की पाई जाती है। जो अन्तर पूर्व-परीक्षण एवं पश्च-परीक्षण मापांकों के बीच प्राप्त होता है उसे उपचार-चर के द्वारा उत्पन्न हुआ मान लेना सही नहीं है। पूर्व-परीक्षण के मापांकों में जो परिवर्तन होते हैं वे और भी कारणों से हो सकते हैं। **कैम्पबेल** ने इन कारणों की विस्तार से चर्चा की है। इतिहास, परिपक्वता तथा मापन तीनों प्रकार के तत्व पूर्वपरीक्षण मापांकों को प्रभावित करते हैं तथा परिणामों की आन्तरिक वैधता को घटाते हैं। इसी प्रकार प्रतिगमन-प्रभाव भी पश्च-परीक्षण मापांकों को संदिग्ध बनाते हैं। पूर्व-परीक्षण के निचले मापांक पश्च-परीक्षण में ऊपर की ओर तथा पश्च-परीक्षण के उच्च मापांक नीचे की ओर जाते हैं जबकि वास्तव में मापांकों में कोई अन्तर उत्पन्न नहीं होता। अत: इन तत्वों से उत्पन्न हुई त्रुटि के कारण वैध निष्कर्षों की स्थापना इस आकल्प के माध्यम से नहीं की जा सकती।

तो भी यह कहना उचित नहीं होगा कि ये आकल्प बिल्कुल बेकार हैं। किन्हीं परिस्थितियों में हो सकता है कि उनके अतिरिक्त और किसी आकल्प के प्रयोग की संभावना न हो। तब तो इन्हीं का प्रयोग करना पड़ेगा।

3. द्वि-समूह नियंत्रण-रहित आकल्प

क्रिस्टेनसन ने इस आकल्प को असमान (non-equivalent) पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प कहा है। इसमें दो समूह तो रहते हैं जिनमें से एक का नियंत्रित समूह की भाँति ही प्रयोग किया जाता है, परन्तु वास्तव में वह नियंत्रित समूह होता नहीं। केवल एक तुलनीय समूह मात्र होता है। दोनों ही समूहों का आश्रित चर पर पूर्व-परीक्षण किया जाता है तथा एक समूह को उपचार देने के बाद दोनों समूहों का उसी आश्रित चर पर पुन: परीक्षण किया जाता है। दोनों समूहों के पूर्व-पश्च-परीक्षण मापांकों का अलग-अलग अन्तर लिया जाता है तथा देखा जाता है कि किस समूह का अन्तर अधिक है अर्थात् किसकी प्रगति अधिक हुई है।

यह आकल्प पूर्ववर्णित पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प के समान ही है, परन्तु इसे सत्य प्रयोगात्मक आकल्प की श्रेणी में नहीं रखा जा सकता क्योंकि इसमें आरंभ में चुने गये दोनों समूहों को समसंभाविक विधि द्वारा अथवा समानीकृत विधि (matching) द्वारा समान नहीं बनाया जाता। इसीलिए इस प्रकार के आकल्पों को अर्धसत्य प्रयोगात्मक आकल्पों की श्रेणी में रखा गया है। समूहों की असमानता ही इन आकल्पों की दुर्बलता होती है। इसी कारण इसमें नियंत्रित समूह रहते हुए भी नियंत्रण नहीं होता। केवल समूहों को समान मान कर भर लिया जाता है। **कर्लिंगर** के शब्दों में, इन आकल्पों में "प्राय: एक विशाल द्वार सदैव खुला रहता है जिससे होकर अन्य अनियंत्रित चर प्रवेश कर सकते हैं।"

4. कूट पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प (Simulated Before- after Test Only)

इस आकल्प के अन्तर्गत इकाइयों की एक बड़ी जनसंख्या में से समसंभाविक विधि से दो समूहों का चयन किया जाता है। एक को नियत्रित समूह तथा दूसरे को प्रयोगात्मक समूह कहा जाता है क्योंकि दोनों समूहों को समसंभाविक विधि से एक ही जनसंख्या में से चुना जाता है, अत: उन्हें समान माना जाता है। नियंत्रित समूह का आश्रित चर पर मापन किया जाता है। उसके पश्चात् प्रयोगात्मक समूह को उपचार दिया जाता है तथा उपचार के बाद उसका उसी आश्रित चर पर मापन किया जाता है जिस पर नियंत्रित समूह का किया गया था। तत्पश्चात् नियंत्रित समूह के आश्रित

नोट

चर पर उपलब्ध पूर्वपरीक्षण-मापांकों तथा प्रयोगात्मक समूह के पश्चपरीक्षण-मापांकों का अन्तर लेकर उनकी सार्थकता की जाँच की जाती है। इसे रेखाचित्र द्वारा निम्न प्रकार प्रदर्शित किया जा सकता है।

प्रयो. समूह	पूर्व-परीक्षण नहीं	उपचार	आश्रित चर (ख-2) पर पश्च-परीक्षण
नियं. समूह	आश्रित चर ख-1 पर पूर्व-परीक्षण	कोई उपचार नहीं	पश्च-परीक्षण नहीं

उपरोक्त में $ख_2$-$ख_1$ के अन्तर की सार्थकता का परीक्षण किया जाता है। इस आकल्प में नियंत्रित समूह होते हुए भी नियंत्रण असंदिग्ध नहीं हो पाता क्योंकि दोनों समूहों के समान होने की कोई प्रत्याभूमि (guarantee) नहीं होती। अत: इसे एक सशक्त आकल्प नहीं कहा जा सकता। तो भी यह एक समूह पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प से अधिक अच्छा समझा जाता है, क्योंकि इसमें सांख्यिकीय प्रतिगमन प्रभाव एवं इकाइयों के चयन संबंधी अभिनति (bias) का नियंत्रण सम्भव हो जाता है, परन्तु इतिहास-तत्व का इसमें भी नियंत्रण नहीं हो पाता।

5. कालान्तर माला आकल्प (Time Series Designs)

गौटमैन-मैकफाल-बारनेट के अनुसार, इस प्रकार के आकल्पों में नियंत्रण समूह का प्रयोग न करके नियंत्रण की बहुत-सी पूरक व्यूह-रचनाओं का प्रयोग किया जाता है। दो प्रकार के ऐसे आकल्पों का उल्लेख किया गया है–

(क) आन्तरिक कालान्तर माला आकल्प (Internal Time-series Design)

क्रिस्टेनसन के अनुसार, इसमें शोधकर्ता उपचार देने से पहले तथा उसके बाद समूह का आश्रित चर पर कई बार मापन करता है। इसे इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है।

उपचारपूर्व माप	उपचार	उपचारान्तर माप
क-1, क-2, क-3, क-4	m	क-5, क-6, क-7, क-8

उपरोक्त चित्रण से स्पष्ट देखा जा सकता है कि ये आकल्प एक समूह पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्पों से बहुत मिलते-जुलते होते हैं। अन्तर इतना है कि कालांतर-माला आकल्पों में आश्रित चर पर उपचार से पूर्व तथा उसके बाद समूह के कई माप थोड़े-थोड़े समय बाद लिये जाते हैं, परन्तु इसमें भी एक समूह की तुलना उसी समूह के साथ की जाती है। **कर्लिंगर** के अनुसार, इन आकल्पों में यह सम्भव हो जाता है कि मापन की प्रक्रिया स्वरूप जो त्रुटि-विचलन उत्पन्न होता है वह उपचार के कारण उत्पन्न सम्पूर्ण प्रभाव में से निकाल दिया जाये। इस प्रकार उपचार का प्रभाव अधिक शुद्ध रूप में उपलब्ध हो जाता है। मापन प्रतिक्रिया का प्रभाव क-1 के बाद क-2 में अभिव्यक्त होता है। उपचार का प्रभाव क-5 में देखा जा सकता है, यदि यह क-4 से अधिक है तो। यदि क-2 से क-4 तक के मापांक स्थिर रहते हैं, अधिक परिवर्तित नहीं होते हैं तो पर्याप्त निश्चय के साथ कहा जा सकता है कि क-5 में अभिव्यक्त प्रभाव उपचार के कारण है। ग्राफ द्वारा इस प्रभाव-प्रवृत्ति को भली-भाँति दर्शाया जा सकता है। बहुवारीय परीक्षण के कारण ये आकल्प एक समूह पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्पों से अधिक उपयोगी हो जाते हैं।

यदि प्रथम क-4 तक के मापांकों में कोई अन्तर नहीं हैं तो क-5 एवं क-4 का अन्तर परिपक्वता, परीक्षण तथा प्रतिगमन के कारण नहीं माना जा सकता। यदि उन्हीं सब इकाइयों का बार-बार मापन किया जाता है और इकाई छोड़ी नहीं जाती है तो चयन संबंधी एवं इकाइयों की अनुपलब्धता के कारण उत्पन्न होने वाली त्रुटियों को भी

नोट

नियंत्रित किया जा सकता है। इस प्रकार, जैसाकि **वान डालेन** ने भी कहा है, एक समूह पूर्व-पश्च-परीक्षण की तुलना में इन आकल्पों में प्रयोगात्मक अनुसंधानों की आन्तरिक वैधता को कुप्रभावित करने वाले अधिक तत्वों का नियंत्रण संभव होता है, परन्तु **कैम्पबेल** एवं **स्टैनले** (1963) का कहना है कि इतिहास इनमें नियंत्रित नहीं हो पाता तथा इन आकल्पों में यह एक समस्या बनी रहती है। दूसरी समस्या परिणामों के सांख्यिकीय मूल्यांकन की है। परिणामों की व्याख्या हेतु मापांकों की प्रवृत्ति का केवल दृष्टिगत निरीक्षण ही आधार होता है जो अधिक विश्वसनीय नहीं समझा जा सकता। कुछ विशिष्ट सांख्यिकीय विधियाँ तो उपलब्ध हैं जिनका प्रयोग किया जा सकता है, जैसे सिंगल मूड टेस्ट तथा डबल मूड टेस्ट। इसी प्रकार के वाकर-लीव टेस्ट-1 तथा वाकर-लीव-टेस्ट-3 भी हैं जिनका प्रयोग अधिक उपयोगी हो सकता है।

(ख) नियंत्रित समूह कालांतर-माला आकल्प (Control Group Time Series Design)

क्रिस्टेनसन के अनुसार, इसे बहु-कालांतर-माला आकल्प (multiple time-series design) भी कहते हैं। **क्रिस्टेनसन** इसे पूर्वगत अन्तरित कालांतर माला आकल्प का विस्तारित रूप मानते हैं, परन्तु **वान डालेन** ने इसे नियंत्रित समूह कालांतर माला आकल्प कहा है। यह आकल्प अन्तरित माला आकल्प से अधिक उपयोगी समझा जाता है क्योंकि इसमें इतिहास का भी नियंत्रण संभव है। इसमें एक नियंत्रित समूह का प्रयोग किया जाता है। नीचे इसकी संरचना रेखाचित्र द्वारा दर्शाई गई है–

प्रयोगात्मक समूह	क-1, क-2, क-3, क-4	उपचार	क-5, क-6, क-7, क-8
नियंत्रित समूह	ख-1, ख-2, ख-3, ख-4,	--	ख-5, ख-6, ख-7 ख-8

यदि नियंत्रित समूह के मापांकों ख-4 से ख-5 में कोई वृद्धि नहीं होती है परन्तु प्रयोगात्मक समूह में उपचार के पश्चात् क-5 में क-4 की तुलना में वृद्धि होती है तो यह स्वीकार किया जा सकता है कि समकालीन इतिहास का उपचार के द्वारा उत्पन्न प्रभाव में कोई योगदान नहीं है क्योंकि इस अन्तराल में दोनों समूहों के अनुभव समान ही होंगे। यह आकल्प कूट पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प से भी अच्छा माना जाता है क्योंकि त्रुटि की संभावना रहती है वह भी नियंत्रित हो जाती है। इसके प्रयोग का एक अच्छा उदाहरण **कैम्पबेल** तथा **रौस** (1968) का अध्ययन है जिसमें अमरीका के कनेक्टीकट राज्य को प्रयोगात्मक समूह के रूप में तथा अन्य राज्यों को नियंत्रित समूह के रूप में प्रयोग किया गया था। इस अध्ययन में दोनों समूहों की यातायात-मृत्यु-दर को वर्ष 1951 से 1959 तक ग्राफ द्वारा दर्शाया गया तथा उनकी तुलना के आधार पर यह सिद्ध किया कि कनेक्टीकट के राज्यपाल **रिबोकौफ** के 1955 में गति संबंधी नियमों का उल्लंघन करने वालों को छापा मारकर पकड़ने का निश्चित प्रभाव पड़ा था तथा कनेक्टीकट राज्य में यातायात-मृत्यु-दर काफी कम हो गई थी क्योंकि इस अध्ययन में एक राज्यों का नियंत्रित समूह भी था, अत: यह नहीं कहा जा सकता कि मृत्यु-दर में कमी होना इतिहास (जैसे शीत ऋतु में मोटर गाड़ियाँ चलाने का कम भयप्रद होना) आदि तत्वों के कारण होगा। ये परिस्थितियाँ तो दोनों समूहों में समान थीं।

उपरोक्त अध्ययन की शोध-सामग्री (data) का जब-**कैम्पबेल-रौस** ने मूड टी-टेस्ट के आधार पर विश्लेषण किया तो दोनों समूहों के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया। **ग्लास** (1968) ने जब बौक्स तथा टाओ टेस्ट (1965) का प्रयोग किया तो अन्तर कुछ सार्थक पाया गया। सार्थकता का परीक्षण, जैसाकि पहले भी कहा जा चुका है, इन अध्ययनों की वास्तविक समस्या है। तो भी **क्रिस्टेनसन** का कहना है कि **गौटमैन-मैकफाल-बारनेट** (1965) की सांख्यिकीय विश्लेषण विधियाँ जिनका वर्णन **ग्लास-विलसन** तथा **गौटमैन** (1975) ने किया है, इस संदर्भ में लाभकारी सिद्ध हो सकती है।

नोट

6. अनुप्रस्थ-परिवेष्ट-पट्ट आकल्प (Cross-lagged Panel Design)

इस आकल्प का प्रयोग उस स्थिति में बहुत उपयोगी होता है जिसमें दो चरों के बीच कार्य-कारण संबंध की स्थापना उद्देश्य होता है परन्तु पहले से यह ज्ञात नहीं होता कि कौन किसका कारण हो सकता है।

उदाहरण असफलता चिंता का कारण है अथवा चिंता असफलता का कारण है।

क्रोधी माँ-बाप बच्चों को आक्रामक बनाते हैं अथवा बच्चों की आक्रामकता माँ-बाप को क्रोधी बनाती है, आन्तरिक प्रेरणा की प्रबलता छात्रों की अच्छी शैक्षिक उपलब्धि का कारण होती है अथवा छात्रों की अच्छी शैक्षिक उपलब्धि उनकी आन्तरिक प्रेरणा की प्रबलता का कारण होती है, आदि। मनोविज्ञान, शिक्षा एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में अनुसंधान की अनेक ऐसी परिस्थितियाँ होती हैं जिनमें कौन किसका कारण है, यह अध्ययन का उद्देश्य होता है। इस आकल्प के प्रयोग में दो बातों को ध्यान में रखना आवश्यक है–

(*i*) एक यह कि कार्य-कारण संबंध विद्यमान हो तथा

(*ii*) दूसरे यह कि यह संबंध-प्रक्रिया कालांतर में घटित हो।

संक्षेप में, इस आकल्प का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ प्रश्न इस प्रकार का हो- 'क' कारण है 'ख' का अथवा 'ख' कारण है 'क' का।

इस आकल्प में दो चर 'क' तथा 'ख' होते हैं जिनका मापन इकाइयों के एक ही समूह को लेकर दो भिन्न समयों 'ग' तथा 'घ' में किया गया है। इस प्रकार चार माप लिए जाते हैं–

(*i*) क का ग समय पर लिया गया माप,

(*ii*) क का घ समय पर लिया गया माप,

(*iii*) ख का ग समय पर लिया गया माप तथा

(*iv*) ख का घ समय पर लिया गया माप।

इन मापांकों के आधार पर निम्नलिखित 6 सह-संबंध ज्ञात किये जाते हैं–

(*i*) ^{r}क ग. क घ, (*ii*) ^{r}क ग. ख ग, (*iii*) ^{r}ख ग. ख घ

(*iv*) ^{r}ख ग. क घ (*v*) ^{r}क ग. ख घ (*vi*) ^{r}क घ. ख घ।

उपरोक्त के आधार पर निम्न प्रकार से अनुप्रस्थ-परिवेष्ट पट्ट तैयार किया जाता है–

चित्र 10.1

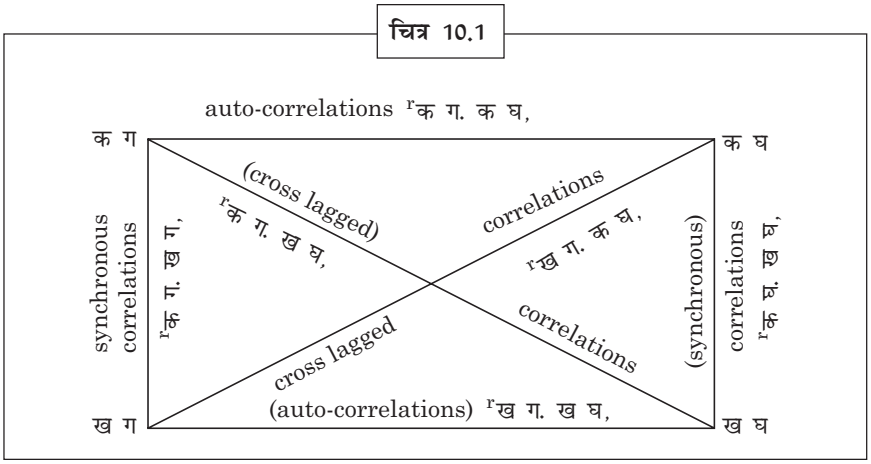

नोट

इन 6 सह-संबंधों में से दो संकालीय (synchronous) सह-संबंध कहलाते हैं जिसका अर्थ होता है उन चरों के बीच सह-संबंध जिनका मापन एक ही समय में किया जाता है, जैसे–τ क ग ख ग तथा τ क घ ख घ। इसी प्रकार दो सह-संबंध (τ कग. कघ तथा τ खग. खघ) आत्म-सह-संबंध (auto-correlation) कहलाते हैं जिनका अर्थ होता है क तथा ख दोनों चरों के उन मापांकों के बीच सह-संबंध जो प्रत्येक का पहले 'ग' समय पर तथा उसके बाद 'घ' समय पर मापन करने पर उपलब्ध होते हैं। दो सह-संबंध अनुप्रस्थ-परिवेष्ट (cross lagged) सह-संबंध कहलाते हैं जिसका अर्थ होता है उन मापांकों के बीच सह-संबंध जो एक चर (क) का प्रथम समय 'ग' पर मापन करने पर तथा दूसरे चर (ख) का दूसरे समय 'घ' पर तथा इसी प्रकार विलोमत: (vice versa) मापन करने पर उपलब्ध होते हैं। ये सह-संबंध हैं–(*i*) τ क ग. ख घ तथा (*ii*) τ ख ग. क घ।

उपरोक्त सभी सह-संबंधों में दो अनुप्रस्थ-परिवेष्ट सह-संबंध अधिक महत्त्व के होते हैं क्योंकि इन्हीं के आधार पर निश्चित किया जाता है कि 'क' तथा 'ख' चरों में कौन मुख्य (preponderant) कारण हैं। यदि τ क ग. ख घ अधिक है, τ ख ग. क घ से तो 'ग' समय पर मापित 'क' कारण होगा 'ख' का। इसी प्रकार यदि 'ख' कारण है 'क' का तो ख ग. क घ अधिक होगा 'τ क ग. ख घ से। **पेल्ज** तथा **एण्डूज** (1964) ने तद्गत तर्क की व्याख्या की है तथा उसके समर्थन में साक्ष्य प्रस्तुत किए हैं। एक अध्ययन में **इरोन-ह्यूजमैन लेफ्कोविज-वाल्डर** (1972) ने यह जानने का प्रयास किया कि दूरदर्शन पर हिंसा (क) के दृश्य देखना आक्रामकता (ख) का कारण है अथवा बालकों की स्वाभाविक आक्रामकता उनकी दूरदर्शन पर हिंसा के दृश्य देखने की रुचि का कारण है। यह अध्ययन अनुप्रस्थ-परिवेष्ट-पट्ट आकल्प की विधि से किया गया था। बच्चे जब कक्षा तीन में पढ़ते थे तब उनकी दूरदर्शन पर हिंसा के दृश्यों को देखने की प्रवृत्ति का (क ग) तथा जब वे 13वीं कक्षा में आये तब उनकी आक्रामकता (ख घ) का मापन किया गया। इसी प्रकार तीसरी कक्षा में उनकी आक्रामकता (ख ग) का तथा 13वीं कक्षा में दूरदर्शन पर हिंसा की प्रवृत्ति (क घ) का मापन किया गया। यह पाया कि कि τ क ग. ख घ (.31) अधिक था τ ख ग. क घ (.01) से। अत: यह निष्कर्ष निकाला गया कि दूरदर्शन पर हिंसा के दृश्य देखने की प्रवृत्ति बालकों में आक्रामकता की वृद्धि करती है। इन दो अनुप्रस्थ-परिवेष्ट सह-संबंधों के अतिरिक्त शेष 4 की भी व्याख्या की जाती है। इसकी विस्तृत जानकारी के लिए छात्र **पेल्ज** तथा **एण्डूज** (1964) की पुस्तक पढ़ें।

इसी प्रकार का एक और आकल्प "मार्ग-विश्लेषण" (path analysis) है जिसका वर्णन **लेंड** (1969) तथा **हीस** (1970) ने किया है तथा जिसे उन्होंने एक और भी अधिक विस्तृत अनुसंधान आकल्प बताया है।

7. एकल-इकाई अनुसंधान आकल्प (One-unit Research Design)

अभी तक जितने भी अर्धसत्य प्रयोगात्मक आकल्पों का वर्णन किया गया है उन सबमें एक से अधिक इकाइयों के समूह रहते हैं, परन्तु ऐसे आकल्पों का भी विकास किया गया है जिनमें केवल एक ही इकाई रहती है। इन आकल्पों को एकल इकाई आकल्प (single subject designs) कहते हैं। इनमें केवल एक ही व्यक्ति का अध्ययन किया जाता है, परन्तु इससे यह भ्रम नहीं होना चाहिए कि यह एक प्रकार का एकक वृत्त-अध्ययन (case study) ही है। एकक वृत्त अध्ययन से यह बहुत भिन्न है क्योंकि इसके अन्तर्गत विषय से जो जानकारी प्राप्त की जाती है, वह अत्यधिक नियंत्रित परिस्थितियों में की जाती है। स्वतंत्र चर पर भी विषय (subject) की अनुक्रिया का नियंत्रित ढंग से निरीक्षण अथवा मापन किया जाता है तथा समस्त कार्य उसी भावना के साथ किया जाता है जो प्रयोगात्मक विधियों में साधारणतया पाई जाती है। तो भी इसे सत्य प्रयोगात्मक अनुसंधान नहीं कहा जा सकता, क्योंकि इसमें समसंभाविक विधि, प्रहस्तन एवं इकाइयों की पुनरावृत्ति का कोई स्थान नहीं होता न इसमें कोई तुलनीय समूह ही होता है। फिर भी इसके माध्यम से यह निष्कर्ष निकालना संभव हो जाता है कि स्वतंत्र चर (उपचार) के फलस्वरूप व्यवहार में वांछनीय परिवर्तन हुआ है अथवा नहीं।

नोट

इस आकल्प में उपचार से पहले तथा उसके बाद व्यवहार का कई बार मापन किया जाता है। इस दृष्टिकोण से इसकी संरचना कालांतर माला आकल्प से तथा पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प से बहुत मिलती-जुलती है। यदि उपचार से पूर्व एवं उसके पश्चात् व्यवहार का केवल एक बार ही मापन किया जाता तो इसकी संरचना एक-समूह पूर्व-पश्च-परीक्षण आकल्प की भाँति होती। अत: यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यह आकल्प एक-समूह-पूर्व पश्च परीक्षण तथा कालान्तर-माला आकल्पों का संयुक्त विस्तारित रूप है। क्रिस्टेनसन ने इसे "वर्णनात्मक प्रयोग" (descriptive experimentation) कहा है।

इस प्रकार के अध्ययनों के अनेक रूप एवं नाम मिलते हैं। यहाँ केवल दो प्रकारों का ही वर्णन किया जायेगा क्योंकि ये दो ही अधिक प्रचलित हैं। ये हैं–

(*i*) उत्क्रमण (reversal) आकल्प तथा

(*ii*) बहु आधार रेखा आकल्प (mulitiple baseline designs)।

(क) उत्क्रमण आकल्प: इस आकल्प के बहुत से नाम हैं, जैसे–"अ ब अ ब" आकल्प, विपर्यय तकनीक (reversal technique) जिसका उल्लेख **बेयर-बुल्फ** तथा **रिजले** (1968) ने किया है, समान काल न्यादर्श आकल्प (equivalent time samples design) जिसका उल्लेख **कैम्पबेल-स्टैनले** (1963) ने किया है, अन्त:विषय अभ्यावृत्ति (intre-subject replication) जिसका प्रयोग **सिडमैन** (1960) ने किया है तथा गहन अनुसंधान आकल्प (intensive design) जिसका वर्णन **चस्सान** (1967) ने किया है, परन्तु ये उत्क्रमण आकल्प तथा "अ ब अ ब" दो नाम से अधिक प्रचलित हैं। व्यवहारों के उपचार में इस प्रकार के अध्ययनों का विशेष महत्त्व है। इसकी संरचना अग्र प्रकार की होती है–

अ	ब	अ	ब
↓	↓	↓	↓
आधार रेखा माप	उपचार	आधार रेखा माप	उपचार

इस आकल्प के उपरोक्त चार चरण अथवा स्थितियाँ होती हैं। चरण 'अ' जिसे आधार-रेखा माप कहते हैं आश्रित चर अथवा लक्ष्य-व्यवहार का प्रतीक होता है जिसमें उपचार के द्वारा परिवर्तन लाने का लक्ष्य होता है। इसे आधार-रेखा माप इसलिए कहते हैं कि उपचार देने के पूर्व यह व्यवहार अस्तित्व में होता है। आश्रित चर की यह प्रारम्भिक अवस्था होती है। इसी के साथ उपचार द्वारा परिवर्तित व्यवहार की तुलना की जाती है। अत: आधार-रेखा अवस्था अथवा व्यवहार एक प्रकार का मानदण्ड अथवा निष्कर्ष होता है जिसके आधार पर उपचार के प्रभाव का मूल्यांकन किया जाता है। चरण 'ब' उपचार अथवा प्रयोगात्मक परिस्थिति होती है जिसके द्वारा व्यवहार अथवा स्थिति 'अ' में परिवर्तन लाने का प्रयास किया जाता है। जितना समय आधार-रेखा व्यवहार के अध्ययन करने एवं उसके आलेख (record) तैयार करने में खर्च किया जाता है उतना ही समय उपचार को भी दिया जाता है। उपचार देने के बाद जब वांछनीय व्यवहार उत्पन्न हो जाता है तो पुन: स्थिति 'अ' आ जाती है तथा उतने समय तक बनी रहने दी जाती है जितने समय तक उपचार चला था। यह प्रयोग का तीसरा चरण होता है। इस काल मे कोई उपचार नहीं दिया जाता तथा विषयी को उसी परिस्थिति में रहने एवं व्यवहार करने की छूट होती है जो चरण 'अ' के अन्तर्गत विद्यमान थी। इसे विपर्यय तथा उत्क्रमण स्थिति कहते हैं जिसका अर्थ होता है उपचार को हटाना तथा स्थिति 'अ' को वापस लाना। यह सिद्ध करने के लिए व्यवहार में जो परिवर्तन आया है वह उपचार के कारण है यह प्रावस्था (phase) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसके पश्चात् चौथे चरण में पुन: उपचार (परिस्थिति 'ब') उतने ही समय के लिए दिया जाता है। यही कारण है कि इस आकल्प को 'अ ब अ ब' आकल्प कहते हैं। एक वास्तविक अध्ययन द्वारा जिसे **टेट** तथा **बारोफ** (1966) ने किया था इसकी प्रक्रिया स्पष्ट हो जायेगी।

नोट

टास्क एकल इकाई अनुसंधान आकल्प पर अपने विचार व्यक्त करें।

एक 9 वर्ष का साम नाम का बालक अवांछनीय एवं आत्मघाती व्यवहार जैसे दीवार एवं पत्थरों से सर टकराना, हाथों से मुँह पर चोट मारना तथा स्वयं को पीटना आदि व्यवहारों से ग्रसित था। साथ ही दूसरों से लिपटना, उनकी गोद में चढ़कर बैठ जाना, उनकी बाँहों को अपने चारों ओर लपेटना आदि आदतें भी उसमें पड़ गई थीं। सम्भवत: वह दूसरों के शारीरिक सामीप्य (physical contact) की इच्छा रखता था। शोधकर्ता ने साम के इन अवांछनीय व्यवहारों (आश्रित चर) का उपचार करने हेतु शारीरिक सामीप्य (स्वतंत्र चर) के प्रत्याहरण (withdrawal) को उपचार (treatment) के रूप में अपनाया। प्रयोग के चार चरण अ ब अ ब थे तथा प्रत्येक चरण को 5 दिन का समय दिया गया था। शोधकर्ता साम का हाथ पकड़कर तथा उससे बातें करते हुए परिसर में प्रतिदिन (कुल 5 दिन तक) घुमाने ले जाते थे। यह आधार-रेखा चरण 'अ' था। इस बीच यदि साम कोई अवांछनीय व्यवहार करता था तो वे उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देते थे। पाँच दिन बाद चरण 'ब' आरंभ हुआ जिसमें साम को उपचार दिया गया जिसके अन्तर्गत यदि साम कोई अवांछनीय व्यवहार करता था तो वे तुरन्त झटककर हाथ छुड़ा लेते थे (शारीरिक सामीप्य का प्रत्याहरण)। यह उपचार (स्थिति 'ब') भी 5 दिन चला। इसके बाद तीसरा चरण पुन: आरंभ हुआ जिसमें साम को पुन: स्थिति 'अ' अर्थात् आधार-रेखा चरण में लौटा लिया गया। पाँच दिन के इस चरण में पुन: साम के व्यवहारों में हस्तक्षेप नहीं किया गया। पाँच दिन बाद पुन: अगले पाँच दिन तक उपचार दिया गया। प्रत्येक चरण में प्रत्येक दिन के अवांछनीय व्यवहारों की आवृत्तियों का अभिलेख तैयार किया जाता रहा। इन आलेखों को तिथिवार, चरणवार बार-रेखाचित्र द्वारा दर्शाया गया। इस रेखाचित्र से यह स्पष्ट रूप से ज्ञात हुआ कि प्रत्येक उपचार-चरण के प्रत्येक दिन साम के अवांछनीय व्यवहारों में कमी आती गई। अत: यह निष्कर्ष निकाला गया कि वह उपचार उद्देश्य की उपलब्धि का प्रभावशाली माध्यम था। इस आकल्प में इतिहास का नियंत्रण सम्भव होता है।

(ख) बहु-आधार-रेखा आकल्प: इस आकल्प में आधार-रेखा की जानकारी (data) कई स्रोतों से एकत्र की जाती है। ये स्रोत हैं–

(*i*) व्यक्ति के बहुत से भिन्न-भिन्न व्यवहार,

(*ii*) भिन्न-भिन्न व्यक्तियों का वैसा ही व्यवहार,

(*iii*) व्यक्ति का भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में हुआ वह व्यवहार।

इसके पश्चात् प्रत्येक लक्ष्य व्यवहार में परिवर्तन लाने हेतु उपचार दिया जाता है। उपचार के फलस्वरूप यदि लक्ष्य-व्यवहारों में परिवर्तन आता है, परन्तु शेष व्यवहार पहले जैसे ही (अर्थात् आधार-रेखा-स्थित) रहते हैं तो उस उपचार को प्रभावी समझा जाता है। इसकी संरचना निम्न प्रकार की होती है–

व्यवहार	**उपचार-1**	**उपचार-2**	**उपचार-3**	**उपचार-4**	**उपचार-5**
व्यक्ति	अ आधार रेखा	उपचार			
अथवा	ब आधार रेखा	आधार रेखा	उपचार		
परिस्थितियाँ	स आधार रेखा	आधार रेखा	आधार रेखा	उपचार	
	द आधार रेखा	आधार रेखा	आधार रेखा	आधार रेखा	उपचार

इस आकल्प के वास्तविक प्रयोग का उदाहरण एवं विस्तृत वर्णन **मार्क्स** तथा **गेल्डर** (1967) द्वारा किये गए अध्ययन में उपलब्ध हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

7. एक-समूह आकल्प को **कैम्पबेल** तथा **स्टैनले** ने एक-गोलिका वृत्त अध्ययन कहा है।
8. मौलि ने कहा–'इस प्रकार का अध्ययन दलदल में महल बनाने जैसा है।'
9. कालान्तर माला आकल्प में पूरक व्यूह रचनाओं का प्रयोग किया जाता है।
10. आंतरिक प्रेरणा छात्रों में शैक्षिक उपलब्धि का कारण होती है।

10.4 एकल-व्यक्ति अध्ययनः कुछ कठिनाइयाँ (Individual Study: Some Challanges)

इन आकल्पों की कुछ विशेष कठिनाइयाँ हैं जिनकी व्याख्या आवश्यक प्रतीत होती है। इसमें से एक है "आधार-रेखा" की संकल्पना, दूसरी है उपलब्ध शोध-सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण की तथा तीसरी है विरोधी उपकल्पनाओं (rival hypotheses) की। इनकी विस्तृत व्याख्या इस प्रकार की गई है–

(क) आधार-रेखाः इस संकल्पना के अन्तर्गत आश्रित चर की विशेषताएँ अथवा वे लक्ष्य-व्यवहार आते हैं जो उपचार देने से पूर्व अस्तित्व में होते हैं। एक व्यक्ति के अध्ययन में इसका बहुत अधिक महत्त्व होता है। यही वह संदर्भ है, व्यवहारों की रूपरेखा है जिसे उपचारों के प्रभावों की सार्थकता की जाँच करने के लिए मानदण्ड, कसौटी अथवा आधार के रूप में स्वीकार किया जाता है, परन्तु इससे संबंधित कई कठिनाइयाँ हैं, उन्हें समझना आवश्यक है। प्रथम तो यह कठिनाई आती है कि एक स्थिर एवं सुदृढ़ (stable) आधार-रेखा कैसे प्राप्त की जाये। न तो इसकी कोई कसौटी हो सकती है और न कोई इसकी सर्वमान्य परिभाषा। कब किस प्रकार यह कहा जा सकता है कि आधार-रेखा स्थायी एवं सुदृढ़ है। इसका कोई समाधान उपलब्ध नहीं होता। विशेष रूप से मानव-व्यवहारों के संदर्भ में यह और भी अधिक कठिन हो जाता है क्योंकि मानव-व्यवहार अत्यन्त परिवर्तनशील होते हैं। इसीलिए **क्रिस्टेनसन** का कहना है कि यह संकल्पना "एक आदर्श है, व्यावहारिक विचार नहीं है"।

(ख) सांख्यिकीय विश्लेषण की कठिनाईः दूसरी समस्या परिणामों के सांख्यिकीय विश्लेषण की है। उपचार देने के बाद आश्रित चर में जो परिवर्तन आता है उसे केवल रेखा-चित्रों एवं दृश्य माध्यमों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह विश्वसनीय निष्कर्षों पर पहुँचने की उपयुक्त विधि नहीं है क्योंकि इनके आधार पर यह नहीं कहा जा सकता कि व्यवहार में उत्पन्न परिवर्तन इतना है कि उसे सार्थक माना जा सकता है। कितना परिवर्तन हो कि उसे सार्थक समझा जाए, ऐसी कोई कसौटी नहीं होती। **गोटमैन** (1973) ने स्वयं यह पाया है कि रेखा-चित्र के आधार पर जिस व्यवहार-परिवर्तन को सार्थक माना गया था, संख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर वह सार्थक नहीं पाया गया। बहुत से लेखकों का कहना है कि इन आकल्पों की शोध-सामग्री के विश्लेषण में सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता, परन्तु कुछ यह भी मानते हैं कि ऐसा नहीं है। यह भी सत्य है कि बहुत से लेखकों ने ऐसी सांख्यिकीय विधियों का वर्णन किया है जिनका प्रयोग इन आकल्पों की सामग्री का विश्लेषण करने में किया जा सकता है।

(ग) विरोधी उपकल्पनाएँः इसका अर्थ यह है कि इस प्रकार के अध्ययनों में उपचार के फलस्वरूप जो प्रभाव उत्पन्न हुआ माना जाता है, वह दूसरे बहुत से कारणों से भी हो सकता है। अतः आश्रित चरगत प्रभाव की कारक उपकल्पनाएँ उपचार के अतिरिक्त और भी बहुत-सी हो सकती हैं। उदाहरण के लिए, यदि विभिन्न चरणों में आदेश, निर्देश, निरीक्षण-परिस्थितियाँ, व्यवस्था का व्यवहार एवं स्वभाव बदलते रहते हैं तो उन्हीं के कारण यह परिवर्तन उत्पन्न हो सकता है। तब यह नहीं कहा जा सकता कि अध्ययनगत उपचार ही व्यवहार में आये परिवर्तन का कारण है।

नोट

10.5 एकल व्यक्ति अनुसंधान आकल्प: अन्तिम मूल्यांकन (Individual Research Design: Final Evaluation)

यद्यपि व्यवहार विज्ञानों के क्षेत्र में अनेक इकाइयों के समूहों पर ही अधिकतर अध्ययन किए जाते रहे हैं, वे ही आज भी अधिक लोकप्रिय हैं, तो भी एकल-व्यक्ति अध्ययनों का अपना महत्त्व है। यदा-कदा उनका प्रयोग भी किया गया है। **सिडमैन** (1960) की पुस्तक के प्रकाशित होने के बाद से ही उनके विषय में जानकारी बढ़ी है तथा उनका प्रयोग (विशेषरूप से मनोपचार के क्षेत्र में) होना आरंभ हुआ है। **सिडमैन** इनके जोरदार पक्षधर हैं। दूसरे कुछ लेखकों ने भी इनकी उपयोगिता को स्वीकार किया है तथा कहा है कि एकल व्यक्ति अध्ययन अनुसंधाान की महत्त्वपूर्ण व्यूह-रचनाएँ हैं क्योंकि एक व्यक्ति के व्यवहार को अधिक अच्छी तरह नियंत्रित किया जा सकता है जिसके फलस्वरूप उपचारों के प्रभावों को शुद्ध रूप में प्राप्त करना संभव होता है, परन्तु उनका यह भी मानना है कि इन परिणामों का सामान्यीकरण अन्य इकाइयों के लिए सम्भव नहीं होता।

यह सोचना कि कोई अनुसंधान आकल्प सब परिस्थितियों में अच्छा अथवा खराब है, उचित नहीं है। प्रत्येक के अपने लाभ और हानियाँ हैं। उसी प्रकार एकल-व्यक्ति अध्ययन आकल्प की भी अपनी हानियाँ एवं अपने लाभ हैं। जहाँ किन्हीं परिस्थितियों में उसका प्रयोग नहीं किया जा सकता, दूसरी ओर किन्हीं परिस्थितियों में उसकी बहुत अधिक उपयोगिता हो सकती है। उदाहरणस्वरूप–मागदर्शन एवं परामर्श, मनोरोगों के उपचार, व्यवहार-परिवर्तन आदि के क्षेत्रों में इनका प्रयोग बहुत महत्त्वपूर्ण है।

10.6 सारांश (Summary)

- अनुसंधान-कार्य आरंभ करने से पूर्व उसकी एक विस्तृत रूपरेखा तैयार करना आवश्यक समझा जाता है। इस विस्तृत रूपरेखा को अनुसंधान का आकल्प (design) कहते हैं।
- स्वतंत्र चरों की संख्या के दृष्टिकोण से, (*i*) एकचरीय, (*ii*) द्विचरीय, तथा (*iii*) बहुचरीय आकल्प होते हैं। स्वतंत्र चर के स्तरों के दृष्टिकोण से आकल्पों को स्तर × उपचार (levels × treatment) आकल्प अथवा फैक्टोरियल आकल्प के नाम से पुकारा जाता है।
- तुलनीय समूहों में इकाइयों का वितरण समसंभाविक विधि से किया जाता है तथा सब समूहों की इकाइयाँ अलग-अलग रहती हैं तो उस आकल्प को सम-संभाविक समूह आकल्प कहते हैं।
- प्रयोगात्मक अनुसंधान में जब नियंत्रण की वांछनीयताएँ (requirements) पूरी नहीं होतीं तो उन्हें अर्ध-सत्य आकल्प कहते हैं।

10.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **आकल्प (Design)**–किसी भी अनुसंधान की एक विस्तृत रूपरेखा।
2. **विपर्यय**–प्रतिकूलता, विपरीतता।
3. **अभिनति**–झुकाव, भीतर की ओर झुकाव।

10.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. प्रयोगात्मक आकल्प से आप क्या समझते हैं? इसका वर्गीकरण करें।
2. सत्य प्रयोगात्मक आकल्प का वर्गीकरण करते हुए उसका वर्णन करें।

नोट

3. कालान्तर माला आकल्प से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
4. अर्धसत्य आकल्प किसे कहते हैं? इसके मुख्य प्रकार कौन-कौन से हैं?
5. हत आकल्प पर प्रकाश डालें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. प्रयोगात्मक आकल्प	2. अर्ध-सत्य प्रयोगात्मक आकल्प		3. समानीकृत समूह
4. (क) मूलभूत आकल्प	5. (ग) पूर्व एवं पश्च-परीक्षण		6. (ख) हत आकल्प
7. सत्य	8. असत्य	9. सत्य	10. सत्य

10.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान की विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
2. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 11: निरीक्षण एवं निरीक्षण योजना (Observation and Observation Schedule)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

11.1 निरीक्षण या अवलोकन (Observation)

11.2 निरीक्षण के प्रकार (Types of Observation)

11.3 निरीक्षण विधि की विशेषताएँ (Characteristics of Observation)

11.4 निरीक्षण की परिसीमाएँ (Limitation of Observation)

11.5 सुझाव (Suggestions)

11.6 सारांश (Summary)

11.7 शब्दकोश (Keywords)

11.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

11.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- निरीक्षण एवं निरीक्षण के प्रकार को समझने में;
- निरीक्षण विधि की विशेषताएँ एवं परिसीमाओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

'अवलोकन' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Observation' का हिन्दी रूपांतरण है जिसका अर्थ 'देखना', 'प्रेक्षण', 'निरीक्षण' और 'अवलोकन' करना है। दूसरे शब्दों में, 'कार्य-कारण अथवा पारस्परिक संबंधों को जानने के लिए स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं को सूक्ष्म रूप से देखना ही अवलोकन है।'

श्रीमती पी.वी. यंग के अनुसार–"अवलोकन स्वत: विकसित घटनाओं का उनके घटित होने के समय ही अपने नेत्रों द्वारा व्यवस्थित तथा जान-बूझकर किया गया अध्ययन है।"

प्रो. सी.ए. मोजर के अनुसार–"ठोस अर्थ में अवलोकन में कानों तथा वाणी की अपेक्षा नेत्रों के प्रयोग की आवश्यकता है।"

नोट

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि अवलोकन प्राथमिक सामग्री संकलित करने की एक प्रत्यक्ष और महत्त्वपूर्ण प्रविधि है। इसमें अध्ययनकर्ता घटनाओं को देखता है, सुनता है, समझता है और संबंधित सामग्री का संकलन करता है।"

11.1 निरीक्षण या अवलोकन (Observation)

यह बहुत प्रचलित विधि है। इस विधि में मानवीय व्यवहार का अवलोकन किया जाता है तथा उसी के आधार पर आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं। यह विभिन्न प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के मापन का सीधा तरीका है। शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में इस प्रविधि का उपयोग मुख्यत: नियंत्रित प्रयोगों (Controlled Experiment) में किया जाता है। बिना अवलोकन किये हम कुछ भी अध्ययन नहीं कर सकते। व्यक्तित्व एवं बुद्धि के अनेक पक्षों का ज्ञान इसके द्वारा ही सम्भव होता है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से आदि मानव द्वारा प्रयुक्त मापन विधियाँ अवलोकन के अतिरिक्त कुछ नहीं हैं। उस काल का खानाबदोश शिकारी जानवरों की चीखें सुनता था, बहने वाली ठंडी हवा का अनुभव करता था, ऋतु आगमन आदि का ज्ञान अवलोकन विधि से ही करता था। जिस प्रकार ज्योतिषी नक्षत्रों का अवलोकन करता है, चिकित्सक रोगी का निरीक्षण उसे छूकर, नाड़ी की गति का हाथ से अनुमान लगाकर उपचार की सलाह देता है, उसी प्रकार, शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में भी इस विधि का प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में छात्रों के व्यवहार का निरीक्षण करने में किया जाता है। व्यक्ति एकान्त में, समूह में, विशिष्ट परिस्थितियों में जो कुछ क्रियाएँ करता है उनको निरर्थक नहीं समझा जा सकता। प्राय: देखा जाता है कि व्यक्ति बैठे-बैठे या चलते-फिरते अनेक प्रकार की अनावश्यक क्रियाएँ करता रहता है–जैसे, उंगलियों का चटकाना, हाथों का झटकना, अपने आपसे बातें करना आदि। इन अनावश्यक क्रियाओं का व्यक्तित्व के मापन में अत्यधिक महत्व है। व्यक्ति के व्यवहार का अवलोकन किये बिना उसके सम्बन्ध में कोई भी निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। शुद्ध अवलोकन के लिए यह आवश्यक है कि अध्ययन की जाने वाली वस्तु की ओर ही ध्यान लगाया जाये और जो कुछ भी अवलोकन किया गया है उसे तत्काल लिख लिया जाये, क्योंकि स्मृति के क्षीण होने पर अवलोकन के समय की बातें धूमिल हो जाती हैं। साथ ही, अवलोकन करने वाले में यह क्षमता भी होनी चाहिये कि वह किसी भी प्रकार के संवेगात्मक सन्तुलन का पता लगा सके। यह दुर्भाग्य की बात है कि अध्यापक केवल बालकों के शैक्षिक समायोजन का ही अवलोकन करते हैं तथा जीवन से सम्बन्धित दूसरी परिस्थितियों में छात्र किस प्रकार समायोजन करते हैं? इस ओर ध्यान नहीं देते। इसके अतिरिक्त, केवल समस्यात्मक बालकों के व्यवहार का ही निरीक्षण नहीं करना चाहिये बल्कि सभी छात्रों का अवलोकन करना चाहिये। यहाँ उल्लेख करना आवश्यक है कि अध्यापक को अपने अवलोकन के प्रति विश्वस्त होना चाहिये। साथ ही, जिन व्यवहारों का, वस्तुओं अथवा दृश्यों का, वह अवलोकन करना चाहता है, उसमें उसका निष्पक्ष होना एक मुख्य शर्त है। मात्र किसी के कहने पर उसे विश्वास नहीं करना चाहिये क्योंकि, इसमें निर्णय अवलोकनकर्ता पर ही निर्भर करता है। अत: अवलोकन के परिणामों को अधिक सन्तोषजनक बनाने के लिए किसी प्रकार के आग्रह, पक्षपात या भावुकता से उत्प्रेरित नहीं होना चाहिये।

नोट्स

कार्य-कारण संबंधों को जानने के लिए स्वाभाविक रूप से घटित होने वाली घटनाओं को सूक्ष्म रूप से देखना ही अवलोकन है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. अवलोकन का अर्थ होता है मानव व्यवहारों का ·····।
2. शिक्षा तथा मनोविज्ञान के क्षेत्र में ····· का उपयोग मुख्यत: नियंत्रित प्रयोगों में किया जाता है।
3. जब हम स्वयं व्यक्ति विशेष से कोई प्रश्न करते हैं तो उसे ····· कहते हैं।

11.2 निरीक्षण के प्रकार (Types of Observation)

निरीक्षण मुख्यत: दो प्रकार का होता है–

1. बाह्य निरीक्षण (External Observation)
2. स्वयं निरीक्षण (Self-Observation)

हमारे सामने कभी ऐसी भी स्थितियाँ आती हैं जिनमें हम स्वयं व्यक्ति विशेष से ही पूछते हैं कि ऐसा आपने कितनी बार किया? कब किया और क्यूँ किया? यह आत्म निरीक्षण (Self-observation) है।

उदाहरण जब कोई अध्यापक बालक के व्यवहार का निरीक्षण करता है, तब यह बाह्य निरीक्षण कहलाता है।

इस प्रकार के अवलोकन में किन्हीं बाहरी व्यक्तियों पर निर्भर रहना पड़ता है। इस विधि में एक मुख्य दोष यह रह जाता है कि अवलोकनकर्ता व्यवहार के केवल एक ही पक्ष का अवलोकन कर पाता है, क्योंकि वह उस व्यक्ति से पूर्ण परिचित नहीं होता है। स्वयं निरीक्षण में व्यक्ति से स्वयं अपना विवरण देने को कहा जाता है, लेकिन इस प्रकार के निरीक्षण में व्यक्ति बहुत सी बातों को छिपा जाता है। तीसरी विधि में, उपर्युक्त दोनों विधियों को सम्मिलित कर लिया जाता है। ऐसा परिस्थितिजन्य परीक्षणों (Situational tests) में किया जाता है। परिस्थितिजन्य परीक्षणों में ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दी जाती हैं जो जीवन की परिस्थितियों से मिलती जुलती हों, जैसे–ईमानदारी परीक्षण (Test of Honesty) नकल करने की प्रवृत्ति (Test of cheating) आदि। इसके पश्चात् व्यक्ति के व्यवहार का निरीक्षण किया जाता है।

अवलोकन का दो अन्य प्रकार से भी वर्गीकरण किया जा सकता है–

(क) प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation)

(ख) अप्रत्यक्ष अवलोकन (Indirect Observation)

प्रत्यक्ष अवलोकन (Direct Observation)

प्रत्यक्ष अवलोकन में व्यक्ति का यथार्थ स्थिति में निरीक्षण किया जाता है। इस विधि में परीक्षणकर्ता बालक के व्यवहार का अवलोकन प्रत्यक्ष रूप से करता है। बालक अपने नित्य प्रति के कार्य में व्यस्त रहता है और निरीक्षणकर्ता अपने अवलोकन को नियमित रूप से लिखता जाता है। स्वाभाविक है कि निरीक्षणकर्ता की उपस्थिति में बालक का स्वभाव कुछ सीमा तक अस्वाभाविक हो जाता है। फलत: हमारा अवलोकन परम शुद्ध नहीं कहा जा सकता, फिर भी, प्रत्यक्ष अवलोकन विधि के द्वारा बालकों के व्यवहार सम्बन्धी विभिन्न पक्षों के बारे में हमें सही जानकारी प्राप्त हो जाती है। अबोध बालक के व्यवहार के मूल्यांकन के सन्दर्भ में इस विधि की प्रमुखता दो कारणों से है–

1. अबोध बालक अपने व्यवहार को कृत्रिम बनाने की चेष्टा नहीं कर पाता है। अत: किसी अजनबी की उपस्थिति उसके व्यवहार को बहुत अधिक देर तक प्रभावित नहीं कर पाती है।

2. बालक में भाषा का विकास सीमित रहने के कारण प्रत्यक्ष अवलोकन ही अधिक सार्थक प्रतीत होता है।

नोट

क्या आप जानते हैं 'अवलोकन' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Observation' का हिन्दी रूपांतरण है।

अप्रत्यक्ष अवलोकन (Indirect Observation)

अप्रत्यक्ष अवलोकन में प्राप्त तथ्यों के आधार पर व्यक्ति को समझने का प्रयास किया जाता है। यह प्रविधि प्रत्यक्ष अवलोकन का ही परिष्कृत रूप है। यह प्रविधि समाजशास्त्र के क्षेत्र में शोध कार्य के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुई है। समाजशास्त्र के शोधकर्ताओं ने आदिवासियों की जीवन-शैली का विश्वसनीय परिचय इसी विधि के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इस विधि को प्रभावशाली बनाने के लिए अग्र बातों को ध्यान में रखना चाहिये।

1. व्यवहार प्रारूप (Behaviour Pattern) निश्चित कर लेना चाहिये।
2. चयन किये गये व्यावहारिक पक्षों का विशिष्टीकरण (Specification) कर देना चाहिये।
3. व्यवहार अवलोकन को लिपिबद्ध करने (Recording) की उचित व्यवस्था की जाये।
4. निरीक्षण कार्य का परिमाणन (Quantification) कर लेना चाहिये।
5. इस विधि का प्रयोग करने वाले अध्यापक को उचित प्रशिक्षण दिया जाए।

11.3 निरीक्षण विधि की विशेषताएँ (Characteristics of Observation)

1. निरीक्षण में बालक के यथार्थ व्यवहार का अवलोकन किया जाता है।
2. इस विधि का प्रयोग शिशुओं एवं वयस्कों दोनों के व्यवहार के अवलोकन के लिए किया जा सकता है।
3. व्यवहार का अवलोकन स्वाभाविक परिस्थितियों में किया जाता है।
4. इस विधि का प्रयोग गूंगे, बहरे तथा अपंग व्यक्तियों के व्यवहार का मूल्यांकन करने के लिए भी किया जा सकता है।
5. अबोध बालकों का अध्ययन करने के लिए अवलोकन एक अत्यन्त उपयोगी विधि है।
6. इस विधि के प्रयोगों में सामान्यत: किसी विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं होती। इसका प्रयोग सभी व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है।
7. इस विधि द्वारा व्यक्ति या समूह का निरीक्षण एक ही समय में करना सम्भव है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

4. प्रत्यक्ष अवलोकन में व्यक्ति का यथार्थ स्थिति में निरीक्षण किया जाता है।
5. अबोध बालक अपने व्यवहार को कृत्रिम बनाने की चेष्टा करता है।
6. अप्रत्यक्ष अवलोकन समाजशास्त्र के शोध के क्षेत्र में उपयोगी सिद्ध हुआ है।
7. इस विधि द्वारा व्यक्ति या समूह का निरीक्षण संभव नहीं है।

नोट

11.4 निरीक्षण की परिसीमाएँ (Limitation of Observation)

1. यह विधि आत्मनिष्ठता (Subjectivity) एवं पक्षपात (Bias) से पूर्ण होती है।
2. निरीक्षक विश्लेषण करते समय पूर्व-धारणाओं से प्रभावित होता है। मनोवैज्ञानिक इसे 'व्याप्त-प्रभाव' (Halo-effect) के नाम से पुकारते हैं।
3. विभिन्न अवलोककों द्वारा किया गया विवरण समान नहीं होता।
4. अवलोकन करने में समय अधिक लगता है।
5. अवलोकक के स्वयं के भाव, उसकी मनोवृत्ति, शारीरिक एवं मानसिक स्थिति, थकान आदि का भी अवलोकन पर प्रभाव पड़ता है।
6. व्यक्ति के सहज व्यवहार पर प्रेक्षक की उपस्थिति का प्रभाव पड़ता है, अत: पूरे प्रयास करने पर भी बालक के मनोवैज्ञानिक पर्यावरण (Psychological-Environment) को सामान्य नहीं बनाया जा सकता।
7. व्यक्ति दिल में कुछ चाहता है और बाह्य व्यवहार कुछ और प्रदर्शित करता है, ऐसी परिस्थिति में निरीक्षण लाभदायक नहीं होता।

11.5 सुझाव (Suggestions)

अवलोकन विधि को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए निम्न बातों को ध्यान में रखना चाहिये–

सावधानी अवलोकन विधि का प्रयोग तभी किया जाना चाहिये जब अन्य कोई विधि उपयुक्त प्रतीत न हो।

1. निरीक्षण का उद्देश्य स्पष्ट रूप से परिभाषित कर लेना चाहिये।
2. निरीक्षण घटना का रिकार्ड तथा उसकी आख्या (Report) वास्तविक एवं शुद्ध हो।
3. निरीक्षण की व्याख्या वस्तुनिष्ठ ढंग से होनी चाहिये।
4. निरीक्षण सम्बन्धी उपकरणों का निश्चय पहले से ही कर लेना चाहिये।
5. व्यवहार का मूल्यांकन अनेक अवलोकनों के आधार पर करना चाहिये, क्योंकि इससे विश्वसनीयता बढ़ जाती है।

टास्क निरीक्षण विधि को प्रभावी बनाने के सुझाव प्रस्तुत करें।

6. जहाँ तक हो सके अवलोकनकर्ता यह प्रयास करे कि उसका अवलोकन पक्षपात रहित हो। यदि व्यक्ति विशेष में उसकी रुचि नहीं है तो अच्छा होगा वह निरीक्षण ही न करे।

11.6 सारांश (Summary)

- 'अवलोकन' शब्द अंग्रेजी भाषा के 'Observation' का हिन्दी रूपांतरण है जिसका अर्थ 'देखना', 'प्रेक्षण', 'निरीक्षण' और 'अवलोकन' करना है।

नोट

- **श्रीमती पी.वी. यंग** के अनुसार–"अवलोकन स्वत: विकसित घटनाओं का उनके घटित होने के समय ही अपने नेत्रों द्वारा व्यवस्थित तथा जान-बूझकर किया गया अध्ययन है।"
- यह बहुत प्रचलित विधि है। इस विधि में मानवीय व्यवहार का अवलोकन किया जाता है तथा उसी के आधार पर आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं। यह विभिन्न प्रकार की सामाजिक परिस्थितियों में मानवीय व्यवहार के मापन का सीधा तरीका है।
- निरीक्षण मुख्यत: दो प्रकार का होता है–(1) प्रत्यक्ष निरीक्षण (2) अप्रत्यक्ष निरीक्षण।

11.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **परिष्कृत**–उन्नत किया हुआ, सुधारा हुआ।
2. **स्वयं निरीक्षण**–जब हम स्वयं किसी व्यक्ति विशेष से कोई प्रश्न करते हैं।

11.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अवलोकन या निरीक्षण से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
2. अवलोकन के प्रकारों का वर्णन करें।
3. अवलोकन की कौन-कौन सी विशेषताएँ हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. निरीक्षण	2. अवलोकन प्रविधि	3. आत्म निरीक्षण या स्वयं निरीक्षण	
4. सत्य	5. असत्य	6. सत्य	7. असत्य

11.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
2. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
3. शैक्षिक तकनीकी–*एस. एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शिक्षा तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 12: प्रदत्तों के संकलन के उपकरण एवं तकनीक (Tools and Techniques of Data Collection)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

12.1 प्रदत्तों का अर्थ एवं आवश्यकता (Meaning and Need of Data)

12.2 प्रदत्तों की प्रकृति एवं मापन प्रविधियाँ (Measurement Methods and Nature of Data)

12.3 अचर एवं चर राशि (Variable and Non-variable Contant)

12.4 प्रदत्तों के प्रकार (Types of Data)

12.5 प्रदत्तों का संकलन (Data Collection)

12.6 प्रदत्तों की व्यवस्था तथा वर्गीकरण (Arrangement and Classification of Data)

12.7 प्रदत्तों के व्यवस्थापन के साधन (Source of Arrangement of Data)

12.8 प्रदत्तों के विश्लेषण की विभिन्न प्रक्रियाएँ (Various ways of Analysis of Data)

12.9 कम्प्यूटर के लिए प्रदत्तों का वर्गीकरण तथा व्यवस्था (Classification and Arrangement of Data for Computer)

12.10 सारांश (Summary)

12.11 शब्दकोश (Keywords)

12.12 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

12.13 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- प्रदत्तों अथवा आंकड़ों का अर्थ, आवश्यकता एवं प्रकृति को समझने में;
- अचर एवं चर राशि को समझने में;
- प्रदत्तों के प्रकार तथा संकलन को समझने में;
- प्रदत्तों की व्यवस्था, वर्गीकरण, साधन तथा विश्लेषण की विभिन्न प्रक्रियाओं को समझने में।

नोट

प्रस्तावना (Introduction)

प्रदतों के संकलन के लिए अनुसन्धान-उपकरणों का प्रशासन न्यादर्श के प्रयोज्यों पर किया जाता है। अधिकांश: शैक्षिक अनुसन्धानों में प्रदत्तों का संकलन या तो प्रमाणित परीक्षणों के द्वारा या स्वयं निर्मित अनुसन्धान-उपकरणों के द्वारा किया जाता है, इस प्रकार वस्तुनिष्ठ प्रदत्त प्राप्त हो जाते हैं, जिसके द्वारा एक अध्ययन में सही परिणाम तक पहुँचा जा सकता है। प्रदत्तों का संकलन, प्रश्नावली, निरीक्षण, साक्षात्कार, परीक्षण तथा अनेक अन्य प्रविधियों द्वारा किया जाता है। यह अनुसन्धान का चतुर्थ सोपान होता है।

एक अनुसन्धानकर्ता को यह जानना अत्यन्त आवश्यक है कि कितना और किस प्रकार के प्रदत्तों का संकलन किस स्थान पर और कब किया जाए। अनुसन्धानकर्ता को इस बात का भी ज्ञान होना आवश्यक है कि किस प्रकार के प्रदत्तों के संकलन का मुख्य उद्देश्य अनुसन्धान परिकल्पना को प्रमाणित या उचित रूप में सिद्ध करना है।

12.1 प्रदत्तों का अर्थ एवं आवश्यकता (Meaning and Need of Data)

प्रदत्तों का अर्थ है निरीक्षण। वैज्ञानिक शैक्षिक अनुसन्धानों में प्रदत्तों की आवश्यकता पड़ती है। प्रदत्त प्रामाणिक अनुसन्धान उपकरणों या स्वयं निर्मित उपकरणों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। प्रदत्त परिमाणात्मक एवं गुणात्मक दोनों प्रकार के होते हैं।

प्राप्तांक एक व्यक्ति का अंकीय वर्णन करता है, प्राप्तांकों की अपनी विशेषताएँ होती हैं। मापन प्रक्रिया एक चर का परिमाणात्मक रूप से मापन करने में सहायक होती है। प्रदत्त आकृति और प्राप्तांकों के रूप में एकत्रित किये जाते है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार के उपकरणों के द्वारा प्रदत्तों का संकलन किया जा रहा है। अधिकांशत: परीक्षणों के द्वारा जो प्रदत्त एकत्रित किये जाते हैं, वह प्राप्तांकों के रूप में होते हैं तथा प्रश्नावली से प्राप्त प्रदत्त आकृति के रूप में होते हैं। प्रदत्त वह वस्तु है जिनकी सहायता से हम समझते हैं कि शोध के निष्कर्ष वैध तथा विश्वसनीय हैं। इनकी प्रामाणिकता की परख की जा सकती हैं।

प्रदत्तों के संकलन की आवश्यकता (Need of Data Collection)

शोध कार्यों में प्रदत्तों का संकलन निम्नांकित उद्देश्यों की पूर्ति हेतु किया जाता है-

(1) शैक्षिक अनुसन्धानों में प्रदत्तों का संकलन शोध कार्यो के लिए ठोस आधार प्रदान करता है।

(2) किसी उत्पादन के लिये जिस प्रकार कच्ची सामग्री चाहिए, उसी प्रकार से शोध कार्य के लिए प्रदत्तों की आवश्यकता पड़ती है । यदि प्रदत्त गुणात्मक रूप में एकत्रित किये गये हैं तब शोध के परिणाम भी गुणात्मक होंगे।

(3) प्रदत्तों के आधार पर शोध के सुनिश्चित प्रश्न का सुनिश्चित उत्तर दिया जा सकता है। वैज्ञानिक शोध कार्यों के लिए प्रदत्तों की नितान्त आवश्यकता होती है।

(4) शोध के निष्कर्षों की पुष्टि में प्रदत्तों का विशेष महत्त्व होता है।

(5) शोध कार्यों में प्रदत्तों का संकलन परिकल्पनाओं की पुष्टि के लिए किया जाता है।

(6) सांख्यिकीय प्रदत्तों को दो समस्याओं के लिए प्रयुक्त किया जाता है-

(अ) जनसंख्या के मानकों का अनुमान लगाया जाता है जिससे सामान्यीकरणों के प्रतिपादन में सहायता मिलती है।

नोट

(ब) शोध की परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है जिससे शोध की समस्या अथवा प्रश्न का उत्तर मिलता है।

(7) गुणात्मक प्रदत्तों के आधार पर तथ्यों की खोज की जाती है और परिमाणात्मक प्रदत्तों के आधार पर नवीन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया जाता है।

(8) नवीन प्रविधियों की प्रभावशीलता का मूल्यांकन प्रदत्तों के आधार पर किया जाता है।

(9) प्रदत्तों के आधार पर समस्याओं का वैज्ञानिक समाधान ज्ञात किया जाता है।

(10) शोध के सामान्यीकरणों की शुद्धता प्रदत्तों की विश्वसनीयता और वैधता पर आधारित होती है।

प्रदत्तों एवं तथ्यों में अन्तर (Different between Facts & Data)

प्रदत्तों एवं तथ्यों में अन्तर निम्न प्रकार हैं-

(1) तथ्य अपने भौतिक जगत में संगठित होते हैं जबकि प्रदत्त क्रमबद्ध रूप से संगठित होते हैं।

(2) तथ्य किसी पद्धति के सन्दर्भ से प्राप्त नहीं होता है जबकि प्रदत्तों में एक क्रमिक संगठन होता है, जैसे-शरीर में एक क्रमिक संगठन होता है।

(3) तथ्यों की विवेचना करना कठिन है तथा तथ्यों की विवेचना अधिकांशत: व्यक्तिनिष्ठ होती है। यह अनुसन्धानकर्त्ता की कल्पना पर आधारित होता है जबकि प्रदत्तों का विवेचना परिमाणात्मक तथा वस्तुनिष्ठ होता है।

(4) तथ्य प्रकृति से रहस्यात्मक होते हैं जबकि प्रदत्त प्रकृति से रहस्यात्मक नहीं होते हैं। उनका निरीक्षण किया जाता है।

(5) तथ्य प्रकृति से वर्णनात्मक होते हैं जबकि प्रदत्त प्रकृति से व्याख्यात्मक होते हैं।

(6) तथ्य वस्तुनिष्ठ सांख्यिकीय व्यवहार के लिये उत्तरदायी नहीं होते हैं जबकि प्रदत्त वस्तुनिष्ठ सांख्यिकीय व्यवहार के लिये उत्तरदायी होते हैं। प्रदत्तों में सांख्यिकी का उपयोग किया जाता है।

(7) तथ्यों का सम्बन्ध अनुसन्धान सम्बन्धी खोजों तथा निष्कर्षों से नहीं होता है जबकि प्रदत्तों का सीधा सम्बन्ध अनुसन्धान सम्बन्धी खोजों एंव निष्कर्षों से होता है।

(8) तथ्य अधिकांशत: बहुत विस्तृत होते हैं तथा इनका उपयोग अपने उद्देश्य के लिए नहीं किया जाता है जबकि प्रदत्त सदैव एक उद्देश्य की पूर्ति के लिए एकत्रित किये जाते हैं।

(9) तथ्यों का संकलन ऐतिहासिक, दार्शनिक या सर्वेक्षण अनुसन्धान द्वारा किया जाता है जबकि प्रदत्तों का संकलन वैज्ञानिक तथा प्रयोगात्मक अनुसन्धान के लिए किया जाता है।

12.2 प्रदत्तों की प्रकृति एवं मापन प्रविधियाँ (Measurement Methods and Nature of Data)

शैक्षिक अनुसन्धानों का सम्बन्ध समूह के गुणों से होता है। मापन के उपकरणों की सहायता से गुणों को परिमाण में बदल लिया जाता है। परंतु सभी गुणों को परिमाण में नहीं बदला जा सकता है। अत: प्रदत्तों को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है-

(1) गुणात्मक प्रदत्त (Qualitivative Data) तथा

(2) परिमाणात्मक प्रदत्त (Quantitative Data)।

नोट

(1) **गुणात्मक प्रदत्त (Qualitative)**- सभी गुणों को मापन की प्रक्रिया द्वारा परिमाण में नहीं बदला जा सकता है अर्थात् कुछ गुणों को अंकीय मूल्य नहीं दिया जाता है। उन्हें सापेक्षित रूप में बदल लेते हैं जैसे-आत्मविश्वास, ईमानदारी, अभिप्रेरणा तथा सुन्दरता आदि।

(2) **परिमाणात्मक प्रदत्त (Quantitative Data)**-जिन गुणों को अंकीय मूल्य प्रदान कर दिये जाते हैं उन्हें चर कहते हैं जैसे-निष्पत्ति, बुद्धि, प्रवीणता, व्यक्तित्व, अभिरुचि तथा मूल्य आदि।

मापन की प्रक्रिया द्वारा गणों को परिणाम में बदल लिया जाता है। मापन में अनेक विधियाँ तथा अनेक प्रकार के उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। मापन प्रविधि गुण के स्वरूप तथा प्रकृति पर आधारित होती है।

वैज्ञानिक शोध कार्यों में मापन प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है क्योंकि शुद्ध तथा उच्च स्तरीय शोध का विकास मापन के उपकरणों से ही हुआ है। निष्कर्षों को सांख्यिकीय विश्लेषण के आधार पर प्रतिपादित किया जाता है। परिमाणात्मक प्रदत्तों के आधार पर गुणों की प्रकृति का अध्ययन शुद्ध रूप में किया जाता है तथा परिणामों की व्याख्या वस्तुनिष्ठ रूप में किया जा सकता है।

मापन की प्रविधियाँ

मापन की प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति के गुणों को अंकीय मान दिया जाता है। न्यादर्श के अपेक्षित चरों का मापन किया जाता है जिसके लिये अधोलिखित मापनी प्रविधियों को प्रयुक्त किया जाता है-

(अ) निरीक्षण प्रविधि का प्रयोग छोटे बालकों तथा पशुओं के गुणों के मापन में किया जाता है। कक्षा अन्त:प्रक्रिया के लिए भी निरीक्षण प्रणाली को प्रयुक्त करते हैं। इस प्रविधि का विकास अधिक हुआ है तथा प्रयोग भी शिक्षा के क्षेत्र में अधिक होता है।

(ब) शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की सहायता से कोई चरो का मापन शुद्ध रूप में किया जाता है। इनसे प्राप्त प्रदत्त अधिक वैध तथा विश्वसनीय होते हैं।

(स) प्रश्नावली, साक्षात्कार से भी अपेक्षित सूचनाओं तथा प्रदत्तों का संकलन किया जाता है।

(द) अनुस्थिति मापन (Scale) अभिसूची (Inventory) द्वारा अभिरुचि, अभिवृति तथा व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।

(र) ऐतिहासिक शोध में प्रदत्तों को प्राथमिक तथा गौण स्रोतों के विश्लेषण से प्राप्त किया जाता है।

इस प्रकार शोध कार्यो में अनेक प्रकार के मापन उपकरण प्रयुक्त किये जाते हैं और विविध प्रकार के प्रदत्तों का संकलन किया जाता है। प्रमुख मापनी उपकरणों का उल्लेख पिछले अध्याय में किया जा चुका है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. प्रदत्तों का अर्थ है ..... ।
2. शोधकार्यों में प्रदत्तों का संकलन ..... की पुष्टि के लिए किया जाता है।
3. तथ्य प्रकृति से वर्णनात्मक होते हैं जबकि प्रदत्त प्रकृति से ..... होते हैं।

12.3 चर एवं अचर राशि (Variable and Non-variable Contant)

अचर उस गुण को कहते हैं जो शोध के समय सभी परिस्थितियों में एक-सा रहता है। न्यादर्श के सदस्यों में इस गुण के सन्दर्भ में सामानता रहती है।

नोट

चर उस गुण को कहते हैं जो शोध की सभी परिस्थितियों में परिवर्तनशील रहता है। न्यादर्श के सभी सदस्यों में उस गुण के सन्दर्भ में विषमता रहती है।

शोध की परिस्थितियों में अनेक गुणों को सम्मिलित किया जाता है, परन्तु यह शोध की अवधारणा पर निर्भर करता है कि कौन-सा गुण अचर है और कौन-सा गुण चर माना गया है।

अचर तथा चर को एक उदाहरण से समझ सकते हैं। शिक्षा की दो विधियों की प्रभावशीलता का अध्ययन करना है तब एक ही अध्यापक, एक ही पाठ्य-वस्तु, दो कक्षाओं को दो पृथक् विधियों से पढ़ाकर एक परीक्षण के आधार पर प्रभावशीलता के सन्दर्भ में निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

उदाहरण इस अध्ययन में शिक्षक, पाठ्य-वस्तु, कक्षा-वातावरण, छात्रों का स्तर आदि अचर माने गये हैं, शिक्षण विधियाँ तथा छात्रों की निष्पत्ति को चर माना गया है।

शिक्षक दोनों विधियों में समान कौशल से पढ़ाता है। वह एक प्रमुख अचर है।

चर राशि (Variable)

चर उस गुण विशेष को कहते हैं जिसको परिमाण में बदल सकते हैं और न्यादर्श का प्रत्येक सदस्य उस चर के सन्दर्भ में एक दूसरे से भिन्न होता है। समूह की विषमता की गणना अंकीय मूल्यों में की जा सकती है।

नोट्स शैक्षिक या मनोवैज्ञानिक गुण को मापन की प्रक्रिया द्वारा परिमाण में बदल लिया जाए तब उसे चर कहते हैं।

चरों (Variables) को दो रूपों में विभाजित किया जाता है-

(1) सतत्-चर (Continuous Variable) तथा

(2) असतत्-चर (Discrete Variable)।

(1) सतत्-चर (Continuous Variable) -सतत्-चर वे कहलाते हैं, जब मापन में गुणन खण्डीय मूल्य भी दिया जाता है। उदाहरण के लिए, शैक्षिक निष्पत्ति मापन में 24.50 तथा 64.75 अंक दिये जाते हैं। छात्रों के भार मापन में 62.60 कि0 ग्राम तथा 74.25 कि0 ग्राम होता है। यह मापक के उपकरण की शुद्धता पर निर्भर करता है। चर के मापन में सतत् प्रवृति रहती है।

(2) असतत्-चर (Discrete Variable)- असतत्-चर वे कहलाते हैं जब मापन पूर्ण इकाइयों से किया जाता है और खण्डीय मूल्य नहीं दिया जाता है, जैसे 30 छात्र और छात्रायें, 64 पास और 36 फेल, 15 भारतीय तथा 20 अमेरिकन आदि। चर के मापन में असतत् प्रवृति रहती है।

चरक (Variate)

साधारणत: चर का मापन उपकरण की सहायता से किया जाता है। जब किसी चर को परिमाण में बदल दिया जाता है तब उसे चरक (Variate) कहते हैं। जब किसी न्यादर्श के सदस्यों की बुद्धि को बुद्धिलब्धि (I.Q.) में मापन कर लेते हैं तब उसे चरक की संज्ञा दी जाती है। इसी प्रकार निष्पत्ति का मापन अंकों में कर लिया जाये तो उसे चरक कहते हैं। सांख्यिकी विश्लेषण में एक चरक विश्लेषण, द्वि-चरक विश्लेषण तथा बहु-चरक विश्लेषण प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रदत्तों के प्रक्रिया में चरों को चरकों में बदल दिया जाता है। प्रदत्तों के सांख्यिकीय विश्लेषण से निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिनसे सामान्यीकरण किया जाता है। शोध-कार्यो, चरों तथा सांख्यिकीय-विश्लेषण में चरकों को प्रयुक्त किया जाता है।

नोट

क्या आप जानते हैं मापन प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति के गुणों को अंकीय मान दिया जाता है।

चर का परिमाणीकरण (Quantification of Variable)

परिमाणीकरण की प्रक्रिया में चर के स्तर के लिये अंकीय मान दिया जाता है। परिमाणीकरण में मापन प्रक्रिया को प्रयुक्त किया जाता है जिससे प्रदत्त या अंक प्राप्त होते हैं।

साधारणत: शैक्षिक शोध-कार्यों में प्रदत्तों की सहायता से परिकल्पनाओं की पुष्टि की जाती है और इससे निष्कर्ष निकालते हैं। गुणात्मक प्रदत्तों को परिमाण में भी बदल लिया जाता है और उनकी सार्थकता की परख सांख्यिकी विश्लेषण से की जाती है। जब गुणात्मक प्रदत्तों को परिमाणात्मक प्रदत्तों में नहीं बदल पाते है तब व्याख्यात्मक व्याख्या की जाती है।

परिमाणात्मक प्रदत्तों की विशेषताएँ (Charateristics of Quantitative Data)

शोध के मापन उपकरणों की सहायता से प्रदत्तों का संकलन किया जाता है। इनकी अधोलिखित विशेषताएँ होती हैं-

(1) प्रामाणिक परीक्षणों की सहायता से परिमाणात्मक प्रदत्तों का संकलन किया जाता है। यदि अनुसन्धानकर्ता स्वयं परीक्षण का निर्माण करता है तब उसकी विश्वसनीयता तथा वैधता भी ज्ञात की जाती है। पद-विश्लेषण भी किया जाता है।

(2) परिमाणात्मक प्रदत्त विश्वसनीय तथा वैध उपकरण से एकत्रित किये जाते हैं, इसलिए सामान्यीकरण अधिक शुद्ध होते हैं।

(3) परिमाणात्मक प्रदत्तों से प्राप्त निष्कर्षों की व्याख्या सरलता तथा सुगमता से किया जा सकता है। सार्थकता का स्तर भी निर्धारित किया जाता है।

(4) परिमाणात्मक प्रदत्तों की अंकन प्रक्रिया वस्तुनिष्ठ होती है। व्यक्तिगत पक्षों का प्रभाव नहीं होता है।

(5) परिमाणात्मक प्रदत्तों का संकलन शोध के उद्देश्यों की दृष्टि के किया जाता है और शोध की परिकल्पनाओं की पुष्टि की जाती है।

(6) परिमाणात्मक प्रदत्तों का सांख्यिकीय विश्लेषण करके निष्कर्ष निकाले जाते हैं जिससे अधिक शुद्ध सामान्यीकरण किया जाता है।

(7) शैक्षिक शोध-कार्यों में परिमाणात्मक प्रदत्तों की सहायता से शुद्ध तथा सही परिणाम प्राप्त किये जाते हैं।

12.4 प्रदत्तों के प्रकार (Types of Data)

मापन प्रक्रिया के चार स्तर होते हैं जिनसे चार प्रकार के प्रदत्त प्राप्त होते हैं। इस प्रकार प्रदत्तों को बाँट सकते हैं-

(1) नाम-सम्बन्धी प्रदत्त (Nominal data or Scale)

(2) क्रम-सूचक प्रदत्त (Ordinal data or Scale)

(3) समान-अवान्तर प्रदत्त तथा (Equal-Interval data or Scale)

(4) अनुपात प्रदत्त (Ratio data or Scale)

(1) नाम सम्बन्धी प्रदत्त (Nominal data) - प्रदत्त साधारणत: चार प्रकार के होते हैं परन्तु यह सबसे कम शुद्ध स्तर के प्रदत्त माने जाते हैं। इसमें केवल दो या दो से अधिक वर्गों में किसी समूह या तथ्यों का विभाजन किया जाता है। उसकी आवृतियों में गणना की जाती है, जैसे–पास या फेल, छात्र और छात्रायें, हिन्दु तथा मुस्लिम आदि। उसके परिणाम का बोध नहीं होता है। इस प्रकार प्रदत्तों के लिए निरीक्षण-प्रविधि तथा प्रश्नावली प्रविधि प्रयुक्त की जाती हैं।

नोट

इस प्रकार के प्रदत्तों को आवृत्तियों के रूप में एकत्रित किया जाता है। इस प्रकार के प्रदत्तों के विश्लेषण के लिये प्रतिशत, बहुलांक-मान, काई वर्ग परीक्षण तथा सह-सम्बन्ध के लिए कनटिनजेन्सी प्रविधि प्रयुक्त की जाती है। साधारणत: वर्णनात्मक सांख्यिकीय प्रविधियों को ही प्रयुक्त किया जा सकता है। कक्षा शिक्षण की व्यवस्था में इसी प्रकार के प्रदत्तों को प्रयुक्त किया जाता है।

(2) क्रम-सूचक प्रदत्त (Ordinal Data)- नाम-सम्बन्धी प्रदत्तों की अपेक्षा प्रदत्तों का यह रूप अधिक शुद्ध होता है। प्रत्येक वर्ग के छात्रों को एक क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक वर्ग के सदस्य को अनुस्थिति दी जाती है। इस प्रकार के प्रदत्तों के लिए निरीक्षण प्रविधि तथा अनुस्थिति-मापनी का प्रयोग किया जाता है। सदस्यों की योग्यता के आधार पर उनका स्तरीकरण किया जाता है और अनुस्थितियाँ प्रदान की जाती हैं। सदस्य के क्रम स्तर का तो बोध होता है परन्तु उनकी सही दूरी स्पष्ट नहीं होती है। इसमें सदस्यों के समूह का विभाजन करके योग्यतानुसार अनुस्थिति प्रदान की जाती है, जैसे-कक्षा के छात्रों को लड़के तथा लड़कियों में विभाजित करके प्रत्येक को उनकी योग्यतानुसार क्रम में रखा जाता है।

इसमें आवृतियों को क्रम में प्रस्तुत किया जाता है। सांख्यिकीय प्रविधियों में मध्यांक चतुर्थांशमान, काईवर्ग परीक्षण तथा स्पीयरमैन अनुस्थिति सह-सम्बन्ध विधि द्वारा इस प्रकार के प्रदत्तों का विश्लेषण किया जाता है। कक्षा-शिक्षण में अध्यापक अपने निरीक्षण के आधार पर छात्रों का स्तरीकरण करता है। छात्र के व्यवहार के आधार पर अनुस्थितियाँ प्रदान की जाती हैं।

(3) समान-अवान्तर प्रदत्त (Equal Interval Data)– इस प्रकार के प्रदत्तों की वह सब विशेषताएँ होती हैं जो उपरोक्त दोनों प्रकार के प्रदत्तों की होती हैं, परन्तु इस प्रकार के प्रदत्तों की विशेषता यह होती है कि सदस्यों के मध्य की दूरी प्रकट हो जाती है। इस प्रकार के प्रदत्तों में शून्य माना हुआ होता है। शैक्षिक मापन मे अधिक शुद्ध प्रदत्त इसी प्रकार के होते हैं। शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक मापन सापेक्ष होता है। अत: शून्य माना हुआ होता है।

इन प्रदत्तों के लिये समूह के सदस्यों के किसी गुण के मापन में अंक प्रदान किये जाते हैं। जैसे-शैक्षिक उपलब्धियों के लिये विषयगत अंक दिए जाते हैं। बुद्धि के मापन हेतु भी अंक दिये जाते हैं।

शिक्षा तथा मनोविज्ञान में यह सबसे शुद्ध प्रकार का प्रदत्त होता है। इस प्रकार के प्रदत्तों से शोध-कार्यों मे जो निष्कर्ष निकाले जाते हैं, वे अधिक विश्वसनीय तथा शुद्ध होते हैं।

साधारणत: इन तीनों के प्रदत्तों को व्यावहारिक विज्ञानों–शिक्षा, मनोविज्ञान तथा समाजशास्त्र में प्रयोग करते हैं। इन तीनों प्रकार के प्रदत्तों को अधोलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है–

तालिका 12.1

प्रदत्तों के प्रकार

छात्र	*नाम सम्बन्धी*	*क्रम सूचक*	*समान-अवान्तर*
	लिंग	*निष्पत्ति स्तर*	*निष्पत्ति प्राप्तांक*
अ	लड़का–1	द्वितीय	68
ब	लड़की–1	प्रथम	76
स	लड़की–1	तृतीय	60
द	लड़की–1	पंचम	28
अ	लड़की–1	चतुर्थ	48
	लड़का=2 लड़की=3		

नोट

इस तालिका से स्पष्ट है कि प्रथम तथा द्वितीय में एक अनुस्थिति का अन्तर है और 8 अंकों का अन्तर है। चतुर्थ तथा पंचम में भी अनुस्थिति का अन्तर है परन्तु 20 अंकों का अन्तर है। इस प्रकार अवान्तर प्रदत्त अधिक शुद्ध होते हैं परन्तु इसमें शून्य अंक माना हुआ होता है क्योंकि किसी छात्र की निष्पत्ति शून्य नहीं हो सकती परन्तु परीक्षा में सभी अंक सही न करने पर शून्य अंक दिया जाता है।

(4) अनुपात-प्रदत्त (Ratio-Data)–इस प्रकार के प्रदत्तों की वह सभी विशेषताएँ होती हैं जो अवान्तर प्रदत्तों की तथा दो अतिरिक्त विशेषताएँ होती हैं–

(अ) इस प्रकार के प्रदत्तों का संदर्भ-बिन्दु शून्य होता है जबकि उपरोक्त प्रदत्तों का संदर्भ बिन्दु शून्य नहीं होता है अपितु समूह सन्दर्भ होता है। शून्य मान उस चर की अनुस्थिति प्रदर्शित करता है। भौतिक विज्ञानों में इस प्रकार के प्रदत्त एकत्रित किये जाते हैं। भौतिक विज्ञान में मापनियों पर शून्य सभी में होता है।

(ब) अनुपात-प्रदत्त में जो अंक दिये जाते हैं वे वास्तविक अंक होते हैं, उन्हें जोड़ा जा सकता है, घटाया जा सकता है जबकि अवान्तर प्रदत्तों में ऐसा सम्भव नहीं होता है। 15 ग्राम, 5 ग्राम का तिगुना होता है परन्तु शैक्षिक मापन के अंकों में ऐसा सम्बन्ध नहीं स्थापित किया जा सकता है।

उपरोक्त चार प्रकार के प्रदत्तों का वर्गीकरण मापन के चार स्तरों पर आधारित होता है। प्रदत्तों की प्रकृति मापन के स्तर से स्पष्ट हो जाती है। अनुसंधानकर्ता को इन चारों मापन के स्तर की विस्तृत जानकारी होना आवश्यक है तभी वह प्रदत्तों की प्रकृति समझ सकता है। इनका विस्तृत विवरण अग्रांकित तालिका में दिया जाता है।

इस तालिका से मापन स्तरों तथा प्रदत्तों के प्रकार की प्रकृति, अवधारणाओं तथा विशेषताओं को भली प्रकार समझा जा सकता है। प्रथम तीन स्तरों/प्रदत्तों का उपयोग शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक शोध-कार्यों में अधिक होता है जबकि चतुर्थ प्रकार के प्रदत्तों का उपयोग भौतिक विज्ञानों में ही किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. प्रदत्तों को दो भागों में विभाजित किया जाता है– ..... तथा परिमाणात्मक प्रदत्त।
   (क) परिमापात्मक (ख) मूल्यानात्मक (ग) गुणात्मक (घ) तीनों
5. ..... प्रविधि का प्रयोग छोटे बालकों तथा पशुओं के गुणों के मापन में किया जाता है।
   (क) निरीक्षण (ख) मनोवैज्ञानिक (ग) प्रश्नावली (घ) साक्षात्कार
6. वैज्ञानिक शोधकार्यों में ..... प्रक्रिया का विशेष महत्त्व है।
   (क) सामाजिक (ख) मापन (ग) धार्मिक (घ) सांस्कृतिक
7. ..... शोध में प्रदत्तों को प्राथमिक तथा गौण स्रोतों से प्राप्त किया जाता है।
   (क) भौतिक (ख) रासायनिक (ग) ऐतिहासिक (घ) सामाजिक

12.5 प्रदत्तों का संकलन (Data Collection)

व्यावहारिक मनोविज्ञान में शोध-कार्य के लिए प्रदत्तों का संकलन शोध के उपकरणों का प्रशासन, न्यादर्श के सदस्यों पर करके किया जाता है। शोध में विभिन्न प्रकार के चरों के मापन के लिए विविध प्रकार की मापन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। शोध के उपकरणों की सहायता से विविध प्रकार के प्रदत्तों का संकलन किया जाता है। इसके लिये आवश्यक होता है कि शोधकर्ता अपने चरों की प्रकृति को भली प्रकार समझने का प्रयास करे और समुचित मापन प्रविधि का चयन करके प्रदतों का संकलन करे। प्रदत्तों की प्रकृति, चर की प्रकृति तथा मापन के उपकरण की प्रकृति पर आधारित होता है। इस तथ्य को तालिका से स्पष्ट किया गया है।

नोट

मापन के स्तर प्रदत्तों की प्रकृति, विशेषताओं, मापनियों के उपयोग तथा सांख्यिकी की प्रविधियों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण आधार होता है। प्रदत्तों की प्रकृति ही विश्लेषण प्रविधियों का निर्धारण करती है। निष्कर्षों की वैधता प्रदत्तों पर ही आधारित होती है।

तालिका 12.2

मापन के स्तरों का वर्गीकरण (Classification of Scales of Measurement)

स्तर (Scale)	*विशेषताएँ (Characteristics)*	*अवधारणाएँ (Assumptions)*	*मापनी (Tool)*	*सांख्यिकीय प्रविधि (Statistical Technique)*
1. नाम-सम्बन्धी स्तर (Nominal Scale)	वर्गीकरण, समानता, असमानता	सभी सदस्यों को एक से अंक प्राप्त किये जाते हैं परन्तु एक दो समूहों को एक अंक नहीं दिया जाता है।	निरीक्षण-विधि, प्रश्नावली, साक्षात्कार	प्रतिशत बहुलांक मान सह-सम्बन्ध विधि काई-वर्ग परीक्षण
2. क्रमसूचक स्तर (Ordinal Scale)	वर्गीकरण क्रम समानता/असमानता	उपरोक्त सभी सदस्यों को एक क्रम मे चर के व्यावहारिक आधार पर व्यवस्थित किया जाता है।	निरीक्षण-विधि, अनुस्थिति मापनी, शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण	बहुलांक मान, मध्यांक मान, अनुस्थिति सह-सम्बन्ध विधि, काई-वर्ग परीक्षण, शतांकमान
3. समान अवान्तर स्तर (Equal, Interval)	उपरोक्त सभी इकाई/अंक जोड़ा तथा घटाया जा सकता है, गुणा कर सकते हैं।	उपरोक्त सभी स्तरों पर सदस्यों की योग्यता की दूरी प्रदर्शित की जाती है।	शैक्षिक तथा मनोवैज्ञानिक परीक्षण, अनुस्थिति मापनी, निरीक्षण प्रविधियाँ।	उपरोक्त सभी तथा मध्यमान, प्रमाणिक विचलन, उच्च परीक्षण थे तथा टी.एफ. 'पीयर्सन सह-सम्बन्ध विधि'
4. अनुपात स्तर (Ratio Scale)	उपरोक्त सभी तथा शून्य का अस्तित्व होता है। जोड़ा, घटाया तथा गुणा किया जा सकता है।	उपरोक्त सभी स्तर पर शून्य प्राकृतिक होता है।	भौतिक मापन प्रविधियों द्वारा प्रदत्त एकत्रित किये जाते हैं। लम्बाई, समय, गति आदि।	उपरोक्त सभी तथा अंकगणित का भी प्रयोग किया जाता है।

तालिका 12.3

चरों पर आधारित प्रदत्त (Data Based on the Nature of Variable)

चर (Variable)	*उपकरण (Tools)*	*प्रदत्त की प्रकृति (Scale)*
1. निष्पत्ति	शैक्षिक परीक्षण	समान अवान्तर स्तर
2. बुद्धि	मनोवैज्ञानिक परीक्षण	समान अवान्तर स्तर
3. प्रवणता	मनोवैज्ञानिक परीक्षण	समान अवान्तर स्तर
4. अभिवृत्ति	अनुस्थिति अनुसूची	क्रम सूचक स्तर
5. अभिरूचि	अनुसूची	अवान्तर स्तर
6. समायोजन	अनुसूची	अवान्तर स्तर
7. व्यक्तित्व	अनुसूची	अवान्तर स्तर
8. अनुभूति या भाव	प्रश्नावली साक्षात्कार	नाम सम्बन्धी स्तर

नोट

इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के शैक्षिक उपकरणों का प्रयोग किया जाता है। सबसे उपयोगी 'निरीक्षण प्रविधि' है। इसके उपयोग से प्रदत्त नाम-सम्बन्धी स्तर से समान अवान्तर स्तर तक प्राप्त किये जाते हैं।

शैक्षिक मापन उपकरणों का सम्बन्ध प्रदत्तों की प्रकृति तथा सांख्यिकीय प्रविधियों से सम्बन्धित होता है। इस प्रकार का वर्गीकरण अधोलिखित तालिका में प्रदर्शित किया गया है।

तालिका 12.4

प्रदत्तों का वर्गीकरण उपकरण तथा सांख्यिकीय प्रविधि

स्तर (Scale)	*शोध उपकरण (Tools)*	*सांख्यिकीय प्रविधि (Statistical Technique)*
1. नाम-सम्बन्धी स्तर (Nominal)	प्रश्नावली साक्षात्कार निरीक्षण विधि	आवृत्ति, प्रतिशत, बहुलांक काई वर्ग तथा 'सी' सह-सम्बन्ध
2. क्रम सूचक स्तर (Ordinal)	अनुस्थिति अनुसूची निरीक्षण विधि स्तर-अनुसूची	मध्यांक मान, विचलन मान स्पीयर मैन सह-सम्बन्ध विधि, काई-वर्ग परीक्षण तथा 'सी' सह-सम्बन्ध विधि
3. सामान अवान्तर स्तर (Equal Interval Scale)	मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक परीक्षण, निरीक्षण विधि, अनुस्थिति मापनी	उपरोक्त सभी तथा मध्यमान, प्रामाणिक विचलन मान, पीयरसन सह-सम्बन्ध विधि, 'टी' परीक्षण, उच्च सह-सम्बन्ध विधि
4. अनुपात स्तर (Ratio Scale)	भौतिक मापन प्रविधियाँ	अंकगणित की विधियों से विश्लेषण किया जा सकता है। मध्यान तथा सह-सम्बन्ध विधियाँ

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट होता कि सांख्यिकीय प्रविधियाँ शोध के उपकरण तथा प्रदत्तों की प्रकृति पर आधारित होते हैं। समुचित सांख्यिकीय प्रविधि का चयन प्रदत्तों के आधार पर ही किया जा सकता है। अत: शोधकर्ता को प्रदत्तों की प्रकृति का ज्ञान होना नितान्त आवश्यक है।

प्रदत्तों के संकलन की आचार-संहिता (Ethical Consideration in Data Collection)

शैक्षिक शोध-कार्यों के न्यादर्श में प्रमुख रूप से मानवीय सदस्यों का चयन किया जाता है। अत: प्रदत्तों के संकलन में निम्नांकित आचार संहिता का निर्वाह करना चाहिये–

(1) शोधकर्ता को न्यादर्श के सदस्यों के प्रति सहानुभूति रखनी चाहिये और उनके सम्मान का ध्यान रखना चाहिये।

(2) न्यादर्श के सदस्यों का ध्यान रखना चाहिये।

(3) न्यादर्श से प्राप्त प्रदत्तों को गोपनीय रखना चाहिये।

(4) शोधकर्ता को प्रदत्तों की गोपनीयता का उल्लघंन नहीं करना चाहिये।

(5) शोधकर्ता को अनुसन्धान के स्तर का ध्यान रखना चाहिये।

(6) पर्यवेक्षक को शोधकर्ता के सभी कार्यों का पूर्णरूपेण ध्यान रखना चाहिये।

प्रत्येक शोधकर्ता को उपरोक्त आचार-संहिता के नियमों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिये। न्यादर्श के सदस्यों के नाम का कहीं भी उल्लेख नहीं करना चाहिये। उस संस्था का नाम दिया जा सकता है जहाँ से न्यादर्श के सदस्यों

नोट

का चयन किया गया है। इसके लिए भी सांकेतिक भाषा प्रयुक्त की जाये तब अधिक उत्तम रहता है। विशिष्ट शोध-कार्य के न्यादर्श के सदस्यों का सम्मान करना चाहिये और उनसे पहले सम्पर्क स्थापित करना चाहिये।

प्रदत्तों के संकलन में सावधानियाँ (Precautions in Data Collection)

शोध-कार्य में प्रदत्तों के संकलन में अधोलिखित सावधानियाँ रखनी चाहिये–

(1) प्रदत्त शोध की समस्या के लिए सार्थक होना चाहिये।

(2) प्रदत्तों का संकलन प्रामाणिक उपकरणों की सहायता से करना चाहिये।

(3) प्रदत्त इस प्रकार के होने चाहिये जिनके विश्लेषण सांख्यिकीय प्रविधियों द्वारा किया जा सके।

(4) प्रदत्तों के संकलन में मापन-त्रुटि भी कम-से-कम होनी चाहिये।

(5) प्रदत्तों के संकलन में न्यादर्श त्रुटि भी कम होनी चाहिये।

(6) प्रदत्तों का स्वरूप इस प्रकार का हो जिससे जनसंख्या के मानकों का सही अनुमान लगाया जा सके।

(7) प्रदत्त अपने में पूर्ण तथा व्यापक होने चाहिये।

(8) प्रदत्तों का सकंलन वस्तुनिष्ठ रूप में किया जाना चाहिये।

(9) प्रदत्त शुद्ध तथा सही होने चाहिये।

सावधानी प्रदत्त विश्वसनीय तथा वैध होने चाहिये।

(10) प्रदत्तों का स्वरूप इस प्रकार का हो जिनका प्रस्तुतीकरण तथा व्याख्या सुगमता से किया जा सके।

(11) प्रदत्तों के लिए अंकन विधि सरल तथा वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए।

12.6 प्रदत्तों की व्यवस्था तथा वर्गीकरण (Arrangement and Classification of Data)

प्रदत्तों के संकलन के बाद उनका वर्गीकरण तथा व्यवस्था की जाती है जिससे उनका समुचित रूप में विश्लेषण किया जा सके और निष्कर्ष निकाले जा सकें।

प्रदत्तों का संकलन विश्वसनीय तथा वैध उपकरणों की सहायता से किया जाता है। यह कच्चे माल की तरह होते हैं। इनका कुछ भी अर्थ नहीं होता है। प्रदत्तों को सार्थक बनाने के लिए सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। इसलिए प्रदत्तों का वर्गीकरण तथा व्यवस्था करने की आवश्यकता होती है।

प्रदत्तों के वर्गीकरण का अर्थ होता है कि प्राप्त सूचनाओं को विभिन्न वर्गों में विभाजित करना जिसे अपेक्षित परिणामों के लिए विश्लेषण किया जा सके।

(अ) शोध के प्रदत्तों का वर्गीकरण (Classification of Research Data)–

प्राप्त प्रदत्त अपने आरम्भिक रूप में अस्पष्ट, विस्तृत, अर्थहीन उलझे हुए होते हैं। वर्गीकरण के बिना उनमें किसी सांख्यिकीय प्रविधि का प्रयोग नहीं किया जा सकता है तथा न ही उनके आधार पर कोई परिणाम या निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है। अत: एकत्रित प्रदत्तों को उपयोगिता की दृष्टि से संक्षिप्त करना और उन्हें एक व्यवस्थित रूप देना आवश्यक है। इस प्रकार वर्गीकरण प्रदत्तों को व्यवस्थित एंव संक्षिप्त करने की प्रक्रिया है जिसके अन्तर्गत समान एवं असमान गुणों के अनुसार प्रदतों को इस प्रकार विभाजित करते हैं कि समान गुणों वाले प्रदत्त एक ही वर्ग में तथा असमान गुणों वाले प्रदत्त अन्य वर्गो में आ सकें। ऐसा करने से अनुसन्धान के प्रदत्तों में स्पष्टता आ जाती है।

नोट

एलहंस के अनुसार, "प्रदत्तों को उनकी एकरूपता एवं समानता के अनुसार समूह अथवा वर्गों में व्यवस्थित करने की प्रक्रिया को पारिभाषिक रूप में वर्गीकरण कहा जाता है।"

प्रदत्तों के वर्गीकरण के आवश्यक गुण (Characteristics of Classification of Data)

अच्छे वर्गीकरण में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है–

(1) **स्पष्टता** (Clarity)–वर्गीकरण की सबसे बड़ी विशेषता उसकी स्पष्टता है। विभिन्न वर्गों में विभाजित प्रदत्त इस प्रकार सुगम एवं स्पष्ट होने चाहिये कि उनमें सन्देह के लिये कोई स्थान न रहे।

(2) **स्थिरता** (Stability)–वर्गीकरण में स्थिरता का होना भी आवश्यक है। यदि उसमें स्थिरता नहीं, तो प्रत्येक पुनरावृत्ति में भिन्नता पैदा हो जाती है, इसके आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना असंभव होगा।

(3) **परिवर्तनशीलता** (Flexibility)–वर्गीकरण के लिये यह आवश्यक है कि इसमें समय एवं परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन एवं समन्वय की क्षमता हो।

प्रदत्तों के वर्गीकरण के आधार (Basis of Classification of Data)

अनुसन्धान के प्रदत्तों का वर्गीकरण निम्नलिखित आधार पर हो सकता है–

(1) **गुणात्मक आधार** (Qualitative basis)–गुणात्मक आधार से तात्पर्य प्रदत्तों को उनके लक्षणों एवं गुणों के आधार पर विभाजित करना है, जैसे-रुचि, प्रवृत्ति आदि।

(2) **संख्यात्मक एवं परिमाणात्मक आधार** (Quantitaive basis)–जहाँ प्रदत्तों का वर्गीकरण गुणात्मक आधार पर वर्गीकृत नहीं किया जा सकता, वहाँ संख्यात्मक एंव परिभाषात्मक आधारों को अपनाया जाता है, उदाहरणार्थ- आयु, लम्बाई, ऊँचाई, संख्या आदि।

(3) **सामयिक आधार** (Situational basis)–सामयिक आधार में प्रदत्तों का वर्गीकरण विशेष समय की प्रवृत्ति अथवा अवस्था के अनुसार किया जाता है।

(4) **भौगोलिक आधार** (Geographical basis)–भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार प्रदत्तों का वर्गीकरण हो सकता है।

प्रदत्तों के वर्गीकरण के प्रकार (Types of Classification of Data)

(1) **सरल वर्गीकरण अथवा द्वि-चरक वर्गीकरण** (Uni-or-Bi-variate)

वर्गीकरण की इस पद्धति के अनुसार, प्रदत्तों को किसी एक विशिष्ट गुण के आधार पर दो भागों में विभाजित किया जाता है, जिसके प्रथम भाग में एक गुण वाले प्रदत्त आ सकें। दूसरे वर्ग में वे प्रदत्त आयेंगे जिनमें वे गुण नहीं हैं।

उदाहरण रुचिवान/अरुचिवान, कलात्मक क्षमता युक्त/कलात्मक क्षमता-युक्त नहीं आदि।

(2) **बहु-चरक वर्गीकरण** (Multi-Variate)–प्रदत्तों को विभिन्न गुणों के आधार पर अनेक वर्गों में विभाजित किया जाता है। इसमें दो से अधिक वर्ग बनते हैं। उदाहरणार्थ, यदि किसी जनसंख्या का वर्गीकरण लिंग, साक्षरता और बुद्धि स्तर के आधार पर करना हो तो इस प्रकार हो सकता है–

जनसंख्या (Population)–$2 \times 2 \times 3 = 12$ कोष्ठ तीन चर लिए गए।

(अ) लिंग के अनुसार–	(1)	(2)
	पुरुष (Male)	स्त्री (Female)
(ब) साक्षारता के अनुसार–	(1)	(2)
	साक्षर (Literate)	निरक्षर (Illiterate)

नोट

(स) बुद्धि स्तर के अनुसार–

(1)	(2)	(3)
उच्च बुद्धि	औसत बुद्धि	निम्न बुद्धि
(High)	(Average)	(Low)

(3) **संख्यात्मक वर्गीकरण** (Quantitative Classification)–संख्यात्मक वर्गीकरण का प्रयोग उन प्रदत्तों के लिये किया जाता है जिनकी प्रकृति संख्यात्मक हो, जैसे-ऊँचाई, भार, उम्र, सामाजिक-आर्थिक, बुद्धि-लब्धि आदि। इन प्रदत्तों को आवृत्ति वितरण के रूप में व्यवस्थित करते हैं और उनकी गणना के आधार पर वर्गीकरण करते हैं।

(4) **आयु के अनुसार वर्गीकरण** (Chronolical Classification)–आयु के अनुसार वर्गीकरण के अन्तर्गत प्रदत्तों का वर्गीकरण आयु-वर्ग के अनुसार किया जाता है। इसमें समय को विभिन्न भागों में विभाजित कर लिया जाता है और प्रत्येक समय से सम्बन्धित प्रदत्तों को पृथक् समय के वर्गों में व्यवस्थित करते हैं।

उदाहरण शैशवावस्था, बाल्यावस्था, किशोरावस्था अथवा किसी विशेष काल से सम्बन्धित प्रदत्त।

(5) **परिस्थितिनुसार वर्गीकरण** (Situation Classification)– परिस्थितिनुसार वर्गीकरण में स्थान के अनुसार प्रदत्तों का वर्गीकरण किया जाता है। उदाहरणार्थ ग्रामीण, नागरिक, भारतीय, विदेशी आदि।

अनुसंधान में प्रदत्तों के वर्गीकरण की उपयोगिता (Utility of Classification of Data in Research)

अनुसंधान की प्रक्रिया में वर्गीकरण की उपयोगिताएँ निम्नलिखित हैं–

(1) **संक्षिप्तीकरण** (Summarization)–मूल रूप में एकत्रित प्रदत्त विस्तृत एवं अव्यवस्थित होते हैं। वर्गीकरण से उनमें संक्षिप्तीकरण, स्पष्टता एंव व्यवस्था आती है जिससे विश्लेषण में सहायता होती है।

(2) **सामाग्री के विभिन्न लक्षणों का विभाजन** (Classification of Material)–वर्गीकरण के माध्यम से समान गुणों को प्रदर्शित करने वाले प्रदत्तों को एक वर्ग में और असमान प्रदत्तों को पृथक् वर्ग में सम्मिलित किया जाता है, जिससे अध्ययन सरल हो जाता है।

(3) **स्पष्टता** (Clarity)–प्रदत्तों के वर्गीकरण से उसका स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, जिससे समुचित सांख्यिकीय प्रविधि के चयन में सहायता मिलती है।

(4) **अनुसन्धान की अनुगामी क्रियाओं के लिये सरलता**–उचित वर्गीकरण से प्रदत्तों के विश्लेषण, सांख्यिकी के उपयोग, सामान्यीकरण एंव निष्कर्ष निकालने में सहायक होता है।

(5) **तुलनात्मक अध्ययन का आधार** (Comparative Basis)–वर्गीकरण के द्वारा प्रदत्तों को गुण, लक्षण, संख्या, स्थान आदि में विभाजित किया जाता है जिससे प्रदत्तों का तुलनात्मक अध्ययन करना सरल हो जाता है।

(6) **नवीन आँकड़ों को सम्मिलित करने की सुविधा** (Inclusion of New Data)–वर्गीकरण से एक लाभ यह भी है कि बाद में प्राप्त प्रदत्तों को भी हम उनके गुण एवं लक्षणों के आधार पर उन प्रदत्तों से सम्बन्धित वर्ग में व्यवस्थित कर सकते हैं और उन्हें विश्लेषण में प्रयुक्त कर सकते हैं।

(7) **अनुसन्धान के प्रदत्तों का व्यवस्थापन** (Arrangement of Data)–अनुसन्धान के प्रदत्तों के संकलन एवं वर्गीकरण के बाद प्रदत्तों का उचित उपयोग आवश्यक है, जिससे अनुसन्धानकर्ता कुछ उपयोगी निष्कर्ष निकाल सके। इसी उपयोग को व्यावस्थापन कहते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State Whether the Following Statement are True or False):

8. चर उस गुण विशेष को कहते हैं जिसको परिमाण में बदल सकते हैं।
9. प्रदत्तों की प्रकृति ही विश्लेषण प्रविधियों का निर्धारण करती है।

नोट

10. प्रदत्तों के लिए अंकन विधि जटिल होनी चाहिए।
11. भौगोलिक क्षेत्रों के अनुसार प्रदत्तों का वर्गीकरण नहीं हो सकता।

12.7 प्रदत्तों के व्यवस्थापन के साधन (Source of Arrangement of Data)

प्रदत्तों के व्यवस्थापन के निम्नलिखित साधन हैं–

(1) तालिका (Tabulation) में व्यवस्थित करना।

(2) सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग (Statistical Techniques) करना।

(3) प्रदत्तों का विश्लेषण (Analysis of Data) करना।

(4) परिणामों की व्याख्या एंव प्रस्तुतिकरण करना (Presentation or Interpretation)।

(1) सारणीयन (Tabulation)

प्रदत्तों को स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने हेतु उनका सारणीयन आवश्यक है। सारणीयन के द्वारा प्रदत्तों में सरलता तथा स्पष्टता आती है तथा वर्णनात्मक तथ्य अधिक व्यवस्थित होकर प्रदर्शन के योग्य बन जाते हैं। इनके अन्तर्गत प्रदत्तों को विभिन्न स्तम्भों एवं पंक्तियों में प्रस्तुत किया जाता है जिससे समझने में सरलता तथा सुविधा होती है। सामान्य रूप मे प्रदत्तों की स्तम्भों एवं पंक्तियों में व्यस्थित करने को ही सारणीयन कहते हैं।

सारणीयन के प्रकार (Types of Tables)–मुख्य रूप से सारणीयन निम्नलिखित प्रकार के होते हैं, किन्तु प्रदत्तों की प्रकृति के अनुसार इसके और भी प्रकार हो सकते हैं।

(1) **एक चरक सारणी** (Uni-Variate)–एक चरक सारणी के अर्न्तगत एक ही चर अथवा एक ही गुण वाले प्रदत्तों को व्यवस्थित रूप में देखते हैं।

(2) **द्वि-चरक सारणी** (Bi-Variate)–इस प्रकार की सारणी में किसी चर अथवा पहलू विशेष के दो परस्पर सम्बन्धित लक्षणों के बारे में सूचनायें प्रदान करती हैं।

(3) **बहु-चरक सारणी** (Multi-Variates)–बहु चरक सारणी में किसी चर अथवा घटना के अनेक सम्बन्धित गुणों के विषय में सूचनायें होती हैं।

तालिका का अनुसन्धान में महत्त्व (Significance of Table in Research)–एकत्रित प्रदत्तों को संक्षिप्त एवं सरल स्वरूप प्रदान करने की दृष्टि से अनुसन्धान में यह निम्नलिखित रूपों में विशेष महत्त्वपूर्ण होती है–

(1) **प्रदत्तों की तर्कपूर्ण व्यवस्था** (Logical Arrangement)–सारणीयन के द्वारा किसी चर अथवा घटना के सम्बन्ध में समस्त प्रदत्तों को महत्त्वपूर्ण ढंग से व्यस्थित किया जाता है जो अनुसन्धान हेतु आवश्यक होता है। सारणीयन में किसी विशिष्ट क्रम का अनुसरण किया जाता है।

(2) **प्राप्त प्रदत्तों का संक्षिप्तीकरण** (Summarization of Data)–सारणीयन के बाद अनुसन्धान के प्रदत्तों का रूप संक्षिप्त एवं स्पष्ट हो जाता है।

(3) **विश्लेषण की सरलता** (Easy to Analyse Data)–अनुसन्धान के प्रदत्तों का विश्लेषण तथा निष्कर्ष निकालना उचित सारणीयन के द्वारा ही सम्भव है।

(4) **समय, श्रम एवं धन की बचत** (Save of Time Energy and Money)–तालिका के बाद प्राप्त प्रदत्तों के आधार पर निष्कर्ष निकालने में समय एवं श्रम की बचत होती है तथा कार्य। अधिक उत्तम होता है। शोध में सारणीयन एक मितव्ययी प्रक्रिया मानी जाती है।

नोट

(5) **तुलनात्मक अध्ययन में सरलता** (Easy in Comparative Study)–सारणीयन के बाद जब अनुसन्धान के प्रदत्तों को विभिन्न स्तम्भ में बाँट लेते हैं तो प्रदत्तों की समान विशेषताएँ स्पष्ट हो जाती हैं। इसके आधार पर तुलनात्मक अध्ययन करना सरल होता है।

सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग (Use of Statistical Techniques)–प्रदत्तों के व्यवस्थापन का दूसरा महत्त्वपूर्ण पद उन पर सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग होता है।

प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या (Analysis and Interpretion of data)–इस प्रक्रिया में प्राप्त प्रदत्तों को इस प्रकार व्यवस्थित करते हैं कि वह समस्या के सम्बन्ध में वांछित परिणामों को प्रस्तुत कर सकें।

नोट्स **डब्ल्यू. कुक** के अनुसार, "वैज्ञानिक विश्लेषण अध्ययन के तथ्यों, परिणामों तथा वैज्ञानिक ज्ञान के सम्बन्धों की खोज करता है।"

प्रदत्तों का विश्लेषण एक वैज्ञानिक निष्कर्ष पर पहुँचाता है तथा परिकल्पना के परीक्षण में सहायक होता है।

12.8 प्रदत्तों के विश्लेषण की विभिन्न प्रक्रियाएँ (Various Ways of Analysis of Data)

प्रदत्तों के विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य एकत्रित प्रदत्तों से नवीन तथ्यों को प्राप्त करना है। निष्कर्ष पर पहुँचने की इस प्रक्रिया में अनेक उप-क्रियायें सम्मिलित होती हैं, जिन्हें समग्र रूप में विश्लेषण कहा जाता है। विश्लेषण की क्रिया में निम्नलिखित उपक्रियायें सम्मिलित होती हैं–

(1) सामग्री का सम्पादन (Editing of Material)–प्राप्त प्रदत्तों के अन्तर्गत कमजोर तथा सन्तोषजनक अंशों को सुधारकर उसे प्रयोग के लिए उपयुक्त बनाना ही सम्पादन का प्रमुख कार्य है।

(2) प्रदत्तों का वर्गीकरण (Classification of Data)–वर्गीकरण के अन्तर्गत बिखरे हुए प्रदत्तों को व्यवस्थित किया जाता है ताकि उनसे निष्कर्ष निकालने में सरलता हो।

वर्गीकरण निम्नलिखित उद्देश्यों की पूर्ति करता है–

(क) यह प्रदत्तों के विभिन्न गुणों को एक दूसरे से पृथक् करता है।

(ख) वर्गीकरण के बाद प्रदत्त संक्षिप्त हो जाते हैं।

(ग) वर्गीकरण के बाद प्रदत्त स्पष्ट तथा सरल हो जाते हैं।

(3) सामाग्री का संकेतन (Code of Material)–वर्गीकरण के बाद प्रत्येक वर्ग के लिए कोई निश्चित नाम, चिह्न अथवा संकेत देते है। इसी को संकेतन कहते हैं इससे विश्लेषण में सुगमता होती है।

(4) प्रदत्तों का सारणीयन (Tabulation of Data)–प्रदत्तों को विभिन्न शीर्षकों, स्तम्भों एवं पंक्तियों द्वारा प्रस्तुत करना होता है। जिससे प्रदत्तों का स्वरूप सीमित हो जाता है और उसे समझने में सरलता होती है।

(5) प्रदत्तों की व्याख्या (Interpretation of Data)–व्याख्या से तात्पर्य सम्पूर्ण प्रदत्तों के यथार्थ अध्ययन के आधार पर निष्कर्ष निकालना है। ये निष्कर्षो व्यवस्थित किए गये प्रदत्तों पर आधारित होते हैं।

(6) सामान्यीकरण (Generalization)–वर्गीकरण किए गए प्रदत्तों की व्याख्या के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों का सामान्यीकरण किया जाता है।

नोट

प्रदत्तों का अनुसन्धान में उपयोग (Uses of Data in Research)

अनुसन्धान में प्रदत्तों का उपयोग निम्नलिखित प्रकार से उपयोगी होता है–

(1) किसी भी शिक्षा-अनुसन्धान में प्रदत्तों का संकलन अनुसन्धान को एक ठोस आधार प्रदान करने के लिए अत्यन्त उपयोगी होता है।

(2) अनुसन्धान में प्रदत्तों का संकलन कच्चे माल की तरह है जिसे प्रदत्तों के उत्पादन के उपयोग में लाया जाता है।

(3) अनुसन्धान की समस्या के लिए उचित दिशा तथा समस्या का उचित समाधान प्रदान करने में प्रदत्त अत्यन्त उपयोगी होते हैं।

(4) वैज्ञानिक अनुसन्धान के लिये प्रदत्त अत्यन्त उपयोगी होते हैं।

(5) अनुसन्धान परिकल्पना की परख करने में प्रदत्तों का उपयोग किया जाता है।

(6) प्रदत्तों के आधार पर शोध के परिणामों की व्याख्या वस्तुनिष्ठ रूप में किया जा सकता है।

(7) शोध के निष्कर्ष अपेक्षाकृत अधिक वैध तथा विश्वसनीय होते हैं।

12.9 कम्प्यूटर के लिए प्रदत्तों का वर्गीकरण तथा व्यवस्था (Classification and Arrangement of Data for Computer)

शोध कार्यों में प्रदत्तों का संकलन प्रामाणिक परीक्षणों की सहायता से किया जाता है। साधारणत: इन परीक्षणों में बहुविकल्पीय प्रकार के पद (Multiple Choice items) सम्मिलित किये जाते हैं। अधिक शुद्ध निष्कर्षों के लिए बड़े न्यादर्श का प्रयोग किया जाता है और बड़े न्यादर्श के उत्तर पत्रकों का अंकन करना अधिक कठिन होता है। इसलिए मशीनों तथा कम्प्यूटर का प्रयोग किया जाने लगा है। मशीनों द्वारा अंकन के लिए आई.बी.एम (I.B.M) पत्रक का प्रयोग किया जाता है इसमें छ: विकल्पों और 150 पदों के उत्तरों को अंकित करने के लिए स्थान होता है। मशीनों द्वारा अंकन से प्राप्तांक नहीं मिलते हैं। अपितु उत्तरों को पत्र पर अंकित किया जाता है। अमुक व्यक्ति ने प्रश्नों के कौन-कौन से विकल्प को अंकित किया है। प्रत्येक न्यादर्श के सदस्य का एक पत्रक तैयार कर लिया जाता है। इन सभी पत्रकों को कम्प्यूटर केन्द्र को दे दिया जाता है। प्रदत्तों के विश्लेषण के लिए एक प्रारूप का विकास किया जाता है। कम्प्यूटर, विश्लेषण के प्रारूप के अनुसार प्रदत्तों का वर्गीकरण तथा व्यवस्था करता है। एक पत्रक पर सम्पूर्ण सूचनाओं को अंकित कर लेते हैं।

टास्क शोध अध्ययनों में प्रदत्तों की उपयोगिता बताएँ।

न्यादर्श के सदस्यों के उत्तर पत्रकों अंकन शोधकर्ता स्वयं भी कर लिया करते हैं और विश्लेषण के प्रारूप की दृष्टि से प्रदत्तों का वर्गीकरण तथा व्यवस्था शोधकर्ता को स्वयं करनी होती है। उसके बाद इन्हें कम्प्यूटर केन्द्र को विश्लेषण के लिए दे दिया जाता है। कभी-कभी प्रदत्तों को कच्चे रूप में कम्प्यूटर केन्द्र को दे देते हैं। केन्द्र पर ही उनका वर्गीकरण तथा व्यवस्था कर ली जाती है।

शोधकर्ता भी विद्युत मशीनों पर स्वयं प्रदत्तों का विश्लेषण कर लेते हैं। ऐसी स्थिति में भी शोधकर्ता को अंकन के बाद उनका वर्गीकरण तथा व्यवस्था करनी होती है तब वह गुणांक पर उन प्रदत्तों का विश्लेषण करता है। मशीनों के प्रयोग से पहले उनकी जाँच भी करनी चाहिए कि जो परिणाम मशीन या कम्प्यूटर से प्राप्त हो रहे हैं, वह सही

हैं अथवा नहीं। एक छोटे न्यादर्श का शोधकर्ता विश्लेषण करता है और उसी को कम्प्यूटर या मशीन से कराया जाता है। जब सही परिणाम प्राप्त हों तब सम्पूर्ण प्रदत्तों का कम्प्यूटर या मशीन पर विश्लेषण कराना चाहिए। इस प्रकार आन्तरिक जाँच की आवश्यकता होती है।

नोट

12.10 सारांश (Summary)

- प्रदतों के संकलन के लिए अनुसन्धान-उपकरणों का प्रशासन न्यादर्श के प्रयोज्यों पर किया जाता है। प्रदत्तों का संकलन, प्रश्नावली, निरीक्षण, साक्षात्कार, परीक्षण तथा अनेक अन्य प्रविधियों द्वारा किया जाता है। यह अनुसन्धान का चतुर्थ सोपान होता है।
- प्रदत्तों का अर्थ है निरीक्षण। वैज्ञानिक शैक्षिक अनुसन्धानों में प्रदत्तों की आवश्यकता पड़ती है। प्रदत्त प्रामाणिक अनुसन्धान उपकरणों या स्वंय निर्मित उपकरणों के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं। प्रदत्त परिमाणात्मक एंव गुणात्मक दोनों प्रकार के होते हैं।
- अचर उस गुण को कहते हैं जो शोध के समय सभी परिस्थितियों में एक सा रहता है तथा चर उस गुण को कहते हैं जो शोध की सभी परिस्थितियों में परिवर्तनशील रहता है।
- शोध में विभिन्न प्रकार के चरों के मापन के लिए विविध प्रकार की मापन प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है। शोध के उपकरणों की सहायता से विविध प्रकार के प्रदत्तों का संकलन किया जाता है।
- मापन के स्तर प्रदत्तों की प्रकृति, विशेषताओं, मापनियों के उपयोग तथा सांख्यिकी की प्रविधियों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण आधार होता है। प्रदत्तों की प्रकृति ही विश्लेषण प्रविधियों का निर्धारण करती है।
- प्रदत्तों के विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य एकत्रित प्रदत्तों से नवीन तथ्यों को प्राप्त करना है। निष्कर्ष पर पहुँचने की इस प्रक्रिया में अनेक उप-क्रियायें सम्मिलित होती हैं, जिन्हें समग्र रूप में विश्लेषण कहा जाता है।

12.11 शब्दकोश (Keywords)

1. **शैशवावस्था**–शिशु की अवस्था।
2. **संक्षिप्तीकरण**–किस विषय को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करना।
3. **अधोलिखित**–नीचे लिखा हुआ, जो उद्धरण नीचे लिखा हुआ हो।

12.12 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. 'प्रदत्त' शब्द की परिभाषा कीजिए। प्रदत्त, तथ्यों से किस प्रकार भिन्न होते हैं? उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए।
2. प्रदत्तों के संकलन की क्यों आवश्यकता होती है? प्रदत्तों की प्रकृति का उल्लेख कीजिये।
3. (अ) गुणात्मक तथा परिमाणात्मक प्रदत्तों में अन्तर बताइये।
   (ब) चर तथा अचर (Content) में भेद बताइये।
   (स) चर तथा चरक (Variate) में अन्तर बताइये।
4. प्रदत्तों के प्रकार को बताइये, यह मापन के उपकरणों तथा चरों की प्रकृति पर किस प्रकार आधारित है, इसका विवेचन कीजिए।
5. सांख्यिकीय प्रविधियाँ भी प्रदत्तों की प्रकृति तथा मापन उपकरणों की प्रकृति पर किस प्रकार आधारित है, इसे उदाहरणों से स्पष्ट कीजिए।

नोट

6. प्रदत्तों के संकलन में शोध आचार-संहिता के नियमों का उल्लेख कीजिए तथा इनको ध्यान मे रखने की क्यों आवश्यकता होती है?
7. प्रदत्तों के संकलन में क्या सावधानियाँ रखनी चाहिये। प्रदत्तों के संकलन की सीमाओं का भी वर्णन कीजिए।
8. प्रदत्तों के 'वर्गीकरण' तथा 'व्यवस्थापन' का अर्थ बताइए। वर्गीकरण तथा व्यवस्थापन की आवश्यकता का उल्लेख कीजिये।
9. प्रदत्तों के वर्गीकरण तथा प्रदत्तों की व्यवस्था में अन्तर कीजिए। मशीनों के प्रयोग या कम्प्यूटर के प्रयोग में प्रदत्तों का वर्गीकरण कैसे किया जाता है? विस्तार में वर्णन कीजिए।

उत्तरमाला: स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. निरीक्षण	2. परिकल्पनाओं	3. व्याख्यात्मक	4. (ग) गुणात्मक
5. (क) निरीक्षण	6. (ख) मापन	7. (ग) ऐतिहासिक	8. सत्य
9. सत्य	10. असत्य	11. असत्य।	

12.13 संदर्भ ग्रंथ (Further Readigns)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
4. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 13: प्रश्नावली (Questionnaire)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

13.1 प्रश्नावली (Questionnaire)

13.2 प्रश्नावली के प्रकार (Types of Questionnaire)

13.3 प्रश्नावली की सीमाएँ (Limitation of Questionnaire)

13.4 प्रश्नावली की सावधानियाँ (Precautions of Questionnaire)

13.5 सारांश (Summary)

13.6 शब्दकोश (Keywords)

13.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

13.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- प्रश्नावली तथा प्रश्नावली के प्रकार को समझने में;
- प्रश्नावली की सीमाओं को समझने में;
- प्रश्नावली की सावधानियों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यक्ति विभिन्न पदों के माध्यम से यह निर्धारित करता है कि जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में वह किस तरह का व्यवहार करेगा। प्रश्नावली एक तरह से स्व-निर्धारण मापनी ही है। इस विधि में व्यक्ति को प्रश्नावली दे दी जाती है, जिस पर निर्देश भी लिखे रहते हैं। उन निर्देशों के अनुसार, व्यक्ति को प्रतिक्रिया व्यक्त करनी होती है। कुछ प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं में भी देने पड़ते हैं।

13.1 प्रश्नावली (Questionnaire)

व्यक्तित्व सम्बन्धी आन्तरिक गुणों के ज्ञान के लिये उस गुण विशेष से सम्बन्धित प्रश्न चुनकर प्रश्नावली का निर्माण किया जाता है जो उनका मापन अधिक अच्छी तरह कर सकें। इस विधि में व्यक्तियों को प्रश्नावली दे दी जाती

नोट

है जिन पर निर्देश भी दिये होते हैं। व्यक्ति को निर्देशों के अनुसार प्रतिक्रिया व्यक्त करनी होती है। अत: बहुत कम समय में अनेक व्यक्तियों का मापन करने के लिए यह एक उत्तम विधि है। ये प्रश्नावलियाँ या तो व्यक्ति की सांवेगिक अस्थिरता का पता लगाने के लिये प्रयुक्त होती हैं या किसी विशिष्ट शील-गुण का पता लगाने या रोग का निदान करने के लिए। प्रश्नावली एक प्रकार की स्व-निर्धारण मापनी (Self Rating Scale) ही है। व्यक्ति विभिन्न पदों के माध्यम से यह निर्धारित करता है कि जीवन की विभिन्न परिस्थितियों में वह किस प्रकार का व्यवहार करेगा। यद्यपि बाहर से यह विधि सरल प्रतीत होती है, लेकिन इसके निर्माण के लिये और वैज्ञानिक रूप से इसके द्वारा आँकड़े एकत्रित करने में एक अच्छे प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है। प्रश्नावली में सही उत्तर एक ही होने से इसमें वस्तुनिष्ठता का गुण पाया जाता है। प्रश्नावलियाँ Self-report Techniques के अन्तर्गत आती हैं। लेजारस (Lazarus) के शब्दों में–"Simply stated, the self-report techniques involve attempting to measure aspects of human personality on the basis of what a person can say, or is willing to say about himself. They usually consist of a series of printed objective questions presented to the subject or to a group of subjects. Such inventories of questions can be used to study interests, attitudes and various other facets of personality. They are objective, because the subject must respond usually with a 'Yes' or 'No' or 'I don't know' answer to each question."

नोट्स कम समय में अनेक व्यक्तियों के व्यक्तित्व संबंधी आंतरिक गुणों का मापन करने के लिए प्रश्नावली एक उत्तम विधि है।

13.2 प्रश्नावली के प्रकार (Types of Questionnaire)

प्रश्नावली कई प्रकार की होती हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. प्रतिबद्धित प्रश्नावली (Closed Questionnaire)

इसमें प्रयुक्त प्रश्नों का उत्तर 'हाँ' अथवा 'नहीं' में से किसी एक पर सही का निशान लगाकर देना होता है। प्रश्नावली में प्रश्नों का स्वरूप इस प्रकार होता है–

(क) क्या आप काफी चिन्तित रहते हैं? हाँ/नहीं

(ख) क्या आप लोगों से मिलना जुलना पसन्द करते हैं? हाँ/नहीं

(ग) क्या आपको बुरे स्वप्न दिखते हैं? हाँ/नहीं

2. खुली प्रश्नावली (Open Questionnaire)

इन प्रश्नावलियों में कुछ प्रश्न या कथन दिये होते हैं जिनके विषय में व्यक्ति को अपने विचार विस्तार से प्रकट करने होते हैं। प्रश्नों का स्वरूप इस प्रकार होता है–

(क) 'आपरेशन ब्लैक बोर्ड' से आपका क्या तात्पर्य है?

(ख) नई शिक्षा नीति की सफलता के बारे में आपके क्या विचार हैं?

(ग) आरक्षण नीति के औचित्य के बारे में आपकी क्या धारणा है?

3. चित्रित प्रश्नावली (Pictorial Questionnaire)

नोट

इस प्रकार की प्रश्नावली में चित्रों के माध्यम से कुछ प्रश्न पूछे जाते हैं जिनका उत्तर व्यक्ति चित्रों पर सही का निशान लगाकर या उन्हें रेखांकित करके देता है।

4. मिश्रित प्रश्नावली (Mixed Questionnaire)

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, इस प्रकार की प्रश्नावली में सभी प्रकार के प्रश्न मिले-जुले रूप में दिये जाते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. प्रश्नावली में सही उत्तर एक ही होने से इसमें ..... का गुण पाया जाता है।
2. ..... प्रश्नावली में चित्रों के माध्यम से कुछ प्रश्न पूछे जाते हैं।
3. जिस प्रश्नावली में सभी प्रकार के प्रश्न मिले-जुले रूप में होते हैं, उसे ..... प्रश्नावली कहते हैं।

13.3 प्रश्नावली की सीमाएँ (Limitations of Questionnaire)

यद्यपि प्रश्नावली विधि अत्यन्त सरल, कम खर्चीली तथा कम समय में बहुत लोगों का परीक्षण करने वाली प्रविधि है और इसीलिये यह बहुत प्रचलित भी है, फिर भी, इसकी कुछ सीमायें हैं जिन्हें ध्यान में रखना आवश्यक है–

1. कभी-कभी अभ्यर्थी किसी प्रश्न का उत्तर ईमानदारी से नहीं देना चाहते। इसलिये वे अपने मनोवेगों को दबाकर गलत सूचनाएँ दे सकते हैं।
2. इस बात की भी पर्याप्त सम्भावना रहती है कि अभ्यर्थी प्रश्न को ठीक से न समझ सकने के कारण सही तथ्यों की जानकारी न दे पाये।
3. कभी-कभी अभ्यर्थी लापरवाही से प्रश्नावली भरता है और बिना सोचे समझे 'हाँ' अथवा 'नहीं' में से किसी एक पर निशान लगाता चला जाता है जिसका प्रभाव परिणामों पर पड़ता है।
4. कभी-कभी ऐसा भी हो सकता है कि जिन घटनाओं का उल्लेख प्रश्नों के रूप में किया गया है वे अभ्यर्थी के जीवन में घटी ही न हों अथवा वैसी परिस्थितियों को वह भूल चुका हो। ऐसी स्थिति में उत्तर यथार्थ न होकर काल्पनिक हो जाते हैं।

उदाहरण छोटे बालक आत्म-विश्लेषण के योग्य नहीं होते। अत: वे अपने विषय में पूछी गई बात का उत्तर सही नहीं दे पाते।

5. कुछ प्रश्न ऐसे होते हैं जिनका उत्तर अभ्यर्थी समाज के भय से गोपनीयता का आश्वासन मिलने पर भी नहीं देना चाहता।
6. इन प्रश्नावलियों का निदानात्मक महत्त्व कम होता है, क्योंकि प्रश्नों की विश्वसनीयता एवं वैधता निम्न स्तर की होती है।
7. लोग प्रश्नावली भरने में रुचि नहीं दिखाते। परिणामस्वरूप बहुत कम प्रश्नावलियाँ वापिस आ पाती हैं।
8. यह सम्भव है कि प्रश्नावली का नमूना (Sample) पक्षपातपूर्ण हो।

क्या आप जानते हैं प्रश्नावली विधि अत्यन्त सरल, कम खर्चीली तथा कम समय में अनेक लोगों का परीक्षण करने वाली प्रविधि है।

नोट

9. यह सम्भव नहीं है कि प्रत्येक शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक स्तर के व्यक्तियों के अनुरूप उपयुक्त प्रश्नों का निर्माण हो ही जाये।
10. समायोजन सम्बन्धी प्रश्नों में समायोजन का एक ही मानदण्ड सभी लोगों पर लागू नहीं किया जा सकता। यह सम्भव है कि एक जैसी परिस्थितियों में एक व्यक्ति समायोजन कर ले और दूसरा न कर पाये।
11. यह भी देखा गया है कि अंकन कसौटी (Scoring rationale) तय हो जाने पर भी परीक्षकों द्वारा दिये गये अंकों में समानता नहीं रहती।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

4. प्रश्नावली का कोई निश्चित उद्देश्य नहीं होता।
5. प्रतिबद्धित प्रश्नावली में प्रश्नों के उत्तर हाँ या ना में देने पड़ते हैं।
6. खुली प्रश्नावली में प्रश्नों के उत्तर चित्रों के माध्यम से देने होते हैं।
7. अन्य विधियों की अपेक्षा प्रश्नावली कम खर्चीली विधि है।

13.4 प्रश्नावली की सावधानियाँ (Precautions of Questionnaire)

विशेषज्ञों के अनुसार प्रश्नावली को प्रयोग में लाते समय निम्नलिखित सावधानियाँ ध्यान में रखनी चाहिये–

1. प्रश्नावली का उपयोग तभी किया जाये जबकि ऐसा करना उपयुक्त हो।
2. प्रश्नावली का निश्चित उद्देश्य होना चाहिये।
3. प्रश्नावली प्रयोग में लाने से पूर्व विद्यार्थियों को विश्वास में लिया जाना चाहिये ताकि वे विश्वसनीय व यथार्थ उत्तर दे सकें।

सावधानी ऐसे कथनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये जो व्यक्ति के अतीत या वर्तमान जिन्दगी से सम्बन्धित हों।

4. तथ्यात्मक (Factual) प्रश्न नहीं करने चाहिये, जैसे–'ईमानदारी सबसे बड़ी चीज है।'
5. बहु-अर्थी (Double-Meaning) प्रश्न नहीं पूछने चाहिए।
6. प्रश्नावली के उचित एवं आकर्षक आकार-प्रकार पर भी ध्यान देना चाहिये।
7. ऐसे प्रश्न नहीं पूछने चाहिये जो सभी के लिये लागू हों, जैसे–'क्या तुम सदैव चिन्तित रहते हो'?

टास्क प्रश्नावली संबंधी सावधानी पर अपना दृष्टिकोण रखें।

8. जहाँ तक हो सके प्रश्नों की भाषा सरल एवं संक्षिप्त हो।
9. 'कभी-कभी', 'कभी-नहीं', 'कोई-नहीं', 'सदैव' आदि शब्दों से प्रश्न शुरू नहीं करना चाहिये।
10. प्रत्येक कथन विशिष्ट एवं कार्यपरक (Functional) रूप में दिया जाना चाहिये।

नोट

11. कथन तर्कपूर्ण एवं निश्चित क्रम में व्यवस्थित होने चाहिये।
12. प्रश्नों की संख्या अधिक नहीं होनी चाहिये।
13. प्रश्न एक दूसरे की पुष्टि करने वाले हों।
14. प्रश्नों की भाषा अशिष्ट न हो तथा उनका उद्देश्य भी परीक्षात्मक न हो।

13.5 सारांश (Summary)

- व्यक्तित्व सम्बन्धी आन्तरिक गुणों के ज्ञान के लिये उस गुण विशेष से सम्बन्धित प्रश्न चुनकर प्रश्नावली का निर्माण किया जाता है जो उनका मापन अधिक अच्छी तरह कर सकें।
- ये प्रश्नावलियाँ या तो व्यक्ति की सांवेगिक अस्थिरता का पता लगाने के लिये प्रयुक्त होती हैं या किसी विशिष्ट शील-गुण का पता लगाने या रोग का निदान करने के लिए।
- प्रश्नावली में सही उत्तर एक ही होने से इसमें वस्तुनिष्ठता का गुण पाया जाता है।

13.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **अभ्यर्थी**–अनुसंधान प्रक्रिया में भाग लेने वाला, निवेदक।
2. **औचित्य**–किसी सिद्धांत या नीति की उपयुक्तता।

13.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. प्रश्नावली से आप क्या समझते हैं? इसके प्रकारों का वर्णन करें।
2. प्रश्नावली की सीमाओं का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. वस्तुनिष्ठता	2. चित्रित प्रश्नावली	3. मिश्रित	4. असत्य
5. सत्य	6. असत्य	7. सत्य	

13.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*

नोट

इकाई 14: निर्धारण मापनी (Rating Scale)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

14.1 निर्धारण मापनी (Rating Scale)

14.2 निर्धारण मापनी के प्रकार (Types of Rating Scale)

14.3 बलात् विकल्प मापनी (Forced Choice Rating)

14.4 निर्धारण मापदण्डों की त्रुटियाँ (Errors of Rating Scales)

14.5 सारांश (Summary)

14.6 शब्दकोश (Keywords)

14.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

14.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- निर्धारण मापनी के अर्थ एवं परिभाषा को समझने में;
- निर्धारण मापनी के प्रकारों को समझने में;
- बलात् विकल्प मापनी एवं निर्धारण मापदंडों की त्रुटियों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

निर्धारण मापनी एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि किसी व्यक्ति ने कुछ विशिष्ट गुणों के संदर्भ में आने वाले व्यक्तियों के ऊपर क्या छाप छोड़ी है। निर्धारण मापनी में कुछ गुणों की एक सूची होती है जिनमें प्रत्येक के सामने कुछ अंक लिखे होते हैं। निर्धारक को अपने अनुभव अनुसार उस पर संबंधित व्यक्ति के विषय में निशान लगाने होते हैं। सभी मनोवैज्ञानिक मापन की विधियों में निर्धारण मापनी का उपयोग सबसे अधिक होता है।

14.1 निर्धारण मापनी (Rating Scale)

सभी मनोवैज्ञानिक-मापन की विधियों में 'निर्धारण मापनी' (Rating Scale) सबसे अधिक प्रचलित है। इसका प्रयोग उद्योग, व्यापार, अनुसन्धान आदि के क्षेत्रों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसके प्रारम्भ का श्रेय

नोट

मनोभौतिकी के क्षेत्र में **फेक्नर** (Fechner) को जाता है। लेकिन सर्वप्रथम निर्धारण मापनी 1883 में **गाल्टन** (Galton) ने प्रकाशित की जो 'बिम्ब-सृष्टि' (Imagery) से सम्बन्धित थी। इसके बाद 1906-1907 में **पियर्सन** (Pearson) ने बुद्धि-मापन के लिए एक निर्धारण मापनी का निर्माण किया जिसमें सात श्रेणियाँ थीं। इस प्रविधि में किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन किसी ऐसे व्यक्ति के विचारों के आधार पर किया जाता है जो पहले व्यक्ति को भली-भाँति जानता हो। इनमें से Testimonials, Character Certificate, Confidential Reports आदि प्रमुख हैं, लेकिन निर्धारण मापनी की विश्वसनीयता एवं वैधता निम्न स्तर की होने के कारण इसे अनुसन्धान कार्य में बहुत कम प्रयोग में लाया जाता है।

नोट्स

वान डेलेन के अनुसार, "निर्धारण मापनी किसी चर की मात्रा, तीव्रता व बारम्बारता को निर्धारित करती है।" (A rating scale ascertains the degree, intensity or frequency of a variable.)

रूथ स्ट्रैंग के अनुसार–"निर्देशित निरीक्षण ही निर्धारण है।"

निर्धारण मापनी एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा यह जाना जाता है कि किसी व्यक्ति ने कुछ विशिष्ट गुणों (Specific Traits) के सन्दर्भ में आने वाले व्यक्तियों के ऊपर क्या छाप छोड़ी है। निर्धारक (Rater) के रूप में निम्न में से किसी भी व्यक्ति का चयन किया जा सकता है, जैसे–अध्यापक, अभिभावक, मित्र, पड़ोसी, परामर्शदाता, भाई-बहन (Siblings) एवं एम्पलोयर (Employer) आदि। निर्धारण मापनी में कुछ गुणों की एक सूची दी होती है जिनमें प्रत्येक के सामने कुछ विशेषण अथवा अंक लिखे होते हैं। निर्धारक को अपने अनुभव एवं ज्ञान के आधार पर सम्बन्धित व्यक्ति के विषय में किसी एक पर निशान लगाना होता है। इस विधि का प्रयोग उपलब्धि परीक्षण (Achievement Test) में अधिकता से किया जाता है। यह एक आत्मनिष्ठ विधि है। आजकल औद्योगिक प्रतिष्ठानों में कर्मचारियों के वेतन बढ़ाने अथवा पदोन्नति करने में इस विधि का सहारा लिया जाता है। व्यक्ति की प्रतिक्रियाओं एवं उत्तेजनाओं के मूल्यांकन में भी इसका प्रयोग किया जाता है।

गुड तथा स्केट के अनुसार–"यह उपकरण मूल्यांकन की जाने वाली वस्तु के विभिन्न अंगों की ओर ध्यान आकर्षित करती है, किन्तु उसमें उतने प्रश्न अथवा खण्ड नहीं होते, जितने चेक लिस्ट अथवा स्कोर कार्ड में होते हैं।"

"The rating scale typically directs attention to different parts or aspects of the thing to be evaluated, but does not have as many items or categories as the check list or score card."

14.2 निर्धारण मापनी के प्रकार (Types of Rating Scale)

मुख्य रूप से निर्धारण मापनी निम्न चार प्रकार की होती है–

1. संख्यात्मक मापदण्ड (Numerical Scale)
2. रेखांकित मापदण्ड (Graphic Scale)
3. संचयी अंक मापदण्ड (Cumulative Points Scale)
4. मानक मापदण्ड (Standard Scale)

1. संख्यात्मक मापदण्ड (Numerical Scale)

इस प्रकार की मापनियों में निर्धारक कुछ सीमित संख्या में वर्गों का चयन करता है तथा उन्हें उनके मापनी मूल्य के अनुसार क्रमबद्ध कर लेता है। अर्थात् इस विधि में अंकों को निश्चित उद्दीपकों के साथ सम्बन्धित कर देते हैं

नोट

और व्यक्ति का अपने गुणों के अनुसार अंक मिल जाते हैं। इन अंकों को सुविधा की दृष्टि से 3, 5, 7 या ग्यारह के पैमाने पर रख दिया जाता है। इस प्रकार की मापनी का प्रयोग केवल तभी किया जाता है जबकि मापित विशेषता (Measured Trait) मध्यस्थ बिन्दु के एक ओर बढ़ती तथा दूसरी ओर घटती है। इन मापनियों के केन्द्र में मध्यस्थ बिन्दु होता है जिसके दोनों ओर समान अन्तराल (Equal Interval) अन्य वर्ग स्थित होते हैं।

उदाहरण **लेविन** ने बालकों के खेल की सृजनात्मकता (Creativity) पर कुण्ठा के प्रभाव का अध्ययन करने के लिए सात बिन्दु मापनी का प्रयोग किया।

उदाहरणार्थ, यदि हम नारी सौन्दर्य के आधार पर संख्यात्मक मापदण्ड तैयार करना चाहें तो मापदण्ड का रूप निम्न हो सकता है–

1. सर्वाधिक सुन्दर (Most Beautiful)
2. अत्यन्त सुन्दर (Very Beautiful)
3. सुन्दर (Beautiful)
4. सामान्य (Average)
5. कुरूप (Ugly)
6. अत्यन्त कुरूप (Very Ugly)
7. सर्वाधिक कुरूप (Ugliest Possible)

उपयोग (Merits)

1. इस प्रकार की मापनियों का निर्माण एवं प्रयोग दोनों सरल हैं।
2. यदि निर्धारक अपने अंकों को गम्भीरता से लेता है तो निर्धारण स्वयं में उच्च कोटि के मापन का प्रतिनिधित्व कर सकता है।

परिसीमाएँ (Limitations)

1. इन मापनियों में पक्षपात की अधिक सम्भावनाएँ रहतीं हैं।
2. अनेक व्यक्तियों द्वारा किये गये निर्णय एक समान नहीं होते। कभी-कभी एक व्यक्ति द्वारा निर्णय यदि 'सुन्दरतम' है तो वही वस्तु दूसरे निर्णायक के लिए केवल सामान्य हो सकती है।

संरचना सम्बन्धी सुझाव (Suggestions for Construction)

1. इस प्रकार की मापनियों के दोनों अन्तिम छोर (Extreme Ends) व्यर्थ प्रतीत होते हैं क्योंकि, कोई भी निर्धारक इन छोरों का प्रयोग अपने निर्धारण में नहीं करता। ये मात्र पूर्ण मापनी के बन्धन (Anchors) मात्र हैं।
2. निर्धारक को जहाँ तक हो सके पक्षपात की सम्भावनाओं को कम करना चाहिये।

सावधानी ऋणात्मक अंकों (Negative Marking) का प्रयोग न किया जाए, क्योंकि यह सातत्य (Continuity) के सिद्धान्त पर आधारित होती है।

नोट

2. रेखांकित मापदण्ड (Graphic Scale)

यह मापदण्ड अत्यन्त लोकप्रिय है और व्यापक रूप में प्रयुक्त होता है। इसमें एक रेखा बनी होती है जिसे कई भागों में विभक्त कर दिया जाता है। प्रत्येक भाग के नीचे कुछ विशेषण लिखे होते हैं तथा निर्धारक को इनमें से किसी एक पर निशान लगाना होता है। इस मापदण्ड का सर्वप्रथम प्रयोग **बॉयस** (Boyce) ने किया।

उदाहरण 1. सामाजिक वार्त्ता से आप कैसे रहते हैं?

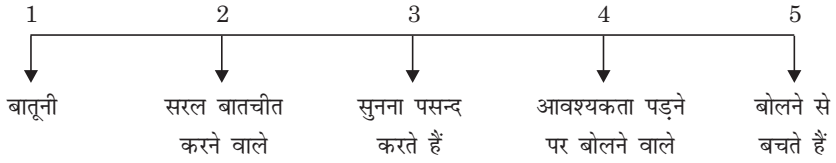

उदाहरण 2. वह कैसे सोचता है?

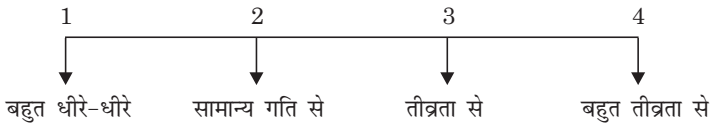

उपयोग (Merits)

1. इनकी संरचना एवं प्रशासन दोनों ही अत्यन्त सरल हैं।
2. इनको शीघ्रता से भरा जा सकता है।
3. इसमें निर्णायक को अत्यन्त सूक्ष्म विभेद करने का अवसर मिलता है।
4. तुलनात्मक निर्णय देने की सुविधा रहती है।
5. फलांकन विधि को जब चाहे परिवर्तित किया जा सकता है।

परिसीमाएँ (Limitations)

1. यद्यपि इस मापनी में फलांकन विधि में परिवर्तन की सम्भावना रहती है, फिर भी, फलांकों की गणना कठिन होती है, साथ ही, काफी परिश्रम भी करना पड़ता है।
2. इस मापनी में यह निर्णय करना सरल कार्य नहीं है कि व्यक्ति में अमुक गुण है या नहीं अथवा यह किस संकेत के अनुरूप है।

क्या आप जानते हैं निर्धारण मापनी के आरंभ का प्रथम श्रेय फेक्नर को जाता है।

संरचना सम्बन्धी सुझाव (Suggestions for Construction)

मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं–

1. रेखा पर्याप्त लम्बी होनी चाहिए। (लगभग 5 इंच)।
2. रेखा टुकड़ों में कटी हुई नहीं होनी चाहिए।
3. अच्छे विशेषण रेखा के पहले छोर पर तथा बुरे या प्रतिकूल विशेषण अन्तिम छोर (Last End) पर रखे जाने चाहिये।

नोट

4. तीन या पाँच विशेषणों का प्रयोग करना चाहिये। जिनमें से कुछ उच्च, मध्यम एवं निम्न श्रेणी के हों।
5. यह आवश्यक नहीं है कि संकेतों के मध्य दूरी समान ही रखी जाए।
6. प्रत्येक विशेषता (Trait) के लिए अलग-अलग भाग में संकेत लिखने चाहिये। एक विशेषता का दूसरी विशेषता पर अतिच्छादन (Over-lapping) नहीं होना चाहिये।
7. अति कथनों का प्रयोग नहीं करना चाहिये, जैसे–"मैं अपने व्यवसाय से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट हूँ।"

3. संचयी अंक मापदण्ड (Cumulative Points Scale)

इस मापनी में व्यक्ति का मूल्यांकन अनेक विशेषताओं पर अंक प्रदान करके किया जाता है। अंकों के कुल योग या संचय के आधार पर व्यक्ति के बारे में धारणा निश्चित की जाती है। एक प्रकार से यह मापदण्ड मनोवैज्ञानिक परीक्षण की ही भाँति है, अन्तर केवल यह है कि इसमें अंक किसी वस्तुनिष्ठ कसौटी के आधार पर न दिये जाकर केवल निर्णय के आधार पर दिए जाते हैं। इस प्रकार की मापनियों का प्रयोग कार्य पर लगे हुए व्यक्तियों के कार्य का मूल्यांकन करने के लिए किया जाता है। चेक लिस्ट (Check-list) तथा अनुमान विधि (Guess Who Technique) इसी के अन्तर्गत आती हैं।

(*a*) चेक-लिस्ट विधि (Check-list Method)–**हार्टशोर्न** तथा **मेय** (May) ने इस विधि का प्रयोग बच्चों के चरित्र सम्बन्धी अनेक विशेषताओं, जैसे–सहयोगी, दयालु, निर्दयी, लालची, अहसानमन्द आदि का मूल्यांकन करने हेतु किया था। निर्णायक यह जाँच करता है कि उपरोक्त विशेषताओं में से कौन-कौन सी विशेषताएँ बालक के व्यवहार में परिलक्षित हो रही हैं। इसके बाद अंकों के कुल संचय (Total Score) के आधार पर बालक के गुणों के बारे में निर्णय लिया जाता है। प्रत्येक अनुकूल लक्षण के लिए +1 तथा प्रतिकूल लक्षण के लिये -1 अंक दिया जाता है।

उदाहरण:

सहयोगी	**दयालु**	**अहसानमन्द**
उत्साह से	सर्वोत्तम	अधिक
इच्छा से	उत्तम	सामान्य से अधिक
तटस्थता से	स्वीकार्य	सामान्य
जलन से	खराब	सामान्य से कम
मजबूरी में	अति-खराब	कम

हार्टशार्न तथा **मेय** (May) के अनुसार, अध्यापक द्वारा विद्यार्थी के मूल्यांकन में इस विधि का विश्वसनीयता गुणांक .6 से अधिक पाया गया।

(b) अनुमान विधि (Guess-Who Technique)–इस विधि में विद्यार्थियों से अपने सहपाठियों का नामकरण करने को कहा जाता है जिनका कुछ शब्द चित्रों के माध्यम से वर्णन किया गया होता है। इस विधि का प्रयोग **हार्टशोर्न** तथा **मेय** (May), ने किया। प्रत्येक शब्द-चित्र एक संक्षिप्त विवरण होता है। इसमें कुछ निर्देश दिये जाते हैं, जैसे–"यहाँ कुछ ऐसे छात्रों के शब्द-चित्र दिये गये हैं, जिन्हें आप जानते हैं। प्रत्येक कथन को ध्यानपूर्वक पढ़कर आपको यह निश्चय करना है कि यह किस सहपाठी से सम्बन्धित है।" प्रत्येक कथन या तो अनुकूल होता है या प्रतिकूल।

नोट

कुछ शब्द-चित्रों के उदाहरण निम्न हैं–

(*a*) "यहाँ एक ऐसा बालक है जो दूसरों को खुश रखने के लिए कुछ न कुछ किया करता है।".....

(*b*) "यहाँ एक ऐसा बालक है जो बिना अपने स्थान से हिले-डुले चुपचाप कार्य करता है।".....

प्रत्येक शब्द-चित्र के आगे इतना स्थान छोड़ दिया जाता है ताकि वह वर्णन जिन सहपाठियों के लिए लागू होता हो, उनके नाम लिखे जा सकें। स्पष्ट है कि एक प्रिय छात्र का नाम बार-बार वांछनीय विशेषताओं के साथ लिया जायेगा, जबकि अप्रिय छात्र का नाम अवांछनीय विशेषताओं के साथ। इस विधि में मात्र कुछ ही कथनों के आधार पर निर्णय नहीं करना चाहिए, बल्कि सभी कथनों के आधार पर। समूह विशेष में छात्र विशेष की क्या स्थिति (Position) है अथवा कितनी प्रसिद्धि है, इसका ज्ञान इस विधि से भली-भाँति हो सकता है। इस प्रकार के मापकों में "ओहियो मान्यता मापदण्ड" (Ohio Recognition Scale) एक प्रसिद्ध मापक है।

उपयोग (Merits)

1. यह विधि नयी है और धीरे-धीरे लोकप्रिय होती जा रही है।
2. इसकी संरचना एवं प्रशासन अत्यन्त सरल है।
3. इस मापनी के प्रयोग के लिए निर्धारक को किसी विशेष प्रकार के प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं पड़ती।
4. इनका फलांकन भी बहुत सरल होता है, विशेषकर उस स्थिति में जहाँ पदों को +1 या 0 अंक देना हो।
5. इसका प्रयोग जटिल परिस्थितियों में किया जा सकता है।
6. इनके द्वारा व्यक्तित्व की एक अकेली विशेषता का मूल्यांकन किया जा सकता है।

परिसीमाएँ (Limitations)

1. प्रत्येक पद की केवल दो सम्भावित प्रतिक्रियाएँ होने से फलांकन प्रक्रिया अधिक वैज्ञानिक नहीं बन पाती।
2. चैक-लिस्ट विधि में निर्धारक से केवल उन्हीं पदों या कथनों की जाँच करने को कहा जाता है जो उस पर लागू होती हों। फलतः उसके मूल्यांकन में अनावश्यक झुकाव या पक्षपात आ जाता है।

संरचना सम्बन्धी सुझाव (Suggestions for Construction)

मुख्य सुझाव इस प्रकार हैं–

1. चैक-लिस्ट विधि में प्रत्येक पद की दो सम्भावित प्रतिक्रियाओं के स्थान पर कम से कम तीन प्रतिक्रियाओं का प्रयोग किया जाये।
2. निर्धारक को केवल पदों को चैक करने के लिए कहने से इसमें पक्षपात की सम्भावना आ जाती हैं। अतः उत्तम है कि निर्धारक को प्रत्येक पद का उत्तर देने को कहा जाए।
3. फलांकन सावधानीपूर्वक किया जाना चाहिये तथा व्यक्तित्व की उन्हीं विशेषताओं का मूल्यांकन किया जाए जिनमें पक्षपात की सम्भावना कम हो।

4. मानक मापदण्ड (Standard Scale)

इस प्रकार की मापनी में निर्धारक को कुछ मानक संघ (Set of Standards) दिये रहते हैं, जैसे–हस्तलेख, मनुष्य-मनुष्य में साम्य आदि। निर्धाकर, निर्णय के योग्य सामग्री की तुलना इन मानकों से करता है। **आयर्स** (Ayres), **थार्नडाइक** आदि ने इस दिशा में बहुत कार्य किया है। व्यक्ति से व्यक्ति मिलान (Man-to-Man Scale) मापनी का विकास फौजी लोगों के लिए किया गया था। इसको तैयार करने के लिए पाँच विशेषताओं का चयन कर लिया जाता है, जैसे-शारीरिक गुण, बुद्धि, नेतृत्व, व्यक्तिगत गुण एवं सेना में उसका सामान्य महत्त्व आदि।

नोट

फिर प्रत्येक गुण-विशेष के लिए एक अफसर को पाँच व्यक्ति छाँटने होते हैं, यथा-वह जिसमें अधिकतम मात्रा में यह गुण विशेष हो, वह जिसमें निम्नतम मात्रा में हो, वह जो मध्य में हो, वह जिसमें सामान्य से कुछ अधिक और एक वह जिसमें सामान्य से कम गुण हो। इन व्यक्तियों से तुलना करके अन्य व्यक्तियों के बारे में निर्णय लिया जा सकता है। इस विधि के अन्तर्गत अनेक व्यक्तियों को उनके किसी एक गुण के अनुसार क्रमित किया जाता है लेकिन यहाँ निर्धारकों के लिए यह आवश्यक है कि वे उन व्यक्तियों से, जिन्हें वे किसी विशेषता के आधार पर क्रमित करना चाहते हैं, पूर्ण परिचित हों।

उदाहरण–

1. चौधरी — हिम्मत की दृष्टि से बटालियन में सर्वश्रेष्ठ।
2. अरोड़ा — हिम्मत की दृष्टि से बटालियन में श्रेष्ठ।
3. देशपाण्डे — हिम्मत की दृष्टि से बटालियन में सामान्य।
4. चटर्जी — हिम्मत की दृष्टि से बटालियन में कायर।
5. दाताराम — हिम्मत की दृष्टि में बटालियन में अत्यन्त कायर।

उपयोग (Merits)

1. इसमें निर्धारण अंकों के स्थान पर व्यक्ति के गुणों के आधार पर किया जाता है।
2. इसमें तुलना करने के लिए एक स्थायी कसौटी उपलब्ध होती है।
3. स्थायी कसौटी मिलने से निर्धारक को अपने मानक नित्यप्रति बदलने नहीं पड़ते।

परिसीमाएँ (Limitations)

1. मौलिक रूप में इस मापनी को तैयार करना कठिन कार्य है।
2. व्यवहार में दो निर्धारकों के मत में शायद ही कभी समानता बन पाती है।
3. मापनी में एक व्यक्ति और किसी दूसरे व्यक्ति में दूरी प्राय: समान नहीं होती है।
4. किसी व्यक्ति के बारे में निर्णय करते समय अध्यागणन (Over-estimation) तथा अवागणन (Under-estimation) सम्भव है।
5. मापनी का सैन्य प्रारूप नागरिक जीवन तथा औद्योगिक संस्थानों में व्यवहार योग्य नहीं है।

कुछ विद्वानों ने उपरोक्त चार मापनियों के अतिरिक्त एक अन्य मापनी का भी उल्लेख किया है जिसे बलात् विकल्प मापनी (Forced Choice Rating) कहते हैं।

टास्क — निर्धारण मापनी के मानक मापदंड पर प्रकाश डालें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. निर्धारण मापनी के प्रारंभ का श्रेय ..... को जाता है।
2. इस विधि का प्रयोग ..... परीक्षण में अधिक किया जाता है।
3. मुख्य रूप से निर्धारण मापनी ..... प्रकार की होती है।

14.3 बलात् विकल्प मापनी (Forced Choice Rating)

नोट

इस विधि का विकास भी फौजी अफसरों के मूल्यांकन हेतु किया गया। इस विधि में निर्धारक को यह नहीं बताना होता कि किसी व्यक्ति में अमुक विशेषता है या नहीं वरन्, उसे विशेषताओं के युग्मों में से यह बताना होता है कि इन दोनों युग्मों में कौन-सा सही है। सामान्यत: कथनों के दो जोड़े, जिनमें दो अनुकूल हों और दो प्रतिकूल, एक साथ प्रस्तुत किये जाते हैं। इनमें कभी-कभी एक तटस्थ कथन भी मिला दिया जाता है, उदाहरणार्थ–गम्भीर, उत्साही, लापरवाह, असभ्य। इसमें प्रथम दो लक्षण अनुकूल हैं तथा अन्तिम दो प्रतिकूल। निर्धारक इस पूरे युग्म को एक पद मानकर अपना निर्णय देता है तथा बताता है कि कौन सा लक्षण उस व्यक्ति के लिए सबसे उपयुक्त है और कौन सा सबसे कम। इसके पश्चात् एक फलांकन कुँजी के आधार पर गणना कर ली जाती है।

उपयोग (Merits)

1. इसमें उदारता की त्रुटि कम होती है क्योंकि इसमें निर्धारक की अध्यागणन एवं अवागणन करने की सामान्य प्रवृत्ति या पूर्व-प्रभाव त्रुटि (Halo-Effect) का प्रतिकार हो जाता है।
2. इस मापनी में चैक-लिस्ट विधि की अपेक्षा अधिक सूक्ष्म विभेद का अवसर मिलता है।
3. प्राप्त होने वाले फलांकों का वितरण लेप्टोकर्टिक (Leptokurtic) होता है।

परिसीमाएँ (Limitations)

1. एक सामान्य निर्णायक निश्चित रूप से यह नहीं कह सकता कि पद का कौन सा युग्म व्यक्ति से अधिक सम्बन्धित है।
2. इस विधि का 'बलात् विकल्प मापनी' नामकरण बिल्कुल अनुपयुक्त है क्योंकि कोई भी निर्धारक यह सुनना नहीं चाहता कि निर्णय देने में वह स्वतन्त्र नहीं है।
3. इस मापनी में युग्मों के छाँटने में अनुमान (Guessing) की भी सम्भावना रहती है।
4. इस प्रकार के मापदण्ड की संरचना अत्यन्त जटिल है और इसमें पर्याप्त प्रशिक्षण एवं समय की आवश्यकता पड़ती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

4. रेखांकित मापदंड अत्यन्त लोकप्रिय है एवं व्यापक रूप में प्रयुक्त होता है।
5. रेखांकित मापदंड का प्रयोग सर्वप्रथम बॉयस ने किया।
6. अनुमान विधि में अंकों का प्रयोग किया जाता है।
7. मानक मापदंड विधि को मौलिक रूप में तैयार करना सरल है।

14.4 निर्धारण मापदण्डों की त्रुटियाँ (Errors of Rating Scales)

निर्धारण विधि की संरचना एवं इसके प्रयोग में अनेक त्रुटियाँ आती हैं, जो निम्न हैं–

***(a)* उदारता की त्रुटि** (Error of Leniency)–इस त्रुटि को 'उदारता त्रुटि' इसलिए कहा जाता है क्योंकि निर्धारक उन लोगों का मूल्यांकन उदारतापूर्वक करता है जिन्हें वह जानता हो अथवा वे लोग जो अहं सन्निहित (Ego-involved) रहते हों। यह एक सतत् प्रवृत्ति है। इस प्रकार कुछ निर्धारक 'उदार' होते हैं और कुछ 'कठोर'।

नोट

फलत: 'धनात्मक उदारता' (Positive Leniency) तथा ऋणात्मक उदारता (Negative Leneincy) जन्म ले लेती है। इस त्रुटि को कम करने के लिए प्रतिकूल लक्षणों की संख्या अनुकूल-लक्षणों की अपेक्षा कम रखी जाए।

(*b*) केन्द्रीय प्रवृत्ति की त्रुटि (Error of Central Tendency)–इस प्रकार की त्रुटि का कारण यह होता है कि निर्धारक प्राय: अति (Extreme) निर्णय देने में संकोच करते हैं। फलत: निर्धारण केन्द्र की ओर खिसक आता है। निर्धारक का ऐसा विचार होता है कि किसी भी व्यक्ति में कोई भी गुण पूर्णत: उपस्थित या अनुपस्थित नहीं होता, जिसके कारण वह अपने निर्णय को मध्य में स्थान दे देता है। यही कारण है कि निर्णय निष्पक्ष नहीं हो पाता। इस त्रुटि को कम करने के लिए अन्तिम छोरों (Extreme Ends) के कथनों में अधिक अन्तर रखा जाए।

(*c*) विरोधी त्रुटि (Contrast Error)–मुरे (Murray) ने एक अन्य प्रकार के पक्षपात की ओर संकेत किया है जिसे विपरीत या विरोधी त्रुटि कहते हैं। इस त्रुटि के अनुसार, निर्धारक प्राय: व्यक्तियों को अपनी विशेषताओं के विपरीत आँकता है। उदाहरणार्थ, 'सहयोग' एवं 'स्वच्छता' की विशेषताओं का मूल्यांकन करने वाला निर्धारक यदि दोनों विशेषताओं से पूर्ण है तो वह दूसरों में 'असहयोग' एवं 'अस्वच्छता' की प्रवृत्ति का अवलोकन करेगा, क्योंकि मानव स्वभाव है कि जैसे हम स्वयं हैं वैसा ही दूसरों को देखना चाहते हैं, लेकिन जब हम उनको अपनी इच्छा के अनुरूप नहीं पाते तो आलोचना करते हैं। अनुशासन सम्बन्धी विशेषताओं के सन्दर्भ में प्राय: ऐसा होता है।

(*d*) परिवेश-त्रुटि (Halo-Effect)–इस त्रुटि के अनुसार निर्धारक जो धारणा व्यक्ति विशेष के बारे में बना लेता है उसी के आधार पर उस व्यक्ति का मूल्यांकन करता है। अत: हमारे निर्णय अधिक वैध नहीं रहते। थार्नडाइक ने इसे 'पूर्व-प्रभाव त्रुटि' कहा है। यह एक ऐसी त्रुटि है जिसका शिकार प्राय: हर निर्धारक हो जाता है। नैतिक महत्व की विशेषताओं में यह त्रुटि अधिक होती है। इस त्रुटि को अभ्यास द्वारा दूर किया जा सकता है।

रग (Rugg) के अनुसार–"We judge our fellow in terms of a general mental attitude towards them and there is, dominating this mental attitude toward the personality as a whole, alike mental attitude toward qualities."

(e) तार्किक त्रुटि (Logical Error)–जब निर्धारक दो छात्रों के कार्य में समानता देखता है तो उनका एक सा ही निर्धारण करता है। **न्यूकाम्ब (Newcomb)** के अनुसार, निर्धारक के मस्तिष्क में जिन लक्षणों में तार्किक सम्बन्ध होता है। उनका वे एक समान मूल्यांकन करते हैं। इसे तार्किक त्रुटि कहते हैं। यदि वस्तुनिष्ठ रूप से अवलोकन योग्य क्रियाओं के बारे में मूल्यांकन किया जाए न कि अमूर्त (Abstract) लक्षणों के बारे में, तब इस त्रुटि से बचा जा सकता है।

14.5 सारांश (Summary)

- सभी मनोवैज्ञानिक-मापन की विधियों में 'निर्धारण मापनी' (Rating Scale) सबसे अधिक प्रचलित है। इसका प्रयोग उद्योग, व्यापार, अनुसन्धान आदि के क्षेत्रों में सफलतापूर्वक किया जा रहा है। इसके प्रारम्भ का श्रेय मनोभौतिकी के क्षेत्र में **फेक्नर** (Fechner) को जाता है।
- इस प्रविधि में किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन किसी ऐसे व्यक्ति के विचारों के आधार पर किया जाता है जो पहले व्यक्ति को भली-भाँति जानता हो।
- रूथ स्ट्रैंग के अनुसार, "निर्देशित निरीक्षण ही निर्धारण है।"
- मुख्य रूप से निर्धारण मापनी निम्न चार प्रकार की होती है– 1. संख्यात्मक मापदण्ड 2. रेखांकित मापदण्ड 3. संचयी अंक मापदण्ड 4. मानक मापदण्ड।

14.6 शब्दकोश (Keywords)

नोट

1. **संचयी**–अंकों का कुल योग या संचय।
2. **क्रमबद्ध**–क्रमयुक्त, सिलसिलेवार।

14.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. निर्धारण मापनी से आप क्या समझते हैं?
2. निर्धारण मापनी के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।
3. संचयी अंक मापदंड का विस्तृत वर्णन करें।
4. निर्धारण मापदंडों की त्रुटियों पर प्रकाश डालें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. फेक्नर	2. उपलब्धि	3. चार	4. सत्य
5. सत्य	6. असत्य	7. असत्य	

14.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
2. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शिक्षा तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 15: साक्षात्कार एवं साक्षात्कार योजना (Interview and Interview Schedule)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

15.1 साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Interview)

15.2 साक्षात्कार के उद्देश्य (Purpose of Interview)

15.3 साक्षात्कार के प्रकार (Kinds of Interview)

15.4 साक्षात्कार के लाभ (Merits of Interview)

15.5 साक्षात्कार की सीमाएँ (Limitation of Interview)

15.6 साक्षात्कार लेने में प्रयुक्त सावधानियाँ (Precautions Regarding Interview)

15.7 सारांश (Summary)

15.8 शब्दकोश (Keywords)

15.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

15.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- साक्षात्कार के अर्थ एवं परिभाषा को समझने में;
- साक्षात्कार के उद्देश्य एवं प्रकार को समझने में;
- साक्षात्कार के लाभ तथा सावधानियों को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

साक्षात्कार को अंग्रेजी में 'Interview' कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है–'आंतरिक अवलोकन' या अंतरदृष्टि। दोनों शब्दों में जिन अप्रकट तथ्यों का बाह्य रूप से निरीक्षण नहीं हो सकता, उन तथ्यों की जानकारी प्राप्त करना ही साक्षात्कार कहलाता है। साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर परस्पर संवाद, वार्तालाप एवं उत्तर-प्रति-उत्तर करते हैं। यह एक मनोवैज्ञानिक विधि है जिसमें साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता की भावनाओं, विचारों, मनोवृत्तियों एवं आंतरिक जीवन का अध्ययन करता है।

15.1 साक्षात्कार का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Interview)

नोट

साक्षात्कार अंग्रेजी शब्द 'Interview' का हिन्दी रूपान्तरण है, जिसका अर्थ है आंतरिक अवलोकन या निरीक्षण करना। साक्षात्कार विधि एक अति सरल एवं सुविधाजनक विधि है, क्योंकि साक्षात्कार विधि का प्रयोग समाज के किसी भी वर्ग पर सरलता से किया जा सकता है। साक्षात्कार के माध्यम से व्यक्ति के उन बातों का भी पता चल जाता है जिसे प्रकट करने में लोगों को प्राय: संकोच होता है। विभिन्न विद्वानों ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है– **जॉन जी डार्ले** के अनुसार–"साक्षात्कार एक उद्देश्यपूर्ण वार्तालाप है।" (Interview is a purposeful discussion.)

नोट्स **गुड तथा हैट** ने लिखा है–"किसी उद्देश्य से किया गया गम्भीर वार्तालाप ही साक्षात्कार है।"

इस प्रकार, इस विधि में आमने-सामने बैठकर किसी उद्देश्य को लेकर व्यक्तियों में वार्तालाप होता है।

मैकोबी तथा मैकोबी के शब्दों में–"तकनीकी रूप से साक्षात्कार से अभिप्राय एक ऐसी स्थिति से है जिसमें एक व्यक्ति (साक्षात्कार कर्त्ता) आमने-सामने के पारस्परिक मौखिक आदान-प्रदान से दूसरे व्यक्ति को सूचना देने अथवा अपने विचार तथा विश्वास व्यक्त करने के लिये प्रेरित करने का प्रयास करता है।"

"Interview refers to a face-to-face verbal interchange in which one person, the interviewer, attempts to elicit information or expressions of opinion or belief from another person." ***—Maccoby and Maccoby***

इसी प्रकार **पी.वी. यंग** ने लिखा है–"साक्षात्कार को ऐसी व्यवस्थित विधि माना जा सकता है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति काल्पनिक रूप से कम या अधिक, एक ऐसे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में प्रवेश करता है जो कि उसके लिए अपेक्षाकृत अपरिचित होता है।"

"The interview may be regarded as a systematic method by which one person enters more or less imaginatively into the inner life of a comparative stranger."

—P.V. Young

मूल्यांकन की दृष्टि से साक्षात्कार एक जटिल प्रक्रिया है। साधारणतया इस विधि का प्रयोग सेवा नियोजनों से पूर्ण होता है।

उदाहरण साक्षात्कार के द्वारा मोटे तौर पर किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का मापन किया जाता है।

साक्षात्कार एक प्रकार से प्रश्नावली का ही रूप है। अन्तर केवल इतना है कि प्रश्नावली लिखित होती है और छात्रों की लिखित प्रतिक्रियाएँ प्राप्त होती हैं तथा इनका प्रशासन (Administer) करने में व्यक्ति का सामने होना अनिवार्य नहीं है, किन्तु साक्षात्कार में सारा कार्य मौखिक होता है और साक्षात्कार लेने वाला तथा साक्षात्कार देने वाला, दोनों का ही आमने-सामने उपस्थित होना आवश्यक होता है। एक प्रकार से साक्षात्कार में निम्न मुख्य तत्व उपस्थित होते हैं–

(क) व्यक्ति तथा व्यक्ति में अन्त:क्रिया (Face-to-Face interaction)

(ख) एक दूसरे से सम्बन्ध स्थापित करने का साधन (Means of communicating with each other)

(ग) दोनों में से किसी एक को साक्षात्कार के उद्देश्य का ज्ञान (Knowledge of the purpose of interview to one of them)

नोट

15.2 साक्षात्कार के उद्देश्य (Purpose of Interview)

साक्षात्कार के निम्न उद्देश्य होते हैं–

1. पूर्व प्राप्त सूचनाओं की पुष्टि करने के लिए।
2. व्यक्ति के विचारों, मूल्यों एवं मनोवृत्तियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए।
3. व्यक्ति के शारीरिक रूप का अवलोकन करने के लिए।
4. व्यक्ति के अचेतन में निहित शक्तियों का पता लगाने के लिए।
5. तनावों एवं कुंठाओं से प्रभावित व्यवहार का अध्ययन करने हेतु।
6. व्यक्ति की प्रेरणात्मक शक्तियों एवं क्रियाओं की व्याख्या करने हेतु।
7. व्यक्तित्व के अन्य मापकों के पूरक (Complimentary) के रूप में प्रयोग करने हेतु।
8. ऐसी बहुत सी जानकारी प्राप्त करने हेतु जो चेतन पर अनेक रूकावटों के पश्चात् प्रकट होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. किसी उद्देश्य से किया गया गंभीर ..... ही साक्षात्कार है।
2. साक्षात्कार का अर्थ होता है .....।
3. साक्षात्कार के द्वारा किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का ..... किया जाता है।

15.3 साक्षात्कार के प्रकार (Kinds of Interview)

साक्षात्कार मुख्य रूप से तीन प्रकार के हो सकते हैं–

1. निदेशित साक्षात्कार (Directed or Structured Interview)
2. अनिदेशित साक्षात्कार (Non-directed Interview)
3. समाहारक साक्षात्कार (Eclectic Interview)

1. निदेशित साक्षात्कार (Directed or Structured Interview)–निदेशित साक्षात्कार एक प्रकार का अमुक्त प्रश्न समूह (Closed Questionnaire) ही है। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कार की विधि, समय तथा प्रश्नों की भाषा आदि सभी का पहले से ही निश्चय कर लिया जाता है। सभी प्रत्याशियों से प्रश्न एक ही क्रम में पूछे जाते हैं। कहने का तात्पर्य यह है कि साक्षात्कार एक सुनिश्चित योजना के अनुसार होता है। इस योजना के अनुसार साक्षात्कार देने वाला अपनी भावनाओं, विचारों एवं अनुभवों पर प्रकाश डालता है। साथ ही योजना का प्रारूप साक्षात्कारकर्ता ही निश्चित करता है, क्योंकि वह ऐसा करने में अधिक सक्षम समझा जाता है। इस प्रकार की विधि से विभिन्न व्यक्तियों की तुलना करने में आसानी रहती है।

निदेशित साक्षात्कार में प्रश्नों का गठन भी दो प्रकार से किया जाता है। प्रथम प्रकार के प्रश्न इस तरह के होते हैं कि उनमें उत्तर नियंत्रित रहते हैं तथा प्रत्याशी को कोई छूट नहीं मिलती, दूसरे प्रकार के प्रश्नों में प्रत्याशी उत्तर देने में स्वतंत्र रहता है तथा इच्छानुसार अपनी भावनाएँ व्यक्त कर सकता है।

नोट

क्या आप जानते हैं साक्षात्कार एक मनोवैज्ञानिक विधि है।

2. अनिदेशित साक्षात्कार (Non-directed or Unstructured Interview) यह एक प्रकार का मुक्तोत्तर प्रश्न समूह (Open-end Questionnaire) है। इसको गहन साक्षात्कार (Depth Interview), निदानात्मक साक्षात्कार अथवा केन्द्रित साक्षात्कार (Clinical Interview or Focussed Interview) के नाम से भी पुकारा जा सकता है। व्यक्ति के जीवन की बहुत सी समस्याएँ कुछ ऐसी हैं जिनका अध्ययन केवल अनिदेशित साक्षात्कार द्वारा ही सम्भव है। इस प्रकार के साक्षात्कार का प्रयोग मनोवैज्ञानिकों द्वारा व्यक्ति के प्रत्यक्षीकरण, प्रेरणा, अभिवृत्ति आदि के अध्ययन के लिए किया जाता है। इस साक्षात्कार की प्रवृत्ति लचीली होती है तथा इनमें प्रश्नों की भाषा, विधि, समय, क्रम आदि पहले से ही निश्चित नहीं कर ली जाती। साथ ही, प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रत्याशी पूर्ण स्वतंत्र रहता है। साक्षात्कारकर्ता मात्र मित्रता का वातावरण उत्पन्न करके प्रत्याशी को उन्मुक्त अभिव्यक्ति के लिए प्रोत्साहन देता है। इस विधि से प्राय: प्रत्याशी द्वारा प्राकृतिक उत्तर प्राप्त होते हैं। उन्मुक्त अभिव्यक्ति के पश्चात् उनमें अन्तर्दृष्टि विकास होता है तथा उसे स्वयं अपनी क्षमताओं एवं कमज़ोरियों का आभास हो जाता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में बौद्धिक पक्ष की अपेक्षा संवेगात्मक पक्ष का अधिक महत्त्व दिया जाता है। साथ ही, उन्मुक्त अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता इसकी एक सीमा भी है, क्योंकि इसके द्वारा प्राप्त आंकड़ों के आधार पर व्यक्तियों का तुलनात्मक अध्ययन नहीं किया जा सकता।

3. समाहारक साक्षात्कार (Eclectic Interview): समाहारक साक्षात्कार, निदेशित एवं अनिदेशित साक्षात्कार का मिश्रित स्वरूप है। इस विधि में उपरोक्त दोनों विधियों की अच्छी बातों का समावेश किया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रत्याशी भिन्न-भिन्न प्रकार की अन्तर्दृष्टियाँ विकसित करता है। साक्षात्कार के अन्त में साक्षात्कारकर्ता प्रत्याशी से संक्षेप में अपना निष्कर्ष एवं सारांश कथन देने को कहता है। यदि प्रत्याशी ऐसा करने में असफल रहता है तो साक्षात्कारकर्ता स्वयं सारांश प्रस्तुत कर देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि इस साक्षात्कार में प्रत्याशी तथा साक्षात्कारकर्ता पर न तो अनिदेशित साक्षात्कार जैसी स्वतंत्रता ही रहती है और न ही निदेशित साक्षात्कार जैसे प्रतिबंध ही रहते हैं। अत: यह साक्षात्कार की सर्वश्रेष्ठ एवं वैध विधि है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. निदेशित साक्षात्कार में प्रश्नों का गठन ..... प्रकार से किया जाता है।

   (क) एक (ख) तीन (ग) दो (घ) पाँच

5. अनिदेशित साक्षात्कार को ..... साक्षात्कार भी कहा जाता है।

   (क) तुलनात्मक (ख) निरीक्षणात्मक

   (ग) समस्यात्मक (घ) निदानात्मक या केन्द्रित

6. समाहारक साक्षात्कार, साक्षात्कार की ..... एवं वैध विधि है।

   (क) सर्वश्रेष्ठ (ख) मध्यम (ग) निम्न (घ) आत्यनिष्ठ

7. निदेशित साक्षात्कार एक प्रकार का अमुक्त ..... समूह है।

   (क) उत्तर (ख) प्रश्न (ग) विधि (घ) वैध

नोट

15.4 साक्षात्कार के लाभ (Merits of Interview)

साक्षात्कार विधि के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. साक्षात्कार विधि को प्रयोग में लाना अत्यन्त सुविधाजनक एवं सरल है।
2. साक्षात्कार का प्रारूप विभिन्न समस्याओं एवं उद्देश्यों के अनुरूप तैयार किया जा सकता है।
3. समाज के किसी भी वर्ग पर साक्षात्कार का प्रयोग सरलता से किया जा सकता है।
4. साक्षात्कार लेने में कोई विशेष समस्या नहीं आती। चूँकि इसमें प्रत्याशी को लिखित में कुछ नहीं देना होता अत: वह सहर्ष सहयोग देता है।
5. साक्षात्कार व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि (Insight) उत्पन्न करने में सहयोग देता है।
6. साक्षात्कार की प्रकृति पर्याप्त लचीली होती है।
7. प्रत्याशी की भाव-भंगिमा उसके बारे में अनेक रहस्यों को प्रकट कर देती है।
8. साक्षात्कार संवेगात्मक समस्याओं के अध्ययन के लिए सर्वश्रेष्ठ विधि है।
9. साक्षात्कार के माध्यम से व्यक्ति के व्यवहार के उन आयामों का भी पता चल जाता है जिन्हें प्रकट करने में लोग प्राय: संकोच करते हैं।

टास्क साक्षात्कार की सीमाओं का स्पष्ट करें।

15.5 साक्षात्कार की सीमाएँ (Limitations of Interview)

साक्षात्कार विधि की अपनी कुछ सीमाएँ भी हैं, जो निम्न हैं–

1. यह एक दुहरी आत्मनिष्ठ विधि है। प्रत्याशी साक्षात्कारकर्ता को प्रसन्न करने वाले उत्तर देता है।
2. साक्षात्कार व्यक्तिगत भावनाओं से पूर्णरूपेण प्रभावित रहता है।
3. साक्षात्कार को अधिक विश्वसनीय एवं वैध नहीं माना जा सकता।
4. साक्षात्कार अधिक लचीला होता है, फलत: साक्षात्कारकर्ता वार्तालाप को मनपसंद मोड़ दे देता है।
5. कुछ सीमाओं में बँधे होने के कारण प्रत्याशी प्राय: स्पष्टवादिता से परे हट जाता है। सामाजिक मान्यताएँ उसे ऐसा करने के लिए बाध्य करती हैं।
6. साक्षात्कार में प्रत्याशी जिन प्रश्नों के उत्तर नहीं देना चाहता, उनका घुमा-फिराकर उत्तर देकर स्वयं को सुरक्षित स्थिति में रखने का प्रयास करता है।
7. अनिदेशित साक्षात्कार में प्रत्याशी को पर्याप्त स्वतंत्रता मिलने के कारण संतोषप्रद उत्तर प्राप्त नहीं हो पाता।

15.6 साक्षात्कार लेने में प्रयुक्त सावधानियाँ (Precautions Regarding Interview)

साक्षात्कार लेते समय साक्षात्कारकर्ता को निम्न बातें ध्यान में रखनी चाहिये–

1. साक्षात्कार लेने वाले व्यक्ति का व्यक्तित्व प्रभावशाली होना चाहिए।

नोट

सावधानी ऐसी बातें नहीं पूछनी चाहिये जो प्रत्याशी के मनोभावों या संवेगों को चोट पहुँचाए।

2. सटीक (Pin-pointed) प्रश्न ही पूछे जायें। एक मज़ाकिया माहौल तैयार करने की कोशिश नहीं करनी चाहिए। प्रश्नों की वैधता को बनाये रखने का प्रयास किया जाना चाहिए।
3. साक्षात्कार पर पुरुष या महिला अभ्यर्थी (Sex-biased) होने का प्रभाव नहीं पड़ना चाहिये।
4. समय का ध्यान रखते हुए प्रश्नों को इस प्रकार से बाँधा जाए जिससे कि अभ्यर्थी के पूरे व्यक्तित्व का मूल्यांकन हो सके।
5. अगर किसी प्रश्न का उत्तर प्रत्याशी को नहीं आ रहा है तो उसे अपमानित न किया जाए बल्कि उसके मनोबल को बनाये रखना चाहिए। साक्षात्कार से हम यह ज्ञात करना चाहते हैं कि प्रत्याक्षी क्या जानता है, न कि वह क्या नहीं जानता है।
6. साक्षात्कार एकांगी न होकर सर्वांगी होना चाहिए।
7. साक्षात्कार ऐसे माहौल में समाप्त किया जाए कि प्रत्याशी जिस उत्साह से साक्षात्कार देने आया है उसी उत्साह से वापस जाये। यह साक्षात्कार की सबसे बड़ी विशेषता है। साक्षात्कार करना एक कला है जो अनुभवों से प्राप्त होती है।

15.7 सारांश (Summary)

- साक्षात्कार को अंग्रेजी में 'Interview' कहते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ होता है–'आंतरिक अवलोकन' या अंतरदृष्टि।
- साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित पद्धति है जिसमें दो या दो से अधिक व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य को सामने रखकर परस्पर संवाद, वार्तालाप एवं उत्तर-प्रति-उत्तर करते हैं।
- पी.वी. यंग ने लिखा है–"साक्षात्कार को ऐसी व्यवस्थित विधि माना जा सकता है जिसके अन्तर्गत एक व्यक्ति काल्पनिक रूप से कम या अधिक, एक ऐसे व्यक्ति के आन्तरिक जीवन में प्रवेश करता है जो कि उसके लिए अपेक्षाकृत अपरिचित होता है।"

15.8 शब्दकोश (Keywords)

1. आत्मनिष्ठ–आत्मनिर्भर, आत्मविश्वास।
2. समाहारक–मिलाने वाला, संग्रह करने वाला।

15.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. साक्षात्कार से आप क्या समझते हैं? इसके उद्देश्यों का वर्णन करें।
2. साक्षात्कार के प्रकारों का वर्णन करें।
3. साक्षात्कार के लाभ तथा इसमें प्रयुक्त सावधानियों का वर्णन करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. वार्तालाप
2. आंतरिक अवलोकन
3. अध्ययन
4. (ग) दो
5. (घ) निदानात्मक या केन्द्रित
6. (क) सर्वश्रेष्ठ
7. (ख) प्रश्न

15.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
4. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 16: केस अध्ययन विधि (Case Study Method)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

16.1 केस अध्ययन विधि की परिभाषा एवं स्वरूप (Meaning and Nature of Case Study Method)

16.2 केस अध्ययन की प्रमुख विशेषताएँ (Important Characteristics of Case Study)

16.3 केस अध्ययन विधि के प्रकार (Kinds of Case Study Method)

16.4 केस अध्ययन विधि की पूर्वकल्पनाएँ (Pre-assumptions of Case Study Method)

16.5 केस अध्ययन विधि के लाभ एवं दोष (Advantage and Disadvantage of Case Study Method)

16.6 केस अध्ययन, एकाकी-प्रयोज्य प्रयोग तथा केस इतिहास में अंतर (Distinction among Case Study, Single-Subject Experiment and Case History)

16.7 केस अध्ययन विधि के दोषों को दूर करने के उपाय (Measures of Removing Demerits of Case Study Method)

16.8 सारांश (Summary)

16.9 शब्दकोश (Keywords)

16.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

16.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- केस अध्ययन विधि की परिभाषा, स्वरूप, विशेषता एवं प्रकार को समझने में;
- केस अध्ययन विधि के लाभ एवं दोष को समझने में;
- केस अध्ययन, एकाकी प्रयोज्य प्रयोग तथा केस इतिहास के अंतर को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा (education) में केस अध्ययन विधि का प्रयोग आरंभ से ही किया जाता रहा है। फलस्वरूप इन विज्ञानों के शोधों (researches) में इसकी विशेष अहमियत मानी गयी है। सामाजिक शोध

नोट

(social research) में केस अध्ययन विधि का उपयोग सबसे पहले फ्रेड्रिक ली प्ले (Fredric Le Play) द्वारा 1840 में पारिवारिक बजट (family budgets) के अध्ययन में किया गया।

नोट्स

केस अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सामाजिक इकाई (social unit) के जीवन (life) की घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है।

16.1 केस अध्ययन विधि की परिभाषा एवं स्वरूप (Meaning and Nature of Case Study Method)

सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार (family), एक संस्था (institution), एक समुदाय (community) घटना, नीति (policy), संगठन आदि को लिया जा सकता है। स्पष्ट रूप में, केस अध्ययन विधि में जो केस होता है उसका तात्पर्य ऐसी प्रक्रिया या घटना से होता है जिसका एक आबद्ध संदर्भ (bounded context) होता है अर्थात् केस में सम्मिलित की गयी घटना या इकाई की अपनी चहारदीवारी होती है। इसी अर्थ में **पी.वी. यंग** (P.V. Young, 1974) ने केस अध्ययन विधि (case study methods) को इस प्रकार परिभाषित किया है, "केस अध्ययन एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा सामाजिक इकाई की जीवनी का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जा सकता है।" **गुडे** तथा **हाट** (Goode and Hatt, 1987) ने भी केस अध्ययन विधि के बारे में बतलाते हुए कहा है कि यह एक ऐसी विधि है जिसके सहारे किसी भी सामाजिक इकाई (soical unit) का अध्ययन पूर्णरूपेण (as a whole) किया जाता है। दूसरे शब्दों में, इस विधि में किसी सामाजिक इकाई जो एक व्यक्ति हो सकता है या कोई अन्य सामाजिक समूह (social group) भी हो सकता है, के एकात्मक स्वरूप (unitary character) को बरकरार रखते हुए उसका अध्ययन किया जाता है। **गुडे** तथा **हाट** (Goode and Hatt, 1989) के शब्दों में केस अध्ययन विधि को इस प्रकार परिभाषित किया है, "केस अध्ययन सामाजिक आंकड़ों को संगठित करने का एक तरीका है ताकि अध्ययन किये जाने वाले सामाजिक वस्तु के एकात्मक स्वरूप को बनाए रखा जा सके। थोड़े भिन्न ढंग से इसकी अभिव्यक्ति करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह एक ऐसा उपागम (approach) है जिसमें किसी भी सामाजिक इकाई को पूर्णरूपेण (as a whole) ढंग से देखा जाता है। करीब-करीब हमेशा ही इस उपागम में इकाई जो एक व्यक्ति, एक परिवार या अन्य सामाजिक समूह प्रक्रियाओं या संबंधों का एक सेट या सम्पूर्ण संस्कृति भी हो सकता है, का विकास सम्मिलित होता है।"

थियोडोरसन एवं थियोडोरसन (Theodorson and Theodorson, 1969) ने केस अध्ययन को इस प्रकार परिभाषित किया–

"केस अध्ययन किसी वैयक्तिक केस के गहन विश्लेषण के माध्यम से सामाजिक घटना के अध्ययन की विधि है। केस कोई एक व्यक्ति, एक समूह, एक घटना, एक प्रक्रिया, एक समुदाय, एक समाज या सामाजिक जिंदगी की कोई अन्य इकाई हो सकता है। यह बहुत सारे विशिष्ट विवरण के गहन विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करता है जिसकी अन्य विधियों में प्रायः उपेक्षा की जाती है।"

यिन (Yin, 1984) ने केस अध्ययन को परिभाषित करते हुए कहा है–"यह एक आनुभविक जाँच है जो एक वास्तविक जिंदगी के संदर्भ में समकालीन घटनाओं का अन्वेषण तब करता है जब घटना तथा संदर्भ के बीच सीमा स्पष्ट नहीं होती है तथा जिसमें सबूत के बहुत सारे स्रोतों का उपयोग किया जाता है।"

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर हमें केस अध्ययन विधि के स्वरूप के बारे में कुछ महत्त्वपूर्ण तथ्यों का पता चलता है जिसका वर्णन निम्नांकित है–

नोट

(*i*) केस अध्ययन विधि में किसी सामाजिक इकाई (social unity) के विकासात्मक घटनाओं (developmental events) का अध्ययन किया जाता है। दूसरे शब्दों में, केस अध्ययन में सामाजिक इकाई का अध्ययन उसके विकास की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि (historical background) में किया जाता है।

(*ii*) सामाजिक इकाई (social unit) के रूप में एक व्यक्ति विशेष का भी अध्ययन किया जा सकता है या अन्य सामाजिक समूह (social group) जैसे, परिवार या किसी संस्कृति (culture) का भी अध्ययन किया जा सकता है।

(*iii*) केस अध्ययन विधि का एक महत्त्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें सामाजिक इकाई (social unit) के एकात्मक स्वरूप (unitary character) को टूटने नहीं दिया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि अध्ययन किया जाने वाला सामाजिक इकाई (social unit) को सम्पूर्ण रूप से (as a whole) अध्ययन करने की कोशिश की जाती है।

उदाहरण यदि किसी परिवार (family) को एक सामाजिक इकाई के रूप में अध्ययन करने का निश्चय किया गया है तो उस परिवार के ऐतिहासिक घटनाचक्रों का ब्योरा तैयार करके परिवार को विभिन्न उप-इकाई (sub-units) में न बाँटकर उसका सम्पूर्ण रूप से (as a whole) अध्ययन करने की कोशिश की जाती है।

(*iv*) केस अध्ययन विधि में अध्ययन के लिए चुने गए सामाजिक इकाई (social unit) के क्या (What?) तथा क्यों (Why ?) दोनों पक्षों का अध्ययन किया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि इस विधि में शोधकर्ता सामाजिक इकाई (social unit) के जटिल व्यवहारपरक पैटर्न (complex behavioural pattern) की व्याख्या तो करता ही है साथ-ही-साथ वह उन कारकों का भी पता लगाता है जिनसे इस तरह के जटिल व्यवहारपरक पैटर्न की उत्पत्ति हुई होती है। दूसरे शब्दों में, वह सामाजिक इकाई का वर्णन (description) तथा व्याख्या (explanation) दोनों ही करता है।

16.2 केस अध्ययन की प्रमुख विशेषताएँ (Important Characteristics of Case Study)

केस अध्ययन की चार प्रमुख विशेषताएँ बतलाई गई हैं। **पुंक** (Punch, 2004) के अनुसार वे चार विशेषताएँ निम्नांकित हैं–

1. केस अध्ययन एक सीमाबद्ध विधि होती है (Case studies are bounded system): केस अध्ययन एक सीमाबद्ध विधि होती है क्योंकि इसमें जिस केस का विश्लेषण किया जाता है उसकी सीमाएँ (boundaries) होती हैं। **यिन** (Yin, 1984) के अनुसार, संदर्भ (context) तथा केस (case) के बीच की सीमा हमेशा स्पष्ट नहीं होती है परन्तु इस सीमा की वास्तविकता निश्चित रूप से होती है। शोधकर्ता विशेष प्रयास करके केस की सीमा की पहचान करता है तथा उसका वर्णन करता है।

2. केस अध्ययन में केस कुछ का केस होता है (In case study case is a case of something): केस अध्ययन में शोधकर्ता को यह पहचान करना होता है कि यह केस किस चीज का केस है क्योंकि इससे उसे विश्लेषण की इकाई के बारे में निर्धारण करने में सुविधा होती है।

3. केस अध्ययन में केस की सम्पूर्णता, एकता तथा अखंडता को बचाकर रखने का स्पष्ट प्रयास किया जाता है। (There is an obvious attempt to preserve the wholeness, unity and integrity of the case): केस अध्ययन के एक केस की सम्पूर्णता, एकता तथा उसके अखंडता को बनाकर रखते हुए उसका

नोट

अध्ययन किया जाता है। चूँकि शोधकर्ता यह जानते हैं कि एक ही केस के प्रत्येक चीज का अध्ययन संभव नहीं है इसलिए वे केस के कुछ पहलुओं पर विशिष्ट ध्यान इस प्रकार देते हैं कि उसकी अखंडता पर कोई आँच न आये।

4. केस अध्ययन में आंकड़ों के बहुत सारे स्रोतों को तथा बहुत सारे आंकड़े संग्रहण विधियों का उपयोग किया जाता है (In case studies multiple sources of data multiple data collection methods are used): विशेषकर स्वाभाविक परिस्थितियों (natural settings) में किये जाने वाले केस अध्ययन में आंकड़े के भिन्न-भिन्न स्रोतों तथा आंकड़े संग्रहण की भिन्न-भिन्न विधियों का उपयोग होता है। बहुत से केस अध्ययनों में प्रेक्षण, साक्षात्कार, शाब्दिक रिपोर्ट आदि द्वारा आंकड़ें संग्रह किये जा सकते हैं जबकि प्रश्नावली तथा संख्यात्मक आंकड़ों (numerical data) का भी उपयोग किया जा सकता है। इसका मतलब यह हुआ है कि केस अध्ययन को हमेशा एक गुणात्मक प्रविधि (qualitative technique) मानना उचित नहीं है हालांकि अधिकतर केस अध्ययन गुणात्मक ही होते हैं।

स्पष्ट है कि केस अध्ययन की कुछ स्पष्ट विशेषताएँ हैं जो इसे अन्य विधियों से सार्थक रूप से भिन्न करता है।

16.3 केस अध्ययन विधि के प्रकार (Kinds of Case Study Method)

केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता किसी स्वतंत्र चर (independent variable) में जोड़-तोड़ कर उसके प्रभाव का अध्ययन नहीं करता है बल्कि वह सिर्फ उन अवस्थाओं (conditions) का अवलोकन करता है जो वर्तमान समय या बीते हुए समय में उपस्थित रहकर अध्ययन किये जाने वाले सामाजिक इकाई (social unit) में परिवर्तन लाता है। व्यवहारपरक वैज्ञानिकों (behavioural scientists) ने केस अध्ययन (case study) के मुख्य दो उप प्रकार बतलाए हैं जो निम्नांकित हैं–

(क) अपसरित केस विश्लेषण (Deviant case analysis) तथा

(ख) पृथक् नैदानिक केस विश्लेषण (Isolated clinical case analysis)

इन दोनों का वर्णन इस प्रकार है–

(क) अपसरित केस विश्लेषण (Deviant case analysis): केस अध्ययन (case study) के इस प्रकार (type) में शोधकर्ता (researcher) एक ही साथ दो ऐसे केसेज (cases) को लेता है जिसमें काफी समानता (similarities) होते हुए भी भिन्नता (difference) होती है। जैसे, शोधकर्ता यदि एक समरूप जुड़वाँ युग्म (one identical twin pair) जिसमें से एक सामान्य (normal) है तथा दूसरा मनोविदालिता (schizophrenia) से ग्रसित है, का अध्ययन करता है तो यह अपसरित केस विश्लेषण (deviant case analysis method) का एक अच्छा उदाहरण होगा। इस उदाहरण में दोनों बच्चे चूँकि समरूप जुड़वाँ (identical twin) हैं, इसलिए उनमें काफी अधिक समानता (similarity) है परन्तु फिर भी इन दोनों में भिन्नता (differences) है–एक मानसिक रोग से ग्रसित है तथा दूसरा सामान्य (normal) है। शोधकर्ता इन दोनों बच्चों का तुलनात्मक अध्ययन करके इस निष्कर्ष पर पहुँचने की कोशिश करेगा कि वे कौन-कौन से कारक हैं जिनके कारण इन दोनों समरूप जुड़वाँ बच्चों में इस तरह की भिन्नता (differences) हुई। इस तरह का केस विश्लेषण **वारविक** एवं **ओशरसन** (Warwick and Osherson, 1973) द्वारा काफी किया गया है।

क्या आप जानते हैं केस अध्ययन विधि में सामाजिक इकाई की जीवनी का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जाता है।

नोट

(ख) पृथक् नैदानिक केस विश्लेषण (Isolated clinical case analysis): इस प्रकार के केस विश्लेषण विधि में शोधकर्ता वैयक्तिक इकाइयों (individual units) का विश्लेषण उसके विश्लेषणात्मक समस्याओं (analytical problems) के आलोक में करता है। इस ढंग के केस अध्ययन में शोधकर्ता द्वारा किसी व्यक्ति के बीते हुए दिनों के घटनाचक्रों का विस्तृत विश्लेषण किया जाता है और उसके आधार पर एक अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। इस विधि का प्रयोग मनोविश्लेषण (Psychoanalysis) में सर्वाधिक होता है। **फ्रायड** द्वारा अध्ययन किया मशहूर हंस केस (Hans case) इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। फ्रायड ने मानव आत्मिक अनुक्रिया सिद्धांत (Theory of human psychic response) का प्रतिपादन अनेक पृथक् नैदानिक केसेज (isolated clinical case) के विश्लेषण से उत्पन्न तथ्यों के आधार पर किया है। अभी हाल में **विक्सेन** (Wixen, 1973) ने एक अध्ययन पृथक् नैदानिक केस विश्लेषण द्वारा किया जिसमें 'ब्रीवर' (Brewer) नामक एक बच्चा जो काफी धनी माता-पिता की संतान था, का विश्लेषण किया गया। इस अध्ययन के आधार पर **विक्सेन** (Wixen) धनी परिवार के बच्चों की विशिष्ट समस्याओं से अवगत हुए और उन समस्याओं के समाधान करने के संभावित एवं उपयुक्त उपायों की भी खोज की।

केस अध्ययन विधि (case study method) के दोनों प्रकार काफी लोकप्रिय (popular) हैं। अन्तर इतना ही है कि पृथक् नैदानिक केस विश्लेषण (isolated clinical case analysis) का प्रयोग नैदानिक परिस्थितियों (clinical situation) में अधिक होता है जबकि अपसरित केस विश्लेषण (deviant case analysis) का प्रयोग सामान्य अवस्थाओं में अधिक होता है।

स्टेक (Stake, 1994) ने भी अपने ही द्वारा की गयी समीक्षा के आधार पर बतलाया है कि केस अध्ययन विधि में चूँकि कई प्रकार के केस होते हैं, अत: केस अध्ययन भी कई तरह के हो सकते हैं। उन्होंने निम्नांकित तीन तरह के अध्ययन का वर्णन किया है।

(क) आंतरिक केस अध्ययन (Internal Case Study): यह ऐसा केस अध्ययन होता है जहाँ शोधकर्ता इसलिए अध्ययन प्रारंभ करता है क्योंकि वह (लक्ष्य) केस के बारे में गहराई से जानना चाहता है।

(ख) साधनात्मक केस अध्ययन (Instrumental Case Study): यह ऐसा केस अध्ययन होता है जहाँ शोधकर्ता किसी विशेष केस का अध्ययन इसलिए करता है क्योंकि उससे समस्या को समझने में विशेष सूझ उत्पन्न होती है या किसी सिद्धांत को परिष्कृत (refine) करने में मदद मिलती है।

(ग) सामूहिक केस अध्ययन (Collective Case Study): यह एक ऐसा केस अध्ययन होता है जहाँ शोधकर्ता साधनात्मक केस अध्ययन का विस्तार कई केसेज का अध्ययन करने के लिए करता है तथा जिसमें घटना, सामान्य अवस्था तथा जीव संख्या (population) के बारे में अधिक कुछ सीखने का प्रयास किया जाता है।

16.4 केस अध्ययन विधि की पूर्वकल्पनाएँ (Pre-assumptions of Case Study Method)

केस अध्ययन विधि की कुछ पूर्वकल्पनाएँ (Pre-assumptions) होती हैं जिनमें निम्नांकित प्रमुख हैं–

(*i*) इस विधि की एक पूर्वकल्पना यह है कि मानव प्रकृति (human nature) में एकरूपता (uniformity) होती है हालांकि यह भी सच है कि मानव व्यवहार परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होता रहता है।

(*ii*) इस विधि की दूसरी पूर्वकल्पना यह होती है कि इसमें संबंधित इकाई स्वाभाविक इतिहास पर आधारित होती है।

(*iii*) इस विधि में संबंधित इकाई का विस्तृत अध्ययन संभव हो पाता है।

इससे स्पष्ट है कि केस अध्ययन विधि की कुछ अपनी पूर्वकल्पनाएँ हैं।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. केस अध्ययन विधि में किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण एवं ..... किया जाता है।
2. केस अध्ययन विधि एक ..... विधि होती है।
3. केस अध्ययन विधि काफी ..... विधि है।

16.5 केस अध्ययन विधि के लाभ एवं दोष (Advantage and Disadvantage of Case Study Method)

केस अध्ययन विधि का प्रयोग मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में काफी किया गया है। इस विधि के कुछ लाभ (advantages) तथा इसमें कुछ खामियाँ (disadvantges) भी पाये गए हैं। इस विधि के प्रमुख लाभ (advantages) निम्नांकित हैं–

(*i*) केस अध्ययन विधि में दो विभिन्न केसेज (cases) को लेकर उनका तुलनात्मक अध्ययन (comparative study) किया जा सकता है।

(*ii*) केस अध्ययन विधि द्वारा अध्ययन के लिए चयन किये गए केस (case) का गहन रूप से (intensive) अध्ययन संभव है क्योंकि इसमें एक समय में किसी एक केस या सामाजिक इकाई (social unit) का ही अध्ययन किया जा सकता है।

(*iii*) केस अध्ययन विधि द्वारा किसी प्राक्कल्पना (hypothesis) के निर्माण में काफी मदद मिलती है। **गुडे** तथा **हाट** (Goode and Hatt, 1987) का मत है कि केस अध्ययन विधि से प्राप्त तथ्यों को शोधकर्ता विश्वास के साथ सामान्यीकृत (generalize) तो नहीं कर पाता है। परन्तु इन तथ्यों के आधार पर वह आसानी से कुछ प्राक्कल्पनाओं (hypotheses) का सृजन कर पाता है जिसे इस विधि का एक महत्त्वपूर्ण लाभ माना जा सकता है।

(*iv*) केस अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिससे प्राप्त तथ्यों के आधार पर भविष्य में किये जाने वाले अध्ययनों में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को पहले से ही आँका जा सकता है तथा उसे दूर करने के उपायों का वर्णन किया जा सकता है।

(*v*) इस विधि में चूँकि सामाजिक इकाई का गहन अध्ययन किया जाता है, इसलिए इसमें संबंधित इकाई के व्यवहारपरक पैटर्न को पूर्णरूप से समझने में मदद मिलती है। इस बिन्दु पर **कूले** (Cooley, 1992) ने टिप्पणी करते हुए कहा है कि केस अध्ययन संबंधित इकाई के परीक्षण में गहराई पैदा कर देता है और उसके जीवन इतिहास के बारे में एक स्पष्ट सूझ उत्पन्न करता है। इसमें इकाई के व्यवहारों का अध्ययन प्रत्यक्ष रूप से होता है।

(*vi*) यह विधि सामाजिक इकाई के स्वाभाविक इतिहास (natural history) के बारे में जानने में मदद करने के साथ-ही-साथ इसका संबंध वातावरण के अन्य सामाजिक कारकों से भी स्थापित करने में मदद करती है।

(*vii*) केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर संबंधित कार्य के लिए प्रश्नावली या अनुसूची (schedules) बनाने में मदद मिलती है।

नोट

(*viii*) परिस्थिति की जरूरत के अनुरूप इस विधि में शोधकर्ता केस अध्ययन विधि में कई शोध प्रविधियों का उपयोग आसानी से कर लेता है। दूसरे शब्दों में, यह कहा जा सकता है कि इस विधि में अन्य विधियों जैसे गहन साक्षात्कार (deep interview), प्रश्नावली, अनुसूची का उपयोग संभव है।

(*xi*) केस अध्ययन विधि से शोधकर्ता की अनुभूतियाँ मजबूत होती हैं और इससे फिर उसमें परिस्थिति को समझने एवं विश्लेषण करने की क्षमता और भी अधिक तीक्ष्ण होती है।

(*x*) केस अध्ययन विधि में चिकित्सीय एवं प्रशासनिक उद्देश्य (therapeutic and administrative purposes) को अति महत्त्वपूर्ण समझा जाता है। केस अध्ययन के आधार पर नैदानिक मनोवैज्ञानिक को चिकित्सा संबंधी महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने में सुविधा होती है तथा प्रबंधकीय एवं प्रशासनिक दृष्टिकोण से भी केस अध्ययन शोधकर्ता को इकाई की व्यावहारिक समस्याओं को समझने में मदद करता है।

इन लाभों के बावजूद केस अध्ययन विधि में कुछ खामियाँ भी हैं जो निम्नांकित हैं–

(*i*) केस अध्ययन विधि में आत्मनिष्ठ (subjectivity) अधिक पाई जाती है जिसका प्रतिकूल प्रभाव अध्ययन के निष्कर्ष पर पड़ता है। इस विधि में शोधकर्ता (researcher) तथा अध्ययन के लिए चुने गए सामाजिक इकाई (social unit) में अधिक घनिष्ठता (intimacy) तथा सौहार्द (rapport) स्थापित हो जाता है जिसका परिणाम यह होता है कि शोधकर्ता सामाजिक इकाई से प्राप्त तथ्य का सही-सही वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन (subjective evaluation) नहीं कर पाता है।

(*ii*) केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता में निश्चितता का मिथ्या भाव (false sense) उत्पन्न हो जाता है। शोधकर्ता अपने निष्कर्ष के बारे में इतना विश्वस्त हो जाता है कि वह अपने अध्ययन में सम्मिलित केसेज का प्रतिनिधि (representative) मानकर एक खास तरह के परिणाम के बारे में पूर्णत: निश्चित हो जाता है। इस तरह की निश्चितता का कुप्रभाव यह होता है कि शोधकर्ता शोध डिजाइन (research design) के मूलभूत नियमों (basic principles) की पूर्णत: उपेक्षा (ignore) कर बैठता है। **गुडे** तथा **हाट** (Goode & Hatt, 1987) ने इस अवगुण पर टिप्पणी करते हुए कहा है, "शोधकर्ता अपने निष्कर्ष के बारे में अनिश्चितता का एक मिथ्या भाव विकसित कर लेता है। इस भाव के परिणाम कई होते हैं परन्तु उनमें से अधिकतर को एक ही मुख्य शीर्षक के अन्तर्गत रखा जा सकता है: शोध डिजाइन के मूलभूत नियमों की उपेक्षा करने का प्रलोभन।"

(*iii*) केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता पर पूर्ण जवाबदेही इस बात की भी दी जाती है कि वह किसी सामाजिक इकाई (social unit) जैसे व्यक्ति या परिवार के इतिहास (case history) को तैयार करे। ऐसा करने के लिए वह काफी प्रयास कर सामाजिक इकाई के बारे में बहुत सारी सूचनाओं की तैयारी करता है तथा उनका विश्लेषण करता है। उनके द्वारा दी गयी सूचनाओं की वैधता (validity) की जाँच करने का कोई तरीका इस विधि में नहीं बतलाया गया है। वह जो कुछ भी सूचना प्रदान करता है, उसे मान लेने के अलावा कोई रास्ता नहीं रहता है। अत: आलोचकों ने केस अध्ययन विधि को एक पूर्ण वैज्ञानिक विधि नहीं माना है।

(*iv*) केस अध्ययन विधि द्वारा अध्ययन में समय काफी लगता है। शोधकर्ता को प्रत्येक केस के बारे में विस्तृत रूप से सूचनाएँ तैयार करना होता है। सच पूछा जाए तो शोधकर्ता को केस के सभी पहलुओं अर्थात् भूत, वर्तमान तथा भविष्य को ध्यान में रखते हुए उनका इतिहास तैयार करना होता है, इसलिए यह काफी समय लेने वाली विधि होती है। साथ-ही-साथ यह विधि एक खर्चीली विधि (costly method) भी है क्योंकि इसमें धन की बर्बादी भी कम नहीं होती है।

(*v*) केस अध्ययन विधि में चूँकि शोधकर्ता व्यक्ति से उनके गत अनुभूतियों एवं घटनाओं के बारे में पूछकर एक इतिहास (history) तैयार करता है (जिसका बाद में विश्लेषण कर किसी निष्कर्ष पर पहुँच जाता है) अत: इस बात की संभावना काफी अधिक बनी हुई रहती है कि व्यक्ति अपनी गत अनुभूतियों का विशेषकर उन

नोट

अनुभूतियों का जो काफी समय पहले घटित घटनाओं पर आधारित है, ठीक-ठीक बतला न पाये। ऐसी परिस्थिति में इस विधि द्वारा प्राप्त सूचनाएँ बहुत अर्थपूर्ण नहीं रह जातीं।

(*vi*) केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता किसी एक केस (case) का अध्ययन कर निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाना चाहता है। अक्सर देखा गया है कि मात्र किसी एक केस (case) अध्ययन के आधार पर लिया गया निष्कर्ष सही नहीं होता है। अगर वह निष्कर्ष संबंधित केस के लिए सही भी हो जाए तो इस बात की कोई गारंटी नहीं रहती कि उसे अन्य समान व्यक्तियों या सामाजिक इकाइयों के लिए भी सही माना जा सकता है।

(*vii*) केस अध्ययन कई पूर्वकल्पनाओं (Pre-assumptions) पर आधारित होते हैं जो कभी-कभी वास्तविकता की कसौटी पर सही नहीं उतरते हैं। परिणामस्वरूप केस अध्ययन विधि से प्राप्त आँकड़े हमेशा शक के घेरे में होते हैं।

(*viii*) केस अध्ययन का उपयोग सीमित क्षेत्र (limited sphere) में होता है। इसे बड़े समूह या समाज के अध्ययन में उपयोग नहीं किया जा सकता है। इस विधि में प्रतिदर्शन (sampling) का भी उपयोग संभव नहीं है।

सावधानी केस अध्ययन विधि से प्राप्त आँकड़े संदूषित हो सकते हैं क्योंकि इसमें प्रयोज्य (subject) वही कहता है या लिखता है जिसे शोधकर्ता चाहता है।

इससे स्पष्ट है कि केस अध्ययन विधि में कई खामियाँ हैं। इन खामियों के बावजूद केस अध्ययन विधि का प्रयोग व्यवहारपरक विज्ञान (behavioural sciences) के शोध में काफी हो रहा है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. केस अध्ययन विधि में दो विभिन्न केसेज को लेकर उनका ..... अध्ययन किया जाता है।
   (क) सामाजिक (ख) तुलनात्मक (ग) राजनीतिक (घ) धार्मिक
5. केस विधि की कुछ ..... होती हैं।
   (क) पूर्वकल्पनाएँ (ख) विशेषताएँ (ग) समानताएँ (घ) आवश्यकताएँ
6. केस विधि में सामाजिक इकाई का ..... अध्ययन किया जाता है।
   (क) सरल (ख) गहन (ग) पारंपरिक (घ) पौराणिक
7. केस अध्ययन विधि में ..... अधिक पाई जाती है।
   (क) आत्मनिष्ठता (ख) वस्तुनिष्ठता (ग) घनिष्ठता (घ) तीनों

16.6 केस अध्ययन, एकाकी-प्रयोज्य प्रयोग तथा केस इतिहास में अंतर (Distinction among Case study, Single-Subject Experiment and Case History)

केस अध्ययन में, जैसा कि हम जानते है, किसी एक केस का जो कोई एक व्यक्ति भी हो सकता है या परिस्थिति का भी, गहराई से अध्ययन किया जाता है। केस अध्ययन के समान एकाकी प्रयोज्य प्रयोग (single subject experiment) में भी एक ही व्यक्ति पर अध्ययन किया जाता है। परंतु इन दोनों में अंतर है जो निम्नांकित हैं–

नोट

(*i*) केस अध्ययन एक अप्रयोगात्मक शोध (non-experimental research) है जबकि एकाकी प्रयोज्य एक प्रयोगात्मक शोध होता है।

(*ii*) केस अध्ययन में स्वतंत्र चरों का जोड़-तोड़ (manipulation) नहीं किया जाता है जबकि एकाकी प्रयोज्य प्रयोग में स्वतंत्र चरों में जोड़-तोड़ स्पष्ट रूप से किया जाता है।

कुछ समाज मनोवैज्ञानिकों द्वारा केस अध्ययन तथा इससे मिलते-जुलते एक अन्य शोध अध्ययन विधि जिसे केस इतिहास (case history) कहा जाता है, में भी अंतर किया गया है। केस अध्ययन में वैज्ञानिकों द्वारा एक अग्रदर्शी (perspective) एवं अनुदैर्ध्य (longitudinal) दृष्टिकोण अपनाया जाता है जबकि केस इतिहास में एक अनुदर्शी (retrospective) एवं पुरालेखीय (archival) दृष्टिकोण अपनाया जाता है। दूसरे शब्दों में, कहा जा सकता है कि केस अध्ययन में शोधकर्ता चुने गये केस का गहन अध्ययन आने वाले भिन्न-भिन्न समय अंतरालों (time Interval) पर करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है जबकि केस इतिहास में शोधकर्ता चुने गये केस के बीते व्यवहारों, घटनाओं या उसके बारे में विभिन्न स्रोतों जैसे–स्कूल, अस्पताल, सरकारी या गैर-सरकारी एजेन्सियों आदि में लिखित अभिलेखों से प्राप्त सूचनाओं का विश्लेषण करके किसी निष्कर्ष पर पहुँचता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नांकित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

8. केस अध्ययन विधि में कम समय लगता है।
9. केस अध्ययन विधि में शोधकर्ता पर पूर्ण जवाबदेही रहती है।
10. केस अध्ययन विधि कई पूर्वकल्पनाओं पर आधारित होती है।
11. केस अध्ययन विधि का उपयोग असीमित क्षेत्रों में होता है।

16.7 केस अध्ययन विधि के दोषों को दूर करने के उपाय (Measures of Removing Demerits of Case Study Method)

केस अध्ययन विधि में कई तरह के दोष हैं। स्वभावत: यहाँ एक प्रश्न यह उठता है कि क्या इन दोषों को दूर नहीं किया जा सकता है? इस प्रश्न का उत्तर शोध वैज्ञानिकों (researh scientists) ने सकारात्मक रूप से देने की कोशिश की है। इन वैज्ञानिकों के अनुसार केस अध्ययन विधि के कम-से-कम कुछ प्रमुख दोषों को तो निश्चित रूप से दूर किया जा सकता है।

(*i*) कुछ वैज्ञानिकों का जिनमें एरोन्सन (Aronson, 1980), **गुडे** तथा **हाट** (Goode & Hatt,1987) प्रमुख हैं, का मत है कि शोधकर्ता को इस विधि द्वारा अध्ययन करने में एक प्रतिदर्श (sample) का निष्पक्ष चयन लेना कर चाहिए न कि सिर्फ किसी एक केस (case) का गहन अध्ययन कर अपने आपको संतुष्ट कर लेना चाहिए। ऐसा करने से केस अध्ययन विधि की अधिकतर शिकायतें अपने आप दूर हो जाएँगी। जैसे, उपयुक्त प्रतिदर्श के चयन के बाद शोधकर्ता द्वारा गलत निर्णय पर पहुँचने की संभावना समाप्त हो जाएगी, उसके द्वारा सूचना भी अधिक वैध (valid) एवं विश्वसनीय (reliable) होगी तथा अध्ययन किये जाने वाले, व्यक्ति द्वारा अपनी गत अनुभूतियों का अनुपयुक्त प्रत्याह्वान (inappropriate recall) संबंधी भूल आदि में काफी कमी आ जाएगी। प्रतिदर्श का चयन कर अध्ययन करने से शोधकर्ता को समय की भी बचत कुछ हद तक हो सकती है।

नोट

(*ii*) **प्रतिदर्श को जीवसंख्या का प्रतिनिधिक बनाना** (To make sample representative of population)–शोधकर्ता को चाहिए कि केस अध्ययन विधि में जब वह एक प्रतिदर्श का चयन कर रहा हो, तो प्रतिदर्श जीवसंख्या का सही-सही प्रतिनिधित्व करता हो।

नोट्स

किसी प्रतिदर्श में जब प्रतिनिधित्व का गुण बढ़ता है, तो उससे प्राप्त आंकड़ों की विश्वसनीयता तथा वैधता में भी वृद्धि होती है।

(*iii*) **सूचनाओं का वस्तुनिष्ठ कोडिंग करना** (To code the information objectively)– यदि शोधकर्ता केस अध्ययन विधि से प्राप्त आँकड़ों की एक वस्तुनिष्ठ कोडिंग करता है, तो इससे सूचनाओं में किसी तरह के हेर-फेर करने की संभावना समाप्त हो जाती है और तब उसका उचित सांख्यिकीय विश्लेषण भी आसानी से हो पाता है।

टास्क

केस अध्ययन विधि की मुख्य पूर्वकल्पनाएँ कौन-कौन सी हैं?

(*iv*) **शोधकर्ता को विशिष्ट प्रशिक्षण देना** (To provide specific training to the researchers)–केस अध्ययन विधि को उन्नत बनाने का एक तरीका यह भी है कि शोधकर्ता, जो इस विधि द्वारा अध्ययन करने वाले हैं, को विशिष्ट रूप से प्रशिक्षित किया जाए। प्रशिक्षित शोधकर्ता के होने पर निश्चित रूप से इस विधि से प्राप्त आंकड़ों की विश्वसनीयता तथा वैधता काफी बढ़ जायेगी।

इससे स्पष्ट है कि केस अध्ययन विधि को आवश्यकतानुसार उन्नत बनाया जा सकता है।

16.8 सारांश (Summary)

- केस अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा सामाजिक इकाई की जीवनी का अन्वेषण तथा विश्लेषण किया जाता है। अत: यह कहा जा सकता है कि केस अध्ययन किसी वैयक्तिक केस के गहन विश्लेषण के माध्यम से सामाजिक घटना के अध्ययन की विधि है।
- केस अध्ययन की चार प्रमुख विशेषताएँ हैं–केस अध्ययन एक सीमाबद्ध विधि होती है, केस अध्ययन में केस कुछ का केस होता है, केस अध्ययन में केस की सम्पूर्णता, एकता तथा अखंडता को बनाकर रखने का प्रयास किया जाता है तथा केस अध्ययन में आँकड़े संग्रहण विधियों का उपयोग किया जाता है।
- केस अध्ययन विधि के कई प्रकार हैं–जिसमें अपसरित केस विश्लेषण (deviant case analysis) तथा पृथक् नैदानिक केस विश्लेषण (Isolated clinical case analysis) प्रमुख हैं।
- केस अध्ययन विधि कुछ पूर्वकल्पनाओं (Pre-assumpting) पर आधारित होते हैं जिसमें तीन प्रमुख हैं।
- केस अध्ययन विधि के कुछ लाभ एवं दोष हैं।
- केस अध्ययन विधि तथा केस इतिहास (case history) विधि में अंतर है। केस अध्ययन विधि एकाकी प्रयोज्य प्रयोग (single-subject experience) से भी भिन्न है।

16.9 शब्दकोश (Keywords)

नोट

1. **परिष्कृत**–सुधारा हुआ।
2. **अनुदर्शी**–निरीक्षण करने वाला, पर्यवेक्षक, अवलोकनकर्ता।
3. **पुरालेखीय**–पुराने स्मृति चिह्न पर अंकित किया हुआ लेख।

16.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. केस अध्ययन विधि की परिभाषा तथा स्वरूप का वर्णन करें।
2. केस अध्ययन विधि की परिभाषा देते हुए इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।
3. केस अध्ययन विधि के प्रकारों का वर्णन करें।
4. केस अध्ययन विधि से होने वाले लाभ एवं दोषों का वर्णन करें।
5. केस अध्ययन विधि क्या है? इस विधि के दोषों को दूर करने के कौन-कौन से उपाय हैं? वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. विश्लेषण	2. सीमाबद्ध	3. लोकप्रिय	4. (ख) तुलनात्मक
5. (क) पूर्वकल्पनाएँ	6. (ग) गहन	7. (क) आत्मनिष्ठता	8. असत्य
9. सत्य	10. सत्य	11. असत्य।	

16.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
3. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
4. शैक्षिक तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 17 : समष्टि, न्यादर्श एवं न्यादर्श-चयन की विधियाँ (Population, Sample and Sampling Design)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

17.1 समष्टि की संकल्पना (Concept of Population)

17.2 न्यादर्श (Sample)

17.3 न्यादर्श-प्रतिचयन की प्रक्रिया (Process of Sampling)

17.4 न्यादर्श-प्रतिचयन की तकनीक अथवा विधियाँ (Sampling Techniques)

17.5 सारांश (Summary)

17.6 शब्दकोश (Keywords)

17.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

17.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- समष्टि की संकल्पना को समझने में;
- न्यादर्श एवं न्यादर्श प्रतिचयन की विधियों को समझने में;
- न्यादर्श प्रतिचयन की प्रक्रिया को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

व्यवहार-विज्ञानों के क्षेत्र में अनेक ऐसे महत्त्वपूर्ण अनुसंधान सम्पन्न होते हैं जो इकाइयों के एक छोटे समूह पर किए जाते हैं, परन्तु उस पर आधारित निष्कर्ष इकाइयों की वृहद् समष्टि पर भी लागू माने जाते हैं। अनेक कारणों से वृहद् समष्टि की सभी इकाइयों का अध्ययन करना प्राय: सम्भव नहीं होता। उस स्थिति में इकाइयों के एक छोटे समूह का ही अध्ययन करना पड़ता है। यदि समूची वृहद् समष्टि का अध्ययन सम्भव हो भी, तो भी ऐसा करना कोई बुद्धिमानी की बात नहीं है क्योंकि उसमें बहुत अधिक समय, धन एवं शक्ति का व्यय होता है और लाभ बहुत अधिक नहीं होता। थोड़ी सी त्रुटि के साथ वैसे ही परिणाम समष्टि के छोटे समूह को लेकर भी प्राप्त किये जा सकते

नोट

हैं और समय, धन एवं शक्ति के अधिक व्यय को बचाया जा सकता है। इसे इस प्रकार समझिए कि एक बोरा चावल खरीदने के लिए यदि समूचे बोरे के प्रत्येक चावल की जाँच-परख करें तो कितना समय लगेगा और कितनी शारीरिक शक्ति का व्यय होगा। उससे बचने के लिए ही खरीददार बोरे में से केवल एक मुट्ठी चावल निकालकर उनकी जाँच-पड़ताल करता है तथा उन्हें उपयुक्त पाकर पूरा बोरा खरीदने का मन बना लेता है। एक मुट्ठी चावल की जाँच-पड़ताल के आधार पर ही वह निष्कर्ष निकाल लेता है कि चावल का समूचा बोरा अच्छा है और खरीदने का निर्णय कर लेता है। वास्तविक जीवन की अनेक परिस्थितियों में हम ऐसा ही करते हैं। इस प्रकार की बहुत सी वस्तुओं, सामग्री, इकाइयों में से केवल कुछ को लेकर उनकी जाँच-पड़ताल के आधार पर जो निष्कर्ष निकालते हैं उसे सभी के विषय में सही मान लेते हैं। इससे जाँच-पड़ताल का कार्य बहुत सरल हो जाता है। अनेक परिस्थितियों में अनुसंधान के क्षेत्र में भी हम ऐसा ही करते हैं व्यवहार-विज्ञानों में, विशेषकर मनोविज्ञान, समाजशास्त्र एवं शिक्षा के क्षेत्र में, इस प्रकार के अनुसंधान बहुत अधिक प्रचलित हैं। इकाइयों की किसी वृहद् समष्टि में से कुछ इकाइयों के समूह को लेकर उनका अध्ययन किया जाता है तथा उनके आधार पर जो निष्कर्ष निकलता है उसे सम्पूर्ण समष्टि के विषय में सही समझा जाता है। उसे समूची समष्टि की विशेषता समझा जाता है। सम्पूर्ण समष्टि की व्याख्या उसके आधार पर की जाती है। इस छोटे समूह को ही समष्टि का न्यादर्श अथवा प्रतिदर्श कहते हैं।

न्यादर्श के अध्ययन के आधार पर सम्पूर्ण समष्टि की विशेषताओं के विषय में ज्ञान प्राप्त करना, समष्टि की व्याख्या करना, उसके विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना, अनुसंधान की सर्वमान्य वैज्ञानिक प्रक्रिया है, परन्तु यह बात उसी सीमा तक सही है जहाँ तक न्यादर्श का चयन वैज्ञानिक विधि द्वारा किया गया हो। न्यादर्श के आधार पर समष्टि के विषय में सही-सही निष्कर्ष निकाल पाना तभी सम्भव होता है जब न्यादर्श समष्टि का सही-सही प्रतिनिधित्व करता हो। अतः इस संदर्भ में न्यादर्श एवं उसके प्रतिचयन की विधियों के विषय में विस्तार से जानना अत्यंत आवश्यक है। परन्तु इसका यह अर्थ भी नहीं लगाना चाहिए कि प्रतिनिधि-न्यादर्श के अभाव में शोध सम्भव ही नहीं है। इस स्थिति में भी शोध सम्भव है। परन्तु ऐसा किन परिस्थितियों में होता है, क्यों होता है तथा उस स्थिति में उपलब्ध जानकारी एवं निष्कर्षों की व्याख्या किस प्रकार करनी चाहिए, ये सब बातें अच्छी तरह समझने की आवश्यकता होती है।

इस अध्याय में न्यादर्श, प्रतिनिधि-न्यादर्श, न्यादर्श के प्रकार, प्रतिचयन की विधियों एवं अन्य महत्त्वपूर्ण संदर्भों का उल्लेख किया गया है।

17.1 समष्टि की संकल्पना (Concept of Population)

समष्टि की संकल्पना एक सांख्यिकीय संकल्पना है जिसका अर्थ होता है बहुत-सी इकाइयों का एक वृहद् समूह जिसमें से कुछ इकाइयों को अध्ययन के लिए चुना जाता है। अनुसंधान के संदर्भ में समष्टि इकाइयों की एक निश्चित संख्या होती है जिनके विषय में अध्ययनगत निष्कर्ष लागू होते हैं। इन इकाइयों की एक निश्चित रूप में सूची उपलब्ध होती है। समष्टि की परिभाषा भी विशिष्ट प्रकार से की जाती है। उसकी परिभाषा एवं व्याख्या उसकी कुछ स्पष्ट विशेषताओं के आधार पर की जाती है। अनुसंधान के संदर्भ में इस समष्टि को लक्ष्यगत समष्टि (target population) कहते हैं। लक्ष्यगत समष्टि की परिभाषा इस प्रकार की गई है: यह "व्यक्तियों, घटनाओं, वस्तुओं अथवा अन्य प्रकार की इकाइयों का एक कल्पित अथवा वास्तविक समूह होती है।" यह विस्तृत भौगोलिक भूभाग में दूर-दूर तक फैली हुई भी हो सकती है अथवा एक छोटे समूह के रूप में सीमित भूभाग में भी समाई हो सकती है।

कभी-कभी लक्ष्यगत समष्टि की सभी इकाइयाँ अनुसंधान हेतु उपलब्ध नहीं हो पातीं तथा उनके विषय में शोध-सामग्री (data) एकत्र करना सम्भव नहीं हो पाता। उस स्थिति में उन इकाइयों को निकालकर जो समष्टि अनुसंधान हेतु उपलब्ध हो पाती है, उसे अभिगम्य अथवा प्राप्त समष्टि (accessible population) कहते हैं। इस प्रकार लक्ष्यगत समष्टि एवं अभिगम्य समष्टि के बीच अन्तर किया गया है। अभिगम्य समष्टि वह समष्टि होती है

नोट

जिसकी सभी इकाइयों के विषय में शोध-सामग्री एकत्र की जा सके। अनुसंधान में इन दोनों का अलग-अलग उल्लेख करना चाहिए। परन्तु किसी शोध में लक्ष्यगत समष्टि की सभी इकाइयों के विषय में जानकारी प्राप्त करना सम्भव हो तो वही लक्ष्यगत एवं वही अभिगम्य समष्टि होगी। दोनों में अन्तर नहीं होगा।

एक दूसरे दृष्टिकोण से समष्टि के सम (homogeneous) तथा विषम (heterogeneous) दो अन्य प्रकार भी होते हैं। जब सभी इकाइयों के बीच उनकी विशेषताओं के दृष्टिकोण से पर्याप्त समानता होती है तो उसे सम समष्टि समझा जाता है, परन्तु जब इकाइयों के समूह विभिन्न दृष्टिकोणों से पर्याप्त भिन्नता रखते हुए समष्टि में समाये रहते हैं तो उस समष्टि को विषम समष्टि कहते हैं। इस प्रकार विषम समष्टि में भिन्नता वाली इकाइयों के अलग-अलग समूह बन जाते हैं। उन समूहों के बीच तो अन्तर होते हैं परन्तु प्रत्येक समूह के भीतर इकाइयों के बीच पर्याप्त समानता होती है अर्थात् प्रत्येक समूह लगभग सम होता है।

क्या आप जानते हैं समष्टि के सबसे छोटे भाग अथवा अंग को इकाई (unit) कहते हैं। समष्टि इन इकाइयों अथवा व्यक्तियों का सामूहिक रूप होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. व्यक्तियों, घटनाओं, वस्तुओं की इकाइयों के वास्तविक या कल्पित समूह को ..... समष्टि कहते हैं।
2. समष्टि के सबसे छोटे भाग को ..... कहते हैं।
3. समष्टि की समस्त इकाइयों में से अध्ययन हेतु चुने हुए इकाइयों के समूह को ..... कहते हैं।

17.2 न्यादर्श (Sample)

नोट्स समष्टि की समस्त इकाइयों में से अध्ययन हेतु कुछ इकाइयों को एक निश्चित विधि द्वारा चुन लिया जाता है। उन संकलित इकाइयों के समूह को न्यादर्श कहते हैं।

इस न्यादर्श के आधार पर ही अध्ययनगत निष्कर्ष घटित होते हैं तथा इन्हीं न्यादर्श-आधारित निष्कर्षों के आधार पर समष्टि के विषय में उद्देश्यों के अनुरूप सामान्यीकरण किया जाता है। यों कहें न्यादर्श के झरोखे से समष्टि का अवलोकन एवं अध्ययन किया जाता है। अवधारणा यह रहती है कि जो कुछ न्यादर्श के विषय में पाया गया है अथवा जो कुछ न्यादर्श के विषय में सही है वह समष्टि के विषय में भी वैसा ही होगा, उसके विषय में भी सही होगा, परन्तु यह बात सदैव ही सही नहीं होती। यह तभी कसौटी पर खरी उतरती है जब न्यादर्श का चयन वैज्ञानिक विधि से किया गया हो जो प्रतिनिधि-न्यादर्श (representative sample) की अनिवार्य शर्त होती है। यदि इस विधि से न्यादर्श का चयन नहीं किया गया है तो वह समष्टि का प्रतिनिधित्व नहीं करेगा और उस स्थिति में जो अध्ययनगत निष्कर्ष निकलेगा वह समष्टि के विषय में सही नहीं होगा। उस स्थिति में चयनित न्यादर्श को अभिनत्यात्मक न्यादर्श (biased sample) कहा जाता है।

अभिनत्यात्मक न्यादर्श की स्थिति में जो सांख्यिकीय न्यादर्श मान प्राप्त होता है वह उस सांख्यिकीय मान से बहुत भिन्न होता है, जो सम्पूर्ण समष्टि के अध्ययन करने पर उपलब्ध होता। उदाहरणार्थ, यदि अध्ययन का उद्देश्य आठवीं

नोट

कक्षा के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का सर्वेक्षण करना है और समष्टि की परिभाषा है मेरठ शहर के आठवीं कक्षा के विद्यार्थी। 25 विद्यालयों में से 10 विद्यालयों का न्यादर्श चुनकर अध्ययन करना है। अब यदि न्यादर्श इस प्रकार चुनते हैं कि जो अच्छे विद्यालय हैं उन्हें ले लिया जाता है तो इस प्रकार चयनित न्यादर्श अभिनत्यामक न्यादर्श कहलायेगा। समष्टि के अन्दर अच्छे, बुरे तथा सामान्य स्तर के सभी प्रकार के विद्यालय हैं। उन सभी का प्रतिनिधित्व होना चाहिए था। उपरोक्त न्यादर्श में सामान्य स्तर के तथा बुरे विद्यालयों का प्रतिनिधित्व नहीं हुआ। अत: वह अभिनति (bais) से ग्रसित हो गया। अभिनत्यात्मक न्यादर्श समष्टि के प्रतिनिधि नहीं होते। अत: उन पर आधारित मापांकों में स्थायी (fixed) अथवा सतत् (constant) त्रुटि (error) का समावेश रहता है। यही कारण है कि आनुमानिक अनुसंधानों (inferential research) में यह अनिवार्य होता है कि न्यादर्श अभिनति-मुक्त (free from bias) हो। दूसरे शब्दों, वह समष्टि का प्रतिनिधि हो।

प्रतिनिधि-न्यादर्श वह न्यादर्श होता है जिसमें समष्टि की सभी विशेषताओं, उसके सभी लक्षणों का, सभी गुणों का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश हो, जो समष्टि का प्रतिरूप अथवा उसकी प्रतिकृति (replica) हो। यदि न्यादर्श का चयन समसम्भाविक विधि (rendomly) से किया जाता है तो उसमें अभिनति का कोई स्थान नहीं रहता तथा वह समष्टि का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता प्राप्त कर लेता है। समसम्भाविक न्यादर्श की यह विशेषता होती है कि उसके आधार पर समष्टि के सांख्यिकीय मान का पूर्वानुमान (prediction) अधिक सही-सही किया जा सकता है। उसमें त्रुटि की संभावना कम होती है तथा जो त्रुटि होती है उसका भी अनुमान लगाया जा सकता है।

सावधानी व्यवहार-विज्ञानों के क्षेत्र में अनुसंधान हेतु न्यादर्श का चयन करते समय प्राय: यह उद्देश्य रहता है कि न्यादर्श अभिनतिमुक्त, समसम्भाविक (random) एवं समष्टि-प्रतिनिधि (representative population) हो।

इस प्रकार के न्यादर्श का चयन करने हेतु एक न्यादर्श योजना (sample plan) तैयार करना आवश्यक होता है। इसका अर्थ है एक ऐसी योजना जिसके आधार पर समान आकार वाले बहुत से न्यादर्शों का चयन करके अध्ययन किए जाएँ, तो 90 प्रतिशत न्यादर्शों के परिणामों तथा उस परिणाम के बीच जो सम्पूर्ण समष्टि के अध्ययन से प्राप्त होता है, 5 प्रतिशत से अधिक का अन्तर न हो। अर्थात् 100 से 90 न्यादर्श ऐसे हों जिनके परिणाम सम्पूर्ण समष्टि के परिणाम से 5 से अधिक ऊपर-नीचे न हों।

यदि योजना पर्याप्त रूप से इस बात का निश्चय कराती है कि जो न्यादर्श चयनित होगा वह समष्टि का प्रतिनिधित्व करेगा तो उसे प्रतिनिध-न्यादर्श-योजना (representative sampling plan) कहते हैं। उसी स्थिति में उपरोक्त धारणा भी सही संभव होती है। इस प्रकार की योजना के अन्तर्गत यह निश्चित हो जाता है कि जो विभिन्न प्रकार की इकाइयाँ न्यादर्श में चयनित हुई हैं वैसी ही समरूप इकाइयाँ समष्टि में भी समाविष्ट हैं तथा न्यादर्श में उनका समुचित प्रतिनिधित्व हुआ है।

न्यादर्श-संरचना

न्यादर्श-योजना तैयार करने हेतु एक न्यादर्श-संरचना अथवा न्यादर्श संदर्भ (sampling frame) तैयार करना पड़ता है।

उदाहरण न्यादर्श-चयन हेतु एक ऐसी व्यवस्था करना जिसके माध्यम से अनुसंधानकर्ता को अनुसंधान हेतु अधिकतम वांछनीय इकाइयों की संख्या उपलब्ध हो जाए।

इसके लिए ऐसी कल्पना की जाती है कि समष्टि सीमित है तथा उसकी समस्त इकाइयों की एक सूची तैयार की जा सकती है। यह सूची ही न्यादर्श-संदर्भ अथवा न्यादर्श-संरचना कहलाती है। यह सूची उपलब्ध होने पर न्यादर्श का चयन सरल एवं सम्भव हो जाता है।

नोट

गुल्म अथवा समूह (Cluster)

कभी-कभी समष्टि की परिभाषा उसके सबसे छोटे अंग के रूप में न करके उसके घटकों के गुल्मों अथवा समूहों के रूप में करनी पड़ती है। उस स्थिति में न्यादर्श-संरचना भी उन गुल्मों की सूची के रूप में ही तैयार करनी होती है। ये गुल्म, स्वाभाविक रूप में ही समष्टि में स्थित रहते हैं। जैसे विद्यार्थियों की कक्षाएँ अथवा विद्यालय, परिवार, जातियाँ, नगर, राज्य, विभिन्न प्रकार के समुदाय आदि। एक-एक विद्यार्थी की सूची न बनाकर विद्यालयों की सूची तैयार की जाती है तथा उनमें से कुछ विद्यालयों का चयन करके एक न्यादर्श प्राप्त किया जाता है। यह न्यादर्श इकाइयों (छात्रों) के समूहों जो विद्यालय के रूप में उपलब्ध थे, पर आधारित होगा। अत: इस प्रकार चयनित न्यादर्श को गुल्म-न्यादर्श (cluster sampling) कहा जाता है तथा उसकी न्यादर्श-इकाई (sampling unit) एक व्यक्ति, एक वस्तु अथवा एक घटना न होकर उनके गुल्म अथवा समूह होते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. प्रतिनिधि न्यादर्श ..... का प्रतिरूप होता है।
   (क) व्यष्टि (ख) समष्टि (ग) अनुसंधान (घ) चयन
5. न्यादर्श योजना तैयार करने हेतु एक न्यादर्श ..... तैयार करना पड़ता है।
   (क) संरचना (ख) घटक (ग) क्षमता (घ) अध्ययन
6. न्यादर्श इकाई एक घटना, एक वस्तु न होकर उनके ..... होते हैं।
   (क) कार्य (ख) गुल्म (ग) प्रारूप (घ) सूची
7. सम-संभाविक विधि से न्यादर्श-चयन में ..... का कोई स्थान नहीं होता।
   (क) अभिनति (ख) इकाई (ग) समष्टि (घ) निर्धारण

17.3 न्यादर्श-प्रतिचयन की प्रक्रिया (Process of Sampling)

न्यादर्श का प्रतिचयन करते समय अनुसंधानकर्ता को यह ध्यान में रखना पड़ता है कि कितने समय में उसे शोध का सम्पूर्ण कार्य पूरा करना है, कितना धन वह उसमें व्यय कर सकता है, कितने प्रशिक्षित व्यक्ति इस कार्य में उसकी मदद कर सकते हैं आदि। इन्हीं सब के आधार पर उसे यह निर्णय लेना होता है कि उसके न्यादर्श का आकार (size) क्या होना चाहिए। यह निश्चित हो जाने पर वह चयन-प्रक्रिया आरम्भ करता है। चयन-प्रक्रिया में सामान्यतया निम्नलिखित पदक्रम रहता है–

1. लक्ष्यगत एवं अभिगम्य समष्टि का निर्धारण एवं उसकी व्याख्या करना।
2. न्यादर्श-इकाई की परिभाषा करना।
3. न्यादर्श-संरचना अथवा सूची तैयार करना।
4. न्यादर्श-आकार निर्धारित करना।
5. न्यादर्श-प्रतिचयन की विधि का निर्धारण करना।
6. योजना को क्रियान्वित करना तथा न्यादर्श-इकाइयों का चयन करना।

नोट

टास्क गुल्म अथवा समूह पर अपने दृष्टिकोण प्रकट करें।

17.4 न्यादर्श-प्रतिचयन की तकनीक अथवा विधियाँ (Sampling Techniques)

उन सभी विधियों एवं तकनीकों को जिनका प्रयोग न्यादर्श-प्रतिचयन में किया जाता है, दो श्रेणियों में विभक्त किया गया है। ये हैं–

(क) संभाविता-न्यादर्श प्रतिचयन विधि (Probability sampling techniques)

(ख) असंभाविता-न्यादर्श प्रतिचयन विधि (Non-probability sampling techniques)

17.5 सारांश (Summary)

- इकाइयों की किसी वृहद् समष्टि में से कुछ इकाइयों के समूह को लेकर उनका अध्ययन किया जाता है तथा उनके आधार पर जो निष्कर्ष निकलता है उसे सम्पूर्ण समष्टि के विषय में सही समझा जाता है। इस छोटे समूह को ही समष्टि का न्यादर्श अथवा प्रतिदर्श कहते हैं।
- समष्टि की संकल्पना एक सांख्यिकीय संकल्पना है जिसका अर्थ होता है बहुत-सी इकाइयों का एक वृहद् समूह जिसमें से कुछ इकाइयों को अध्ययन के लिए चुना जाता है।
- प्रतिनिधि-न्यादर्श वह न्यादर्श होता है जिसमें समष्टि की सभी विशेषताओं, उसके सभी लक्षणों का, सभी गुणों का न्यूनाधिक मात्रा में समावेश हो, जो समष्टि का प्रतिरूप अथवा उसकी प्रतिकृति (replica) हो।

17.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **समष्टि की संकल्पना**–बहुत सी इकाईयों का एक वृहद समूह, जिसमें से कुछ इकाईयों को अध्ययन के लिए चुना जाता है।
2. **प्रतिकृति**–समष्टि का प्रतिरूप।

17.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. समष्टि की संकल्पना से आप क्या समझते हैं?
2. न्यादर्श से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।
3. न्यादर्श प्रतिचयन की प्रक्रिया तथा उसकी विधियों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. लक्ष्यगत
2. इकाई
3. न्यादर्श
4. (ख) समष्टि
5. (क) संरचना
6. (ख) गुल्म
7. (क) अभिनति

नोट

17.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*

नोट

इकाई 18 : संभाविता एवं असंभाविता प्रतिचयन विधियाँ (Probability and Non-probability Sampling Techniques)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

18.1 संभाविता प्रतिचयन विधि (Probability Sampling Techniques)

18.2 संभाविता प्रतिचयन विधि के प्रकार (Types of Probability Sampling Techniques)

18.3 न्यादर्श का आकार (Size of Sampling)

18.4 गुल्म प्रतिचयन (Cluster Sampling)

18.5 बहुचरणीय प्रतिचयन (Multistage Sampling)

18.6 असंभाविता प्रतिचयन विधियाँ (Non-probability Sampling Techniques)

18.7 न्यादर्श-त्रुटि (Sampling-errors)

18.8 सारांश (Summary)

18.9 शब्दकोश (Keywords)

18.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

18.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- संभाविता प्रतिचयन विधि तथा उसके प्रकारों को समझने में;
- न्यादर्श के आकार को समझने में;
- असंभाविता प्रतिचयन विधियों को समझने में;
- न्यादर्श-त्रुटि को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सर्वप्रथम संभाविता का अर्थ समझना आवश्यक है। संभाविता अथवा संयोग (chance) की समस्या वहाँ उत्पन्न होती है जहाँ हम किसी विषय में पूर्ण जानकारी नहीं रखते तथा निश्चित रूप से उसके संबंध में कुछ नहीं कह सकते।

नोट

तब हम कुछ कहने के लिए अनुमान ही लगाते हैं जिसके पूर्णतया सत्य होने की संभावना कम ही होती है। सत्य होने की संभावना जितनी कम होती है उतनी ही उसमें त्रुटि मानी जाती है। अत: इस स्थिति में यह जानने का प्रयास भी किया जाता है कि उस अनुमान में कितनी त्रुटि है अथवा उसके सत्य होने की संभावना क्या है। जब निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि कोई विद्यार्थी पास हो ही जाएगा, तो यह जानने का प्रयास किया जाता है उसके पास होने की संभावना कितनी है। यदि वह पाँच बार परीक्षा में बैठे और एक बार पास होने की संभावना हो तो कहा जाएगा कि उसके पास होने की संभावना 1/5 है। इसी को इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि यदि पास होने की पूर्ण संभाविता 1 हो तो उसे विद्यार्थी के पास होने की संभावना 1/5 अथवा 20 प्रतिशत अथवा 0.20 होगी।

18.1 संभाविता प्रतिचयन विधि (Probability Sampling Techniques)

अनुसंधान की परिस्थिति में जो प्रश्न इस संदर्भ में उपस्थित होता है वह यह है कि एक न्यादर्श के आधार पर जो सांख्यिकीय परिणाम प्राप्त होता है उसके सम्पूर्ण सृष्टि–आधारित परिणाम (समष्टि के अध्ययन द्वारा प्राप्त परिणाम) के ऊपर-नीचे एक निश्चित सीमा के भीतर होने की संभावना (.05 अथवा .01 अथवा इनके समीप) क्या है? इसे इस प्रकार भी कह सकते हैं कि समष्टि-आधारित मान, न्यादर्श-आधारित मान से एक निश्चित मात्रा से अधिक भिन्न नहीं होगा इसकी संभावना क्या है? कभी-कभी प्रश्न इस प्रकार भी किया जाता है कि न्यादर्श के अनुसंधानगत समष्टि के प्रतिनिधि स्वरूप होने की संभावना क्या है, वह कहाँ तक समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है, वह उसी समष्टि का अंग है अथवा उससे भिन्न किसी दूसरी समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है।

संभाविता-प्रतिचयन विधि की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. समष्टि की प्रत्येक इकाई के न्यादर्श में चयन की सम्भावना निश्चित की जा सकती है। सामान्यतया न्यादर्श में चुने जाने की संभावना प्रत्येक इकाई की समान होती है। यह आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक इकाई को न्यादर्श में सम्मिलित किया जाए। आवश्यक यह है कि प्रत्येक के न्यादर्श में सम्मिलित होने की संभावना निश्चित हो।

नोट्स संभाविता प्रतिचयन ही एक ऐसी विधि है जो यह आधार प्रस्तुत करती है कि न्यादर्श-आधारित मान कितना विश्वसनीय है।

यह इस कथन की संभावना प्रदान करती है कि न्यादर्श-आधारित परिणाम समष्टि-आधारित परिणाम से एक निश्चित मात्रा से अधिक भिन्न नहीं होगा।

2. संभाविता प्रतिचयन विधि के आधार पर ही यह अनुमान लगाना भी संभव होता है कि अनुसंधान-परीक्षण में कितनी त्रुटि का समावेश है। यह त्रुटि न्यादर्श-आधारित परिणाम एवं समष्टि आधारित परिणाम के अन्तर का ही प्रतीक होती है। इसे "त्रुटि-सीमा" (margin of error) अथवा "शुद्धता की सीमा" (limit of accuracy) भी कहते हैं। यह वह सीमा होती है जिसे शोधकर्ता अनुसंधानगत परिस्थिति में स्वीकार करने को तैयार होता है। संभावित प्रतिचयन विधि के अन्तर्गत यह अनुमान लगाना संभव होता है कि यह त्रुटि कितनी होगी। सार्थकता का स्तर (.05 अथवा .01 अथवा कोई अन्य) जिसे शोधकर्ता चुनता है, त्रुटि की संभावना को भी निर्धारित कर देता है।

18.2 संभाविता प्रतिचयन विधि के प्रकार (Types of Probability Sampling Techniques)

संभाविता प्रतिचयन विधि के दो प्रकार होते हैं– (*i*) सरल सम-सम्भाविक प्रतिचयन विधि तथा (*ii*) स्तरीकृत सम-सम्भाविक प्रतिचयन विधि।

सरल सम-संभाविक प्रतिचयन विधि (simple random sampling)

नोट

न्यादर्श प्रतिचयन की जितनी भी वैज्ञानिक विधियाँ हैं उन सब में सरल सम-संभाविक विधि एक अत्यंत मूलभूत संकल्पना है। संभाविता प्रतिचयन विधियों में यही सर्वप्रमुख है। अन्य विधियाँ इसी की रूपांतरमात्र हैं। इसी मूलभूत संकल्पना में थोड़े-बहुत परिवर्तन करके उनका निर्माण किया गया है। अत: सरल सम-संभाविक प्रतिचयन विधि की संकल्पना को अच्छी तरह समझ लेना आवश्यक है।

यह विधि एक ऐसी प्रक्रिया पर आधारित है जिसके अन्तर्गत न केवल प्रत्येक इकाई के न्यादर्श में सम्मिलित होने की समान संभावना ही निश्चित होती है, बल्कि समान आकार वाले इकाइयों के सभी सम्भव गुल्मों (समूहों) के न्यादर्श के रूप में चुने जाने की संभावना भी समान होती है। उदाहरणार्थ क, ख, ग, घ, च, छ इकाइयों की समष्टि में से यदि दो-दो इकाइयों के समूह बनाएँ तो कुल 15 गुल्म (कख, कग, कघ, कच, कछ, खग, गघ, खच, खछ, गघ, गच, घच, घछ, तथा घछ) बनेंगे। इनमें से प्रत्येक के न्यादर्श रूप में चयनित होने की संभावना समान अर्थात् 1/5 होगी। इसी प्रकार किसी परिस्थिति में यदि 20 समूह बन सकते हैं तो प्रत्येक न्यादर्श रूप में चयनित होने की संभावना अर्थात् 1/20 अथवा 5 प्रतिशत होगी। इस प्रकार सरल सम-संभाविक विधि की यह एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है कि समष्टि के जितने भी सम्भव न्यादर्श हो सकते हैं उनमें से प्रत्येक के चयन की संभावना समान होती है।

इस तकनीक के अन्तर्गत न्यादर्श-चयन की तीन प्रमुख विधियाँ आती हैं–(*i*) परम्परागत लाटरी विधि अथवा ड्रम-चक्र विधि अथवा कागज की पर्चियाँ बनाकर उनमें से किसी एक को बिना देखे प्रत्येक बार चुनना आदि। (*ii*) दूसरी विधि सम-संभाविक संख्या तालिका (random number tables) के प्रयोग पर आधारित है तथा तीसरी विधि (*iii*) क्रमबद्ध प्रतिचयन (systematic sampling) है।

लाटरी विधि के अन्तर्गत कागज की छोटी-छोटी पर्चियाँ बनाई जाती हैं, उन पर समष्टि की इकायों की क्रम-संख्याएँ (जो समष्टि सूची में लिखी रहती हैं) लिखकर तथा उनकी गोलियाँ बनाकर किसी डिब्बे अथवा थैले अथवा घड़े आदि में डाल देते हैं। प्रत्येक पर्ची पर एक ही क्रमसंख्या लिखी जाती है। फिर खूब हिलाकर उसमें से एक-एक पर्ची निकालते जाते हैं तथा उस संख्या को लिखते जाते हैं। जब जितनी इकाइयाँ वांछनीय हैं उतनी प्राप्त हो जाती हैं तो इस प्रक्रिया को बंद कर देते हैं। इस क्रिया को दो प्रकार से सम्पन्न किया जाता है। एक में जो पर्ची निकाली जाती है उसे संख्या नोट करने के बाद पुन: उसी डिब्बे में डाल दिया जाता है। दूसरे प्रकार में उस पर्ची को बाहर निकाल दिया जाता है। प्रत्येक बार जो शेष इकाइयाँ रह जाती हैं उन्हीं में से अगली बार दूसरी पर्ची निकाली जाती है। पहले प्रकार में जिसमें निकाली हुई पर्ची पुन: डिब्बे में डाल दी जाती है प्रत्येक बार निकाली गई इकाई के चयन की संभावना समान बनी रहती है। ड्रम-चक्र विधि में ड्रम का प्रयोग किया जाता है। ड्रम पर 0 से 9 तक संख्याएँ रहती हैं। जब ड्रम पर लगी सुई को घुमाया जाता है तो जो संख्याएँ आती जाती हैं उन्हें लिख लिया जाता है। जब जितनी इकाइयाँ चाहिए उतनी प्राप्त हो जाती हैं तो यह क्रिया बंद कर दी जाती है एवं नोट की गई क्रमसंख्या वाली इकाइयों को चुन कर न्यादर्श तैयार कर लिया जाता है। इस विधि का प्रयोग उस स्थिति में ही सुविधाजनक होता है जहाँ समष्टि का आकार छोटा हो तथा एक बहुत छोटा न्यादर्श चयन किया जाना हो।

सावधानी सम-संभाविक संख्या-तालिका विधि का प्रयोग वहाँ अधिक उपयोगी होता है जहाँ समष्टि का विस्तार अधिक हो तथा चयनीय न्यादर्श का आकार भी बड़ा हो।

इसके लिए एक तालिका का प्रयोग करते हैं जो प्राय: सांख्यिकी की सभी पुस्तकों में उपलब्ध होती है। इस तालिका में जो संख्याएँ लिखी होती हैं उन्हें सम-संभाविक विधि द्वारा तैयार किया जाता है। वे अभिनतिमुक्त (free from bias) होती हैं। ये संख्याएँ स्तम्भों में लिखी रहती हैं, परन्तु इन्हें पंक्तिवार, स्तंभवार किसी प्रकार से भी प्रयोग में लाया जा सकता है। नीचे तालिका के एक छोटे अंश को प्रस्तुत किया गया है–

नोट

42827	70203	78569	60281
41519	84612	30877	37989
38273	91905	33891	31641
48225	65290	85998	11528
56506	28841	56560	28947
29280	51213	96336	79288
73184	26689	05928	65869
52677	23027	51511	87251

तालिका के प्रयोग की विधि इस प्रकार होती है। मान लीजिए समष्टि में कुल इकाइयों की संख्या 600 है जो सूचीबद्ध हैं तथा क्रमसंख्या भी पड़ी हैं। मान लीजिए 600 में से 15 इकाइयाँ चुननी हैं। इसके लिए सबसे पहले आँख बंद करके किसी भी संख्या पर हम उंगली रख देते हैं। मान लीजिए यह संख्या तालिका में दूसरे स्तंभ की दूसरी संख्या 84612 आई। हम इसे छोड़ देंगे क्योंकि यह 600 से ऊपर है। यहाँ यह स्मरण रखा होगा कि हम तालिका-संख्याओं के अन्तिम तीन अंकों का ही प्रयोग कर रहे हैं क्योंकि हमारी समष्टि-संख्या भी तीन अंकों की ही है। 612 अंक 600 से ऊपर होने के कारण हम इसका त्याग कर देते हैं। अब आगे चलते हैं तो 905 मिलता है। इसे भी छोड़ देंगे और आगे चले तो 290 मिला। इसे नोट कर लेंगे: इसी प्रकार उन सब संख्याओं को नोट कर लेंगे जो 600 से कम हैं। इस प्रकार हमें 290, 213, 27, 569, 560, 336, 511, 281, 528, 288, 251, 519, 273, 225, 506, ये 15 संख्याएँ मिलेंगी। इन क्रम-संख्याओं वाली इकाइयों को हम सूची में से छाँटकर न्यादर्श तैयार कर लेंगे।

तीसरी विधि क्रमबद्ध प्रतिचयन की है। इसमें समष्टि-सूची की किसी इकाई पर भी आँख बंद करके उँगली रखकर उसका चयन कर लेते हैं। इसके बाद क्रमानुसार तीसरी, चौथी, पाँचवीं आदि इकाई का चयन करते चले जाते हैं। जब वांछनीय संख्या प्राप्त हो जाती है तो क्रिया बंद कर देते हैं। तीसरी, चौथी, पाँचवीं आदि में से कौन-सी का चयन करेंगे, यह इस बात पर निर्भर करता है कि समष्टि की कुल संख्या कितनी हैं तथा उनमें से कितनी इकाइयाँ लेनी हैं। मान लीजिए 100 में से 25 लेनी हैं तो पहली इकाई का चयन करने के बाद उससे आगे प्रत्येक चौथी लेते चले जायेंगे। 100 को 25 से भाग करने पर यह संख्या आ जाएगी। यदि 100 में से 25 लेना है तो प्रत्येक पाँचवीं इकाई लेंगे। इस प्रकार न्यादर्श का प्रतिचयन हो जाएगा। यह विधि भी सरल सम-संभाविक प्रतिचयन का ही एक परिवर्तित रूप है। इस विधि में यह आवश्यक होता है कि समष्टि-इकाइयों की जो सूची तैयार की जाए वह अभिनतिमुक्त हो। उसे सम-संभाविक विधि द्वारा ही तैयार किया जाना चाहिए। अन्यथा न्यादर्श के प्रतिचयन का संभावित प्रतिचयन की श्रेणी में वर्गीकरण नहीं किया जा सकेगा।

स्तरीकृत सम-संभाविक प्रतिचयन (stratified random sampling)

यह भी सरल सम-संभाविक प्रतिचयन विधि का ही एक दूसरा रूप है। इसमें सम्पूर्ण समष्टि को पहले कुछ विशिष्ट स्तरों खण्डों, वर्गों अथवा श्रेणियों में बाँट लिया जाता है। यह स्तरीकरण कुछ ऐसी विशेषताओं अथवा चरों (variables) के आधार पर किया जाता है जिनके विषय में समझा जाता है कि वे अध्ययनगत परिणामों को प्रभावित कर सकते हैं। इसके पश्चात् प्रत्येक खण्ड अथवा वर्ग (stratum) में से सम-संभाविक विधि द्वारा n/N के अनुपात में इकाइयों का चयन कर लिया जाता है। इसमें N सम्पूर्ण समष्टि की इकाइयों की संख्या होती है तथा n उस खण्ड (stratum) की कुल इकाइयों की संख्या है जिनमें से इकाइयों का चयन किया जाना है।

इस विधि में यह आवश्यक है कि खण्ड, वर्ग अथवा स्तर स्वयं में समांग अथवा सजातीय (homogeneous) हों परन्तु एक-दूसरे से संदर्भगत विशेषता के दृष्टिकोण से भिन्न अथवा विषमजातीय (heterogeneous) हों। इस

नोट

प्रकार चयनित न्यादर्श पर आधारित परिणाम सरल संभाविक प्रतिचयन की अपेक्षा अधिक शुद्ध होते हैं। उतने ही शुद्ध परिणाम सरल सम-संभाविक विधि द्वारा चयनित न्यादर्श के आकर को बढ़ाकर भी प्राप्त किए जा सकते हैं। इस दृष्टिकोण से स्तरीकृत सम-संभाविक प्रतिचयन अधिक मितव्ययी (economical) होता है।

स्तरीकृत सम-संभाविक प्रतिचयन विधियाँ भी दो प्रकार की होती हैं–(*i*) आनुपातिक (proportionate) एवं (*ii*) अ-आनुपातिक (disproportionate)। आनुपातिक विधि के अन्तर्गत इकाइयों का चयन प्रत्येक खण्ड में से उसी अनुपात में किया जाता है जिस अनुपात में वे सम्पूर्ण समष्टि में स्थित होती हैं।

उदाहरण यदि एक कक्षा में कुल 60 विद्यार्थी हैं जिनमें 40 बालक एवं 20 बालिकाएँ हैं (2:1 का अनुपात, तो 15 विद्यार्थियों के न्यादर्श में उपरोक्तानुसार 5 बालिकाएँ होंगी।

यह आनुपातिक प्रणाली कहलाती है, परन्तु ऐसा तभी सम्भव होता है जब शोधकर्ता को समष्टि की इकाइयों के विषय में, उनके पारस्परिक अनुपात के विषय में पूरा-पूरा ज्ञान हो। अनेक बार ऐसा सम्भव नहीं होता। यदि ऐसा सम्भव भी हो तो भी कुछ समय पश्चात् वह ज्ञान निरर्थक हो जाता है क्योंकि कुछ विशेषताएँ ऐसी होती हैं जो बहुत शीघ्रता से परिवर्तित होती रहती हैं, जैसे अभिभावकों की आय, बालकों की विकास दर, व्यक्तियों के आर्थिक-सामाजिक स्तर। परन्तु ऐसा नहीं समझना चाहिए कि प्रत्येक परिस्थिति में अनुसंधान का आधार आनुपातिक स्तरीकृत सम-संभाविक प्रतिचयन ही होता है या होना चाहिए। कभी-कभी इकाइयों का चयन अ-आनुपातिक रूप में करना अधिक वांछनीय हो सकता है। कुछ परिस्थितियों में ऐसा करना ही पड़ता है। अत: यह नहीं समझना चाहिए कि आनुपातिक स्तरीकृत सम-संभाविक प्रतिचयन ही एक विकल्प है, दूसरा कोई रास्ता हीं नहीं है। अनुसंधान के क्षेत्र में कोई भी परिस्थिति आदर्श एवं अनिवार्य नहीं होती। परिस्थिति के अनुसार ही प्रत्येक की उपयोगिता एवं महत्त्व होते हैं।

अ-आनुपातिक स्तरीकृत सम-संभाविक प्रतिचयन का अर्थ होता है एक ऐसी प्रक्रिया जिसके अन्तर्गत प्रत्येक स्तर अथवा वर्ग में से जो इकाइयाँ चुनी जाती हैं, वे न तो वर्गानुसार समान संख्या वाली होती हैं और न आनुपातिक। प्रत्येक खण्ड में से अलग-अलग संख्याओं में इन्हें चुना जाता है जब कोई वर्ग बहुत छोटा होता है तब ऐसा करना आवश्यक हो जाता है। तब उस वर्ग से अधिक इकाइयाँ चुनना वांछनीय होता है ताकि उस वर्ग का सही-सही प्रतिनिधित्व हो सके। मान लीजिए एक वर्ग हमने उन विद्यालयों का बनाया है जिनमें अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पढ़ाई होती है और ऐसा केवल दो ही विद्यालय हैं। इस स्थिति में दोनों विद्यालयों को ही न्यादर्श में सम्मिलित करना अधिक उपयुक्त होगा क्योंकि एक विद्यालय दूसरे से बहुत भिन्न हो सकता है तथा वह उसका प्रतिनिधित्व करने में असमर्थ हो सकता है तो कुछ वर्ग अन्त में इतने छोटे रह जाते हैं कि उनमें इकाइयों की पर्याप्त संख्या नहीं रह जाती। इस स्थिति में भी अ-आनुपातिक विधि का प्रयोग आवश्यक हो जाता है। वास्तव में इकाइयों का अपनी-अपनी संख्या के आधार पर आनुपातिक होना आवश्यक नहीं होता बल्कि, आवश्यक होता है उनका उस चर की विचलनता (variability) के संदर्भ में आनुपातिक होना, जो अनुसंधानगत है। इस प्रकार अ-आनुपातिक स्तरीकृत प्रतिचयन का अर्थ होता है एक ऐसी विधि जिसमें प्रत्येक स्तरीकृत खण्ड में से जो इकाइयाँ चुनी जाती हैं उनका खण्ड के आकार से कोई संबंध नहीं होता। इसकी विशेषता यह है कि यह विधि मितव्ययी (economical) होती है। इसका दोष यह है कि इस प्रकार चुना गया न्यादर्श समष्टि का बहुत सही-सही प्रतिनिधित्व नहीं करता और इसी कारण उसके आधार पर प्राप्त परिणाम भी अधिक शुद्ध नहीं होते अर्थात् उनके द्वारा समष्टि-मानों का अनुमान बहुत सही-सही नहीं लगाया जा सकता। ये परिणाम तुलनात्मक दृष्टिकोण से कम विश्वसनीय होते हैं।

स्तरीकृत समसंभाविक प्रतिचयन का प्रयोग करते समय निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना चाहिए–

1. खण्डों, वर्गों अथवा श्रेणियों (strata) के विषय में शोधकर्ता को अद्यावधिक, पूर्ण, सही-सही जानकारी होनी चाहिए।

नोट

2. जिन आधारों पर स्तरीकरण किया गया है वे तर्कसंगत होने चाहिए, अर्थात् वे अध्ययन की समस्या से जुड़े होने चाहिए।
3. खण्डों की इकाई संख्या पर्याप्त रूप से अधिक होनी चाहिए अर्थात् उनका आकार बड़ा होना चाहिए ताकि उनमें से पर्याप्त इकाइयों का चयन सम्भव हो सके।
4. वर्गों में आन्तरिक रूप से समानता (homogeneity) तथा परस्पर एक-दूसरे के बीच असमानता अर्थात् विषमजातीयता (heterogeneity) होनी चाहिए।
5. जहाँ तब सम्भव हो, शोधकर्ता द्वारा निर्मित वर्गों के स्थान पर परिवेश में स्वाभाविक रूप से स्थित वर्गों का ही प्रयोग करना चाहिए।

क्या आप जानते हैं स्तरीकृत समसंभाविक प्रतिचयन को आयन्त्रक समसंभाविक प्रतिचयन (restrictive random sampling) भी कहा जाता है

इसमें शोधकर्ता को कुछ बंधनों, कुछ नियंत्रणों के अधीन न्यादर्श का प्रतिचयन करना पड़ता है। इसके कुछ लाभ हैं तो कुछ नुकसान भी हैं। लाभ तो यह है कि इसमें समष्टि के प्रत्येक अंग का न्यादर्श में प्रतिनिधित्व हो जाता है, कोई अंग छूटा नहीं रहता। इस प्रकार जो न्यादर्श उपलब्ध होता है वह समष्टि का बहुत सही-सही प्रतिनिधित्व कर पाता है। सरल समसंभाविक प्रतिचयन में अनेक बार ऐसा नहीं हो पाता। अत: स्तरीकृत समसंभाविक प्रतिचयन के आधार पर किए गए अनुसंधान के परिणाम अधिक विश्वसनीय होते हैं। न्यादर्श का आकार छोटा होने पर भी परिणाम अधिक शुद्ध होते हैं। इसका एक दोष यही है कि इसके प्रयोग हेतु समष्टि के विषय में बहुत जानकारी की आवश्यकता होती है जिसे प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है तथा कई बार कुछ जानकारी मिलना संभव भी नहीं होता। इसे इस विधि का नुकसान अथवा दोष कहना उचित नहीं प्रतीत होता। एक असुविधा के रूप में इसे स्वीकार करना चाहिए जिसे थोड़े प्रयास के द्वारा दूर भी किया जा सकता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. संभाविता प्रतिचयन विधि ..... प्रकार के होते हैं।
2. लॉटरी विधि के अंतर्गत कागज को छोटी-छोटी ..... बनाई जाती हैं।
3. ..... विधि में समष्टि सूची की किसी भी इकाई पर आँख बंदकर उँगली रखी जाती है।

18.3 न्यादर्श का आकार (Size of Sampling)

प्राय: शोधकर्ता यह प्रश्न पूछा करते हैं कि न्यादर्श का आकार (size) कितना बड़ा होना चाहिए। इस प्रश्न का सटीक उत्तर असम्भव है क्योंकि यह बहुत-सी बातों पर निर्भर करता है। यह सामान्य ज्ञान की बात है कि न्यादर्श जितना बड़ा होगा, अनुसंधान का परिणाम भी उतना ही अधिक विश्वसनीय होगा, परन्तु निश्चित शुद्धता, निश्चित विश्वसनीयता प्राप्त करने के लिए उसका आकार क्या होना चाहिए, इस प्रश्न का निश्चित उत्तर देना सम्भव नहीं है। समसंभाविक प्रतिचयन की स्थिति में तो मोटे तौर पर आकार का निर्धारण सम्भव भी है, परन्तु अन्य प्रकार की प्रतिचयन विधियों में यह बिल्कुल भी सम्भव नहीं है। अत: यहाँ सहसंभाविक प्रतिचयन के संदर्भ में ही आकार-निर्धारण की विधि का उल्लेख किया जा रहा है।

नोट

यह बात पहले लिखी जा चुकी है कि न्यादर्श का आकर जितना बड़ा होगा, परिणाम उतना ही अधिक विश्वसनीय होगा। अत: स्पष्ट है कि न्यादर्श का आकार बड़ा होना चाहिए। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उसका आकार अनावश्यक रूप से बड़ा हो। वास्तविकता यह है कि उसका आकार न तो बहुत बड़ा होना चाहिए और न बहुत अधिक छोटा। वह अनुकूलतम (optimum) होना चाहिए। अनुकूलतम आकार वह होता है जिससे अनुसंधान की विश्वसनीयता, नम्यता एवं प्रभाविकता (efficiency) सुनिश्चित होती है तथा न्यादर्श को समष्टि का प्रतिनिधित्व करने की क्षमता प्रदान करता है। उसे उतना ही छोटा होना चाहिए कि बस अनावश्यक व्यय से बचा सके। इस प्रकार उसे उतना ही बड़ा होना चाहिए कि न्यादर्श-त्रुटि (sample error) के ग्राह्य सीमा से बाहर जाने से बचा जा सके। उसे उतना ही बड़ा होना चाहिए कि न्यूनतम व्यय के साथ तथा वांछनीय रूप से विश्वसनीय परिणाम उपलब्ध हो सकें।

न्यादर्श के आकार को कई कारक तत्व प्रभावित करते हैं। इनमें से कुछ हैं–(*i*) समष्टि का स्वरूप (विषमजातीय समष्टि के न्यादर्श का आकार बड़ा होगा), (*ii*) आँकड़ों का तालिकाकरण (यदि बहुत-सी श्रेणियों में उन्हें बाँटना हो तो बड़े न्यादर्श की आवश्यकता होगी), (*iii*) अनुसंधान सामग्री (data) एकत्र करने हेतु शोधकर्ता को उपलब्ध संसाधन जैसे समय, धन, जनशक्ति आदि, (*iv*) मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की संख्या एवं उनके विस्तार, (*v*) न्यादर्श की इकाइयों का भौगोलिक प्रसार, (*vi*) इकाइयों की उपलब्धि अर्थात् कुछ इकाइयों का उपलब्ध न होना (mortality), (*vii*) न्यादर्श-चयन की विधि, (*viii*) मापांकों के सांख्यिकीय विश्लेषण की विधि, (*ix*) अनियंत्रित चरों की संख्या (यदि उनकी संख्या अधिक है तो न्यादर्श का आकार बड़ा होगा, (*x*) वांछनीय परिणाम (यदि परिणाम बहुत अधिक शुद्ध एवं विश्वसनीय चाहिए तो न्यादर्श का आकार बड़ा होगा) आदि।

न्यादर्श-आकार की गणना

इस सम्बन्ध में यह जानना आवश्यक है कि (*i*) न्यादर्श-आकार की गणना केवल संभाविता प्रतिचयन की स्थिति में ही सम्भव होती है, (*ii*) यह गणना दो बातों पर आधारित होती है–(क) समष्टि-विचरण (population variance) तथा (ख) वांछनीय विश्वास-सीमा (confidence limit), तीसरे (*iii*) यह कि गणना के जो सूत्र उपलब्ध हैं वे पूर्णतया ही आकार का निर्धारण नहीं करते बल्कि लगभग वांछनीय आकार उपलब्ध कराते हैं। इसी संदर्भ में यह भी जान लेना आवश्यक है कि न्यादर्श का आकार इतना महत्त्वपूर्ण नहीं होता जितना कि उसका प्रतिनिधिरूप होना महत्त्वपूर्ण होता है।

न्यादर्श के आकार-निर्धारण की कुछ विधियाँ इस प्रकार हैं–

1. कुछ वैज्ञानिकों ने ऐसी तालिकाएँ तैयार की हैं जिनके द्वारा समष्टि के आकार के अनुसार न्यादर्श के आकार का निर्धारण किया जा सकता है। ऐसी एक तालिका **डॉ. आर. पी. सिंह** ने 1973 में प्रस्तुत की थी। उसके अनुसार यदि समष्टि का आकार 10 इकाइयों का है तो न्यादर्श का आकार भी 10 इकाइयों का होना चाहिए। इसी प्रकार समष्टि का आकार यदि क्रमश: 15, 30, 50, 100, 200, 400, 500, 600, 800, 1000, 1500, 3000, 5000, 10,000, 50,000 तथा 1,00,000, हो तो न्यादर्श का आकार उसी क्रम से 14, 28, 44, 80, 132, 196, 217, 234, 260, 278, 306, 341, 357, 370, 381 तथा 384 होना चाहिए।

2. दूसरे प्रकार से न्यादर्श के आकार की गणना करने के लिए दो बातों की आवश्यकता होती है–(*i*) एक तो परिणाम की वांछनीय शुद्धता (precision) तथा दूसरी (*ii*) समष्टिगत विचरण का परिणाम (estimate of population variance)। वांछनीय शुद्धता का अर्थ है कि कितनी त्रुटि अनुसंधान के परिणाम में सहनीय है। एक, दो, तीन या चार आदि कितने अंकों तक की त्रुटि सहनीय होगी, स्वयं निश्चित करना होता है। समष्टि-विचरण या तो एक छोटा सा प्रारम्भिक अध्ययन करके पता लगाया जा सकता है अथवा पहले यदि कोई ऐसा अध्ययन हुआ है तो उससे जाना जा सकता है। यदि यह भी संभव नहीं है तो उसका केवल अनुमान लगाया जा सकता है। यदि इतना भी ज्ञात हो जाए या अनुमान लगाया जा सके कि सम्पूर्ण समष्टि में अध्ययनगत चर का विस्तार क्या है अर्थात् उसके प्रसार की

नोट

निम्नतम और उच्चतम सीमाएँ क्या हैं तो उन दोनों के अन्तर को लेकर उसे 6 से भाग देकर प्रमाप विचलन (standard deviation) ज्ञात किया जा सकता है।

परिणाम की शुद्धता का दूसरे शब्दों में यह अर्थ भी होता है कि अनुसंधानगत चर पर समष्टि एवं न्यादर्श के मध्यमानों के बीच कितना अन्तर किस स्थिति में सहनीय है। यह 2% अथवा 5% कुछ भी स्वीकार किया जा सकता है। यह इस बात पर निर्भर करता है कि शोधकर्ता का लक्ष्य क्या है, वह कितना अधिक सही परिणाम चाहता है। यदि हृदय रोग की किसी औषधि का परीक्षण किया जा रहा है तो निश्चय ही शोधकर्ता चाहेगा कि त्रुटि बहुत कम अर्थात् 1% अथवा उससे भी कम हो। यदि शिक्षण की दो विधियों की परस्पर तुलना की जा रही है कि कौन-सी विधि अधिक प्रभावशाली है तो कुछ अधिक त्रुटि को भी सहन किया जा सकता है। प्रमाप-त्रुटि (standar error) की संभावना (probability) एक ऐसा सांख्यिकीय मान है जो यह बता देता है कि किसी न्यादर्श के उस सीमा के भीतर होने की क्या संभावना है जो सहनीय त्रुटि की है तथा जिसका निर्धारण पहले किया जा चुका है। यदि विश्वास-सीमा .05 अथवा 95% स्तर पर निर्धारित की जाती है तो 95 प्रतिशत न्यादर्श ± 2 S.E. के बीच आयेंगे। प्रमाण-त्रुटि (S.E.) समस्त न्यादर्शों की विचरण-सीमा (range) का 1/6 मानी जाती है, परन्तु दूरतम (extreme) अन्तर अथवा विचरण कभी-कभी ही होते हैं। अत: प्रमाप-त्रुटि न्यादर्श की विचरण-सीमा का 1/4 ही मानी जाती है। इस प्रकार .95 स्तर पर विश्वास-सीमा निर्धारित करने पर ऐसा न्यादर्श हमें चुनना होगा जिसकी प्र. त्रु. (S.E.) सहनीय त्रुटि का 1/2 हो। यदि विश्वास-सीमा इससे भी ऊपर .99 स्तर पर निर्धारित की जाती है तो न्यादर्श की प्र. त्रु. सहनीय त्रुटि का और भी छोटा प्रमाप होगी। इसी आधार पर यह भी माना जाता है कि यदि अनुसंधान के परिणाम की शुद्धता बढ़ानी हो अर्थात् उसकी प्र. त्रु. घटानी है तो न्यादर्श के आकार को बढ़ाना होगा। शुद्धता को दो गुना बढ़ाने के लिए न्यादर्श के आकार को चार गुना बढ़ाना होगा। तीन गुना बढ़ाने के लिए न्यादर्श के आकार को नौ गुना तथा चार गुना बढ़ाने के लिए न्यादर्श के आकार को सोलह गुना बढ़ाना होगा। इसका अर्थ हुआ कि परिणाम की शुद्धता की वृद्धि का गुणांक न्यादर्श के आकार की वृद्धि के गुणांक का वर्गमूल होता है।

पार्टन (1965) ने न्यादर्श-आकार ज्ञात करने के दो सूत्र प्रस्तुत किए हैं। एक प्रतिशत पर आधारित है तथा दूसरा मध्यमानों पर। ये इस प्रकार हैं–

(क) $$N = \frac{\text{P.C.}\,(100 - \text{P.C.})\,Z^2}{T^2}$$

इस सूत्र का प्रयोग तब किया जाता है जब समष्टि-मान तथा न्यादर्श-मान का अन्तर प्रतिशत में हो। इसमें P.C. समष्टि का अनुमानित प्रतिशत मान होता है, Z प्रमाप त्रुटि (S.E.) की संख्या है जो .05 अथवा .01 आदि स्तरों पर तालिका से उपलब्ध होती है, T सहनीय त्रुटि है जो 5% अथवा 2% कुछ भी हो सकती है। वास्तव में यह सूत्र प्र. त्रु. (S.E.) सूत्र का ही परिवर्तित रूप है।

(ख) दूसरा सूत्र इस प्रकार है–

$$\text{N} = \left(\frac{\sigma \times \text{S.E. units}}{\text{T}}\right)^2 \text{ अथवा } \left(\frac{\sigma\,\text{Z}}{\text{T}}\right)^2$$

इस सूत्र में σ = समष्टि का अनुमानित प्रमाप-विचलन (standard deviation)

Z = S.E. की इकाई संख्या

T = सहनीय त्रुटि (5% अथवा 2%)

उदाहरण– मान लीजिए एक औषधि की प्रभाविकता का अध्ययन किया जा रहा है तथा शोधकर्ता को .95 संभाविता स्तर 2% से अधिक त्रुटि सहनीय नहीं है तो कितने रोगियों के न्यादर्श पर उसे परीक्षण करना चाहिए, वह यह जानना चाहता है। इस स्थिति में न्यादर्श का आकार होगा–

नोट

$$N = \left(\frac{\sigma \times S.E.}{T}\right)^2 = \left(\frac{10 \times 1.96}{2}\right)^2 = 96 \text{ लगभग}$$

उपरोक्त में $\sigma = 10$ अनुमानित है

वास्तव में सहनीय त्रुटि प्रमाप त्रुटि की इकाई (1.96 अथवा 2.58 आदि संभाविता-स्तर के अनुसार) तथा प्रमाप त्रुटि के आकार के गुणनफल के बराबर होती है। यदि .95 स्तर पर न्यादर्श का आकार जानना है तो इसका सूत्र होगा–

सहनीय त्रुटि $= 1.96 \times S.E.$

क्योंकि S.E. का सूत्र होता है $\frac{\sigma}{\sqrt{N}}$ (σ = S.D.)

अत: सहनीय त्रुटि $= 1.96 \frac{\sigma}{\sqrt{N}}$

यदि सहनीय त्रुटि 2 है तो $2 = 1.96 \frac{\sigma}{\sqrt{N}}$

यदि अनुमानित S.D. 10 है तो $2 = 1.96 \frac{10}{\sqrt{N}}$

इसे हल कने पर $N = 96$ (लगभग)

इस प्रकार न्यादर्श-आकार की गणना करने पर यह नहीं समझना चाहिए कि इसके आधार पर जो परिणाम उपलब्ध होग वह पूर्णतया वांछनीय शुद्धता (accuracy) का प्रतीक होगा। ऐसा तभी सम्भव होगा जब न्यादर्श का चयन भी आदर्श हो जो प्राय: नहीं होता, तो भी न्यादर्श-आकार निर्धारित करने की यह एक उपयोगी विधि है।

न्यादर्श का सही-सही आकर निर्धारित करने की एक दूसरी विधि भी है। इसे प्रतिचयन स्थिर परीक्षण (stability test of sampling) कहते हैं। इसके अन्तर्गत एक के बाद दूसरा न्यादर्श चुनकर तथा उस पर परीक्षण करते चले जाते हैं। जब बराबर दो-तीन परीक्षणों पर परिणाम लगभग समान आने लगते हैं तो वहीं रुक जाते हैं तथा वही न्यादर्श का उपयुक्त आकार होता है। उदाहरणार्थ, पहले 10 इकाइयों के छोटे समूह पर परिणाम प्राप्त किया, फिर दूसरा न्यादर्श 15 इकाइयों का लिया। उस पर परीक्षण किया तथा पहले और दूसरे न्यादर्श को मिलाकर परिणाम का आगणन किया और देखा कि परिणाम की शुद्धता कितनी बढ़ी। इसी प्रकार पुन: तीसरा न्यादर्श 20 इकाइयों का लिया, उस पर परीक्षण किया और अब पहले, दूसरे तथा तीसरे न्यादर्श को मिलाकर परिणाम का आगणन किया। यदि अब भी परिणाम वही रहा जो पहले था तो समझा जाएगा 10 + 15 = 25 इकाइयों वाला न्यादर्श पर्याप्त था।

टास्क न्यादर्श आकार की गणना पर अपने मत व्यक्त करें।

18.4 गुल्म प्रतिचयन (Cluster Sampling)

प्रतिचयन की इस विधि में न्यादर्श की इकाई (unit) कोई एक व्यक्ति, एक घटना, एक वस्तु न होकर उनका एक गुल्म अथवा समूह होता है जैसे छात्रों की कक्षाएँ, विद्यालय, समुदाय आदि। संभाविता एवं अ-संभाविता दोनों प्रकार के प्रतिचयनों में इसका प्रयोग किया जा सकता है। यह अधिक सुविधाजनक होता है। यही इसकी विशेषता है, परन्तु इसके दोष कई एक हैं। इसमें त्रुटि की मात्रा अधिक होती है। संभाविता प्रतिचयन की तुलना में एक निश्चित शुद्धता

नोट

हेतु इसमें पर्याप्त रूप से बड़े न्यादर्श की आवश्यकता होती है। समान आकार वाले समष्टि के प्रत्येक न्यादर्श के चयन की संभावना समान नहीं होती। जो लाभकारी विशेषताएँ संभाविता प्रतिचयन की होती हैं वे इसमें नहीं पाई जातीं। अत: संभाविता प्रतिचयन की तुलना में यह कम उपयोगी होता है।

महलानवीस (1944) ने इस विधि में थोड़ा परिवर्तन करके एक नई विधि का विकास किया है जिसे उन्होंने अतिच्छादी आयत-संतल प्रतिचयन विधि (overlapping grid-sampling) की संज्ञा दी है।

18.5 बहुचरणीय प्रतिचयन (Multistage Sampling)

यह विधि गुल्म प्रतिचयन का ही विस्तार अथवा परिवर्तित रूप है। इसके अन्तर्गत पहले समष्टि में से इकाइयों के बड़े-बड़े समूह छाँट लिए जाते हैं। इनका चयन भी समसंभाविक विधि से किया जाता है। यह प्रतिचयन का पहला चरण हुआ। इसके बाद इन चयनित समूहों के भीतर स्थित अन्य छोटे समूहों का चयन किया जाता है। यह दूसरा चरण हुआ। इसी प्रकार इन समूहों में से वांछनीय इकाइयों को चुना जाता है। यह तीसरा चरण हुआ। प्रत्येक चरण में चयन की प्रक्रिया समसंभाविक रहती है। जैसे–यदि एक नगर के आठवीं कक्षा के 150 विद्यार्थियों का न्यादर्श लेना है तो इसके लिए पहले हम नगर के 50 विद्यालयों में 10 विद्यालय समसंभाविक विधि द्वारा छाँट लेंगे (प्रथम चरण)। इसके बाद इन 10 विद्यालयों में से प्रत्येक में से कक्षा 8 का एक सेक्शन लाटरी विधि से छाँट लेंगे (दूसरा चरण)। अब प्रत्येक सेक्शन में से क्रमबद्ध प्रतिचयन विधि द्वारा 15, 15 विद्यार्थी चुन लेंगे (तीसरा चरण)। इस प्रकार 150 विद्यार्थियों का न्यादर्श उपलब्ध हो जाएगा।

इस विधि द्वारा न्यादर्श का चयन करने में वे सभी दोष रहते हैं जो गुल्म प्रतिचयन विधि में पाए जाते हैं। इस विधि का प्रयोग भी संभावित एवं अ-संभाविता दोनों प्रकार के प्रतिचयनों में किया जाता है।

18.6 असंभाविता प्रतिचयन विधियाँ (Non-probability Sampling Techniques)

संभाविता प्रतिचयन विधियों की एक महत्त्वपूर्ण बात यह होती है कि उनके अन्तर्गत समष्टि की प्रत्येक इकाई के न्यादर्श में आने की संभावना समान होती है तथा यह भी ज्ञात रहता है कि प्रत्येक इकाई के न्यादर्श में सम्मिलित होने की सम्भावना क्या है? साथ ही उनके आधार पर यह भी जाना जा सकता है कि अनुमानत: न्यादर्शगत परिणाम में कितनी त्रुटि है अथवा कितना शुद्ध है, परन्तु असंभाविता प्रतिचयन विधियों में ऐसा नहीं होता। उनमें समष्टि की इकाइयों के न्यादर्श में सम्मिलित होने की संभावना समान नहीं होती। किसी इकाई के न्यादर्श में आने की संभावना क्या होगी, यह भी नहीं जाना जा सकता। अत: इस बात का अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता कि इन विधियों द्वारा चयनित न्यादर्श के आधार पर प्राप्त परिणाम की शुद्धता क्या है, उसमें कितनी त्रुटि है। तो भी इनकी अनुसंधान में अपनी उपयोगिता है। उनका प्रयोग भी प्राय: किया जाता है। कुछ परिस्थितियों में तो उनका कोई विकल्प भी नहीं होता। अत: इन विधियों की जानकारी भी आवश्यक है। कुछ प्रमुख विधियों का उल्लेख आगे किया गया है।

1. संयोगजन्य प्रतिचयन (Accidental, Incidental or Opportunity Sampling)

इस विधि के अन्तर्गत प्रतिचयन की कोई पूर्व योजना नहीं होती। न कोई समष्टि-संदर्भ होता है, न कोई इकाइयों की सूची। बस जहाँ जो मिल गया उसी से शोध-सामग्री प्राप्त कर ली जाती है। किसी घटना, विषय तथा तथ्य के बारे में जनता क्या सोचती है, इसका सर्वेक्षण प्राय: पत्रकार किया करते हैं। कुछ लोगों के विचार जो उन्हें संयोग से कहीं मिल जाते हैं, लेकर वे अपनी रिपोर्ट लिख देते हैं। इसी प्रकार प्रदर्शनियों में, मेलों में, विद्यालयों में जहाँ कहीं जो भी मिल जाता है वही प्रतिचयन की इकाई बन जाता है। इसे संयोगजन्य प्रतिचयन कहते हैं।

नोट

2. अभ्यंश प्रतिचयन (Quota Sampling)

इस विधि के अन्तर्गत पहले समष्टि को कुछ विशिष्ट खण्डों में अथवा वर्गों में विभाजित कर लिया जाता है। इन्हें उप-समष्टियाँ (sub-populations), श्रेणियाँ, विशिष्ट क्षेत्र, वर्ग, खण्ड, विशिष्ट स्तर कुछ भी कहा जा सकता है। इसके पश्चात् प्रत्येक खण्ड अथवा क्षेत्र की जनसंख्या अर्थात् कुल इकाइयों का निर्धारण किया जाता है तथा यह भी निर्धारित किया जाता है कि वह समष्टि का कौन-सा अनुपात है। तत्पश्चात् यह निर्धारित किया जाता है कि प्रत्येक में से कितना अंश अर्थात् कितनी इकाइयाँ न्यादर्श में सम्मिलित की जायेंगी। यह भी साधारणतया उसी अनुपात में निर्धारित किया जाता है जो खण्डों एवं समष्टि के बीच होता है। प्रत्येक क्षेत्र अथवा खण्ड में से कितनी निर्धारित इकाइयाँ किस प्रकार चुनी जायेंगी यह शोधकर्ता की अपनी सूझबूझ, अपने निर्णय पर निर्भर करता है। मुख्य उद्देश्य यह रहता है कि समष्टि की सभी प्रकार की इकाइयों का न्यादर्श में समावेश हो सके।

यह विधि बहुत कुछ स्तरीकृत समसंभाविक प्रतिचयन विधि की भाँति ही है। अन्तर इतना है कि इसमें प्रत्येक वर्ग अथवा खण्ड में से इकाइयों का चयन समसंभाविक विधि द्वारा नहीं किया जाता। चयन शोधकर्ता अथवा साक्षात्कारकर्ता के अपने विवेक एवं निश्चय पर निर्भर करता है।

वास्तव में इस विधि में यह भी अनिवार्य नहीं होता कि प्रत्येक खण्ड में से इकाइयों की संख्या उसी अनुपात में चुनी जाए जिस अनुपात में समष्टि में स्थित हैं। आवश्यक केवल इतना ही समझा जाता है कि प्रत्येक खण्ड में से पर्याप्त इकाइयाँ न्यादर्श में सम्मिलित हो सकें। अत: यह नहीं कहा जा सकता कि खण्डों से ली गई इकाइयाँ उनकी प्रतिनिधि होंगी। इसी प्रकार यह भी नहीं कहा जा सकता इस विधि द्वारा प्राप्त न्यादर्श समष्टि का प्रतिनिधि रूप होगा।

अत: इस प्रकार चयनित न्यादर्श के आधार पर प्राप्त परिणाम में सन्निहित त्रुटि का भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। ऐसी मान्यता है कि इस विधि द्वारा चुने गए न्यादर्श के आधार पर प्राप्त परिणाम की शुद्धता तुलनात्मक दृष्टिकोण से काफी कम होती है।

प्रयोजनात्मक प्रतिचयन (Purposive Sampling)

इस प्रकार के प्रतिचयन के पीछे यह लक्ष्य रहता है कि कुछ ऐसी इकाइयों को समष्टि में चुन लिया जाए जो उस समष्टि के अनुरूप हों जिसमें शोधकर्ता की रुचि है अथवा जो उस प्रयोजनानुसार है। ऐसी कौन-सी इकाइयाँ होंगी तथा कितनी चुनी जायेंगी यह शोधकर्ता के अपने निर्णय पर आधारित होता है। निर्णय का आधार उसके अनुसंधान का अभिप्राय अथवा उद्देश्य होता है। प्रक्रिया के पीछे अवधारणा यह रहती है कि उद्देश्य को सामने रखकर तथा अपने विवेक का प्रयोग करते हुए शोधकर्ता स्वयं ऐसी इकाइयों का चयन कर सकता है जो उस समष्टि के अनुरूप हों जिस पर वह अनुसंधान करना चाहता है। ऐसा माना जाता है कि इकाइयों के चयन संबंधी निर्णय में शोधकर्ता से जो त्रुटियाँ होती हैं वे एक-दूसरे को खण्डित (cancel) करती रहती हैं तथा अन्त में जो न्यादर्श निकलकर आता है वह अभीष्ट समष्टि का प्रतिनिधि रूप होता है। यथार्थ में ऐसा होता नहीं। परस्पर मान्यता ऐसी है। **मौलि** के अनुसार, प्रयोजनात्मक प्रतिचयन में इकाइयों का चयन ऐसे निष्कर्ष (criterion) के आधार पर किया जाता है जो न्यादर्श-चयन में द्वितीय नियंत्रक के रूप में कार्य करता है। उदाहरण के लिए, यदि बुद्धिमान परन्तु पढ़ने-लिखने में पिछड़े हुए बालकों का अध्ययन करना है तो ऐसे बालकों के न्यादर्श-चयन में पढ़ने-लिखने में पिछड़े सभी प्रकार के बालकों को न लेकर केवल उन्हीं को लेंगे जो बुद्धिमान हैं। अत: बुद्धि एक ऐसा निष्कर्ष हुआ जो द्वितीय नियंत्रक का कार्य कर रहा है। अनुसंधान का उद्देश्य एक विशिष्ट बाल-समूह का अध्ययन करना है। अत: शोधकर्ता अपने विवेक के आधार पर उद्देश्य को सामने रखकर न्यादर्श का चयन करेगा।

मौलि ने प्रयोजनात्मक प्रतिचयन को स्तरीकृत प्रतिचयन का ही एक रूप माना है। इसी प्रकार उन्होंने अभ्यंश प्रतिचयन (quota sampling) को प्रयोजनात्मक प्रतिचयन (purposive sampling) का एक विशिष्ट रूप माना है।

नोट

प्रतिचयन की इस विधि में भी इकाइयों के न्यादर्श में सम्मिलित होने की संभावना समान नहीं होती। प्रत्येक इकाई की संभावना या तो एक होती है अथवा शून्य। इसमें समय की तो बचत होती है परन्तु परिणाम अधिक सही नहीं होते। साथ ही इस विधि के समुचित प्रयोग हेतु समष्टि की विशेषताओं का बहुत अच्छा ज्ञान होना अति आवश्यक है। परिणाम में कितनी त्रुटि है अर्थात् परिणाम की शुद्धता क्या है इसका भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

निर्णयात्मक प्रतिचयन (Judgement Sampling)

जब शोधकर्ता इकाइयों का चयन अपने स्वयं के विवेक एवं ज्ञान के आधार पर करता है तो उसे निर्णयात्मक प्रतिचयन कहते हैं। जैसे, यदि यह जानना है कि ग्रामीण लोगों का जनसंख्या-नियंत्रण कार्यक्रम के प्रति क्या दृष्टिकोण है और शोधकर्ता केवल 3 या 4 गाँव चुनकर उसमें अपना अध्ययन करता है तथा उनके आधार पर सम्पूर्ण ग्रामवासियों के विषय में अपना मत व्यक्त करता है, तो यह 3-4 गाँवों का न्यादर्श निर्णयात्मक प्रतिचयन के अन्तर्गत रखा जा सकता है। इन 3-4 गाँवों के चयन के पीछे शोधकर्ता का यह विवेक, यह ज्ञान है कि ये गाँव, ग्रामवासियों की समस्त जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करते हैं। न करते हों यह बात दूसरी है उसके अपने निर्णय के अनुसार तो करते हैं।

इस प्रकार, चयनित न्यादर्श के भी वही दोष हैं जिनका उल्लेख प्रयोजनात्मक प्रतिचयन के अन्तर्गत किया गया है। इसके आधार पर प्राप्त परिणाम भी अधिक शुद्ध नहीं होते। उनमें भी पर्याप्त त्रुटि बनी रहती है, तो भी बहुत से अध्ययनों में, विशेषकर समाजशास्त्र के क्षेत्र में, इस प्रकार के न्यादर्शों पर अध्ययन किए गए हैं।

इस प्रकार जितनी भी असंभाविता प्रतिचयन विधियाँ हैं वे सभी पर्याप्त रूप से असंतोषजनक हैं। उनकी शुद्धता का कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। उनके परिणामों में कितनी त्रुटि है इसका आकलन नहीं किया जा सकता। अत: इनके न्यादर्शाधारित परिणामों के आधार पर समष्टि की विशेषताओं के विषय में कुछ नहीं कहा जा सकता। परिणामों का सामान्यीकरण संभव नहीं होता तो भी यह नहीं कहा जा सकता कि ये सारी विधियाँ निरर्थक एवं बेकार हैं। इनके अन्तर्गत जो परिणाम प्राप्त होते हैं वे नवीन संकल्पनाओं, नये दृष्टिकोणों, कई प्रकार की अतिरिक्त अवधारणाओं को जन्म दे सकते हैं जिनका परीक्षण अधिक वैज्ञानिक ढंग से बाद में किया जा सकता है। जिन परिस्थितियों में बहुत अधिक शुद्धता की आवश्यकता नहीं होती, जैसे प्रारंभिक अध्ययनों में, वहाँ इन विधियों का प्रयोग उपयोगी हो सकता है। साथ ही जहाँ शोधकर्ता को समष्टि की विशेषताओं का पूरा-पूरा ज्ञान न हो अथवा समष्टि की इकाइयों का स्वरूप स्पष्ट न हो, संभव न हो अथवा अनिवार्य न हो, उन परिस्थितियों में इन विधियों का प्रयोग किया जा सकता है, परन्तु परम आवश्यक यह है कि प्राप्त परिणामों की व्याख्या भी इन सब संरोधनों (constraints) को सामने रखकर करनी चाहिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

4. असंभाविता प्रतिचयन विधि के अंतर्गत समष्टि की सभी इकाई समान रूप में आते हैं।
5. संयोगजन्य प्रतिचयन विधि में प्रतिचयन की कोई पूर्व योजना नहीं होती।
6. अभ्यंश प्रतिचयन विधि, स्तरीकृत सम-संभाविक प्रतिचयन विधि की भाँति ही है।
7. अ-आनुपातिक स्तरीकृत सम-संभाविक प्रतिचयन विधि एक खर्चीली विधि है।

18.7 न्यादर्श-त्रुटि (Sampling-errors)

न्यादर्श-प्रतिचयन-विधियों के संदर्भ में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण संकल्पना न्यादर्श-त्रुटि (sampling error) की है जिसे अच्छी तरह समझना बहुत आवश्यक है। न्यादर्श-त्रुटि अथवा प्रतिचयन-त्रुटि का प्रश्न वहाँ उठता है जहाँ न्यादर्श

नोट

के आधार पर प्राप्त परिणाम का समष्टि के ऊपर आरोपण किया जाता है अर्थात् यह कहा जाता है कि समूची समष्टि की वही विशेषता है जो न्यादर्श में पाई गई है। न्यादर्श के आधार पर जो परिणाम प्राप्त होते हैं वे अधिकतर सांख्यिकीय मानों अथवा मापांकों के रूप में होते हैं, जैसे न्यादर्श का किसी चर पर मध्यमान, दो मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता का माप अर्थात् टी–मान, एफ–मान आदि। इन मानों के परीक्षण के आधार पर जो निष्कर्ष निकलता है वह समष्टि की व्याख्या का भी आधार बनता है तथा कहा जाता है कि जो न्यादर्श के विषय में सही है वह समष्टि के विषय में भी सही होगा। इसे परिणाम का सामान्यीकरण (generalization) कहते हैं। परन्तु इस प्रकार का सामान्यीकरण तभी सही एवं संभव होता है जब न्यादर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व करता हो। जितनी अधिक प्रतिनिधित्व की क्षमता उसमें होगी उतनी ही सामान्यीकरण की भी संभावना अधिक होगी। ऐसा इसलिए कहा जाता है कि यदि–न्यादर्श समष्टि का बहुत अधिक प्रतिनिधित्व करता है अर्थात् समष्टि के समरूप है तो जो मान न्यादर्श के आधार पर प्राप्त हुआ है वही मान समष्टि का भी होगा अर्थात् यदि सम्पूर्ण समष्टि का उसी चर पर माप लेकर उस मान को ज्ञात किया जाए तो वह न्यादर्शाधारित मान के बराबर अथवा लगभग बराबर होगा। इसी को इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जितना समष्टि–मान न्यादर्श–मान से दूर होगा (अन्तर जितना अधिक होगा) उतनी ही अधिक न्यादर्शाधारित मान में त्रुटि होगी। इस प्रकार न्यादर्श त्रुटि का अर्थ हुआ समष्टि–मान एवं न्यादर्श–मान के अन्तर की मात्रा।

समष्टि–मान एवं न्यादर्श–मान के बीच अन्तर कई कारणों से हो सकता है, परन्तु इन कारणों का एक स्रोत न्यादर्श का समष्टि के समरूप अथवा प्रतिनिधिरूप न होना भी है। ऐसी मान्यता है कि यदि न्यादर्श को समसंभाविक विधि द्वारा चुना गया है तो वह प्रतिनिधि रूप होगा, परन्तु शत–प्रतिशत समष्टि का समरूप होगा ऐसा नहीं कहा जा सकता। अत: समरूप होते हुए भी न्यादर्श–मान को त्रुटि–विहीन नहीं माना जा सकता और न्यादर्श का चयन समसंभाविक विधि द्वारा नहीं किया गया है तब तो वह समष्टि का प्रतिनिधित्व बिल्कुल ही नहीं करेगा। उस स्थिति में न्यादर्श–त्रुटि और भी अधिक हो सकती है। इस प्रकार न्यादर्श–त्रुटि का संबंध न्यादर्श–चयन की विधि एवं न्यादर्श के प्रकार के साथ जुड़ा होता है। इसीलिए न्यादर्श के कारण जो त्रुटि उत्पन्न होती है उसे न्यादर्श त्रुटि कहते हैं।

न्यादर्श त्रुटि के प्रकार

न्यादर्श त्रुटि के दो प्रकार होते हैं–(क) समसंभाविक त्रुटि (random error) तथा (ख) क्रमिक (systematic) अथवा अचल त्रुटि (constant error)।

(क) समसंभाविक त्रुटि का संबंध समसंभाविक न्यादर्श–प्रतिचयन से होता है। ऐसी मान्यता है कि समसंभाविक विधि से न्यादर्श का चयन करने पर इकाइयों के बीच अन्तर एक–दूसरे को निरस्त करते चले जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप न्यादर्शाधारित जो मान उपलब्ध होता है वह समष्टिमान के बहुत समीप आ जाता है तथा त्रुटि पर्याप्त रूप से कम हो जाती है, परन्तु ऐसा नहीं माना जाता कि त्रुटि पूर्णतया समाप्त हो जाती है। फिर भी कुछ न कुछ त्रुटि रह ही जाती है। इसी को समसंभाविक त्रुटि कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि इसे पूर्णतया समाप्त तो नहीं किया जा सकता परन्तु उसे (क) कम अवश्य किया जा सकता है तथा (ख) जितनी हो सकती है उसका अनुमान भी लगाया जा सकता है। उसे कम करने का एक उपाय है न्यादर्श के आकार में वृद्धि करना। कितने प्रतिशत न्यादर्शों में कितनी त्रुटि हो सकती है अथवा त्रुटि की अधिकतम सीमा क्या हो सकती है यह जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए सूत्र द्वारा पहले प्रमाप त्रुटि (S.E.) ज्ञात करनी पड़ती है, जिसका सूत्र होता है–

$$\text{S.E.} = \frac{\text{S.D.}}{\sqrt{\text{N}}}$$

मान लीजिए S.E. 2.0 आती है, तो 95 प्रतिशत न्यादर्शों में यह त्रुटि $\pm 1.96 \times 2 = \pm 3.92$ होगी तथा 99 प्रतिशत न्यादर्शों में यह $\pm 2.58 \times 2 = 5.16$ होगी। यदि न्यादर्श का मध्यमान 100 है तो 95 प्रतिशत में

नोट

समष्टि-मध्यमान 96.08 – 103.92 के बीच होगा। इसी प्रकार 99 प्रतिशत में वह 94.84 – 105.16 के बीच होगा। इस प्रकार त्रुटि के आधार पर समष्टि-मान का अनुमान लगाया जा सकता है, परन्तु यह तभी सम्भव होता है जब न्यादर्श का चयन समसंभाविक विधि द्वारा किया जाता है तथा वह समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है। समसंभाविक त्रुटि की संकल्पना भी इसी से जुड़ी होती है।

(ख) क्रमिक अथवा अचल त्रुटि न्यादर्श के अभिनतिबद्ध (biased) होने के कारण उत्पन्न होती है। इस त्रुटि में न्यादर्श की इकाइयों के बीच जो अन्तर उत्पन्न होते हैं वे एक-दूसरे को निरस्त नहीं करते जैसा कि समसंभाविक न्यादर्श की स्थिति में होता है बल्कि वे अन्तर सभी इकाइयों में समानरूप से बने रहते हैं तथा दिशोन्मुख (directional) होते हैं अर्थात् एक ही दिशा में प्रभावी रहते हैं; या तो उससे सारी इकाइयों में माप समान रूप से बढ़ते चले जाते हैं या घटते चले जाते हैं। उदाहरण के लिए, यदि यह ज्ञात करना है कि एक नगर के नवीं कक्षा के विद्यार्थियों की गणित विषय की औसत शैक्षिक उपलब्धि क्या है और यह जानने के लिए हमने कुछ विद्यालयों के केवल कक्षा 9 'अ' के विद्यार्थियों की उपलब्धि का मापन करके उसका औसत निकाला तो इसमें क्रमिक त्रुटि का समावेश हो जायेगा क्योंकि कक्षा 'अ' में प्राय: सबसे योग्य विद्यार्थियों को ही रखा जाता है। अत: उनकी उपलब्धि समान रूप से बढ़ी हुई आएगी। सब विद्यार्थियों के अंक बढ़े हुए रहेंगे। इसी प्रकार यदि केवल कक्षा 'स' को लेंगे तो सब विद्यार्थियों के अंक घटे हुए आयेंगे क्योंकि कक्षा 'स' में उन विद्यार्थियों को रखा जाता है जो सबसे कम योग्य हैं। इस प्रकार क्रमिक त्रुटि समान रूप से किसी एक दिशा में ही कार्य करती है। मापांकों को या तो घटाती है या बढ़ाती है।

क्रमिक त्रुटि अथवा अचल त्रुटि को निरस्त करने अथवा घटाने का एक ही उपाय है कि न्यादर्श-चयन अभिनतिमुक्त (free from bias) हो। समसंभाविक विधि द्वारा न्यादर्श-चयन करने पर यह त्रुटि नियंत्रित हो जाती है, परन्तु प्राय: ये ऐसी त्रुटियाँ होती हैं कि उनका आभास नहीं हो पाता। अनुसंधान के क्षेत्र में इन त्रुटियों को "दुष्ट त्रुटियाँ" (bad errors) माना जाता है क्योंकि इनका किसी प्रकार भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता। वे सांख्यिकी के समसंभाविता सिद्धांत के दायरे से बाहर होती हैं। कभी-कभी यह जानना भी कठिन होता है कि वे किस दिशा में क्रियाशील हैं। अत: उनके प्रति शोध के समय सजग रहना बहुत आवश्यक है। जिस प्रकार भी संभव हो उन्हें पूर्णतया नियंत्रित करने का प्रयास करना चाहिए।

18.8 सारांश (Summary)

- संभाविता अथवा संयोग (chance) की समस्या वहाँ उत्पन्न होती है जहाँ हम किसी विषय में पूर्ण जानकारी नहीं रखते तथा निश्चित रूप से उसके संबंध में कुछ नहीं कह सकते।
- संभाविता प्रतिचयन विधि के आधार पर ही यह अनुमान लगाना भी संभव होता है कि अनुसंधान-परीक्षण में कितनी त्रुटि का समावेश है। यह त्रुटि न्यादर्श-आधारित परिणाम एवं समष्टि आधारित परिणाम के अन्तर का ही प्रतीक होती है। इसे "त्रुटि-सीमा" अथवा "शुद्धता की सीमा" भी कहते हैं।
- संभाविता प्रतिचयन विधि के दो प्रकार होते हैं–(*i*) सरल सम-सम्भाविक प्रतिचयन विधि तथा (*ii*) स्तरीकृत सम-सम्भाविक प्रतिचयन विधि।

18.9 शब्दकोश (Keywords)

1. **मितव्ययी विधि**–कम खर्च में संपन्न होने वाली विधि या प्रयोग।
2. **स्तरीकृत प्रतिचयन**–ऐसी विधि जिसमें प्रत्येक खंड में से इकाईयाँ चुनी जाती हैं, उनका खंड के आकार से कोई संबंध नहीं होता।
3. **संदर्भगत**–वर्णित प्रसंग में।

18.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

नोट

1. संभाविता प्रतिचयन विधि का वर्णन करें।
2. संभाविता प्रतिचयन विधि के प्रकारों का वर्णन करें।
3. स्तरीकृत सम-संभाविक विधि पर प्रकाश डालें।
4. न्यादर्श के आकार के बारे में समझाएँ।
5. असंभाविता प्रतिचयन की विधियों का वर्णन करें।
6. न्यादर्श त्रुटि पर प्रकाश डालें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. दो
2. पर्चियाँ
3. क्रमबद्ध
4. असत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. असत्य।

18.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
3. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 19: परिकल्पना: अवधारणा, विशेषताएँ एवं स्रोत (Hypothesis: Concept, Characteristics and Sources)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

19.1 परिकल्पना का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Structure of Hypothesis)

19. 2 परिकल्पना के प्रकार (Types of Hypothesis)

19.3 परिकल्पना का महत्त्व अथवा उद्देश्य (Importance or Purpose of Hypothesis)

19.4 परिकल्पनाओं के स्रोत अथवा निर्धारक तत्व (Source or Elements of Hypothesis)

19.5 परिकल्पनाओं का मूल्यांकन (Evaluation of Hypothesis)

19.6 सारांश (Summary)

19.7 शब्दकोश (Keywords)

19.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

19.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- परिकल्पना के अर्थ एवं स्वरूप को समझने में;
- परिकल्पना के प्रकार, उद्देश्य एवं महत्त्व को समझने में;
- परिकल्पना के स्रोत एवं निर्धारक तत्व को समझने में;
- परिकल्पना के मूल्यांकन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

शोध-समस्या का अन्तिम रूप से निर्णय हो जाने के पश्चात् उसके समाधान की प्रक्रिया का आरंभ अर्थात् शोध-सामग्री का संग्रह किया जाना आरंभ होता है, परन्तु शोध-सामग्री का संग्रह आरंभ करने से पूर्व यह निश्चित कर लेना आवश्यक होता है कि इसके लिए किन दिशाओं में जाना होगा। इन दिशाओं की ओर संकेत करने वाले

नोट

सूत्र उन परिकल्पनाओं में निहित रहते हैं, जिनका निर्माण अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययनजनित ज्ञान, कल्पना एवं सृजनशीलता के आधार पर करता है। परिकल्पनाओं के अभाव में उसे शोध-सामग्री के संग्रह हेतु इधर-उधर भटकना पड़ेगा, जिससे उसके समय एवं शक्ति का अपव्यय होगा। अत: प्राय: सभी शोधकर्ता यह स्वीकार करते हैं कि जहाँ तक सम्भव हो, अनुसंधान का आरम्भ परिकल्पना से ही किया जाना चाहिए, क्योंकि **वान डालेन** के शब्दों में, "परिकल्पनाएँ अनुसंधान-पथ में प्रकाश-स्तम्भ का कार्य करती हैं"।

19.1 परिकल्पना का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Structure of Hypothesis)

जब किसी व्यक्ति के समक्ष कोई कठिनाई उत्पन्न हो जाती है, तो वह उसके निवारण के उपाय भी सोचने लगता है। फलस्वरूप, जो उपाय उसके मस्तिष्क में आते हैं, वे ही समस्या के सम्भावित समाधान होते हैं। यह दूसरी बात है कि वे बाद में सत्य सिद्ध न हों अथवा सत्य सिद्ध हों। उदाहरण के लिए, एक छात्र परीक्षा में बार-बार असफल घोषित होता है। इसका क्या कारण है, यह जानने के लिए अनुसंधान हेतु उसे मनोवैज्ञानिक को सौंप दिया जाता है। समस्या के समाधान हेतु मनोवैज्ञानिक उसके असफल होने के कारणों की कल्पना करता है। हो सकता है उसमें बुद्धि का अभाव हो, हो सकता है वह पढ़ने-लिखने में पहले से ही कमज़ोर हो, हो सकता है वह परीक्षा के समय अस्वस्थ हो गया हो, हो सकता है उसकी पढ़ने-लिखने में रुचि न हो आदि कितनी ही परिकल्पनाएँ सम्भव हो सकती हैं। इनमें से कौन सत्य तथा कौन असत्य है, यह तो बाद में परीक्षण द्वारा ही पता लगेगा। इस प्रकार परिकल्पनएँ एक प्रकार से समस्या के सम्भावित समाधान होती हैं। यदि समस्या को प्रश्न के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। (जैसे, छात्र बार-बार असफल क्यों होता है?) तो ये परिकल्पनाएँ इस प्रश्न के सम्भावित उत्तर समझे जा सकते हैं, परन्तु वैज्ञानिक अनुसंधान का आरंभ इसी बिन्दु से होता है।

नोट्स **टाउनसेंड** के शब्दों में, "परिकल्पना समस्या का प्रस्तावित उत्तर होती है।"

परिकल्पना अंग्रेजी भाषा के शब्द 'हाइपोथिसिस' (hypothesis) का हिन्दी रूपांतर है, जिसका अर्थ है ऐसी मान्यता (thesis) जो अभी अपुष्ट (hypo) है।

हौडनेट के शब्दों में, परिकल्पनाएँ शोधकर्ता की आँखें होती हैं जिनके द्वारा वह समस्यागत अव्यवस्था (अव्यवस्थित तथ्यों) में झाँककर देखता है तथा उनमें समस्या का समाधान खोजता है। **वान डालेन** के अनुसार, परिकल्पना शोधकर्ता का समस्या के समाधान अथवा समस्यात्मक प्रश्न के उत्तर के विषय में एक बुद्धिमत्तापूर्ण अनुमान (intelligent guess) होती है। वह परिकल्पना को समस्या का ऐसा समाधान मानते हैं, जो केवल एक सुझाव के रूप में होता है। **कर्लिंगर** का मानना है कि परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंध के विषय में एक प्रकार का कल्पनाजन्य कथन होती है। जैसे, 'बुद्धि बालकों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है' यह एक परिकल्पना है। इसमें बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच एक विशिष्ट प्रकार के संबंध की कल्पना की गई है।

जब कोई समस्या व्यक्ति के समक्ष उत्पन्न होती है और उसका समाधान खोजने का वह प्रयास करता है, तो पहले अपने ज्ञान, अनुभव, अध्ययन आदि के आधार पर कल्पना करता है कि उसका संभव समाधान क्या हो सकता है। इसी प्रकार जब किसी प्रश्न का उत्तर खोजने का प्रयास करता है, तो पहले कल्पना करता है कि उसका सम्भावित उत्तर क्या हो सकता है। इन सम्भावित समाधानों, सम्भावित उत्तरों को वह सामान्यानुमानों (generalizations) के रूप में प्रस्तुत करता है तथा बाद में यह परीक्षण करता है कि वे कहाँ तक सत्य हैं। ये सामान्यानुमान ही परिकल्पनाएँ कहलाती हैं। इस प्रकार परिकल्पना **बेस्ट** (1977) के शब्दों में, एक ऐसा पूर्वानुमान (inference) होती है, जिसका

नोट

निर्माण वस्तुस्थिति, घटनाओं एवं परिस्थितियों की व्याख्या करने हेतु अस्थायी रूप से किया जाता है और जो अनुसंधान-कार्य को आगे बढ़ाने में सहायता करती है अर्थात् बाद में परीक्षण के द्वारा यदि वह सत्यापित हो जाती है तो समस्या का समाधान हो जाता है तथा वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है।

प्रतिदिन ही हम अपने दैनिक जीवन में उत्पन्न होने वाली समस्याओं का समाधान इसी प्रकार (अर्थात् परिकल्पना का निर्माण और फिर उसका परीक्षण) करते हैं। कमरे मे जल रहा बल्ब अचानक बुझ जाता है, तुरंत व्यक्ति स्वयं से पूछता है "क्या हुआ"? एक समस्या उत्पन्न हुई है। इस समस्या का समाधान, उस प्रश्न का उत्तर पाने हेतु वह एक-एक परिकल्पना का निर्माण करता है और उसका परीक्षण करता है। अन्त में, उसे वस्तुस्थिति स्पष्ट हो जाती है। पहले अनुमान लगाता है अर्थात् परिकल्पना का निर्माण करता है "सम्भवत: स्रोत से ही विद्युत गई है।" वह बाहर निकल कर और घरों की ओर देखता है तथा पाता है कि और सबके घरों में तो बिजली आ रही है। अत: यह परिकल्पना असत्य सिद्ध हो जाती है। तब दूसरी परिकल्पना करता है "अपने घर का ही फ्यूज तो नहीं उड़ गया"। वह कट-आउट निकालकर फ्यूज का परीक्षण करता है तथा पाता है कि उसमें कोई खराबी नहीं है। यह परिकल्पना भी असत्य सिद्ध होती है। तब वह तीसरी परिकल्पना का निर्माण करता है "बल्ब तो फ्यूज नहीं हो गया"। बल्ब का परीक्षण करने पर पाता है कि वह फ्यूज हो गया है। यह परिकल्पना सत्य सिद्ध होती है। इसी बिन्दु पर पहुँचकर समस्या का समाधान भी हो सकता है तथा सम्पूर्ण स्थिति स्पष्ट हो जाती है। सभी समस्याओं के समाधान खोजने के पीछे यही प्रक्रिया रहती है तथा उसमें परिकल्पनाओं (पूर्वानुमानों, सम्भावित उत्तरों एवं समाधानों) की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। अनुसंधान भी समस्या-समाधान की ही एक विशिष्ट एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया होती है। अत: अनुसंधान में भी परिकल्पनाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

जो ज्ञातव्य है, उसके विषय में 'क्या है', 'क्यों है', इस विषय में पूर्वानुमान लगाना ही परिकल्पना होती है।

19.2 परिकल्पना के प्रकार (Types of Hypothesis)

व्यवहार-वैज्ञानिक अपने अनुसंधानों में कई प्रकार की परिकल्पनाओं का प्रयोग करते हैं। विभिन्न लेखकों ने कई प्रकार से उनका वर्गीकरण किया है। आगे इनका विस्तार से उल्लेख किया गया है–

1. गुड तथा हैट का वर्गीकरण

गुड तथा **हैट** (1952) ने परिकल्पना के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है। यह वर्गीकरण उन्होंने इस आधार पर किया है कि परिकल्पना में अभिव्यक्त अमूर्तता का स्तर (level of abstraction) क्या है? यदि अनुसंधान का स्तर ऊँचा है, तो परिकल्पना का स्तर भी ऊँचा होगा। यह इस पर निर्भर करता है कि अनुसंधान के निष्कर्ष अथवा सामान्यन (generalizations) कितने अमूर्त (abstract) अथवा व्यापक हैं। इस दृष्टिकोण से परिकल्पनाएँ (*i*) साधारण अथवा निम्नस्तरीय (lowest level), (*ii*) उच्चस्तरीय अथवा जटिल स्तरीय (higher level), (*iii*) उच्चतम स्तरीय अथवा जटिलतम स्तरीय (highest level) तीन प्रकार की होती हैं।

***(i)* साधारण अथवा निम्नस्तरीय परिकल्पना:** इस स्तर की परिकल्पनाएँ केवल साधारण स्तर के अनुसंधानों में पाई जाती हैं तथा वे कुछ अनुभवाधीन (empirical) समानताओं (uniformities) का ही वर्णन करती हैं। वे बहुत साधारण से अनुमान एवं कथन के रूप में होती हैं। जैसे, ग्यारह वर्षीय बालक अति संवेदनशील होते हैं, आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों की औसत बुद्धि 90-100 के बीच होती है, भारत के पिछड़े वर्गों की आर्थिक-सामाजिक स्थिति संतोषजनक नहीं है आदि। ये सब साधारण स्तर के अनुसंधानों की परिकल्पनाएँ हैं।

***(ii)* उच्चस्तरीय परिकल्पनाएँ:** उपरोक्त से उच्चस्तरीय परिकल्पनाएँ संकल्पनाओं (concepts) के पारस्परिक संबंधों पर आधारित होती हैं। इनमें समानताओं की अमूर्तता का स्तर उच्च स्तर का होता है। ये समानताओं में

नोट

सन्निहित किसी अमूर्त संकल्पना की अभिव्यक्ति करती हैं। इस प्रकार की परिकल्पना पर आधारित अनुसंधान का उद्देश्य घटनाओं का गहन अध्ययन होता है।

उदाहरण जैसे, तीव्र शारीरिक परिवर्तनों के कारण ग्यारह वर्षीय बालक अधिक संवेदनशील होते हैं।

इस परिकल्पना में अनुसंधान का उद्देश्य केवल यह जानना मात्र नहीं है कि ये बालक संवेदनशील होते हैं अथवा नहीं, बल्कि उसके आगे यह जानना है कि क्या उनकी संवेदनशीलता का कारण उनके भीतर तेजी से हो रहे शारीरिक परिवर्तन हैं। अतः यह परिकल्पना साधारण स्तर की न रहकर कुछ जटिल हो गई।

***(iii)* उच्चतम स्तरीय परिकल्पनाः** इस स्तर की परिकल्पना में अमूर्त वैचारिकता (abstract thinking) का सबसे अधिक ऊँचा स्तर निहित रहता है। अतः इस स्तर के अनुसंधान सबसे अधिक जटिल होते हैं। प्रथम एवं द्वितीय स्तर की परिकल्पनाओं का संबंध "क्या है" से होता है, जबकि तृतीय (उच्चतम) स्तर की परिकल्पनाओं का संबंध "क्यों है" से होता है। इन्हीं के आधार पर उच्च स्तर के सिद्धांतों (theories) एवं नियमों (laws) का विकास होता है। उदाहरण के लिए यह अनुमान लगाना कि शारीरिक परिवर्तन संवेदनशीलता की वृद्धि के कारण क्यों और कैसे बनते हैं, उच्चतम स्तर की परिकल्पना को जन्म देगा। शारीरिक परिवर्तन एवं संवेदनशीलता संबंधी अनुभवाधीन समानताओं को परस्पर जोड़ने वाली उस कड़ी को खोजना होगा, जो किसी दूसरी शृंखला की कड़ी है। इस स्थिति में चिंतन का स्तर सर्वाधिक अमूर्त होगा। अनुसंधान की जटिलता भी बहुत अधिक होगी। इस प्रकार की परिकल्पना का निर्माण शोधकर्ता की उच्चस्तरीय सृजनात्मक क्षमता एवं कल्पना-शक्ति पर निर्भर करेगा।

परिकल्पना का कथन किस प्रकार किया गया है इस दृष्टिकोण से उसके दो प्रकार पाए जाते हैं। ये हैं– (*i*) प्रश्नरूप तथा (*ii*) घोषणात्मक रूप।

(*i*) प्रश्नरूप परिकल्पना प्रश्न के रूप में होती है, जैसे, "क्या गृह-परिवेश बालकों के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करता है?" कुछ शोधकर्ता परिकल्पनाओं को प्रश्नों के रूप में ही प्रस्तुत करना पसंद करते हैं।

(*ii*) घोषणात्मक परिकल्पना एक निश्चय-कथन (assertion) के रूप में होती है। उसमें एक तथ्य की अनुमानित घोषणा रहती है। यह तथ्य किसी घटना की वस्तुस्थिति अथवा चरों के पारस्परिक संबंधों के विषय में एक पूर्वानुमान के रूप में होता है। यह सीधा-सीधा एक कथन मात्र होता है, जैसे गृह-परिवेश बालकों के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करता है। अधिकतर शोधकर्ता इसी रूप में परिकल्पनाओं को प्रस्तुत करते हैं।

उपरोक्त दोनों रूपों में कोई अन्तर नहीं होता। केवल लिखने और कथन करने में ही अन्तर होता है।

एक अन्य दृष्टिकोण से परिकल्पनाओं को दो श्रेणियों में बाँटा गया है–(*i*) प्रायोगिक परिकल्पना (experimental hypothesis) तथा (*ii*) सांख्यिकीय परिकल्पना (statistical hypothesis)।

(*i*) प्रायोगिक परिकल्पना को मौलिक (substantive) परिकल्पना, वैज्ञानिक परिकल्पना (scientific hypothesis), अनुसंधान परिकल्पना (research hypothesis), व्यावहारिक परिकल्पना (operational hypothesis), सामान्य (general), परिकल्पना, अनुभवगम्य (empirical) परिकल्पना तथा विकल्प परिकल्पना (alternative hypothesis H_1) भी कहते हैं, इन्हें प्रश्नरूप तथा घोषणात्मक रूप दोनों में व्यक्त किया जा सकता है। साथ ही ये साधारण, उच्चतर तथा उच्चतम तीनों में से किसी भी स्तर के हो सकते हैं।

(*ii*) सांख्यिकीय परिकल्पना को अप्रतिष्ठेय परिकल्पना (null hypothesis, H_0) अथवा निराकरणीय परिकल्पना अथवा शून्य परिकल्पना भी कहते हैं। प्रायोगिक परिकल्पना का परीक्षण (testing) स्वयं के आधार पर ही सीधे नहीं किया जा सकता। अतः उसे सांख्यिकीय परिकल्पना में बदलकर अप्रत्यक्ष रूप से उसका परीक्षण किया जाता है। सांख्यिकीय परिकल्पना का परीक्षण सांख्यिकीय विधि द्वारा किया जाता है। इस परीक्षण में उसे अस्वीकार करके

नोट

प्रायोगिक परिकल्पना को स्वीकार किया जाता है। उदाहरण के लिए "गृह-परिवेश बालकों के आत्मबोध (self-concept) को प्रभावित करता है।" इस प्रायोगिक परिकल्पना को सांख्यिकीय परिकल्पना में बदलने पर यह "गृह-परिवेश बालकों के आत्मबोध पर कोई प्रभाव नहीं डालता" इस प्रकार व्यक्त किया जायेगा।

एक अन्य दृष्टिकोण से सांख्यिकीय एवं प्रायोगिक परिकल्पनाएँ भी दो प्रकार की होती हैं–(*i*) दिशा-सूचक (directional) तथा (*ii*) दिशाहीन (non-directional)।

दिशा-सूचक परिकल्पना को एक-छोरीय (one-tailed) परिकल्पना भी कहते हैं। इसमें तुलनीय समूहों के अन्तरों की दिशा निर्धारित होती है, अर्थात् एक समूह के मध्यमान को दूसरे समूह के मध्यमान के ऊपर या नीचे समसंभावना वक्र के किस ओर लेना है, यह निर्दिष्ट रहता है। इसमें समसंभावना वक्र के एक ही छोर का प्रयोग करना होता है। जैसे, बालकों की शैक्षिक उपलब्धि बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि से अच्छी होती है। इसे सांख्यिकीय परिकल्पना (null hypothesis) में बदलने पर यह होगी "बालकों की शैक्षिक उपलब्धि बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि से अच्छी नहीं होती।" इस परिकल्पना के परीक्षण हेतु बालिकाओं की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान को समसंभावना वक्र के मध्य में रखेंगे तथा बालकों के मध्यमान को उसके दायें छोर पर ऊपर रखेंगे। अन्तर केवल वक्र के एक छोर पर ही स्थित होगा।

दिशाहीन परिकल्पना को द्वि-छोरीय (two-tailed) परिकल्पना भी कहते हैं। इसमें समूहों के मध्यमान का अन्तर वक्र के किसी एक छोर पर ही लिया जाएगा, ऐसा निर्दिष्ट नहीं होता। यह अन्तर दोनों छोर पर स्थित होता है, अर्थात् अन्तर की दिशा उसमें निर्दिष्ट नहीं होता। जैसे, "बालक एवं बालिकाओं की बुद्धि में अन्तर होता है" (सांख्यिकीय रूप में "अन्तर नहीं होता")। इस परिकल्पना में यह निर्दिष्ट नहीं है कि किसी बुद्धि का मध्यमान दूसरे समूह के मध्यमान से अधिक या कम है। केवल यह देखना है कि अन्तर है या नहीं। यदि बालकों की बुद्धि के मध्यमान को समसंभावना वक्र के केन्द्र में रखते हैं, तो बालिकाओं का मध्यमान वक्र के केन्द्र के बायीं अथवा दायीं किसी भी ओर हो सकता है। यदि बालकों के मध्यमान से कम है, तो बायीं ओर तथा यदि अधिक है तो दायीं ओर होगा। चाहे जिस ओर हो, अन्तर तो होगा ही। इसी का परीक्षण करना होता है। इसीलिए इस प्रकार की परिकल्पना को द्वि-छोरीय अथवा दिशाहीन परिकल्पना कहते हैं। केवल परिकल्पना के कथन अथवा लिखने से पता चल जाता है कि वह दिशा-सूचक है अथवा दिशाहीन। दिशाहीन में "अन्तर है" अथवा "अन्तर नहीं है" इन शब्दों का प्रयोग रहता है, परन्तु दिशा-सूचक में "कम है", "अधिक है", "श्रेष्ठ है", "अच्छा है", "बुरा है" आदि ऐसे शब्दों का प्रयोग रहता है।

क्या आप जानते हैं परिकल्पना अंग्रेजी भाषा के 'Hypothesis' का हिन्दी रूपांतरण है।

19.3 परिकल्पना का महत्त्व अथवा उद्देश्य (Importance or Purpose of Hypothesis)

अनुसंधान में परिकल्पना की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि कई उद्देश्यों की पूर्ति उनके माध्यम से होती है। शोधकर्ताओं का मत है कि जहाँ संभव हो वहाँ अनुसंधान को परिकल्पना का सहारा लेना ही चाहिए, परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि परिकल्पना के बिना कोई अनुसंधान हो ही नहीं सकता। **कर्लिंगर** के अनुसार, परिकल्पना के बिना भी अनुसंधान सम्भव है। उनके अनुसार विशेषकर अन्वेषणात्मक (exploratory) अनुसंधानों में परिकल्पना अनिवार्य नहीं होती, परन्तु आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में ऐसा संभव नहीं है। **वान डालेन** का मत है कि उन अनुसंधानों में जिनमें कार्य-कारण (cause-effect) संबंध की खोज लक्ष्य है, परिकल्पना विशेष रूप से वांछनीय होती है। जहाँ

नोट

किसी घटना की वर्तमान स्थिति (status) का वर्णन करना लक्ष्य हो वहाँ उसकी उतनी आवश्यकता नहीं है, यद्यपि वहाँ भी शोधकर्ता को उपयुक्त अनुसंधान-क्षेत्र खोजने हेतु परिकल्पना की आवश्यकता हो सकती है। वास्तव में, अनुसंधान की प्रारंभिक अवस्था में जब तक समस्या अन्तिम रूप से निर्धारित नहीं हो जाती (exploratory stage) परिकल्पना की आवश्यकता नहीं होती। हिलवे का भी कहना है कि ऐसे अनुसंधानों में जिनका उद्देश्य केवल तथ्य-संग्रह ही हो, परिकल्पना का होना आवश्यक नहीं है। ऐतिहासिक अनुसंधान, वर्णनात्मक अनुसंधान, विधि अनुसंधान (legal research), लेख्य अनुसंधान (documentary research), संदर्भ-ग्रंथ अनुसंधान (bibliographical research) आदि में परिकल्पना के प्रयोग की संभावनाएँ नाममात्र की ही होती हैं, तो भी कुछ परिस्थितियाँ इन अनुसंधानों में भी ऐसी हो सकती हैं, जिनमें परिकल्पना का प्रयोग उपयोगी सिद्ध हो सकता है। इन क्षेत्रों के अध्ययन प्रायः आगमन तर्क प्रणाली पर आधारित होते हैं। अतः उनमें अनुसंधान का आंरभ परिकल्पना से नहीं होता, बल्कि परिकल्पना से उनका अन्त होता है। अनुसंधान में परिकल्पना की अनिवार्यता को चुनौती **बेकन** ने दी थी, जिनका कहना था कि परिकल्पना शोधकर्ता में अभ्यानति (bias) तथा पूर्वाग्रह (prejudice) उत्पन्न कर देती है, जिससे शोध-परिणामों की वस्तुनिष्ठता घट जाती है, परन्तु इस धारणा में कोई औचित्य प्रतीत नहीं होता। वास्तव में परिकल्पना का अनुसंधान में बहुत अधिक महत्त्व है। इसके कई लाभ हैं–

1. **मौलि** के अनुसार, परिकल्पना अनुसंधान की दिशा को स्पष्ट करती है। फलस्वरूप शोधकर्ता को इधर-उधर नहीं भटकना पड़ता। वह निरर्थक तथ्यों एवं जानकारी के संग्रह से बच जाता है। व्यर्थ के संदर्भ साहित्य का अध्ययन करने में भी उसका समय नष्ट नहीं होता, क्योंकि परिकल्पना यह निर्धारित कर देती है कि किस प्रकार के साक्ष्य संग्रह करने हैं तथा किन ग्रथों में क्या पढ़ना है। इस प्रकार **वान डालेन** के शब्दों में, परिकल्पना शोध-समस्या तथा समस्या-समाधान के बीच उन दोनों को जोड़ने वाले एक सेतु का कार्य करती है। उससे समस्या की सीमाओं का स्पष्टीकरण होता है। क्या संगत है तथा क्या असंगत है, इसका निर्धारण भी परिकल्पना द्वारा हो जाता है। साथ ही जो तथ्य एवं साक्ष्य एकत्र किए जाते हैं, उनका वर्गीकरण किस प्रकार किया जाना चाहिए, यह भी स्पष्ट हो जाता है। परिकल्पनावार ही उनका गठन एवं विश्लेषण किया जाना संभव हो जाता है। परिकल्पनाओं में जो चर निहित हैं, केवल उन्हीं के संबंध में जानकारी प्राप्त करना होता है। इस प्रकार शोधकर्ता का बहुत-सा समय, धन एवं शक्ति अपव्यय बच जाता है।

2. अनुसंधान-परिकल्पनाओं द्वारा यह भी स्पष्ट हो जाता है कि किस प्रकार की अनुसंधान-विधि, अनुसंधान-आकल्प (research design) का प्रयोग किया जाएगा। परिकल्पना में जिस प्रकार के संबंध की कल्पना रहती है, उसके परीक्षण हेतु उसी के अनुरूप आकल्प का चयन करना होता है। शोध-सामग्री के संग्रह एवं विश्लेषण के बहुत से आकल्प जैसे केवल पश्च-परीक्षण, पूर्व-पश्च-परीक्षण, नियंत्रित समूह आकल्प उपलब्ध हैं। उनमें से कौन-सा सबसे अधिक उपयुक्त होगा, यह इस पर निर्भर करता है कि परिकल्पना क्या है। इसी प्रकार शोध-दत्तों के विश्लेषण की भी बहुत-सी विधियाँ (प्राचलीय एवं अप्राचलीय) हैं। उनका चुनाव भी परिकल्पना पर निर्भर करता है। परिकल्पना यह भी निर्दिष्ट करती है कि शोध-सामग्री (data) किन व्यक्तियों, किन स्थानों तथा किस प्रकार की मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के माध्यम से एकत्र की जाएगी। इस दृष्टिकोण से परिकल्पनाओं का अनुसंधान के क्षेत्र में बहुत अधिक महत्त्व है।

3. परिकल्पनाएँ उस परिप्रेक्ष्य (framework) को भी प्रस्तुत करती हैं, जिसमें समस्या के समाधान-स्वरूप निष्कर्षों की स्थापना करनी होती है। उदाहरण के लिए, यदि बालकों के समस्यात्मक व्यवहारों के कारणों का अध्ययन करना है, तो कुछ परिकल्पित कारण-तत्वों को चुनकर प्रत्येक के संबंध में (जैसे गृह-परिवेश, बुद्धि-स्तर, आत्मबोध आदि) अलग-अलग परिकल्पना स्थापित करके उनका बालकों के समस्यात्मक व्यवहारों के साथ जो संबंध हैं, उनका परीक्षण करेंगे तथा उन्हीं के परिप्रेक्ष्य में समस्यात्मक व्यवहारों की व्याख्या करेंगे। उनसे बाहर जाकर व्याख्या

नोट

करने का प्रश्न ही नहीं उठता। अत: समस्या की वस्तुनिष्ठ रूप में व्याख्या करने में परिकल्पनाएँ बहुत सहायक होती हैं। अनुसंधान के परिणामों को सार्थक ढंग से प्रस्तुत करने में उनसे पर्याप्त सहायता मिलती है।

उदाहरण जैसे, किसी चित्र को देखने पर एक सम्पूर्ण दृश्य मस्तिष्क में उभरकर आता है, वैसे ही परिकल्पनाओं पर आधारित निष्कर्षों का सामूहिक रूप सामने आने पर समस्या का रूप भी निखरकर सामने आ जाता है।

4. प्रत्येक समस्या के अनेक पक्ष होते हैं, जिनका अध्ययन आवश्यक एवं महत्त्वपूर्ण हो सकता है, परन्तु सभी का अध्ययन एक साथ नहीं किया जा सकता। किन पक्षों का अध्ययन किया जाएगा अथवा किया जा रहा है, यह परिकल्पनाओं से स्पष्ट हो जाता है। इस प्रकार परिकल्पनाएँ वे मार्ग हैं जो यह निर्दिष्ट करते हैं कि कहाँ पहुँचना है। **कर्लिंगर** ने अनुसंधान की तुलना वैज्ञानिक क्रीड़ा (scientific game) से की है तथा कहा है कि शोधकर्ता खिलाड़ी की भाँति "पहले दाँव लगाता और फिर पासे फेंकता है। पहले पासे फेंके और फिर दाँव लगाए ऐसा नहीं होता। शोध-सामग्री का संग्रह हो चुकने के पश्चात् दाँव नहीं बदला जा सकता।"

5. परिकल्पना ज्ञान के सृजन का अन्तिम बिन्दु नहीं होती। एक परिकल्पना का परीक्षण दूसरी को जन्म देता है, दूसरी का परीक्षण तीसरी को। सागर की लहरों की भाँति वे एक-दूसरे को आगे ठेलती चलती हैं, जिसके फलस्वरूप ज्ञान-सागर का विस्तार होता रहता है। प्रत्येक अनुसंधान की परिकल्पनाओं का परीक्षण आगामी परीक्षणापेक्षी परिकल्पनाओं की ओर संकेत करता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. वान डालेन के अनुसार, परिकल्पनाएँ अनुसंधान पथ में ..... का कार्य करती हैं।
2. अनुसंधान भी समस्या-समाधान की ही एक विशिष्ट एवं ..... प्रक्रिया होती है।
3. निम्नस्तरीय परिकल्पनाएँ केवल ..... स्तर के अनुसंधानों में पाई जाती हैं।
4. उच्चस्तरीय परिकल्पनाएँ ..... के पारस्परिक संबंधों पर आधारित होती हैं।

19.4 परिकल्पनाओं के स्रोत अथवा निर्धारक तत्व (Source or Elements of Hypothesis)

परिकल्पना का निर्माण भी उतना ही कठिन है, जितना समस्या का चयन तथा उसके भी वही स्रोत एवं निर्धारक तत्व हैं, जो समस्या-चयन के होते हैं। समस्या-चयन की भाँति परिकल्पना-निर्माण (formulation of hypothesis) की भी कोई निश्चित विधि अथवा सूत्र नहीं है। हाँ! कुछ ऐसी आवश्यक शर्तें (conditions), परिस्थितियाँ तथा आधार अवश्य हैं, जो इस कार्य में सहायक होते हैं। इन्हें परिकल्पना-निर्माण के स्रोत अथवा निर्धारक अथवा सहायक तत्व कह सकते हैं।

1. शोधकर्ता का अध्ययन, ज्ञान एवं अनुभव

ये तीनों परिकल्पना के निर्माण में बहुत अधिक सहायक होते हैं। अध्ययन अपने विषय का ही नहीं, बल्कि संबंधित अन्य विषयों का अध्ययन भी बहुत लाभकारी होता है। अन्तर्विषयी अध्ययन (interdisciplinary studies) से नई सूझबूझ का विकास होता है, ज्ञान की वृद्धि होती है, जिसके फलस्वरूप समस्यागत चरों के नवीन संबंध उभरकर आते हैं, जो कभी-कभी अधिक उपयुक्त परिकल्पनाओं को जन्म देते हैं। गहन एवं विस्तृत अध्ययन के आधार पर

नोट

ही शोधकर्ता यह पता लगा पाता है कि शोध हेतु निर्धारित विषय पर कितने तथा किस प्रकार के अध्ययन हो चुके हैं, किस प्रकार की परिकल्पनाओं की उनके अंतर्गत परीक्षा की जा चुकी है, कहाँ-कहाँ किस प्रकार की त्रुटियाँ रही हैं, कौन-सी नई दिशाएँ हैं, जिनकी ओर शोधकर्ता का ध्यान अभी तक नहीं गया है आदि। समस्यागत चरों के विषय में जो सैद्धांतिक संकल्पनाएँ (theoretical conceptions) प्रचलित हैं, उनका अध्ययन करने पर उनकी व्यावहारिक परिभाषाओं (operational definitions) का ज्ञान होता है। उनके आधार पर उन चरों से संबंधित परिकल्पनाओं के निर्माण में सहायता मिलती है। शोध-विषय के परिप्रेक्ष्य में शोधकर्ता का जितना अधिक ज्ञान होगा, उतनी की अधिक उसकी तत्संबंधी सूझ होगी। उतनी ही अच्छी तर्कपूर्ण एवं महत्त्वपूर्ण परिकल्पनाओं का निर्माण करने में वह सक्षम होगा।

कभी-कभी अपने विषय-क्षेत्र से हटकर दूसरे विषयों का अध्ययन भी इस संबंध में बहुत अधिक लाभदायक होता है। शिक्षा, मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र के क्षेत्र में ऐसी बहुत-सी संकल्पनाएँ हैं जो दूसरे क्षेत्रों से ली गई हैं तथा उनके आधार पर इन क्षेत्रों में पूर्णतया नये प्रकार की परिकल्पनाओं का निर्माण करके उनका परीक्षण किया गया है। उदाहरण के लिए, **कुर्ट लेविन** ने मानव-व्यवहार की व्याख्या हेतु जिन परिकल्पनाओं का निर्माण एवं परीक्षण किया वे भौतिक विज्ञान की संकल्पना बल (force) पर आधारित थीं। इस प्रकार व्यवहार-नियंत्रण के **फीड-बैक** (feedback) नियम को इंजीनियरिंग के थर्मोस्टेट सिस्टम से लिया गया। इस प्रकार की एकदम नई सूझ (insight) गहन एवं विस्तृत अध्ययन के द्वारा ही विकसित होती है। इस प्रकार शोधकर्ता के ज्ञान की पृष्ठभूमि (background of knowledge) उपयुक्त एवं श्रेष्ठ परिकल्पनाओं का महत्त्वपूर्ण स्रोत होती है।

शोधकर्ता के स्वयं के अनुभवों की भूमिका भी इस संबंध में कम महत्त्वपूर्ण नहीं होती। परिवेश में घटने वाली घटनाओं, जीवन की परिस्थितियों, व्यक्तियों के व्यवहारों, संस्थाओं के कार्यों, उद्देश्यों, काम करने के ढंगों एवं हो रहे राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक परिवर्तनों का जितना विस्तृत अनुभव शोधकर्ता को होगा उतनी ही सम्यक, सार्थक एवं उपयुक्त परिकल्पनाओं का निर्माण करने में वह सक्षम होगा। उसके ये अनुभव समस्यागत चरों के अनेक एवं विभिन्न प्रकार के संबंधों का स्पष्टीकरण करने में शोधकर्ता की सहायता करते हैं। इन्हीं के बीच से नई एवं मौलिक परिकल्पनाएँ उजागर होती हैं।

यदि शोधकर्ता के अध्ययन, ज्ञान एवं अनुभवों का दायरा संकुचित है तो समस्यागत चरों के नये संबंधों की खोज एवं मौलिक परिकल्पनाओं का निर्माण करना उसके लिए संभव नहीं होगा।

2. शोधकर्ता की मानसिक अभियोग्यताएँ: ये भी उच्चस्तरीय परिकल्पनाओं के निर्माण का स्रोत होती हैं। अध्ययन, ज्ञान एवं अनुभव स्वयं परिकल्पनाओं का निर्माण करने में सक्षम नहीं होते, बल्कि उनका मानसिक स्तर पर प्रहस्तन (manipulation) अर्थात् उनकी मानसिक स्तर पर व्याख्या, संगठन, संबंधीकरण, प्रयोग (application), तर्क द्वारा उनके निहितार्थों (implications) को समझना आदि महत्त्वपूर्ण होता है। उपयुक्त परिकल्पनाओं का जन्म इसी मानसिक मंथन से होता है। इसमें शोधकर्ता की तर्कशक्ति एवं सृजनशीलता (creative ability) की बहुत बड़ी भूमिका होती है। सृजनशील चिंतन समस्यागत चरों के पारस्परिक संबंधों को नवीनतम परिप्रेक्ष्यों में प्रस्तुत कर सकता है। तब उच्चस्तरीय परिकल्पनाओं का निर्माण सरल एवं संभव हो जाता है। शोधकर्ता की कल्पना शक्ति (imagination) परिकल्पना-निर्माण की प्रक्रिया की एक सशक्त कड़ी होती है। विज्ञान ने मानव की कल्पना शक्ति का सहारा लेकर अद्‌भुत चमत्कार किए हैं। वैज्ञानिक आइन्स्टीन का मानना है कि मानव की कल्पना-शक्ति उसके ज्ञान से कहीं अधिक बलशाली होती है। प्रखर कल्पना-शक्ति शोधकर्ता को परम्परागत समस्या-समाधानों, प्रश्नों के पूर्वगत उत्तरों के बहुत परे ले जाती है। अत: शोधकर्ता उन्हें स्वीकार नहीं करता। वह उनपर गंभीरता से चिंतन करता है। 'क्यों,' 'क्या', 'कैसे', की दुर्गम घाटियों में प्रवेश करता है और खोज लेता है कुछ ऐसे तथ्यों को, परिप्रेक्ष्यों को, प्रसंगों को, तत्वों को जो नये तथा अभूतपूर्व ढंग से समस्या को उनके समक्ष प्रस्तुत करते हैं तथा

नोट

अत्यन्त मौलिक परिकल्पनाओं को जन्म देते हैं। **थौर्नडाइक**, **पैवलौव** तथा **स्किनर** के अधिगम-सिद्धांतों के विकास के पीछे इसी प्रकार की परिकल्पनाओं का हाथ रहा होगा।

3. सादृश्य-आधारित तर्क: मिलती-जुलती परिस्थितियों अथवा घटनाओं के तर्कपूर्ण विश्लेषण भी परिकल्पना के निर्माण में सहायक होते हैं। कभी-कभी किसी एक विषय अथवा क्षेत्र की घटना, विचार अथवा सिद्धांत दूसरे विषय अथवा क्षेत्र की घटना अथवा विचार से बहुत मिलते-जुलते होते हैं। उनकी तुलना करने पर अथवा उनकी समानता का विश्लेषण करने पर शोधकर्ता को कभी-कभी एक नया विचार मिल जाता है, जो मौलिक परिकल्पना का निर्माण करने में सहायक होता है। इसे सादृश्याधारित तर्क (reasoning by analogy) कहते हैं। उदाहरण के लिए, शिक्षा-संस्थाओं की प्रभाविकता (effectiveness) का अध्ययन कर रहा शोधकर्ता समाजशास्त्र की पुस्तक में पढ़ता है कि समाज में नियंत्रण का अभाव सामाजिक अव्यवस्था एवं भ्रष्टाचार को जन्म देता है। इस परिस्थिति की वह शिक्षा-संस्था की परिस्थिति से तुलना करता है, उसका विश्लेषण करता है तो यह विचार जन्म लेता है कि शिक्षा-संस्था के भीतर यदि नियंत्रण का अभाव होगा तो शिक्षा-संस्था का वातावरण भी बिगड़ सकता है तथा इसका कुप्रभाव संस्था की प्रभाविकता पर पड़ सकता है। अत: एक नई परिकल्पना उसके उस शोध के साथ जुड़ती है कि "शिक्षा-संस्था में नियंत्रण का अभाव उसकी प्रभाविकता को घटाता है।"

4. कुछ अन्य सुझाव: उपयुक्त परिकल्पना के निर्माण में समय का भी अपना महत्त्व है।

शोध की समस्या पर पर्याप्त समय तक गंभीरता से चिंतन करना चाहिए। विभिन्न दृष्टिकोणों से उस पर विचार करना चाहिए।

सावधानी शोधकर्ता को परिकल्पनाओं के निर्माण में जल्दबाजी नहीं करनी चाहिए।

कभी-कभी कुछ समय के लिए समस्या को बिल्कुल भुला भी देना चाहिए। ऐसा करने से उस विस्मृति-काल में शोधकर्ता का उपचेतन मन (subconscious mind) समस्या के विभिन्न पहलुओं पर विचार कर रहा होता है, चेतन मन की विचार-शृंखला से हटकर कार्य कर रहा होता है। अत: कभी-कभी अप्रत्याशित परन्तु बहुत उपयोगी परिकल्पनाएँ उभर आती हैं।

शोध-मार्गदर्शक, विशेषज्ञों, प्रशासकों, अधिकारियों, साथ काम करने वाले साथियों आदि के साथ बैठकर समस्या एवं उसकी संभावित परिकल्पनाओं पर गंभीरता से विचार-विमर्श करना भी इस संदर्भ में उपयोगी होता है। शोधगत समस्या के किसी पहलू पर भाषण देना (यदि ऐसा अवसर मिले तो), उसके विषय में लेख लिखना, सेमीनार में समस्या को विचारार्थ प्रस्तुत करना आदि भी लाभप्रद होते हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

5. घोषणात्मक परिकल्पना एक ..... कथन के रूप में होती है।

   (क) अनिश्चय (ख) निश्चय (ग) परिवर्तनशील (घ) तटस्थ

6. प्रश्नरूप परिकल्पना ..... रूप में होती है।

   (क) प्रश्न (ख) उत्तर (ग) विकल्प (घ) घटना

नोट

7. दिशा सूचक परिकल्पना को ..... परिकल्पना भी कहते हैं।
   (क) द्वि-छोरीय (ख) एक छोरीय (ग) समानान्तर (घ) निर्देशित
8. अनुसंधान में परिकल्पना की ..... भूमिका है।
   (क) नगण्य (ख) महत्त्वहीन (ग) महत्त्वपूर्ण (घ) इनमें से कोई नहीं

19.5 परिकल्पनाओं का मूल्यांकन (Evaluation of Hypothesis)

परिकल्पनाओं के मूल्यांकन से तात्पर्य है यह जानना कि जो परिकल्पनाएँ निर्मित हुई हैं वे कहाँ तक उपयुक्त हैं अर्थात् कहाँ तक उनमें वे विशेषताएँ पाई जाती हैं, जो अच्छी परिकल्पना में होनी चाहिए। विशेषज्ञों ने अच्छी परिकल्पना, स्वीकार की जाने वाली कल्पना के कुछ गुणों का वर्णन किया है। ये सब वांछनीय परिकल्पना की कसौटी का निर्माण करते हैं। इस कसौटी के आधार पर ही परिकल्पनाओं का मूल्यांकन किया जाता है। इस कसौटी की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1. परिकल्पना सत्याभ (plausible) होनी चाहिए: इसका अर्थ है कि समस्या के जिस समाधान की संभावना उसमें व्यक्त की गई है, वह तर्कपूर्ण एवं सत्य प्रतीत हो। दूसरे शब्दों में, उसके चरों के बीच जिस संबंध की कल्पना की गई है, वह किसी न किसी दृष्टिकोण से तर्कसंगत (reasonable) हो। यदि उस संबंध के किसी भी दृष्टिकोण से सही होने की संभावना पर विश्वास नहीं किया जा सकता तो उस परिकल्पना को उपयुक्त नहीं समझा जा सकता। जैसे, यह परिकल्पना कि "विद्यालय में उपलब्ध कुर्सी-मेजों की संख्या का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है", एकदम विश्वास से परे की बात है, क्योंकि कुर्सी-मेजों की संख्या एवं छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के बीच किसी भी दृष्टिकोण से कोई संबंध प्रतीत नहीं होता। जिस संबंध की कल्पना की गई है वह न तो युक्तिसंगत (relevant) है और न तर्कसंभव (logically possible)। कुर्सी-मेजों की संख्या का छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि से कोई संबंध जुड़ता ही नहीं–न तो अनुभव के आधार पर, न किसी सिद्धांत (theory) के आधार पर और न विगत अनुसंधानों के आधार पर। अतः यह परिकल्पना सत्याभ नहीं है। इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता। इस प्रकार, उपयुक्त परिकल्पना वही होती है जो समस्या की तर्कपूर्ण, युक्तिसंगत, विश्वसनीय एवं तथ्याधारित संभाव्य व्याख्या (समाधान) प्रस्तुत करे। साथ ही वह समाधान क्रियान्वयन के दृष्टिकोण से असंभव भी नहीं होना चाहिए। जैसे, "यह परिकल्पना कि दिन में छः घंटे की पढ़ाई के स्थान पर आठ घंटे की पढ़ाई कर देने से छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के स्तर को ऊँचा उठाया जा सकता है", क्रियान्वयन के दृष्टिकोण से असंभव है। अनेक कारणों से पढ़ाई के घंटों में वृद्धि किया जाना संभव नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त परिकल्पना में निहित संबंध अथवा समाधान प्रचलित नियमों एवं सिद्धांतों के विरुद्ध भी नहीं होने चाहिएं। जैसे, "छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि के स्तर को ऊँचा उठाने के लिए भय एवं कठोर अनुशासन आवश्यक है" इस परिकल्पना में संभावित समाधान "भय एवं कठोर अनुशासन" मनोविज्ञान के सिद्धांत के विरुद्ध है। अतः यह परिकल्पना स्वीकार करने योग्य नहीं है।

2. परिकल्पना परीक्षण-संभव (Testable) होः इसका अर्थ है कि परिकल्पना में जिस संभावित समाधान अथवा संबंध की कल्पना की गई है अर्थात् समस्या की जो व्याख्या (explanation) प्रस्तुत की गई है, वह ऐसी होनी चाहिए कि उसका परीक्षण किया जा सके। जैसे, "बुद्धिमान परन्तु असफल छात्र (underachievers) हीन भावना से ग्रसित रहते हैं" इस परिकल्पना में सफलता एवं हीन भावना दोनों ऐसी विशेषताएँ हैं कि उनका मापन अर्थात् परिकल्पना का परीक्षण संभव है। अब हम कहें कि "बुद्धिमान छात्रों के असफल होने का कारण उनके पूर्वजन्म के संस्कार होते हैं।" तो यह परिकल्पना स्वीकार नहीं की जा सकती क्योंकि "पूर्वजन्म के संस्कारों" का मापन संभव नहीं है। अतः परिकल्पना का परीक्षण ही नहीं किया जा सकता। यदि परिकल्पना में निहित चरों के

नोट

परिणामों का व्यावहारिक रूप में निरीक्षण, परीक्षण एवं मापन नहीं किया जा सकता, तो परिकल्पना का भी परीक्षण नहीं हो सकता। उस स्थिति में वह निरर्थक समझी जाती है। इसी प्रकार यदि परिकल्पनागत चरों के मापांकों के विश्लेषण की कोई तकनीक अथवा विधि उपलब्ध नहीं है, तो भी उसका परीक्षण संभव नहीं होगा। यदि समस्यागत चरों का स्वरूप (nature) इस प्रकार का है कि उनके मापन में बहुत वर्षों का समय लगेगा तो उसे भी अच्छी परिकल्पना नहीं समझा जाता, यद्यपि यह अकाट्य नियम नहीं है।

यदि परिकल्पना में ऐसे चर समाहित हैं, जिनको परिभाषित नहीं किया जा सकता, तो उसका भी परीक्षण नहीं किया जा सकता। जैसे, परिकल्पना "आधुनिक युग की प्रवृत्तियों का धर्मनिष्ठ व्यक्तियों की जीवन-शैली पर अवांछनीय प्रभाव पड़ा है" में "आधुनिक युग", "प्रवृत्तियों", "धर्मनिष्ठ", एवं "जीवन-शैली" ये सभी शब्द अथवा चर ऐसे हैं, जिनको वस्तुनिष्ठ ढंग से परिभाषित नहीं किया जा सकता। अत: उनका मापन भी नहीं किया जा सकता। इस स्थिति में परिकल्पना का परीक्षण भी नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार किसी भी कारण अथवा दृष्टिकोण से यदि परिकल्पनागत चरों एवं परिणामों का मापन नहीं किया जा सकता, तो वह उपयुक्त नहीं समझी जाती, क्योंकि उसका परीक्षण नहीं किया जा सकता।

3. परिकल्पना व्यापक होनी चाहिए: परिकल्पना जितनी अधिक व्यापक होती है, उतनी ही अधिक लाभदायक एवं मूल्यावान समझी जाती है। इसका अर्थ है कि वह परिकल्पना जो समस्या से संबंधित सभी अथवा अधिक से अधिक तथ्यों एवं परिस्थितियों की व्याख्या (explanation) करती है, वह व्यापक एवं उपयोगी समझी जाती है। जो परिकल्पना इस दृष्टिकोण से बहुत सीमित होती है, उसकी कोई उपयोगिता नहीं होती। अत: परिकल्पना को उपयोगी बनाने के लिए उसके क्षेत्र को व्यापक बनाने का प्रयास करना चाहिए। उदाहरण के लिए, शिक्षा मनोविज्ञान के क्षेत्र में अधिगम की व्याख्या करने वाली कई परिकल्पनाएँ उपलब्ध हैं परन्तु कोई भी एक अधिगम संबंधी सभी तथ्यों की व्याख्या नहीं करती। एक कुछ की व्याख्या करती है, तो दूसरी दूसरे तथ्यों की। किसी भी एक परिकल्पना का क्षेत्र इतना व्यापक नहीं है कि वह उन सभी तथ्यों एवं घटनाओं की व्याख्या कर सके, जिनकी अन्य भिन्न-भिन्न परिकल्पनाएँ करती हैं। मान लीजिए एक परिकल्पना है "उपलब्धि-प्रेरणा (achievement motivation) अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है"। यदि यह परिकल्पना केवल आठवीं कक्षा के छात्रों की शैक्षिक प्रगति की व्याख्या करती है और किसी परिस्थिति, तथ्य अथवा घटना की व्याख्या नहीं करती, तो उसे अत्यन्त संकुचित समझा जाएगा तथा उसकी उपयोगिता भी अधिक नहीं होगी। अब यदि वह प्रत्येक स्तर के छात्रों की शैक्षिक प्रगति की व्याख्या करती है, तो उसकी व्यापकता बढ़ जाएगी। इसी प्रकार यदि उपलब्धि प्रेरणा का महत्त्व छात्रों के अतिरिक्त अध्यापकों की प्रगति, उनके ज्ञानार्जन, शिक्षण, उन्नति आदि में भी पाया जाता है, तो उसकी व्यापकता का क्षेत्र और भी अधिक विस्तृत हो जाएगा। इसी प्रकार यदि वह उद्यमियों, व्यापारियों, वकीलों, कार्मिकों, राज्यों एवं राष्ट्रों की प्रगति की भी व्याख्या करती है, तो उसे अत्यन्त व्यापक एवं उपयोगी समझा जाएगा। अत: किसी परिकल्पना के आधार पर यदि एक ऐसा सामान्यन (generalization) उपलब्ध होता है, जो विभिन्न क्षेत्रों की विभिन्न परिस्थितियों में घटने वाली घटनाओं एवं समस्याओं की व्याख्या अथवा समाधान प्रस्तुत करता है, तो उस परिकल्पना को बहुत व्यापक, उपयोगी एवं लाभकारी समझा जाता है। गुरुत्वाकर्षण का सिद्धांत, परमाणु-सिद्धांत तथा विकासवाद का सिद्धांत ऐसी परिकल्पनाओं के उदाहरण हैं, जिनकी व्याख्यात्मक क्षमता (explanatory power) एवं समस्या-समाधान संभावना बहुत व्यापक रही है।

टास्क परिकल्पना परीक्षण पर अपने विचार व्यक्त करें।

नोट

4. परिकल्पना सिद्धांतमूलक होनी चाहिए: परिकल्पनाएँ संबंधित क्षेत्र में प्रचलित सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए। प्रत्येक परिकल्पना में चरों के बीच एक संबंध की कल्पना की जाती है, परन्तु यह कल्पना सिद्धांत-समर्थित होनी चाहिए, अर्थात् वैसा सोचने का कोई ठोस आधार होना चाहिए। यह आधार पूर्वान्वेषित सिद्धांतों, नियमों सामान्यनों आदि के रूप में ही उपलब्ध होते हैं। जो परिकल्पना इनके विपरीत न होकर इन सिद्धांतों के अनुरूप हो, वही उपयुक्त समझी जाती है। जैसे, यह परिकल्पना कि "छात्रों का सकारात्मक आत्मबोध (positive self-concept) उनकी परीक्षागत उच्चस्तरीय सफलता का कारक होता है", सिद्धांत-मूलक समझी जा सकती है। परीक्षागत सफलता एक विशिष्ट प्रकार का व्यवहार है, जो अन्य बहुत से व्यवहारों जैसे कक्षा में नियमित रूप से उपस्थित रहना, ध्यान से पढ़ना, नियमित रूप से अभ्यास करना, कठिनाइयों के निवारण का प्रयास करना आदि पर निर्भर करता है। व्यवहार मनुष्य के व्यक्तित्व की विशेषताओं से प्रभावित होता है। **कार्ल रौजर** तथा कई अन्य मनोवैज्ञानिकों द्वारा प्रतिपादित "आत्मबोध सिद्धांत" (self-concept theory) की यह मान्यता है कि सकारात्मक आत्मबोध रचनात्मक (constructive) संगठित एवं संतुलित (integrated) व्यवहारों को जन्म देता है। उच्चस्तरीय परीक्षागत सफलता हेतु इस प्रकार के व्यवहार वांछनीय है। अत: सकारात्मक आत्मबोध उच्चस्तरीय परीक्षागत सफलता का कारक होना चाहिए। इस प्रकार, इस परिकल्पना को प्रचलित सिद्धांत से जुड़ा पाया जाता है। परिकल्पनागत, विचार, अनुमान, संबंध की कल्पना सिद्धांतमूलक अर्थात् सिद्धांताधारित है। प्रचलित सिद्धांतों का विरोध अथवा खंडन करने वाली परिकल्पनाओं को उपयुक्त नहीं समझा जाता। ऐसी परिकल्पनाएँ जो वर्तमान सिद्धांतों की अपूर्णता, उनकी त्रुटियों, उनकी असंगतता को दूर करने हेतु निर्मित की जाती हैं, को तो स्वीकार किया जाता है, परन्तु यदि वे प्रचलित सिद्धांतों के साथ मेल नहीं खातीं अथवा किसी सिद्धांत द्वारा समर्थित नहीं होतीं तो उन्हें स्वीकार नहीं किया जाता।

5. परिकल्पना उद्देश्यानुकूल होनी चाहिए: इसका अर्थ है कि परिकल्पना समस्या से संबंधित होनी चाहिए, अर्थात् उसे समस्या का समाधान प्रस्तुत करना चाहिए। किसी समस्या के कई दृष्टिकोणों से कई समाधान हो सकते हैं। फलस्वरूप विभिन्न दृष्टिकोण से उसकी कई परिकल्पनाएँ हो सकती हैं, परन्तु इन सब परिकल्पनाओं का लक्ष्यानुकूल होना आवश्यक है। एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी समस्या-समाधान खोजने का जो उद्देश्य है उस दृष्टिकोण से प्रत्येक परिकल्पना को उस उद्देश्य की पूर्ति से संबंधित होना चाहिए। उदाहरण के लिए, छात्रों की परीक्षा में असफलता के कारण खोजने में कई दृष्टिकोणों से परिकल्पनाओं का निर्माण किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से परिकल्पना होगी "छात्रों में प्रेरणा का अथवा रुचि का अभाव"। समाजशास्त्र के दृष्टिकोण से परिकल्पना हो सकती है "छात्रों के आर्थिक, सामाजिक पर्यावरण का अनुकूल न होना।" इसी प्रकार, शिक्षाशास्त्र के दृष्टिकोण से परिकल्पना हो सकती है "शिक्षण-विधि का उपयुक्त न होना", परन्तु ये सभी परिकल्पनाएँ एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी प्रत्येक समस्या के समाधान से मान्य रूप में संबंधित है, अत: प्रत्येक स्वीकार्य है। भिन्न होने का यह अर्थ नहीं है कि वे एक-दूसरे का विरोध करें, बल्कि उन्हें एक-दूसरे का समर्थन करना चाहिए। प्रत्येक परिकल्पना का निर्माण एक निश्चित उद्देश्य के लिए किया जाता है। अत: उसे उस उद्देश्य की पूर्ति में सहयोगी होना चाहिए, तभी उसे उपयुक्त एवं स्वीकार्य समझा जाता है।

6. परिकल्पना सरल होनी चाहिए: इसका अर्थ है कि वह समस्या का समाधान अथवा उसकी व्याख्या सरल ढंग से प्रस्तावित करे, अर्थात् प्रस्तावित समाधान इतने जटिल सिद्धांतों, अवधारणाओं एवं संकल्पनाओं पर आधारित न हो कि उसे समझना कठिन हो। यदि सम्भव हो तो सरलतम ढंग से प्रस्तुत की गई परिकल्पना ही अधिक उपयुक्त समझी जाती है।

इसी प्रकार परिकल्पना को सरल, संक्षिप्त एवं सुगठित भाषा में प्रस्तुत करना वांछनीय होता है। अनावश्क शब्दों का प्रयोग, कठिन शब्दों का प्रयोग, संवेगात्मक एवं मूल्यपरक अभिव्यक्तियों का प्रयोग परिकल्पना हेतु उचित नहीं समझा जाता। उदाहरण के लिए, यह परिकल्पना कि "छात्र जो सफलता के शिखर पर आरूढ़ हैं, जो विद्यालय के

नोट

जाज्वल्यमान सितारे हैं, बौद्धिक प्रतिभा के धनी होते हैं" उपरोक्त दृष्टिकोण से स्वीकार्य नहीं कही जा सकती। सीधे-सीधे यह कहना अधिक उपयुक्त होता कि "परीक्षा में अच्छी सफलता प्राप्त करने वाले छात्र अधिक बुद्धिमान होते हैं।"

19.6 सारांश (Summary)

- परिकल्पना अंग्रेजी भाषा के शब्द 'हाइपोथिसिस' (hypothesis) का हिन्दी रूपांतर है, जिसका अर्थ है ऐसी मान्यता (thesis) जो अभी अपुष्ट (hypo) है।
- **हौडनेट** के शब्दों में, परिकल्पनाएँ शोधकर्ता की आँखें होती हैं जिनके द्वारा वह समस्यागत अव्यवस्था (अव्यवस्थित तथ्यों) में झाँककर देखता है तथा उनमें समस्या का समाधान खोजता है।
- अनुसंधान भी समस्या-समाधान की ही एक विशिष्ट एवं वैज्ञानिक प्रक्रिया होती है। अत: अनुसंधान में भी परिकल्पनाओं की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।
- अनुसंधान में परिकल्पना की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है, क्योंकि कई उद्देश्यों की पूर्ति उनके माध्यम से होती है। कर्लिगर के अनुसार परिकल्पना के बिना भी अनुसंधान सम्भव है। उनके अनुसार विशेषकर अन्वेषणात्मक (exploratory) अनुसंधानों में परिकल्पना अनिवार्य नहीं होती, परन्तु आधुनिक विज्ञान के क्षेत्र में ऐसा संभव नहीं है।
- **वान डालेन** का मत है कि उन अनुसंधानों में जिनमें कार्य-कारण (cause-effect) संबंध की खोज लक्ष्य है, परिकल्पना विशेष रूप से वांछनीय होती है।

19.7 शब्दकोश (Keywords)

1. अनुभवाधीन–अनुभव के अधीन।
2. सृजनात्मक–सृजनशील, नई चीजों को बनाने वाला।
3. अप्रतिष्ठेय–निष्फल शून्य।

19.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. परिकल्पना की परिभाषा देते हुए उसके अर्थ को समझाइए।
2. परिकल्पना का वर्गीकरण करते हुए उसके प्रकारों का वर्णन करें।
3. परिकल्पना के महत्त्व अथवा उद्देश्य को स्पष्ट करें।
4. परिकल्पना के स्रोत अथवा निर्धारक तत्व का वर्णन करें।
5. परिकल्पना का मूल्यांकन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. प्रकाश स्तंभ
2. वैज्ञानिक
3. साधारण
4. संकल्पनाओं
5. (ख) निश्चय
6. (क) प्रश्न
7. (ख) एक छोरीय
8. (ग) महत्त्वपूर्ण

19.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

नोट

पुस्तकें

1. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल विकास पब्लिशिंग।*
3. शिक्षा तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 20: परिकल्पना का प्रतिपादन एवं निरीक्षण (Formulation and Testing of Hypothesis)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

20.1 परिकल्पना का प्रतिपादन (Formulation of Hypothesis)

20. 2 परिकल्पना के मूलभूत आधार (Fundamental Basis of Hypothesis)

20.3 परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु औपचारिक परिस्थितियाँ (Formal Conditions for Testing Hypothesis)

20.4 परिकल्पनाओं का परीक्षण (Testing of Hypothesis)

20.5 सारांश (Summary)

20.6 शब्दकोश (Keywords)

20.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

20.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- परिकल्पना के प्रतिपादन तथा मूलभूत आधार को समझने में;
- परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु औपचारिक परिस्थितियों को समझने में;
- परिकल्पना के परीक्षण को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

किसी समस्या के कथन से उसके समाधान हेतु एक से अधिक परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है जब कोई समस्या व्यक्ति के सामने उत्पन्न होती है और उसका समाधान खोजने का वह प्रयास करता है तो पहले अपने ज्ञान और अनुभव के आधार पर वह कल्पना करता है कि उसका संभवत: समाधान क्या होगा। इन्हीं संभावित समाधानों, संभावित उत्तरों की परिकल्पना प्रस्तुतकर वह बाद में उन उत्तरों का निरीक्षण करता है कि वह कहाँ तक सत्य है।

20.1 परिकल्पना का प्रतिपादन (Formulation of Hypothesis)

नोट

किसी समस्या के कथन से उसके समाधान हेतु एक से अधिक परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है। यहाँ एक समस्या के लिए तीन परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया गया है जो समस्या का समाधान निर्धारित कर सकेंगे–

(अ) पुरस्कार से अध्ययन उपलब्धि में वृद्धि होती है।

(ब) पुरस्कार से अध्ययन उपलब्धि में ह्रास होता है।

(स) पुरस्कार का अध्ययन उपलब्धि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

प्रथम दोनों परिकल्पना दिशायुक्त परिकल्पना (Directional Hypothesis) है और तीसरी परिकल्पना दिशाविहीन परिकल्पना (Non-Directional Hypothesis) है। अधिगम के सिद्धांत को कक्षा-अधिगम के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है। द्वितीय परिकल्पना के लिए कोई सैद्धांतिक आधार नहीं है इसीलिए इसे अच्छी परिकल्पना नहीं कह सकते तथा इसका प्रयोग करना उचित नहीं है।

तृतीय प्रकार की परिकल्पना के लिए किसी सैद्धांतिक आधार की आवश्यकता नहीं है, इसलिए इसे भी प्रयुक्त कर सकते हैं, परन्तु प्रथम तथा तृतीय परिकल्पना में से केवल एक परिकल्पना को ही प्रयुक्त किया जा सकता है, दोनों ही प्रयुक्त नहीं की जा सकती हैं क्योंकि विरोधाभास उत्पन्न करती हैं।

आगमन तथा निगमन दोनों ही चिन्तन प्रक्रियाओं में प्रयुक्त किया जाता है, अनेकों मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक सिद्धांत दोनों प्रकार की प्रक्रियाओं को प्रयुक्त करते हैं जिनमें व्यवहार प्रारूपों को कार्य रूप में प्रयुक्त किया जाता है।

नोट्स शोध के लिए परिकल्पनाओं के प्रतिपादन हेतु आगमन तथा निगमन चिन्तन प्रक्रियाओं का प्रयोग किया जाता है।

परिकल्पना की पुष्टि के विशिष्ट परिस्थिति के निष्कर्षों से सामान्यीकरण किया जाता है। परिकल्पनाओं के आधार पर शोध निष्कर्षों के लिए वैज्ञानिक विधि का प्रयोग किया जाता है।

परिकल्पना सम्भावित अवधारणा होती है जो ज्ञान तथा सिद्धांत पर आधारित होती है। शोधकर्ता के निर्देशन का कार्य करती है। शोध प्रक्रिया का सबसे महत्त्वपूर्ण तथा कठिन कार्य एक अच्छी परिकल्पना प्रतिपादन करना है। एक अच्छी परिकल्पना की तीन विशेषताएँ होती हैं–

(अ) धैर्य के साथ पर्याप्त प्रदत्तों को एकत्रित किया जाता है।

(ब) इससे निष्कर्ष तथा सामान्यीकरण किये जा सकते हैं।

(स) परिणामों को प्राप्त करने हेतु समुचित सांख्यिकी प्रविधियों द्वारा विश्लेषण किया जा सकता है।

शोध प्रक्रिया में परिकल्पना की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। परिकल्पना शोध प्रक्रिया की केन्द्र बिन्दु होती है जो न्यादर्श के चयन, मापन प्रविधियों, शोध प्रारूप, प्रदत्तों के संकलन एवं विश्लेषण की सांख्यिकी प्रविधि के चयन में सहायता करती है।

एक अध्ययन के अन्तर्गत प्रमुख परिकल्पना के परीक्षण या पुष्टि का प्रयास किया जाता है परन्तु उसके साथ अन्य गौण परिकल्पनाओं की भी पुष्टि हो जाती है। जब अनेक परिकल्पनाओं को प्रयुक्त करते हैं तब प्रत्येक का प्रतिपादन पृथक् रूप में किया जाता है और उसका सैद्धांतिक आधार भी प्रस्तुत किया जाता है। प्रत्येक की पुष्टि हेतु प्रदत्तों का विश्लेषण किया जाता है जिसे स्वीकार या निरस्त किया जा सके। **एच.एच. मैकासन** का कथन है, शोध का लक्ष्य परिकल्पना का प्रतिपादन करना और उसकी पुष्टि करना नहीं होता है अपितु नवीन तथा नये तथ्यों की खोज

नोट

करना है। सभी प्रकार के शोध कार्यों में परिकल्पनाओं का प्रतिपादन तथा पुष्टि नहीं की जाती है। बिना परिकल्पनाओं के भी शोध कार्य किए जाते हैं। परिकल्पना का प्रयोग साधारणत: वैज्ञानिक शोध कार्यों में ही किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

1. किसी समस्या कथन के समाधान हेतु ..... परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है।
   (क) एक (ख) कुछ (ग) एक से अधिक (घ) इनमें से कोई नहीं
2. आगमन तथा निगमन दोनों ही ..... प्रक्रिया में शामिल किये जाते हैं।
   (क) अध्ययन (ख) चिंतन (ग) सम्मोहन (घ) सहयोग
3. शोधकर्ता दो स्तर पर वास्तविकताओं से संबंधित होता है–व्यावहारिक स्तर तथा ..... ।
   (क) अव्यावहारिक (ख) प्रत्यात्मक (ग) सामाजिक (घ) मनोवैज्ञानिक
4. परिकल्पना संभावित ..... होती है जो ज्ञान तथा सिद्धांत पर आधारित होती है।
   (क) अवधारणा (ख) प्रतिबिम्ब (ग) समालोचना (घ) अध्ययन

20.2 परिकल्पना के मूलभूत आधार (Fundamental Basis of Hypothesis)

शोधकर्ता दो स्तर पर वास्तविकताओं से सम्बन्धित होता है–

(अ) व्यावहारिक स्तर (Operational) तथा

(ब) प्रत्यात्मक स्तर (Conceptual)।

(अ) व्यावहारिक स्तर पर शोधकर्ता को घटनाओं एवं तथ्यों के निरीक्षण योग्य शब्दों में परिभाषित करना चाहिए जिससे शोध में वास्तविकता अपनायी जा सके।

(ब) प्रत्यात्मक स्तर पर शोधकर्ता को घटनाओं एवं तथ्यों को कारण-प्रभाव के रूप में परिभाषित करना चाहिये जिससे निहित घटनाओं की जानकारी हो सके। इस स्तर पर शोधकर्ता घटनाओं की अमूर्त रूप में परिभाषा करता है जिसमें विशिष्ट घटनाओं से सामान्य की ओर अग्रसर होने का प्रयास करता है। चरों के सह-संबंध और उनकी क्रियाशीलता का बोध होता है। साधारणत: परिकल्पना के प्रतिपादन में व्यावहारिक स्तर से प्रत्यात्मक स्तर की ओर बढ़ना होता है। प्रत्यात्मक स्तर से शोधकर्ता को परिणामों से सामान्यीकरण करने में सहायता मिलती है तथा व्यापक उपयोगिता का ज्ञान होता है।

शोध के लिए यह आवश्यक होता है कि घटना तथा तथ्यों की दोनों स्तर पर परिभाषा की जाये क्योंकि व्याव हारिक स्तर पर परिभाषा करने पर परिकल्पना की पुष्टि हेतु प्रदत्तों का संकलन करने और विश्लेषण करने से सहायता मिलती है और प्रत्यात्मक स्तर पर परिभाषा करने से शोध कार्यों में प्रत्यात्मक स्तर से व्यावहारिक स्तर की ओर अग्रसर होना पड़ता है।

क्या आप जानते हैं शोध का लक्ष्य केवल परिकल्पना का प्रतिपादन एवं पुष्टि करना ही नहीं होता है बल्कि नवीन तथ्यों की खोज करना भी होता है।

नोट

उपयोगी परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में कठिनाईयाँ (Difficulties in the formulation of Useful Hypothesis): साधारणत: उपयोगी परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में अधोलिखित कठिनाइयाँ होती हैं–

1. स्पष्ट सैद्धांतिक संदर्भ का अभाव होना।
2. सैद्धान्तिक संदर्भ के प्रयोग करने की क्षमताओं एवं योग्यता का अभाव होना।
3. उपलब्ध शोध उपकरण तथा प्रविधियों के संबंध में समुचित जानकारी न होना।
4. परिकल्पनाओं को समुचित शब्दों में प्रतिपादन करने की योग्यता का अभाव होना।

टास्क उपयोगी परिकल्पनाओं के प्रतिपादन में होने वाली कठिनाइयों पर अपने विचार व्यक्त करें।

20.3 परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु औपचारिक परिस्थितियाँ (Formal Conditions for Testing Hypothesis)

क्रियात्मक रूप में परिकल्पनाएँ दो प्रकार की होती हैं–

1. शोध परिकल्पना तथा
2. सांख्यिकीय परिकल्पना अथवा शून्य परिकल्पना।

शोधकर्ता अपनी शोध परिकल्पनाओं को दो रूप में प्रतिपादित करता है–दिशायुक्त परिकल्पना तथा दिशाविहीन परिकल्पना। इनकी पुष्टि हेतु प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण सांख्यिकीय प्रविधियों की सहायता से की जाती है। इसमें शून्य परिकल्पना का प्रयोग किया जाता है। शोध परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु कुछ औपचारिक परिस्थितियों की आवश्यकता होती है, वह इस प्रकार हैं–

1. परिकल्पना के कथन में निगमन प्रक्रिया निहित होनी चाहिए जिससे सामान्यीकरण किया जा सके।

सावधानी परिकल्पना को व्यावहारिक तथा स्पष्ट शब्दों में लिखना चाहिए।

2. परिकल्पना का स्वरूप इस प्रकार का होना चाहिए जिससे इसी को स्वीकृत या निरस्त की जा सके।
3. परिकल्पना का कथन विशिष्ट तथा पुष्टि के रूप में होना चाहिए जिससे परिकल्पना के व्यावहारिक पक्ष का परीक्षण किया जा सके।

20.4 परिकल्पनाओं का परीक्षण (Testing of Hypothesis)

परिकल्पना का निर्माण भर कर लेने से समस्या का समाधान नहीं हो जाता। परिकल्पना तो केवल अनुमानित समाधान होता है। वह समस्या का समाधान है, यह तो तब समझा जाता है, जब वह स्वीकार हो जाती है। कोई परिकल्पना स्वीकार अथवा अस्वीकार बाह्य साक्ष्यों के आधार पर होती है। अत: परिकल्पना के निर्माण कर लेने के पश्चात् शोध कर्त्ता उसका परीक्षण करता है। परीक्षण के आधार पर ही यह निष्कर्ष उपलब्ध होता है कि वह परिकल्पना समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है अथवा नहीं। परिकल्पना के परीक्षण के तीन प्रमुख आधार होते हैं–(*i*) परिकल्पना के परिणामों का निर्धारण, (*ii*) यह निश्चित करने के लिए कि ये परिणाम वास्तव में उपलब्ध होते हैं अथवा नहीं उनके

नोट

मापन, निरीक्षण, सत्यापन हेतु परीक्षाओं (tests) एवं परीक्षण विधि आदि का निर्माण अथवा चयन करना, (*iii*) उन परीक्षाओं के आधार पर मापांक (शोध-सामग्री) प्राप्त करना तथा उनका विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकालना कि जिस परिकल्पना को लेकर चले थे, वह स्वीकृत हुई अथवा अस्वीकृत।

1. परिकल्पना के परिणामों का निर्धारण

इसके अन्तर्गत यह निर्धारित किया जाता है कि यदि परिकल्पना सत्य है तो उसके परिणाम किस रूप में तथा कहाँ उपलब्ध होंगे। कुछ परिकल्पनाएँ तो ऐसी होती हैं, जिनके परिणाम बाह्य घटनाओं, परिस्थितियों एवं तथ्यों में सीधे-सीधे यथास्थिति, यथास्थान, यथारूप मिल जाते हैं। जैसे, यदि परिकल्पना यह है कि "सड़क-दुर्घटनाएँ रात में अधिक होती हैं", तो परिकल्पना के सत्य होने पर परिणाम यह होगा कि रात की दुर्घटनाओं की संख्या दिन में होने वाली दुर्घटनाओं की संख्या से अधिक होगी और इनकी संख्या ज्ञात की जा सकती है, परन्तु कुछ परिकल्पनाएँ ऐसी होती हैं कि उनके परिणाम प्रत्यक्षत: उपलब्ध नहीं होते। अत: उनके अप्रत्यक्ष रूपों एवं अभिव्यक्तियों को खोजना होता है।

उदाहरण जैसे, यदि परिकल्पना है "मन्दबुद्धि बालकों का सामाजिक समायोजन कठिन होता है"।

इस परिकल्पना के सत्य होने पर इसके परिणामों को प्रत्यक्ष रूप में नहीं देखा जा सकता। अप्रत्यक्ष रूप में ही इन परिणामों की अभिव्यक्ति मिल सकती है। ये परिणाम हो सकते हैं–मन्दबुद्धि बालकों का परस्पर झगड़ा होना, उनके मित्रों की संख्या कम होना, उनका अधिक संवेदनशील होना, उनका सबसे अलग रहना, साथियों का उन्हें पसंद न करना आदि। इस प्रकार के अप्रत्यक्ष परिणामों को खोजना सरल नहीं होता। इन परिणामों के निर्धारण में यह सुनिश्चित करना अत्यन्त आवश्यक होता है कि वे अनिवार्य रूप से परिकल्पना से जुड़े होने चाहिए। यदि वे परिकल्पना से सम्बद्ध नहीं हैं, तो उनका परीक्षण करना भी व्यर्थ होगा। साथ ही उनकी अभिव्यक्ति स्पष्ट एवं मापनयोग्य व्यवहारों अथवा परिस्थितियों अथवा घटनाओं के रूप में होनी चाहिए।

2. परीक्षण-विधि का चयन एवं परीक्षाओं का निर्माण

परिकल्पनाओं का निर्माण समस्या के समाधान का संभावित रूप होता है। वह संभावित समाधान सत्य भी हो सकता है तथा असत्य भी। अत: अनुसंधान का अगला कदम इन परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु उन विधियों एवं माध्यमों की खोज करना होता है। ऐसे साक्ष्यों को प्रस्तुत करना होता है, जिनके आधार पर परिकल्पना को सत्य अथवा असत्य सिद्ध किया जा सकता है। ये माध्यम मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ अथवा निरीक्षण द्वारा उपलब्ध मापांक (data) होते हैं। परिकल्पना के निगमित परिणामों (deduced consequences) में निहित चरों के ये मापांक ही शोध-सामग्री अर्थात् वे सूचनाएँ होती हैं, जिनके आधार पर विश्लेषण द्वारा परिकल्पना की सत्यता एवं असत्यता का निश्चय किया जाता है। अत: इन परीक्षाओं का निर्माण एवं विधियों का चयन वैध एवं त्रुटिरहित होना चाहिए, अन्यथा वैध सूचनाओं के अभाव में अर्थात् सही साक्ष्य उपलब्ध न होने पर परिकल्पना के सत्य अथवा असत्य होने के विषय में सही निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

5. परिकल्पना का निर्माण कर लेने के पश्चात् ..... उसका परीक्षण करता है।
6. ..... का निर्माण समस्या के समाधान का संभावित रूप होता है।
7. परिकल्पना के परीक्षण के प्रमुख तीन ..... होते हैं।

3. परिकल्पना-परीक्षण: अन्तिम कड़ी

नोट

चयनित विधियों एवं परीक्षाओं के माध्यम से सूचनाएँ अथवा शोध-सामग्री (data) का संग्रह करना तथा उसके विश्लेषण के आधार पर परिकल्पना को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना प्रमुख उद्देश्य होता है। इस संबंध में सबसे पहले ध्यान में रखने की बात यह है कि परिकल्पना केवल स्वीकृत अथवा अस्वीकृत ही की जाती है। उसे सिद्ध (proved) अथवा सत्यापित (verified) नहीं किया जाता। "सिद्ध होना" अथवा "सत्यापित होना" ये ऐसे शब्द हैं, जिनसे यह बोध होता है कि यही "अन्तिम सत्य" है, "नि:संदेह सत्य है", जबकि वस्तुस्थिति इससे भिन्न होती है। वास्तविकता यह है कि परिकल्पना का परीक्षण केवल सम्भावित रूप में ही उसे सत्यापित करता है। अत: "स्वीकार" अथवा "अस्वीकार" किया जाना इन शब्दों का प्रयोग ही उचित समझा जाता है अथवा निष्कर्षों को स्वीकार किए जाने की संभावना के रूप में ही व्यक्त किया जाता है। इस बात की व्याख्या अन्यत्र विस्तार से की गई है।

20.5 सारांश (Summary)

- किसी समस्या के कथन से उसके समाधान हेतु एक से अधिक परिकल्पनाओं का प्रतिपादन किया जाता है।
- शोध प्रक्रिया में परिकल्पना की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। परिकल्पना शोध प्रक्रिया की केन्द्र बिन्दु होती है जो न्यादर्श के चयन, मापन प्रविधियों, शोध प्रारूप, प्रदत्तों के संकलन एवं विश्लेषण की सांख्यिकी प्रविधि के चयन में सहायता करती है।
- **एच.एच. मैकासन** का कथन है, शोध का लक्ष्य परिकल्पना का प्रतिपादन करना और उसकी पुष्टि करना नहीं होता है अपितु नवीन तथा नये तथ्यों की खोज करना है।
- परिकल्पना का निर्माण कर लेने के पश्चात् शोधकर्ता उसका परीक्षण करता है। परीक्षण के आधार पर ही यह निष्कर्ष उपलब्ध होता है कि वह परिकल्पना समस्या का समाधान प्रस्तुत करती है अथवा नहीं।

20.6 शब्दकोश (Keywords)

1. प्रविधियाँ–तकनीकी क्षेत्र में कार्य करने की विशेष क्रियात्मक पारिभाषिक विधि।
2. निगमन–अनुमान के लिए कम सामान्य से अधिक सामान्य का निष्कर्ष निकालना।

20.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. परिकल्पना के प्रतिपादन से आप क्या समझते हैं?
2. परिकल्पना के परीक्षण का वर्णन करें।
3. परिकल्पनाओं की पुष्टि हेतु औपचारिक परिस्थितियों का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. (ग) एक से अधिक
2. (ख) चिंतन
3. (ख) प्रत्यात्मक
4. (क) अवधारणा
5. शोधकर्ता
6. परिकल्पना
7. आधार

नोट

20.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शिक्षा तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
3. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 21 : गुणात्मक एवं संख्यात्मक आंकड़े (Qualitative and Quantitative Data)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

21.1 गुणात्मक विश्लेषण (Qualitative Analysis)

21.2 संख्यात्मक विश्लेषण (Quantitative Analysis)

21.3 निष्कर्ष-स्थापना (Conclusion)

21.4 सामान्यन की संकल्पना (Concept of Generalization)

21.5 सारांश (Summary)

21.6 शब्दकोश (Keywords)

21.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

21.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- गुणात्मक विश्लेषण को समझने में;
- संख्यात्मक विश्लेषण को समझने में;
- निष्कर्ष स्थापना एवं सामान्यन की संकल्पना को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

आधार-सामग्री (data) अथवा लेख्य-साक्ष्य (documentary evidence) जिस के प्रकारों एवं संग्रह की विधियों का उल्लेख पीछे किया गया है, केवल एक साधन मात्र होते हैं। स्वयं में उनका कोई महत्त्व नहीं होता। साध्य तो होते हैं अनुसंधान-उद्देश्यों की पूर्ति अर्थात् समस्या के समाधान से संबंधित निष्कर्षों का प्रतिपादन अथवा समस्यागत प्रश्नों के उत्तरों को प्राप्त करने के लिए। लेख्य-साक्ष्य अर्थात् शोध-सामग्री इस लक्ष्य तक पहुँचने का एकमात्र साधन है। इसके विश्लेषण के आधार पर ही इस गन्तव्य तक पहुँचा जाता है।

इन साक्ष्यों (data) के विश्लेषण (analysis) अथवा प्रयुक्ति (treatment) अथवा विधायन (procesing) हेतु कई प्रकार की विधियों का प्रयोग किया जाता है। कुछ लेखकों ने विधायन एवं विश्लेषण के बीच अन्तर किया है। उदाहरण के लिए, **गुलटंग** (1967) विधायन के अन्तर्गत केवल साक्ष्यों को एक जगह एकत्र करने, उन्हें विभिन्न

नोट

श्रेणियों में रखने तथा उन्हें अन्य प्रकार की वांछनीय व्यवस्थाएँ प्रदान करने को ही रखते हैं। विश्लेषण से उनका तात्पर्य परिकल्पनाओं एवं समस्यागत प्रश्नों के सन्दर्भ में साक्ष्यों के आधार पर निष्कर्षों की स्थापना से है, परन्तु अन्य बहुत से लेखक इन दोनों के बीच कोई अन्तर नहीं करते। वे इन सब कार्यों को सामग्री-विश्लेषण के ही अंग समझते हैं। इन्हें विश्लेषण का अंग मानें अथवा अलग-अलग रखें, इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता। वास्तव में, शोध-सामग्री का संगठन अथवा विधायन, विश्लेषण एवं व्याख्या (Interpretation) तीनों कार्य हैं तो अलग-अलग ही।

आधार-सामग्री के विश्लेषण एवं व्याख्या की कोई एक विधि अथवा तकनीक नहीं है। अनुसंधान की अनेक विधियाँ हैं तथा उनकी शोध-सामग्री भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न होती है। अत: प्रत्येक प्रकार की सामग्री के विश्लेषण की कोई एक विधि हो ऐसा संभव नहीं है। जिस प्रकार की आधार-सामग्री है, उसका विश्लेषण उसी विधि के द्वारा किया जाता है, जो उसके लिए बहुत उपयुक्त है। तो भी मोटे तौर पर आधार-सामग्री के विश्लेषण को दो भाँगों में बाँटा जा सकता है–(*i*) गुणात्मक विश्लेषण (qualitative analysis) तथा (*ii*) संख्यात्मक विश्लेषण (quantitative analysis)।

21.1 गुणात्मक विश्लेषण (Qualitative Analysis)

ऐतिहासिक अध्ययनों, कुछ वर्णनात्मक अध्ययनों एवं जीवनवृत्तात्मक अध्ययनों (ethnographical studies) की आधार-सामग्री गुणात्मक एवं वर्णनात्मक होती है। संख्याओं अथवा अंकों में इसे व्यक्त नहीं किया जा सकता। इसलिए इसका विश्लेषण भी संख्यात्मक विधि के द्वारा नहीं किया जा सकता। अत: इसके विश्लेषण हेतु गुणात्मक ढंग ही अपनाया जाता है।

इसके अन्तर्गत समानता के आधार पर सूचनाओं का वर्गीकरण किया जाता है अर्थात् परिकल्पनाओं के आधार पर (जिन सूचनाओं का जिस परिकल्पनाओं से संबंध है) समूहन (grouping) किया जाता है तथा उसके आधार पर निष्कर्ष की स्थापना की जाती है। यदि पहले परिकल्पनाओं का निर्माण नहीं किया गया है तो सामग्री का अध्ययन करते समय जिन-जिन विशेषताओं का पता चलता है, उनके आधार पर वर्गीकरण किया जा सकता है। उदाहरण के लिए, यदि "जनपद में अनौपचारिक शिक्षा की स्थिति" का अध्ययन किया गया है तथा उसके संबंध में अनेक प्रकार की सूचनाएँ एकत्र की गई हैं तो उन सभी सूचनाओं को समानता के आधार पर कुछ वर्गों में समाहित करके उनके आधार पर उस शिक्षा की स्थिति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला जा सकता है। अन्त में, सभी पहलुओं को एक साथ रखकर समग्ररूप से यह कथन किया जा सकता है कि अनौपचारिक शिक्षा की स्थिति कैसी है। इसी प्रकार, प्रेक्षणात्मक अध्ययनों (observational studies) में व्यवहारों, घटनाओं एवं परिस्थितियों का अवलोकन करके जो सामग्री उपलब्ध होती है, उसका समानता के आधार पर वर्गीकरण करके उन वर्गों में जिन विशेषताओं की झलक मिलती है, उनके आधार पर व्यक्तियों, घटनाओं आदि का वर्णन किया जा सकता है। अधिकांश सर्वेक्षण, अध्ययनों का उद्देश्य संस्थाओं, समुदायों, समाज, जाति, व्यवसायों, प्रक्रियाओं (processes) आदि की वर्तमान स्थिति का वर्णन मात्र करना होता है। इन अध्ययनों की आधार-सामग्री अधिकतर वर्णनात्मक अर्थात् शाब्दिक होती है। उसके वर्गीकरण के आधार पर ही निष्कर्षों की स्थापना की जाती है।

इसी प्रकार, जातिवृत्तात्मक अध्ययनों (ethnographical studies) में जितनी भी सामग्री उपलब्ध होती है, उसका महत्त्वपूर्ण प्रश्नों के संदर्भ में संश्लेषण (synthesis) किया जाता है। उसके आधार पर एक महत्त्वपूर्ण ताना-बाना तैयार किया जाता है तथा उसे केवल वर्णनात्मक शैली में प्रस्तुत किया जाता है। इस सम्पूर्ण विश्लेषण का आधार तर्कपूर्ण एवं सैद्धांतिक होता है। सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग इस सामग्री के विश्लेषण में नहीं किया जाता है। इसके विपरीत इस सामग्री के विश्लेषण में इस बात पर ध्यान दिया जाता है कि अध्ययन के उद्देश्यों, प्रक्रियाओं, विधियों, परिणामों एवं एतद् द्वारा ज्ञान की वृद्धि आदि के बीच तर्कपूर्ण एवं अर्थपूर्ण संबंध हो। इसी पर अध्ययन

नोट

की गुणवत्ता निर्भर करती है। सम्पूर्ण सामग्री एवं तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर उन्हें परस्पर संबंधित एवं संगठित रूप में रखकर एक समग्र परिप्रेक्ष्य का निर्माण किया जाता है। परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत "क्यों", "क्या", "कैसे", के दृश्यों को वर्णनात्मक एवं व्याख्यात्मक शैली में उभारने पर बल दिया जाता है। निष्कर्ष शोधकर्ता के अपने तर्कपूर्ण निर्णयों पर आधारित होते हैं।

इसी प्रकार ऐतिहासिक अध्ययनों में जो साक्ष्य एकत्र किए जाते हैं, उनकी आन्तरिक एवं बाह्य समीक्षा (internal and external criticism) की जाती है। उसके पश्चात् वर्णनात्मक शैली में ही निष्कर्षों की स्थापना की जाती है। विश्लेषण एवं समीक्षा के आधार प्रमुख रूप से शोधकर्ता के तर्क, उपमा (analogy), तथ्यों के वर्गीकरण, निहित संबंध आदि रहते हैं। ऐतिहासिक अध्ययनों में भी अस्थायी रूप से (tentatively) परिकल्पनाओं का निर्माण किया जाता है। उनसे संबंधित साक्ष्यों का संग्रह किया जाता है, जो शाब्दिक तथ्यों के रूप में होते हैं। उनके तर्कपूर्ण विश्लेषण के आधार पर परिकल्पना का परीक्षण किया जाता है। यह सम्पूर्ण विश्लेषण गुणात्मक होता है, जिसमें शोधकर्ता के चिंतन, उसकी सूझ-बूझ (insight), उसके निर्णय (judgement), उसकी कल्पना, तर्क एवं बुद्धि की महत्त्वपूर्ण भूमिका रहती है।

गुणात्मक विश्लेषण के प्रमुख उदाहरण **पियाज़े** का मानसिक विकास सिद्धांत, (cognitive development theory), **फ्रायड** का अचेतन मन का सिद्धांत, अर्नाल्ड गीसल के बाल-विकास संबंधी अध्ययन तथा **माग्रेट मीड** के अध्ययन हैं। तुलनात्मक शिक्षा के क्षेत्र में विभिन्न देशों की शिक्षा के उद्देश्यों, उनकी आधारभूमि दर्शन, पाठ्यक्रम, विकास आदि के तुलनात्मक अध्ययन, गुणात्मक विश्लेषण के ही उदाहरण हैं।

गुणात्मक विश्लेषण में जिन मानसिक प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है, वे हैं (*i*) आगमन-निगमन तर्क, (*ii*) उपमा-आधारित तर्क (reasoing by analogy), (*iii*) चिंतन एवं कल्पना, (*iv*) समानताओं का विश्लेषण (analysis of similarities), (*v*) भिन्नताओं का विश्लेषण (analysis of differences), (*vi*) संबंधों की स्थापना, (*vii*) संबंधों की सिद्धांतों के दृष्टिकोण से व्याख्या, (*viii*) अन्त में सबके संश्लेषण (synthesis) के आधार पर परिणामों का वर्णन।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. ऐतिहासिक, वर्णनात्मक एवं जीवन वृत्तात्मक अध्ययनों की आधार सामग्री ..... एवं वर्णनात्मक होती है।
2. ऐतिहासिक अध्ययनों में एकत्र साक्ष्यों की आन्तरिक एवं ..... समीक्षा की जाती है।
3. संख्यात्मक विश्लेषण वहाँ संभव होता है, जहाँ शोध सामग्री ..... में उपलब्ध होती है।

21.2 संख्यात्मक विश्लेषण (Quantitative Analysis)

नोट्स संख्यात्मक विश्लेषण उस स्थिति में संभव होता है, जहाँ शोध-सामग्री अंकों अथवा संख्या में उपलब्ध होती है।

व्यवहार विज्ञानों में यह सामग्री अधिकतर मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं के प्राप्तांक ही हैं। प्रेक्षण सामग्री (observational data) भी अनेक बार अंकों के रूप में उपलब्ध होता है। इस प्रकार की सामग्री का विश्लेषण सांख्यिकीय विधियों

नोट

के आधार पर किया जाता है। इस प्रकार के अनेक सांख्यिकीय विधियों का विकास हो चुका है। मूलत: इन विधियों को दो भागों में बाँटा गया है–(*i*) वर्णनात्मक सांख्यिकीय विधियाँ एवं (*ii*) अनुमानात्मक सांख्यिकी (inferential statistics) वर्णनात्मक सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग वहाँ किया गया है, जहाँ संग्रहीत सामग्री को संक्षिप्त रूप में प्रस्तुत करके उसके आधार पर किसी समष्टि (population), किसी समूह अथवा किसी एक विशिष्ट वर्ग की किसी विशेषता का वर्णन करना होता है। उदाहरण के लिए, एक अध्यापक जानना चाहता है कि उसकी कक्षा के छात्रों की मानसिक योग्यता का स्तर क्या है। कक्षा के छात्रों को वह एक बुद्धि-परीक्षा देता है, जिस पर उनके मापांक उपलब्ध होते हैं। उनको तालिकाकृत करके उनका मध्यमान (mean) निकालकर उसके आधार पर वह कक्षा के छात्रों के बुद्धि-स्तर का वर्णन कर सकता है। मध्यमान के अतिरिक्त और भी कई सांख्यिकीय मान हैं, जिनकी गणना की जाती है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न सांख्यिकीय मानों की गणना की जाती है। किस सांख्यिकीय विधि का प्रयोग शोध-सामग्री के विश्लेषण हेतु किया जाएगा, यह अनुसंधान के उद्देश्यों एवं परिकल्पनाओं पर निर्भर करता है।

सांख्यिकीय विश्लेषण की वर्णनात्मक विधियाँ

इनके अन्तर्गत वे सब विधियाँ आती हैं जो किसी समूह अथवा समष्टि की विशेषताओं का केवल वर्णन मात्र करती हैं अथवा शोध-सामग्री को केवल सारांश रूप में (summarily) प्रस्तुत करती हैं। किसी विशेषता के संबंध में समूह की अथवा समष्टि की क्या स्थिति है, इस प्रश्न का उत्तर इन विधियों द्वारा किए गए विश्लेषण के आधार पर मिलता है–

1. मध्यमान (Mean)
2. माध्यक (Median)
3. बहुलांक (Mode)
4. प्रमाप विचलन अथवा मानक विचलन (Standard Deviation)
5. सहसंबंध (Correlation)
6. शोध-सामग्री का रेखाचित्रण (graphical representation of data)।

इन विधियों के अर्थ, प्रयोग, सांख्यिकीय गणना आदि का विस्तार से वर्णन पुस्तक में आगे के अध्याय में किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण की अनुमानात्मक विधियाँ

सावधानी इन विधियों का प्रयोग वहाँ किया जाता है, जहाँ एक न्यादर्श (sample) के आधार पर वृहद् समष्टि (larger population) की विशेषताओं का वर्णन करना होता है।

इसके अन्तर्गत भी कई प्रकार की सांख्यिकीय विधियाँ आती हैं, परन्तु ये सब विधियाँ एक ही संकल्पना पर आधारित हैं। यह संकल्पना है प्रमाप-त्रुटि (standard error) की। उपरोक्त सभी सांख्यिकीय मानों (मध्यमान, माध्यक, प्रमाप विचलन, सहसंबंध) की प्रमाप-त्रुटि ज्ञात करके उसके आधार पर यह कथन किया जाता है कि अमुक निष्कर्ष सम्पूर्ण समष्टि के विषय में कहाँ तक सत्य है। इस संकल्पना एवं इन सब विधियों का उल्लेख भी पुस्तक के दूसरे भाग में किया गया है। प्रमुख विधियाँ जिनका उल्लेख किया गया है, ये हैं–

नोट

1. S.E.m अर्थात् मध्यमान की प्रमाप-त्रुटि (standard error of mean)
2. S.E.r अर्थात् सहसंबंध की प्रमाप-त्रुटि (standard error of correlation)
3. SE.σ अर्थात् प्रमाप विचलन की प्रमाप-त्रुटि (standard error of standard deviation)

कार्य-कारण संबंध के सांख्यिकीय विश्लेषण की विधियाँ

व्यवहार विज्ञानों में अनुसंधान की अनेक परिस्थितियाँ ऐसी होती हैं, जिनमें घटनाओं, व्यवहारों एवं परिणामों के कारणों का निर्धारण करना होता है।

उदाहरण यह निर्धारित करना कि "क्या बुद्धि छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि का कारण होती है?"

बुद्धि एवं प्रेरणा दोनों मिलकर किस प्रकार शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती हैं?" आदि। इस प्रकार के अध्ययन प्रयोगात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत आते हैं तथा इनकी प्रक्रिया अनेक बार बहुत जटिल होती है। इन अध्ययनों की विशिष्ट व्यूह रचना होती है, जिसे प्रयोगात्मक आकल्प (experimental design) कहते हैं। जटिल से जटिलतर आकल्पों का विशेषज्ञों ने विकास किया है। इन आकल्पों के आधार पर जो शोध-सामग्री उपलब्ध होती है, उसके विश्लेषण की भी विशिष्ट सांख्यिकीय विधियाँ हैं। इन्हें सांख्यिकीय आकल्प (statistical designs) कहते हैं। इनका उल्लेख विस्तार से आगे अध्याय में किया गया है। ये प्रमुख विधियाँ हैं–

1. टी-टेस्ट
2. एफ-टेस्ट (ANOVA, Analysis of Variance)
3. एनकोवा (ANCOVA, Analysis of Covariance)
4. फैक्टोरियल डिजाइन (Factorial Design)
5. प्रतीपायन-विश्लेषण (Regression Analysis)

संबंधों के विश्लेषण की सांख्यिकीय विधियाँ

किन्हीं अध्ययनों का उद्देश्य केवल इतना ही जानना होता है कि दो चरों के बीच कोई संबंध है या नहीं। कौन किसका कारण है, यह जानना उद्देश्य नहीं होता। ऐसे अध्ययनों की सामग्री का विश्लेषण सह-संबंधात्मक विधियों (Correlation methods) के द्वारा किया जाता है, ये विधियाँ भी कई प्रकार की होती हैं, जैसे–

1. रेंक आर्डर (rho) तथा प्रोडेक्ट मोमेंट सहसंबंध: जब केवल दो चरों के बीच सहसंबंध ज्ञात करना हो तो इन विधियों का प्रयोग किया जाता है।

2. द्विक्रमिक (biserial *r*), टेट्राकोरिक (tetrachoric *r*), फाई-गुणांक (phicoefficient of correlation) तथा कौटिंजेंसी (contingency coefficient of correlation) अनुबंध गुणांक : ये भी दो चरों के बीच संबंध ज्ञात करने की विशिष्ट विधियाँ हैं।

3. आंशिक अनुबंध (partial *r*) : जहाँ किसी एक चर के प्रभाव को निरस्त करके दो चरों के बीच संबंध ज्ञात करना होता है तो इस विधि का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए, यदि बुद्धि एवं प्रेरणा दोनों सामूहिक रूप से शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं तो यह जानना कि प्रेरणा के प्रभाव को नियंत्रित करके बुद्धि का शैक्षिक उपलब्धि के साथ कितना संबंध है।

4. बहुचर सहसंबंध (multiple correlations): जहाँ यह जानना हो कि एक से अधिक चर एक साथ मिलकर किसी आश्रित चर को कितना प्रभावित करते हैं, वहाँ इन विधि का प्रयोग करते हैं।

नोट

इन विधियों का क्या अर्थ है, किस प्रकार इनका प्रयोग किया जाता है तथा इनमें सांख्यिकीय मानों की गणना किस प्रकार की जाती है, इन सब बातों का उल्लेख अन्यत्र किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण की अप्राचलीय विधियाँ

आगे टी-टेस्ट, एफ टेस्ट, अनोवा, अनकोवा आदि विधियों का उल्लेख किया गया है। इन विधियों के प्रयोग की कुछ शर्तें होती हैं। इन शर्तों का उल्लेख आगे के अध्याय में किया गया है। यदि ये शर्तें पूरी नहीं होतीं तो इन विधियों का प्रयोग नहीं किया जा सकता। ये विधियाँ प्राचलीय (parametrid tests) कहलाती हैं, परन्तु जिन परिस्थितियों में इनका प्रयोग नहीं किया जा सकता, उनमें इनके अप्राचलीय विकल्पों का प्रयोग किया जाता है। अप्राचलीय विधियाँ अनेक हैं। इनमें से कुछ अधिक प्रयोग में आने वाली विधियाँ निम्नलिखित हैं–

1. काई वर्ग परीक्षा (Chi-square Test)
2. मीडियन टेस्ट (Median Test)
3. रन टेस्ट (Runs Test)
4. के.एम. टेस्ट (Kolmogorov-Smirnov Test)
5. मान-व्हिटनी 'यू' टेस्ट (Mann Whitney 'U' Test)
6. वाल्श टेस्ट (The Walsh Test)
7. विलकौक्सन-वालिस एकल दिक् विचरण विश्लेषण (K.W. Oneway ANOVA)
8. विलकौक्सन समानीकृत युग्म टेस्ट (Wilcoxon Matched Pairs Singned Rank Test)
9. फ्रायंडमैन द्विदिक विचरण-विश्लेषण (Friendman's Two-way ANOVA by Ranks)

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

4. संख्यात्मक विश्लेषण का प्रमुख उदाहरण पियाजे का मानसिक विकास सिद्धांत है।
5. गुणात्मक विश्लेषण में मानसिक प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है।
6. काई वर्ग परीक्षा सांख्किीय विश्लेषण की अप्राचलीय विधि है।
7. अध्ययनों की विशिष्ट व्यूह रचना को सांख्यिकीय आकल्प कहते हैं।

21.3 निष्कर्ष-स्थापना (Conclusion)

शोध-सामग्री का विश्लेषण अनुसंधान के उद्देश्यों की पूर्ति से जुड़ी एक महत्त्वपूर्ण कड़ी होती है, परन्तु उसके आधार पर जो परिणाम प्राप्त होते हैं, वे तब तक सार्थक नहीं बन पाते, जब तक समस्या के संदर्भ में उनकी व्याख्या नहीं की जाती। अत: विश्लेषण द्वारा प्राप्त परिणामों को समस्या के उद्देश्यों से जोड़ना अत्यंत आवश्यक होता है। उदाहरण के लिए, मान लीजिए समस्या थी "आठवीं कक्षा के छात्रों की गणित विषय की शैक्षिक उपलब्धि का सर्वेक्षण"। समस्या के समाधान हेतु हम एक न्यादर्श का चयन करके उसके अन्तर्गत आये छात्रों को एक गणित की निष्पत्ति परीक्षा देकर उनके मापांकों का मध्यमान निकाल लेते हैं। मान लीजिए वह 60 आता है। यह हमारे विश्लेषण का परिणाम आया, परन्तु यह परिणाम निरर्थक है। मध्यमान 60 स्वयं में सार्थक नहीं है। समस्या का उद्देश्य मध्यमान ज्ञात करना नहीं था। यह परिणाम साध्य नहीं था। यह तो साधन था, जिसे हमने समस्या के समाधान हेतु चुना था।

नोट

यह साधन और कुछ जैसे निश्चित सीमा के भीतर अंक प्राप्त करने वाले छात्रों की संख्या अथवा शतमक (percentiles) आदि ज्ञात करना भी हो सकता था। इसी प्रकार यदि समस्या है "बालक एवं बालिकाओं की गणित की शैक्षिक उपलब्धि में कोई अन्तर होता है अथवा नहीं" और हम उनके उपलब्धि प्राप्तांकों के मध्यमानों के बीच अन्तर निकाल कर तथा उसका परीक्षण करके कहते हैं कि "अन्तर सार्थक है" जो सामग्री के विश्लेषण का परिणाम मात्र है, तो इसका भी कोई अर्थ नहीं होगा। हमारी समस्या तो यह जानना थी कि उनकी "उपलब्धि में अन्तर है या नहीं"। उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि अनुसंधान की आधार-सामग्री का विश्लेषण हमें सांख्यिकीय परिणाम उपलब्ध कराता है, समस्या के समाधान उपलब्ध नहीं कराता। समस्या के समाधान इन परिणामों की समस्या के उद्देश्यों के संदर्भ में व्याख्या करने पर उपलब्ध होते हैं। इसी प्रकार वर्णनात्मक अध्ययनों की सामग्री के विश्लेषण के आधार पर जो तथ्य, विशेषताएँ, कारण, संबंध आदि उभरकर आते हैं, वे केवल निर्लिप्त, अर्थरहित एवं असंबद्ध तथ्य मात्र होते हैं। ये सार्थक तभी बनते हैं जब इन्हें समस्या से जोड़कर उनका कथन किया जाता है। कच्चे माल के रूप में आधार-सामग्री के विश्लेषण के द्वारा प्राप्त इन परिणामों की समस्या के संदर्भ में व्याख्या करना तथा उनका कथन करना निष्कर्ष स्थापित करना कहलाता है।

निष्कर्ष-स्थापना का स्वरूप एवं प्रक्रिया

क्या आप जानते हैं अनुसंधान के निष्कर्ष (conclusions) समस्या के परीक्षित (Tested) समाधान होते हैं।

उनका प्रतिपादन शोध-सामग्री के विश्लेषण द्वारा प्राप्त परिणामों के आधार पर किया जाता है। इस दृष्टिकोण से विश्लेषण के परिणाम तथा निष्कर्ष-स्थापना अनुसंधान प्रक्रिया के दो अलग-अलग सोपान हैं। निष्कर्ष-स्थापना हेतु सामग्री-विश्लेषण द्वारा प्राप्त परिणामों को समस्या से जोड़ना होता है अर्थात् समस्या के उद्देश्यों के संदर्भ में उनकी व्याख्या करके उनका पुर्नकथन करना होता है। उद्देश्यों तक पहुँचने के द्वार प्राय: सभी अनुसंधानों में उनकी परिकल्पनाएँ होती हैं। अत: ये परिकल्पनाएँ वह संदर्भ प्रस्तुत करती हैं, जिसकी सीमाओं के भीतर ही निष्कर्षों की स्थापना एवं कथन करना आवश्यक होता है। ये परिकल्पना-संदर्भ ही निष्कर्षों को सार्थक एवं बोधगम्य बनाते हैं। यदि हम कहें "औसत शैक्षिक उपलब्धि 60 है", तो इसका कोई अर्थ नहीं होगा। इसे सार्थक बनाने के लिए परिकल्पना "शैक्षिक उपलब्धि संतोषजनक है" के संदर्भ में इसकी व्याख्या करनी होगी तथा निश्चित करना होगा कि "औसत उपलब्धि 60" संतोषजनक है या नहीं। इसके लिए उपलब्ध मानदण्डों अथवा कहीं भी उपलब्ध साक्ष्यों, पूर्वसंपादित शोध-परिणामों, शैक्षिक प्रतिवेदनों की संस्तुतियों के साथ तुलना करके समीक्षात्मक रूप से निष्कर्ष की स्थापना करनी होगी तथा ऐसा कथन करना होगा कि कहाँ तक उपलब्धि संतोषजनक है। इस सम्पूर्ण क्रिया में शोधकर्ता की मानसिक क्षमता, विषय का ज्ञान एवं कल्पनाशक्ति का बहुत अधिक महत्त्व होता है।

निष्कर्ष-स्थापना एक विशिष्ट क्रिया है। उसका स्वरूप अनुसंधान की विधि पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए, ऐतिहासिक अध्ययनों के निष्कर्षों का स्वरूप ऐतिहासिक तथ्यों, उनकी परिकल्पनाओं एवं तथ्यों की ऐतिहासिक समीक्षा पर निर्भर करता है। प्रयोगात्मक अनुसंधानों में यह प्रयुक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षाओं की विशेषताओं, मापांकों के प्रकार एवं अनुसंधान-आकल्प (research design) के स्वरूप आदि पर निर्भर करता है।

निष्कर्ष की स्थापना के स्तर पर शोधकर्ता सही परिणामों की गहराई में जाकर उनकी सिद्धांतों (theories) एवं व्यावहारिकता की पृष्ठभूमि में समीक्षा करता है। परिणामों के अन्तराल में सन्निहित एंव अदृश्य संबंधों तथा प्रक्रियाओं की ओर संकेत करता है। किस दृष्टिकोण से प्राप्त परिणाम एवं निष्कर्ष सत्य प्रतीत होता है, इसकी व्याख्या करता है। इस व्याख्या के माध्यम से ही निष्कर्ष का महत्त्व उजागर होता है। उदाहरण के लिए, परिणाम "अविवाहित व्यक्तियों में आत्महत्या की प्रवृत्ति अधिक पाई जाती है" की यह व्याख्या कि "एकाकीपन एवं आत्महत्या के बीच

नोट

संबंध हो सकता है, इस दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण हो सकती है कि यह एक सिद्धांत (दुर्खीम का सिद्धांत) का समर्थन करती है। **दुर्खीम** के सिद्धांत को इस निष्कर्ष से समर्थन प्राप्त होता है। इस प्रकार परिणाम की व्याख्या निष्कर्ष के महत्त्व को बढ़ाती है। परिणाम की व्याख्या इस बात पर प्रकाश डालती है कि निष्कर्ष किस दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। परिणामों की व्याख्या के अन्तर्गत शोधकर्ता यह विचार करता है कि उनका उद्देश्य क्या है, उनकी सार्थकता क्या है, वे मूल समस्या का क्या उत्तर प्रस्तुत करते हैं आदि।"

निष्कर्षों की स्थापना हेतु सामग्री-विश्लेषण के आधार पर प्राप्त परिणामों की सांख्यिकीय दृष्टिकोण से व्याख्या करना भी आवश्यक होता है। इसके अन्तर्गत परिणाम की सार्थकता की परीक्षा करनी होती है। इन विधियों का प्रयोग केवल उन्हीं अध्ययनों में किया जाता है, जिनकी शोध-सामग्री संख्यात्मक (quantitative) होती है तथा उसका विश्लेषण भी सांख्यिकीय विधियों के आधार पर किया जाता है। इन अध्ययनों में परिणामों का आधार एक निश्चित ढंग से चुना गया न्यादर्श होता है, परन्तु निष्कर्ष उस न्यादर्श की वृहद् जनसंख्या (population) पर भी लागू होते हैं। इस प्रक्रिया को सामान्यीकरण (generalization) की प्रक्रिया कहते हैं। इसके आधार पर निष्कर्ष की व्यापकता का पता चलता है अर्थात् यह ज्ञात होता है कि उस निष्कर्ष के सत्य होने की संभावना क्या है? सरल भाषा में इसका अर्थ होगा कि वह निष्कर्ष कहाँ तक सम्पूर्ण सृष्टि (total population) के बारे में सही है।

सामान्यीकरण का आधार न्यादर्श का समष्टि (population) का प्रतिनिधि (representative) होना होता है। यदि न्यादर्श समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है, तभी इस प्रकार की संभावना के कथन अर्थात् सामान्यन की व्यापकता का विनिश्चयन एवं उल्लेख करना संभव होता है। उसी स्थिति में उन विधियों का प्रयोग भी संभव होता है, जिनके आधार पर सार्थकता की परीक्षा होती है। ये विधियाँ हैं–

1. मध्यमान की प्रमाप त्रुटि (S.E.m)
2. दो मध्यमानों के अन्तर की प्रमाप त्रुटि (S.E.D.)
3. सहसंबंध गुणांक की प्रमाप त्रुटि (S.E.r)
4. काई वर्ग (Chi-Square)
5. एफ-अनुपात

21.4 सामान्यन की संकल्पना (Concept of Generalization)

सामान्यन की संकल्पना का प्रयोग निष्कर्षों की सार्थकता के परीक्षण में किया जाता है। न्यादर्श-आधारित परिणाम समष्टि (जिसका न्यादर्श प्रतिनिधित्व करता है) की उस विशेषता का कहाँ तक परिचायक है, इस प्रश्न का उत्तर सामान्यन की प्रक्रिया के आधार पर उपलब्ध होता है, परन्तु ऐसा कथन करना तभी संभव होता है जब न्यादर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व करे तथा सम-संभावना नियम के अनुसार चयनित किया गया हो, परन्तु ऐसा प्रायः संभव नहीं होता कि न्यादर्श शत-प्रतिशत समष्टि का प्रतिनिधित्व करे। अतः जो परिणाम आते हैं, उनके सत्य होने की संभावना (अर्थात् उनके वही होने की संभावना, जो उस स्थिति में होते, जब अनुसंधान सम्पूर्ण समष्टि की इकाइयों पर किया जाता) भी शत-प्रतिशत नहीं होती। यह संभावना कितनी है, इसी का कथन करना निष्कर्षों की सार्थकता की परीक्षा करना होता है। इसके लिए सार्थकता के स्तरों (Levels of confidence) का प्रयोग करना होता है।

टास्क सामान्यन के नियम पर अपने दृष्टिकोण व्यक्त करें।

सामान्यन के नियम

नोट

अनुसंधान के निष्कर्षों के सामान्यन के आधारभूत नियम इस प्रकार हैं–

1. सामान्यन उतना ही अधिक उपयोगी एवं वैध होगा जितना न्यादर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व करेगा। यदि न्यादर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व नहीं करता तो उसके परिणाम समष्टि के बारे में सत्य नहीं हो सकते अर्थात् उस स्थिति में सामान्यन संभव नहीं होगा।
2. जिन परिस्थितियों में अनुसंधान किया गया है, वे परिस्थितियाँ जहाँ तक समष्टि की परिस्थितियों के समान होंगी, उतना ही सही सामान्यन संभव होगा। यदि अतिनियंत्रित परिस्थितियों में प्रयोगशाला के भीतर अनुसंधान किया गया है, तो उसके परिणाम शुद्ध (accurate) तो बहुत होंगे, परन्तु उसके सामान्यन की संभावना कम होगी, क्योंकि प्रयोगशाला के बाहर वैसी नियंत्रित परिस्थितियाँ नहीं होंगी।
3. बहुत छोटे न्यादर्श पर किए गए अनुसंधान के परिणामों के सामान्यन की संभावना भी कम होती है।
4. अपर्याप्त अथवा अपूर्ण आधार-सामग्री भी सामान्यन की व्यापकता को संकुचित करती है। अत: निष्कर्ष पर्याप्त एवं शुद्ध शोध-सामग्री पर आधारित होने चाहिए।
5. सामान्यन पूर्वनिर्धारित तथ्यों, सिद्धांतों एवं प्रकृति के नियमों के विरुद्ध नहीं होने चाहिए।
6. उन्हें समस्या के समाधान अथवा समस्या के प्रश्नों के उत्तर के रूप में होना चाहिए।
7. निष्कर्षों के सामान्यन के समय अनुसंधान-आकल्प की सीमाओं, उसकी अपर्याप्तता, दोषों आदि को भी ध्यान में रखना चाहिए। उदाहरण के लिए, यदि सहसंबंध-गुणांक-आकल्प (correlation design) का प्रयोग किया गया है तो यह ध्यान में रखना कि कार्य-कारण संबंध (caus-effect relationship) के विषय में सामान्यन नहीं किया जा सकता। यह इस आकल्प की असमर्थता है। ऐसे ही सभी अनुसंधान आकल्पों के अपने-अपने दोष हैं। उनको ध्यान में रखना चाहिए।

21.5 सारांश (Summary)

- आधार-सामग्री के विश्लेषण एवं व्याख्या की कोई एक विधि अथवा तकनीक नहीं है। अनुसंधान की अनेक विधियाँ हैं तथा उनकी शोध-सामग्री भी एक-दूसरे से बहुत भिन्न होती है।
- मोटे तौर पर आधार-सामग्री के विश्लेषण को दो भाँगों में बाँटा जा सकता है–(*i*) गुणात्मक विश्लेषण तथा (*ii*) संख्यात्मक विश्लेषण।
- ऐतिहासिक अध्ययनों, कुछ वर्णनात्मक अध्ययनों एवं जीवनवृत्तात्मक अध्ययनों की आधार-सामग्री गुणात्मक एवं वर्णनात्मक होती है।
- भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में भिन्न-भिन्न सांख्यिकीय मानों की गणना की जाती है। किस सांख्यिकीय विधि का प्रयोग शोध-सामग्री के विश्लेषण हेतु किया जाएगा, यह अनुसंधान के उद्देश्यों एवं परिकल्पनाओं पर निर्भर करता है।

21.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **सामान्यन**–सामान्यीकरण, आंकड़ों को शोध की दृष्टि से सामान्य बनाना ताकि के न्यादर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व कर सकें।
2. **प्रेक्षणात्मक**–अवलोकन करने योग्य।

नोट

21.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. गुणात्मक विश्लेषण से आप क्या समझते हैं?
2. संख्यात्मक विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? संख्यात्मक विश्लेषण की विधियों का वर्णन करें
3. निष्कर्ष स्थापना से क्या समझते हैं? इसके स्वरूप एवं प्रक्रिया का वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. गुणात्मक	2. बाह्य	3. अंकों	4. असत्य
5. सत्य	6. सत्य	7. असत्य	

21.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
2. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
3. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 22 : साँख्यिकीय विधियाँ (Statistical Methods)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

22.1 साँख्यिकी का विकास, अर्थ एवं परिभाषा (Development, Meaning and Definition of Statistics)

22.2 साँख्यिकीय पद (Statistical Terms)

22.3 साँख्यिकी में पहला चरण (Initial Step in Statistics)

22.4 आवृत्ति-वितरण तालिका (Frequency-distribution Table)

22.5 सारांश (Summary)

22.6 शब्दकोश (Keywords)

22.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

22.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत विद्यार्थी योग्य होंगे:

- साँख्यिकी का विकास, अर्थ एवं परिभाषा को समझने में;
- साँख्यिकीय पद तथा पहले चरण को समझने में;
- आवृत्ति वितरण तालिका को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

साँख्यिकी को अंग्रेजी में STATISTICS कहा जाता है। STATISTICS लैटिन भाषा के शब्द STATUS अथवा इटली के शब्द STATISTA से निकला प्रतीत होता है। **Yule and Kendall** ने इस शब्द की उत्पत्ति STATUS से बताई है। STATUS तथा STATISTA दोनों का अर्थ राजनैतिक स्थिति अथवा 'Political STATE' होता था। पहले इन शब्दों का प्रयोग राज्यों की राजनैतिक स्थिति के सन्दर्भ में किया जाता था। प्राचीन काल में राजा को अपने राज्य से सम्बन्धित विभिन्न प्रकार की जानकारी जैसे, उसकी स्वयं की शक्ति, राज्य की जनसंख्या, जन्म-दर, मृत्यु-दर, राज्य की आमदनी तथा खर्च आदि का ब्यौरा रखना पड़ता था। राज्य का इस प्रकार का विवरण धीरे-धीरे Statistics कहलाने लगा। इस प्रकार Science of Statistics का प्रारम्भ हुआ।

नोट

22.1 साँख्यिकी का विकास, अर्थ एवं परिभाषा (Development, Meaning and Definition of Statistics)

Statistics शब्द के प्रादुर्भाव से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस विज्ञान का प्रयोग प्रारम्भ में जन्म-मरण की संख्याओं, आय-व्यय की संख्याओं तथा राज्यों की जनसंख्या के विवरण का लेखा-जोखा रखने में किया गया था। लेकिन, बाद में जैसे-जैसे राज्यों की राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक परिस्थितियाँ जटिल होती गईं, Statistics शब्द का अर्थ तथा प्रयोग भी जटिल तथा विस्तृत होता चला गया।

कालान्तर में Statistics मात्र एक राजनैतिक विषय ही नहीं रहा बल्कि उसका क्षेत्र राज्य की आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं एवं परिस्थितियों तक फैल गया। इस प्रकार Statistics शब्द का आधुनिकतम अर्थ सौ वर्ष से अधिक पुराना प्रतीत नहीं होता। सत्रहवीं शताब्दी में Insurance Scheme के साथ-साथ Statistics का भी प्रयोग बहुत बढ़ा और फिर ज्ञान के सभी क्षेत्रों में इसका प्रयोग होने लगा। आजकल Statistics का प्रयोग Science, Mathematics, Education, Psychology, Economics आदि सभी विषयों में होता है।

वैज्ञानिक ने Statistics की परिभाषा भिन्न-भिन्न प्रकार से की है। **W. G. Sutcliffe** ने अपनी पुस्तक 'Elementary Statistical Methods' में Statistics की परिभाषा देते हुये लिखा है–

"साँख्यिकी एक ऐसा विज्ञान है, जिसमें घटनाओं के सत्य, उनसे सम्बन्धित आँकड़ों का विधिपूर्वक संकलन एवं व्यवस्था तथा किसी घटना की सही समझ एवं विस्तृत व्याख्या सम्मिलित है।"

(Statistics comprises the collection, tabulation, presentation and analysis of an aggregate of facts, collected in a methodical manner without bias and related to predetermined purpose.)

नोट्स

प्रोफेसर बाउले (A. L. Bowley) के अनुसार–"साँख्यिकी को वास्तव में गणना करने का विज्ञान कहा जा सकता है।" "Statistics may be called the science of counting."

बोडिंगटन (Boddington) के अनुसार–"साँख्यिकी अनुमानों एवं सम्भावनाओं का विज्ञान है।"

"Statistics is the science of estimates and probabilities."

लॉविट (Lovitt) के अनुसार– "साँख्यिकी वह विज्ञान है, जो किन्हीं घटनाओं की व्याख्या, विवरण तथा तुलना के लिए आँकिक तथ्यों का संकलन, वर्गीकरण तथा सारणीयन का कार्य करता है।"

"Statistics is the science which deals with the collection, classification and tabulation of numerical facts as the basis for explanation, description and comparison of phenomena."

फरगुसन (Ferguson) के अनुसार– "साँख्यिकी का सम्बन्ध सर्वेक्षणों तथा परीक्षणों द्वारा प्राप्त होने वाली सामग्री के संकलन, वर्गीकरण तथा व्याख्या से है।"

"Statistics deals with collection, classification, description and interpretation of data, obtained by the conduct of surveys and experiments."

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. बोडिंगटन के अनुसार, साँख्यिकी अनुमानों तथा संभावनाओं का ..... है।
2. बिखरे हुए अंक अथवा संख्याएँ मूल ..... कहलाती हैं।
3. एक वर्गान्तर में निहित अंकों की संख्या वर्ग अंतराल की ..... कहलाती है।

22.2 साँख्यिकीय पद (Statistical Terms)

साँख्यिकी में प्रयुक्त होने वाले कुछ प्रमुख पद निम्नाँकित हैं–

आँकड़े (Data)– बिखरे हुए अंक अथवा संख्याएँ मूल आँकड़े कहलाती हैं। मूल आँकड़े एक प्रकार से साँख्यिकीय प्रक्रियाओं की दृष्टि से अनिवार्य सामग्री समझे जाते हैं, लेकिन इनके आधार पर हम कोई निष्कर्ष तब तक नहीं निकाल सकते जब तक कि इनका ठीक प्रकार से वर्गीकरण या विश्लेषण न कर लिया जाये।

उदाहरण मूल आँकड़े हमारे भौतिक या मनोवैज्ञानिक निरीक्षणों का अंकात्मक स्वरूप होते हैं–जैसे, बुद्धि-लब्धि, परीक्षा प्राप्तांक, ऊँचाई, भार इत्यादि।

अवर्गीकृत आँकड़े (Ungrouped Data)– जब मूल आँकड़े एक छोटे न्यादर्श (sample) पर प्राप्त किये जाते हैं तो ऐसी स्थिति में वर्गीकरण आवश्यक नहीं समझा जाता तथा गणना कार्य भी प्रत्यक्ष रूप से (directly) किया जा सकता है, जैसे 10, 12, 20, 13, 17, 15, 8, 6, 16, 14 (N = 10)। आँकड़ों की इस प्रकार की व्यवस्था अवर्गीकृत आँकड़े (N = 30) कहलाती है।

वर्गीकृत आँकड़े (Grouped Data)– जब आँकड़े एक बड़े न्यादर्श (N > 30) पर प्राप्त किये जाते हैं, तब ऐसी स्थिति में वर्गीकरण आवश्यक हो जाता है तथा आँकड़ों की इस प्रकार की व्यवस्था वर्गीकृत आँकड़े कहलाती है।

विस्तार (Range)– सबसे बड़े अंक में से सबसे छोटा अंक घटाने पर जो अन्तर आता है, उसे विस्तार या प्रसार कहते हैं, अर्थात्,

$$\text{Range} = \text{Maximum Score} - \text{Minimum Score}$$

वर्गान्तर अथवा वर्ग अन्तराल (Class-Interval)– विस्तार से आँकड़ों के वितरण की सही जानकारी नहीं मिल पाती। अत: इस विस्तार को पुन: छोटे-छोटे विस्तार (Sub-Range) में विभक्त किया जाता है तथा यही Sub-Range वर्ग अन्तराल कहलाती है।

वर्गान्तरों की संख्या (Number of C.I.)– वर्गान्तरों की संख्या निम्नांकित सूत्र से ज्ञात की जाती है–

$$\text{No. of C.I.} = \frac{\text{Range}}{\text{Size of C.I.}} + 1$$

वर्गान्तर की लम्बाई अथवा सीमा (Size of C.I.)– एक वर्गान्तर में निहित अंकों की संख्या वर्गान्तर की लम्बाई अथवा वर्ग अन्तराल की सीमा कहलाती है। वास्तविक अंकों की संख्या समावेशी (Inclusive) तथा निवारक (Exclusive) श्रेणी के आधार पर निकाली जाती है।

वर्गान्तर का मध्य बिन्दु (Mid-Point C.I.)–वर्गान्तर का मध्य बिन्दु महत्तम (Maximum) तथा न्यूनतम (Minimum) अंकों को जोड़कर तथा 2 से भाग देकर ज्ञात किया जाता है।

नोट

क्या आप जानते हैं Mid Point of C.I. = $\frac{\text{Max. Score + Mini. Score}}{2}$

वर्गान्तर की वास्तविक सीमा (Exact Limits of C.I.)–साँख्यिकीय पैमाना (Statistical Scale) गणितीय पैमाने (Mathematical Scale) से भिन्न है। गणितीय पैमाने में परम शून्य (Absolute Zero) होता है तथा गणित में 5 का अर्थ 5 ही है जबकि, साँख्यिकीय पैमाने में परम शून्य न होने के कारण 5 का अर्थ 5 नहीं है बल्कि, 4.5 से लेकर 5.5 तक है। इस प्रकार साँख्यिकी में किसी अंक की वास्तविक सीमा ज्ञात करने के लिये निम्न सीमा (Lower limit) में से .5 घटा दिया जाता है तथा उच्च सीमा (Upper limit) में .5 जोड़ दिया जाता है। यही कारण है, साँख्यिकीय पैमाना, गणितीय पैमाने से कम विश्वसनीय माना जाता है।

अत: किसी वर्गान्तर की वास्तविक सीमा निकालने के लिये उसकी निम्न सीमा (Lower limit) में से .5 घटा देते हैं तथा उच्च सीमा (Upper limit) में .5 जोड़ देते हैं, उदाहरणार्थ–वर्गान्तर 3–5 की वास्तविक सीमाएँ होंगी, 2.5–5.5।

आवृत्ति अथवा बारम्बारता (Frequency)–जिस अंक की पुनरावृत्ति जितनी बार की जाती है अथवा कोई अंक जितनी बार दोहराया जाता है, वह उसकी आवृत्ति कहलाती है। उदाहरणार्थ, 10, 12, 15, 10, 18, 22, 10, 25 में अंक 10 तीन बार दोहराया गया है अत: 10 की आवृत्ति 3 कहलाएगी। इसे अक्षर f अथवा F से दर्शाते हैं।

आवृत्ति-वितरण (Frequency Distribution)–अंकों को उनके आकार एवं स्वभाव (Size and magnitude) के आधार पर व्यवस्थित करने की प्रक्रिया आवृत्ति-वितरण कहलाती है।

गिनती चिह्न (Tallies or Tally Mark)–गिनती चिह्न वास्तव में एक विशिष्ट वर्गान्तर के अन्तर्गत पड़ने वाले अंकों की वास्तविक संख्या को प्रदर्शित करता है। चार गिनती पूरी होने पर पाँचवी गिनती के लिये पहली चार को एक तिरछी लकीर से काट देते हैं, जैसे 𝍸 (पाँच गिनतियों का दर्शाना)।

श्रेणियाँ (Series)– वर्गान्तर का सुव्यवस्थित स्वरूप श्रेणी कहलाता है। श्रेणियाँ दो प्रकार की होती हैं, निवारक (Exclusive) तथा समावेशी (Inclusive)। निवारक श्रेणी के अन्तर्गत किसी वर्गान्तर की उच्च सीमा मात्र एक औपचारिकता है, जिसे हम उसी वर्गान्तर में न गिनकर (सम्मिलित) उससे आगे वाले वर्गान्तर में गिनते हैं। दूसरे शब्दों में, निवारक श्रेणी में उच्च सीमा बाहर निकाल दी जाती है (Exclude) जबकि, समावेशी श्रेणी में वर्गान्तर की दोनों सीमाओं को उसी वर्गान्तर के अन्तर्गत सम्मिलित माना जाता है। उदाहरणार्थ,

तालिका 22.1

निवारक श्रेणी (Exclusive series)	*समावेशी श्रेणी (Inclusive series)*
40–50	40–49
30–40	30–39
20–30	20–29
10–20	10–19
0–10	0–9

जहाँ तक श्रेणियों को व्यवस्थित करने का प्रश्न है, हम इन्हें दो क्रमों, आरोही (ascending) तथा अवरोही (descending) में लिखते हैं। आरोही क्रम में 1, 2, 3, 4, 5... लिखते हैं जबकि, अवरोही क्रम में 6, 5, 4, 3, 2, 1 लिखते हैं।

नोट

शिक्षा में साँख्यिकी का उपयोग (Use of Statistics in Education)–शिक्षा में साँख्यिकी का महत्त्व निम्नलिखित कारणों से है–

(1) यथार्थ विवेचन (Exact description)

(2) सरल एवं संक्षिप्त चित्र प्रस्तुत करना (Summarization-simple and meaningful)

(3) आँकड़ों को सरल एवं बोधगम्य बनाना।

(4) सामान्य निष्कर्ष निकालने में सहायक।

(5) भविष्यवाणी करने में सहायक।

(6) सम्बन्धों के बारे में ज्ञान प्राप्त करना।

(7) तुलनात्मक अध्ययन में सहायक।

(8) कार्य-कारण का पता लगाना।

(9) परीक्षण निर्माण में सहायक।

(10) कठिनाइयों के निदान में सहायक।

टास्क शिक्षा में साँख्यिकी के महत्त्व को बताएँ।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. सबसे बड़े अंक में सबसे छोटा अंक घटाने पर जो अंतर आता है वह ..... कहलाता है।
   (क) प्रसार (ख) निस्तार (ग) वर्ग (घ) सीमा
5. साँख्यिकीय पैमाना ..... पैमाने से भिन्न है।
   (क) वर्गान्तर (ख) आवृत्ति (ग) गणितीय (घ) सीमित
6. अंकों को उनके आकार एवं स्वभाव के आधार पर व्यवस्थित करने की प्रक्रिया ..... वितरण कहलाती है।
   (क) श्रेणी (ख) गणना (ग) आवृत्ति (घ) निवारक
7. वर्गान्तर का सुव्यवस्थित स्वरूप ..... कहलाता है।
   (क) श्रेणी (ख) खण्ड (ग) अंक (घ) आरोही

22.3 साँख्यिकी में पहला चरण (Initial Step in Statistics)

आवृत्ति वितरण तालिका बनाना (Preparing a Frequency Distribution Table)– **उदाहरण (Illustration)**–निम्नलिखित आँकड़ों की सहायता से आवृत्ति वितरण तालिका बनाइए। वर्गान्तर की सीमा 5 रखिए।

90, 93, 95, 98, 96, 95, 97, 101, 100, 99, 104, 102, 103, 102, 104, 103, 105, 107, 106, 105, 106, 107, 105, 107, 106, 110, 109, 108, 110, 120 (N = 30)

नोट

22.4 आवृत्ति-वितरण तालिका (Frequency-distribution Table)

क्रिया (Solution)– न्यूनतम अंक = 90

महत्तम अंक = 120

प्रसार = 120 – 90 = 30

$$\text{वर्गान्तरों की संख्या} = \left(\frac{\text{Range}}{\text{Size}} + 1\right) = \frac{30}{5} + 1 = 6 + 1 = 7$$

तालिका 22.2

S. No.	*C.I.*	*Tallies*	*Frequencies*
1.	90–94	||	2
2.	95–99	𝍸 |	6
3.	100–104	𝍸 |||	8
4.	105–109	𝍸 𝍸 |	11
5.	110–114	||	2
6.	115–119	0	0
7.	120–124	|	1
	Total		N = 30 (CHECK)

आवृत्ति वितरण तालिका निर्माण हेतु विभिन्न सोपान (Steps Involved in Preparing Frequency Distribution Table)–आवृत्ति वितरण तालिका बनाते समय निम्नांकित सोपानों का निर्धारण करना चाहिये–

(1) सर्वप्रथम, दिये गये आँकड़ों के समूह में न्यूनतम तथा अधिकतम अंक चुनिए। फिर, इन अंकों को अलग घेरे में बन्द कर दीजिए।

(2) प्रसार निकालिए (सूत्र की सहायता से) अर्थात्, महत्तम अंक में से न्यूनतम अंक घटा दीजिए।

(3) यदि वर्गान्तर सीमा नहीं दी गई है, तो स्वेच्छा से निर्धारित करें। ध्यान रहे कि सीमा ऐसी हो जिन्हें लेने पर हमारे वर्गान्तरों की संख्या दस (लगभग) से अधिक न आये। सुविधा की दृष्टि से वर्गान्तरों की संख्या 5–10 के मध्य ही रखें।

(4) वर्गान्तरों की संख्या निर्धारित कीजिए।

(5) तालिका में वर्गान्तरों को (समावेशी अथवा निवारक) आरोही अथवा अवरोही क्रम में लिखना अभीष्ट है, प्रथम वर्गान्तर न्यूनतम अंक से ही प्रारम्भ होगा तथा उसमें निर्धारित सीमा समाविष्ट होगी।

(6) अब, एक-एक अंक को लीजिए। अंक जिस वर्गान्तर में आए, उसी के सामने एक खड़ी पाई (गिनती चिह्न) खींच दीजिए। चार गिनतियाँ पूरी हो जाने पर, पाँचवीं गिनती के लिए एक तिरछी पाई खींचकर ब्लॉक (Block) पूरा कर दीजिये।

सावधानी गिनती चिह्न लगाने की प्रक्रिया तब तक जारी रखिये जब तक कि अधिकतम अंक तालिका व्यवस्थित न हो जाये।

(7) आवृत्ति स्तम्भ में गिनती चिह्नों को गिनकर लिख दीजिये।

नोट

(8) कुल आवृत्तियों को जोड़ लीजिये।

(9) आवृत्तियों का कुल योग, आँकड़ों की संख्याओं के बराबर आना चाहिये। यही तालिका की उपयुक्तता की जाँच है।

22.5 सारांश (Summary)

- साँख्यिकी को अंग्रेजी में STATISTICS कहा जाता है। STATISTICS लैटिन भाषा के शब्द STATUS अथवा इटली के शब्द STATISTA से निकला प्रतीत होता है। पहले इन शब्दों का प्रयोग राज्यों की राजनैतिक स्थिति के सन्दर्भ में किया जाता था।
- "साँख्यिकी एक ऐसा विज्ञान है, जिसमें घटनाओं के सत्य, उनसे सम्बन्धित आँकड़ों का विधिपूर्वक संकलन एवं व्यवस्था तथा किसी घटना की सही समझ एवं विस्तृत व्याख्या सम्मिलित है।"
- बिखरे हुए अंक अथवा संख्याएँ मूल आँकड़े कहलाती हैं। मूल आँकड़े एक प्रकार से साँख्यिकीय प्रक्रियाओं की दृष्टि से अनिवार्य सामग्री समझे जाते हैं।
- एक वर्गान्तर में निहित अंकों की संख्या वर्गान्तर की लम्बाई अथवा वर्ग अन्तराल की सीमा कहलाती है। वास्तविक अंकों की संख्या समावेशी (Inclusive) तथा निवारक (Exclusive) श्रेणी के आधार पर निकाली जाती है।

22.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **बारम्बारता**–प्राप्त आंकड़ों में जो अंक बार-बार आए, जिसकी आवृति अधिक हो।
2. **निवारक**–निवारण करने वाला, दूर हटाने वाला।

22.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. निम्नांकित आंकड़ों की सहायता से आवृत्ति वितरण तालिका बनाइये। वर्गान्तर की सीमा 10 रखिये।

   135, 139, 138, 110, 116, 119, 122, 135, 134, 126, 127, 128, 131, 139, 140, 150, 145, 184 148, 155, 154, 160, 158, 165, 170, 175, 180, 179, 190, 160, 170, 155, 148, 149, 123, 186 117, 118, 119, 120. (N = 40)

2. निम्नांकित आंकड़ों की सहायता से आवृत्ति वितरण सारणी बनाएँ। वर्गान्तर की सीमा 3 रखें।

   18, 24, 10, 12, 20, 28, 20, 14, 18, 14, 18, 14, 18, 20, 24, 14, 18, 20, 20, 12, (N = 20)

3. एक हाई स्कूल कक्षा के 30 विद्यार्थियों की परीक्षा ली गयी जिसका प्राप्तांक निम्नलिखित है। इसकी सहायता से आवृत्ति वितरण तालिका बनाएँ, वर्गान्तर की सीमा 10 रखें।

   38, 36, 80, 82, 85, 28, 30, 20, 90, 72, 75, 58, 42, 36, 75, 72, 68, 65, 70, 66, 48, 50, 10, 63, 57, 55, 62, 61, 50, 62. (N = 30)

4. निम्न अंकों की सहायता से आवृत्ति वितरण तालिका बनाएँ जिसमें वर्गान्तरों की सीमा 8 रखें।

   16, 18, 18, 11, 15, 5, 20, 18, 11, 25, 30, 15, 17, 11, 16, 22, 25, 20, 22, 15, 30, 32, 18, 7, 20, 25, 22, 22, 35, 37, 40, 20, 11, 25, 29, 10, 15, 35, 50, 10. (N = 40).

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. विज्ञान
2. आंकड़े
3. सीमा
4. (क) प्रसार
5. (ग) गणितीय
6. (ख) आवृत्ति
7. (क) श्रेणी

22.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शिक्षा तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*

नोट

इकाई 23 : केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापक– मध्यमान, मध्यांक, बहुलांक (Measurement of Central Tendency—M,Md, Mo)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

23.1 केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Central Tendency)

23.2 मध्यमान (Mean):M

23.3 मध्यांक (Median):Md

23.4 बहुलांक (Mode):Mo

23.5 केन्द्रीय मापकों की मान्यताएँ (Assumptions Underlying M,Md and Mo)

23.6 सारांश (Summary)

23.7 शब्दकोश (Keywords)

23.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

23.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा को समझने में;
- मध्यमान, मध्यांक तथा बहुलांक को समझने में;
- केन्द्रीय मापकों की मान्यताओं को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुसंधान के दौरान जो आंकड़े एकत्रित किये जाते हैं उनसे किसी निष्कर्ष पर नहीं पहुँचा जा सकता। इसके लिए उन आंकड़ों का वर्गीकरण तथा सारणीयन करना अनिवार्य होता है। इसलिए तथ्यों की श्रेणी में से हमें एक ऐसी

नोट

संख्या का पता लगाना है जो उस श्रेणी का उपयुक्त प्रतिनिधित्व कर सके। वह मूल्य जो हमें समूह की योग्यता को संक्षिप्त रूप से एक अंक में ही बता देते हैं, केन्द्रीय प्रवृत्ति के माप कहलाते हैं।

23.1 केन्द्रीय प्रवृत्ति का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Central Tendency)

आँकड़ों का अध्ययन करते समय अध्ययनकर्त्ता इस बात में रुचि रखता है कि उसे अपने समूह की प्रवृत्ति को जानने के लिये केवल एक ही मापक की सहायता लेनी पड़े। इस प्रकार की मान्यता को ही केन्द्रीय प्रवृत्ति के नाम से जाना जाता है। केन्द्रीय प्रवृत्ति के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए मान लीजिए, पाँच विद्यार्थियों के प्राप्ताँक 10, 11, 9, 12 तथा 13 हैं। ये प्राप्ताँक देखने में एक दूसरे से भिन्न अवश्य प्रतीत होते हैं, लेकिन फिर भी, इनमें एक प्रकार की केन्द्रीय प्रवृत्ति देखने को मिलती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन पाँच प्राप्तांकों में एक प्राप्तांक ऐसा है, जिसके इर्द गिर्द (चारों तरफ) शेष अन्य चार प्राप्तांक केन्द्रित हैं।

चित्र 23.1

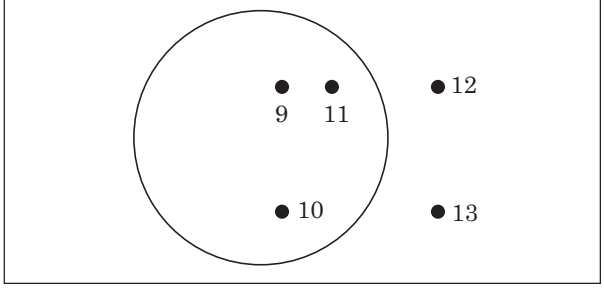

निम्नांकित चित्र में यदि हम प्राप्तांक 11 को वृत्त के केन्द्र में स्थित कर दें तथा शेष चारों प्राप्तांकों को इस प्राप्तांक के इर्द-गिर्द, तो हमें ऐसा प्रतीत होता है कि ये चारों प्राप्तांक केन्द्र में स्थित प्राप्तांक के ही आसपास हैं अथवा चारों प्राप्तांक केन्द्र में स्थित प्राप्तांक की ओर आना चाहते हैं। साधारण भाषा में हम कह सकते हैं कि कुछ प्राप्तांक 11 से छोटे हैं तथा कुछ 11 से बड़े हैं। साँख्यिकीय भाषा में आँकड़ों की इस प्रवृत्ति को हम केन्द्रीय प्रवृत्ति कहते हैं।

रॉस (Ross) महोदय ने केन्द्रीय प्रवृत्ति की स्पष्ट परिभाषा देते हुए लिखा है–

"It is the tendency of the scores to bunch or concentrate somewhere near the centre.....It is that value which typifies or best represents the whole distribution."

–Ross, C.C.

केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापक (Measures of Central Tendency)– केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापकों की आवश्यकता तथा महत्त्व के सम्बन्ध में गेरेट (Garrett) महोदय ने लिखा है–

"The value of a measure of central tendency is two fold. Firstly, it is an average which represents all of the scores made by the group and as such gives a concise description of the performance of the group as a whole and secondly, it enables us to compare two or more groups in terms of typical performance." ***–Garrett***

केन्द्रीय प्रवृत्ति के तीन मापक हैं–

(1) माध्य या मध्यमान (Mean)

(2) मध्यांक (Median)

(3) बहुलांक (Mode)

23.2 मध्यमान (Mean): M

नोट

परिभाषा (Definition)– साँख्यिकी में जिसे हम मध्यमान (Mean) कहते हैं, सामान्य गणित में उसे औसत कहते हैं। संकेत रूप में मध्यमान को (M) चिह्न से प्रदर्शित करते हैं। मध्यमान ज्ञात करने का सबसे सरल तरीका यह है कि संख्याओं के जोड़ को उनकी संख्या से भाग कर दिया जाता है। कुछ प्रमुख परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

नोट्स फरग्यूसन (Ferguison)– "मध्यमान वह मान है जो संख्याओं के योग को उनकी संख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है।"

"Mean is the sum of a set of measurements divided by the number of measurements of the set."

जॉन ग्रिफिन (John Griffin)– "माध्य क्योंकि एक समूह के समस्त मूल्य के प्रतिनिधि सर्वेक्षक के रूप में प्रयुक्त एक मूल्य होता है, साँख्यिकीय अर्थ में, माध्य को केन्द्रीय प्रवृत्ति मापक माना जा सकता है।"

"In statistical usage since an average is a single value, used to represent all the values of a set of observations, an average may by thought of as a measure of central value".

एफ. सी. मिल्स (F. C. Mills)– "माध्य किसी वितरण का संतुलन केन्द्र है।"

"The Arithmetic Mean is the centre of gravity of a distribution."

गणना (Computation)– माध्य सम्बन्धी दो प्रकार के आँकड़े हो सकते हैं–

(1) अवर्गीकृत आँकड़े (Ungrouped data)

(2) वर्गीकृत आँकड़े (Grouped data)

अवर्गीकृत आँकड़े:

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों से मध्यमान ज्ञात करें।

7, 10, 8, 13, 11, 14, 9, 9, 13, 15.

समाधान– अवर्गीकृत आँकड़ों में माध्य ज्ञात करने का सूत्र निम्न है–

$$M = \frac{\Sigma X}{N}$$

जहाँ, M = माध्य

ΣX = आँकड़ों का योग

N = आँकड़ों की संख्या

प्रश्नानुसार, $\Sigma X = 7 + 10 + 8 + 13 + 11 + 14 + 9 + 9 + 13 + 15 = 109$

$N = 10$

अत: $M = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{109}{10} = 10.9$ **Ans.**

नोट

महत्त्वपूर्ण चरण:

(1) सभी प्राप्तांकों का योग निकालिए।

(2) प्राप्तांकों की कुल संख्या निकालिए।

(3) मानों को सूत्र में प्रयुक्त कर उत्तर की गणना कीजिए।

वर्गीकृत आँकड़े: वर्गीकृत आँकड़े सम्बन्धी प्रश्नों को दो प्रकार से हल किया जाता है–

(1) लम्बी विधि (Long method)

(2) संक्षिप्त विधि (Short method)

(1) लम्बी विधि (Long Method)– इस विधि के अन्तर्गत प्रयुक्त सूत्र निम्नलिखित है–

$$M = \frac{\Sigma fx}{N}$$

जहाँ, M = माध्य

Σfx = प्राप्तांक और आवृत्ति की गुणा का योगफल

N = आवृत्तियों का योग।

उदाहरण: दीर्घ विधि से निम्नलिखित आँकड़ों का माध्य निकालिए।

समाधान:

तालिका 23.1

S. No.	*C.I.*	*Mid Point (X)*	*f*	*fx*
1.	55–59	57	1	57
2.	50–54	52	1	52
3.	45–49	47	3	141
4.	40–44	42	4	168
5.	35–39	37	6	222
6.	30–34	32	7	224
7.	25–29	27	12	324
8.	20–24	22	6	132
9.	15–19	17	8	136
10.	10–14	12	2	24
Total			N = 50	Σfx = 1480

सूत्र में मान रखने पर, $M = \frac{\Sigma fx}{N} = \frac{1480}{50} = 29.60$ **Ans.**

महत्त्वपूर्ण चरण:

(1) प्रत्येक वर्गान्तर का मध्य बिन्दु (X) ज्ञात कीजिए।

(2) मध्य बिन्दु (X) की आवृत्ति (*f*) में गुणा कीजिए।

नोट

(3) इस प्रकार प्राप्त सभी fX का योगफल निकालिए।

(4) N प्राप्त करने के लिये सभी आवृत्तियों को जोड़िए।

(5) प्राप्त मानों को सूत्र में प्रतिस्थापित कर माध्य की गणना कीजिए।

(2) संक्षिप्त विधि (Short-cut Method or Assumed Mean Method)– इस विधि में प्रयुक्त सूत्र निम्न है–

$$M = A.M. + \frac{\Sigma fd}{N} \times C.I.$$

जहाँ, M = वास्तविक माध्य

A.M. = कल्पित माध्य

Σfd = आवृत्ति तथा विचलन के गुणनफल का योग

N = कुल आवृत्तियाँ

C.I. = वर्गान्तर की सीमा अथवा लम्बाई

उदाहरण: मध्यमान ज्ञात करने की संक्षिप्त विधि।

तालिका 23.2

S. No.	*C.I.*	*f*	*d*	*fd*
1.	90–99	1	+3	3
2.	80–89	4	+ 2	8
3.	70–79	7	+ 1	7
4.	60–69	10	0	0
5.	50–59	9	–1	–9
6.	40–49	9	–2	–18
7.	30–39	4	–3	–12
8.	20–29	3	–4	–12
9.	10–19	3	–5	–15
Total		**N = 50**		**Σfd = – 48**

सूत्र में मान रखने पर,

$$M = A.M. + \frac{\Sigma fd}{N} \times C.I.$$

$$= 64.5 + (-48/50) \times 10$$

$$= 64.5 - 48/5$$

$$= 64.5 - 9.6$$

$$= 54.9 \quad \textbf{Ans.}$$

महत्त्वपूर्ण चरण:

(1) आवृत्ति वितरण तालिका व्यवस्थित कीजिए।

(2) कल्पित माध्य चुनिए।

नोट

सावधानी कल्पित माध्य हेतु उस वर्गान्तर को चुना जाता है जो बिल्कुल बीच में स्थित होता है अथवा जिस वर्गान्तर की आवृत्ति सबसे अधिक होती है।

(यह वर्गान्तर भी लगभग बीच में ही स्थित होना चाहिये)।

(3) कल्पित माध्य वाले वर्गान्तर के सामने विचलन वाले स्तम्भ में 0 रखिए तथा इस वर्गान्तर से बड़े वर्गान्तरों को धनात्मक क्रमिक मान (+1, +2, +3,....) तथा छोटे वर्गान्तरों को ऋणात्मक क्रमिक मान (–1, –2, –3,....) दीजिए।

(4) आवृत्ति तथा विचलन का गुणनफल निकालिये।

(5) इस प्रकार प्राप्त सभी fd का योगफल ज्ञात कीजिए। चिह्न का भी ध्यान रखिए।

(6) वर्गान्तर की सीमा, A.M. तथा N का मान ज्ञात करके इन्हें सूत्र में प्रतिस्थापित कर माध्य की गणना कीजिए।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. मध्यमान वह मान है जो संख्याओं के योग को उनकी संख्या से ..... देने पर प्राप्त होता है।
2. केन्द्रीय प्रवृत्ति के तीन मापक हैं–मध्यमान, मध्यांक और .....।
3. ..... संबंधी दो आंकड़े हो सकते हैं–वर्गीकृत और अवर्गीकृत आंकड़े।

23.3 मध्यांक (Median): Md

परिभाषा (Definition)

प्रो. बाउले (Prof. Bowley)– "मध्यांक, श्रेणी में उस पद का मूल्य है जो कि वितरण को दो बराबर भागों में बाँटता है।"

"The Median is the point that divides a ranked distribution of measurements into two equal parts."

लिंक्विस्ट (Lindquist)–"आँकड़ों के वितरण में मध्यांक वह बिन्दु है, जिसके नीचे 50% आँकड़े स्थित होते हैं तथा जिसके ऊपर भी 50% आँकड़े स्थित होते हैं।"

"Median is that point on the scale of scores below which one half of the scores (50%) lie and above which one half of the scores (50%) lie."

गणना (Computation): मध्यांक दो प्रकार के आँकड़ों में ज्ञात किया जाता है–

1. अवर्गीकृत आँकड़े (Ungrouped Data)
2. वर्गीकृत आँकड़े (Grouped Data)

अवर्गीकृत आँकड़े: यद्यपि, अवर्गीकृत आँकड़ों का मध्यांक निकालने के लिए किसी सूत्र की आवश्यकता नहीं है, फिर भी, सुविधा की दृष्टि से $\left(\frac{N+1}{2}\right)^{\text{th term}}$ का प्रयोग किया जा सकता है।

केस I : जब मापन की संख्याएँ विषम हों।

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों के मध्यांक निकालें।

23, 23, 22, 20, 19, 17, 16, 15, 15, 25, 28, 13, 19.

समाधान: संख्याओं को बढ़ते क्रम में पुन: व्यवस्थित करने पर हमें प्राप्त होता है, **नोट**

13, 15, 15, 16, 17, 18, 19, 20, 22, 23, 23, 25, 28.

सूत्र द्वारा, मध्यांक $= \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वां पद

$= \left(\frac{13+1}{2}\right)$ वां पद

$= \left(\frac{14}{2}\right)$ वां पद

= 7 वां पद

= 19 (सातवाँ पद के लिए दाएँ से बाएँ या बाएँ से दाएँ गिनें)

अत: मध्यांक = 19 **Ans.**

जब मापन की संख्याएँ सम हों।

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों के मध्यांक निकालें।

34, 37, 46, 42, 33, 44, 30, 40, 35, 33.

समाधान: संख्याओं को बढ़ते क्रम में पुन: व्यवस्थित करने पर हमें प्राप्त होता है।

30, 33, 33, 34, 35, 37, 40, 42, 44, 46.

अब, $\text{Median} = \left(\frac{N+1}{2}\right)$ वां पद

$= \left(\frac{10+1}{2}\right)$ वां पद

$= \left(\frac{11}{2}\right)$ वां पद

= 5.5 वां पद

$= \frac{\text{पांचवा पद + छठा पद}}{2}$

$= \frac{35+37}{2}$

$= \frac{72}{2}$

= 36

अत: Md = 36 **Ans.**

महत्त्वपूर्ण चरण:

1. दिये गये आँकड़ों को आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित कीजिए।
2. आँकड़ों की कुल संख्या (N) ज्ञात कीजिए।
3. सूत्र का प्रयोग कर मध्यांक की गणना कीजिए।
4. सम संख्याओं का मध्यांक निकालने के लिए दो क्रमिक संख्याएँ (Successive term) लीजिए तथा उन्हें जोड़कर उसका आधा कर दीजिए।

नोट

वर्गीकृत आँकड़े: वगीकृत आँकड़ों संबंधी प्रश्नों में मध्यांक निकालने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग में लाया जाता है–

क्या आप जानते हैं $\text{Md} = \text{L} + \left(\frac{\frac{\text{N}}{2} - f_b}{f} \right) \times \text{C.I.}$

जहाँ, Md = मध्यांक मान।

L = उस वर्गान्तर की निम्न सीमा जिसमें हमारा मध्यांक मान स्थित है।

N/2 = कुल आवृत्तियों का आधा।

f_b = उन सभी वर्गान्तरों की आवृत्तियों का योग जो मध्यांक समूह से नीचे (छोटे) स्थित हैं।

f = मध्यांक समूह की आवृत्ति

C.I. = वर्गान्तर की सीमा।

उदाहरण: निम्नांकित तालिका से मध्यांक की गणना कीजिए।

तालिका 23.3

S. No.	*C.I.*	*f*	*cf*	
1.	90–99	2	60	
2.	80–89	6	58	
3.	70–79	5	52	
4.	60–69	11	47	
5.	50–59	20	36	← **Median group**
6.	40–49	12	16	
7.	30–39	3	4	
8.	20–29	1	1	
कुल		N = 60		

N/2 = 30

अब, $\text{Md} = \text{L} + \left(\frac{\frac{\text{N}}{2} - f_b}{f} \right) \times \text{C.I.}$

$= 49.5 + \left(\frac{30 - 16}{20} \right) \times 10$

$= 49.5 + (14/20) \times 10$

$= 49.5 + 7$

$= 56.5$

नोट

अत: Md = 56.5 **Ans.**

जाँच: हमारा उत्तर मध्यांक समूह में आना चाहिए। यहाँ 56.5 जोकि 50–59 में आता है, जो मध्यांक समूह है। अत: हमारा उत्तर सही है।

महत्त्वपूर्ण चरण:

1. आवृत्ति वितरण तालिका व्यवस्थित कीजिए।

2. संचयी आवृत्तियाँ निकालिए। इसके दो तरीके हैं। पहला तरीका यह है कि सबसे छोटे वर्गान्तर के सामने जो आवृत्ति है उसे *cf* स्तम्भ में ऐसे ही लिखकर तिरछा जोड़ करते जाइये। दूसरा तरीका यह है कि सबसे बड़े वर्गान्तर के सामने वाली आवृत्ति को *cf* स्तम्भ में ऐसे ही लिखकर सीधा घटा करते जाइये। ध्यान रहे, कुल आवृत्तियों का योग सबसे बड़े वर्गान्तर के सामने ही आना है, चाहे हम *cf* किसी भी तरीके से निकालें।

3. कुल आवृत्तियों का आधा कीजिए तथा देखिये कि यह *cf* स्तम्भ में कहाँ आता है। यही आपका मध्यांक समूह होगा तथा इसे घेरे में बन्द कर दीजिये।

4. मध्यांक समूह वाले वर्गान्तर की वास्तविक निम्न सीमा ज्ञात कीजिए।

5. वर्गान्तर सीमा ज्ञात कीजिए।

6. अब इन सभी मानों अर्थात् *f, fb,* N/2, L तथा C.I. को सूत्र में प्रतिस्थापित कर मध्यांक मान की गणना कीजिए।

7. उत्तर की सत्यता की जाँच (Check) कीजिए।

महत्त्वपूर्ण केस I: जब कुछ वर्गान्तरों के समक्ष आवृत्ति शून्य हो तथा N/2 एक से अधिक वर्गान्तरों में स्थित हो। (When there are gaps in distribution and N/2 lies in more than one C.I.)

इस स्थिति में प्रयुक्त सूत्र निम्न है–

$$Md = \frac{Md_1 + Md_2}{2}$$

जहाँ, Md = मध्यांक मान

Md_1 = वह वर्गान्तर जब हम N/2 देखने के लिए ऊपर से नीचे की ओर गिनते हैं।

Md_2 = वह वर्गान्तर जब हम N/2 प्राप्त करने के लिए नीचे से ऊपर की ओर गिनते हैं।

उदाहरण: निम्नांकित तालिका से मध्यांक की गणना कीजिए।

तालिका 23.4

S. No.	*C.I.*	*f*	*cf*	
1.	90–99	2	10	
2.	80–89	1	8	
3.	70–79	0	7	
4.	60–69	0	7	
5.	50–59	2	7	← Md_1

नोट

6.	40–49	0	5	
7.	30–39	0	5	
8.	20–29	3	5	← Md_2
9.	10–19	2	2	
कुल		N = 10		

$$N/2 = 5$$

अब, $$Md = \frac{Md_1 + Md_2}{2}$$

यहाँ, $$Md_1 = 50 - 59$$

$$Md_2 = 20 - 29$$

अब, इन दोनों वर्गान्तरों को मिलाकर एक वर्गान्तर बनाया जायेगा, जो 20–59 आता है तथा फिर इसे वास्तविक वर्गान्तर में बदलने के लिए निम्न सीमा में .5 घटा देते हैं तथा उच्च सीमा में .5 जोड़ देते हैं। इस प्रकार, हमारे वर्गान्तर की वास्तविक सीमाएँ होंगी 19.5–59.5 ।

अत: $$\text{मध्यांक} = \frac{19.5 + 59.5}{2}$$

$$= \frac{79.0}{2}$$

$$= 39.5 \textbf{ Ans.}$$

महत्त्वपूर्ण चरण:

1. आवृत्ति वितरण तालिका बनाइए।
2. संचयी बारम्बारता स्तम्भ पूरा कीजिए।
3. देखिए कि N/2 किस वर्गान्तर में आता है। यदि यह एक से अधिक वर्गान्तर में आता है तो Md_1 तथा Md_2 निकालिए।
4. Md_1 निकालने के लिए आवृत्ति वाले स्तम्भ में ऊपर से नीचे की ओर N/2 प्राप्त होने पर गिनिए तथा यह जिस वर्गान्तर में पड़े, उसे घेरे में बंद कर दीजिए।
5. इसी प्रकार नीचे से ऊपर की ओर गिनते हुए Md_2 ज्ञात कीजिए।
6. अब, इन वर्गान्तरों को मिलाकर एक बड़ा वर्गान्तर बनाइए तथा इसे वास्तविक सीमाओं के रूप में लिखिए।
7. इन मानों को सूत्र में प्रतिस्थापित कर मध्यांक मान की गणना कीजिए।

महत्त्वपूर्ण केस II: जब N/2 केवल एक ही वर्गान्तर में स्थित हो, लेकिन कुछ वर्गान्तरों के सामने शून्य आवृत्तियाँ फिर भी रह जायें।

(When N/2 lies in one C.I. only, but gaps are still there.)

Step: ऐसी स्थिति में हमें वर्गान्तरों को आपस में मिलाकर उनकी संख्या कम करनी पड़ती है तथा पुन: मूल सूत्र प्रयोग में लाना पड़ता है। निम्नांकित उदाहरण में वैसे तो (N/2) अर्थात् 8 एक ही C.I. 40–44 में पड़ता है, लेकिन कुछ वर्गान्तरों जैसे 35–39 तथा 30–34 के सामने शून्य आवृत्तियाँ फिर भी रह जाती हैं। अत: यहाँ हम दो-दो वर्गान्तरों को मिलाकर एक वर्गान्तर बनाते हैं। स्पष्ट है, ऐसा करने में आवृत्तियाँ जुड़ती चली जायेंगी तथा शून्य आवृत्तियाँ भी दूर हो जायेंगी।

यह क्रिया अपनाने के बाद मूल सूत्र प्रयोग में लाया जाता है।

नोट

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों से मध्यांक की गणना कीजिए।

तालिका 23.5

S. No.	*C.I.*	*f*	*cf*	
1.	45–49	5	16	
2.	40–44	4	11	← **Median group**
3.	35–39	0	7	
4.	30–34	0	7	
5.	25–29	3	7	
6.	20–24	2	4	
7.	15–19	2	2	
कुल		N = 16		

$N/2 = 8$

इस प्रश्न में, यूँ तो N/2 केवल एक ही C.I. में पड़ता है, लेकिन कुछ वर्गान्तरों के सामने शून्य फिर भी रह जाते हैं। अत: शून्य हटाने के लिए वर्गान्तरों को आपस में मिलाकर उनकी संख्या कम कर दी जाती है। इस प्रकार तालिका का परिवर्तित रूप निम्न हो जाता है।

तालिका 23.6

S. No.	*C.I.*		*f*	*cf*	
1.	45–54		5	16	
2.	35–44	4	10	11	← Median group
3.	25–34	3	4	7	
4.	15–24	4	4	4	
Total			N = 16		

$N/2 = 8$

Now, $$Md = L + \frac{N/2 - f_b}{f} \times C.I.$$

$$= 34.5 + \frac{8-7}{4} \times 10$$

$$= 34.5 + \frac{1}{4} \times 10$$

$$= 34.5 + 2.5$$

$$= 37.0$$

Hence, Md = 37 **Ans.**

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State Whether the Following Statement are True or False):

4. मध्यांक, वितरण को बराबर भागों में नहीं बाँटता।
5. मध्यांक को Md भी लिखते हैं।
6. C.I = वर्गान्तर की सीमा अथवा लंबाई होता है।
7. माध्य किसी वितरण का संतुलन केन्द्र है।

23.4 बहुलांक (Mode): Mo

क्रो व क्रो (Crow and Crow) के अनुसार–**"प्राप्तांकों के समूह में जिस अंक की आवृत्ति सबसे अधिक होती है, बहुलांक कहलाता है।"**

"The score in a given set of data that appears most frequently is called the mode and is represented by the symbol Mo."

कैनी (Kenny): "प्राप्तांकों के समूह में जिस प्राप्तांक की आवृत्ति सबसे अधिक होती है, उसे बहुलांक मान कहते हैं।"

"Mode is the most frequently occurring value in the series."

गिलफोर्ड (Guilford): "किसी वितरण में वह बिन्दु जिसकी आवृत्ति सर्वाधिक हो, बहुलांक कहलाता है।"

"The mode is strictly defined as the point on the scale of measurement with maximum frequency in a distribution."

गणना (Computation): बहुलांक मान भी दो प्रकार के आंकड़ों में ज्ञात किया जाता है–

1. अवर्गीकृत आंकड़े (Ungrouped data)
2. वर्गीकृत आंकड़े (Grouped data)

अवर्गीकृत आँकड़े

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों से बहुलांक की गणना कीजिए।

8, 9, 9, 13, 14, 13, 17, 16, 17, 16, 18, 20, 17.

समाधान: Here, 17 is evidently the most often recurring measure and is therefore the crude or empirical mode.

यहाँ, 17 अंक तीन बार दोहराया गया है, अत: यही वितरण का बहुलांक मान है।

वगीकृत आँकड़े: वर्गीकृत आंकड़ों का बहुलांक मान निकालने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग में लाया जाता है–

$$\text{Mo} = \text{L} + \frac{f_a}{f_a + f_b} \times \text{C.I.}$$

जहाँ, Mo = बहुलांक मान

L = सबसे अधिक आवृत्ति वाले वर्गान्तर की निम्न सीमा।

f_a = उस वर्ग की आवृत्ति जो बहुलांक समूह से ऊपर (बड़ा) स्थित है।

f_b = उस वर्ग की आवृत्ति जो बहुलांक समूह से ठीक नीचे (छोटा) स्थित है।

C.I. = वर्गान्तर की सीमा।

नोट

टास्क बहुलांक पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखें

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों से बहुलांक की गणना कीजिए।

तालिका 23.7

S.No.	*C.I.*	*f*	
1.	123–127	6	
2.	118–122	10	
3.	113–117	20	
4.	108–112	20	
5.	103–107	15	
6.	98–102	30	← Mode Group
7.	93–97	5	
8.	88–92	8	
9.	83–87	6	
10.	78–82	4	
		N = 120	

अब,

$$Mo = L + \frac{f_a}{f_a + f_b} \times C.I.$$

$$= 97.5 + \left[\frac{15}{15+5}\right] \times 5$$

$$= 97.5 + 15/20 \times 5$$

$$= 97.5 + 15/4$$

$$= 97.5 + 3.75$$

$$= 101.25$$

Hence, Mo = 101.25 **Ans.**

नोट: (1) एक ही तालिका से माध्य, मध्यांक तथा बहुलांक ज्ञात करने में माध्य तथा मध्यांक निकालने का सूत्र तो वही है, लेकिन बहुलांक निकालने में सूत्र में भिन्नता आ जाती है।

उदाहरण बहुलांक = 3 मध्यांक –2 माध्य

(Mo = 3Md – 2M)

नोट

(2) यदि किसी प्रश्न में ऐसे दो वर्गान्तर हों जिनकी आवृत्तियाँ सबसे अधिक हों और बराबर भी हों तो (a) यदि वे वर्गान्तर कुछ दूरी पर हैं तो उस प्रश्न में दो बहुलांक मान होंगे तथा (b) यदि वे वर्गान्तर एक ही साथ हैं तो बहुलांक मान उन दोनों वर्गान्तरों के मध्य बिन्दुओं का मध्यमान होगा।

23.5 केन्द्रीय मापकों की मान्यताएँ (Assumptions Underlying M, Md and Mo)

1. माध्य (M)

1. जब प्राप्तांकों का वितरण सामान्य हो।
2. जब वितरण के प्रत्येक अंक को महत्त्व देना हो।
3. जब केन्द्रीय झुकाव (Centre of gravity) शुद्ध रूप में मालूम करना हो।
4. जब सर्वाधिक विश्वसनीयता अपेक्षित हो।
5. जब सत्य बहुलांक (True Mode) ज्ञात करना हो।
6. जब मानक विचलन (S.D.), सह-संबंध (Correlation) तथा प्रामाणिक त्रुटि (S.E.) की गणना करनी हो।

2. मध्यांक (Md)

1. जब प्राप्तांकों का वितरण सामान्य न हो।
2. जब केन्द्रीय प्रवृत्ति का अधिक शुद्धता से पता लगाना हो।
3. जब अधिक शुद्धता की आवश्यकता न हो।
4. जब वितरण विकृत (Skewed) हो।
5. जब वितरण अपूर्ण हो अर्थात् कुछ वर्गों में शून्य आवृत्ति हो।
6. जब समूह का ठीक मध्य-बिन्दु मालूम करना हो।
7. जब छोरों की तरफ अंकों की प्रवृत्ति अधिक हो।

3. बहुलांक (Mo)

1. जब केन्द्रीय प्रवृत्ति का शीघ्रता से अनुमान लगाना हो।
2. जब प्राप्तांकों का वितरण सामान्य न हो।
3. जब वितरण अपूर्ण (Incomplete) हो।
4. जब केन्द्रीय प्रवृत्ति के विशेष मापक का ज्ञान प्राप्त करना हो।
5. जब केवल निरीक्षण मात्र से ही केन्द्रीय प्रवृत्ति की गणना करनी हो।
6. जब केवल साधारण प्रकार के केन्द्रीय मान से काम चल सकता हो।

   (When a rough estimate of central value will do.)

7. जब केन्द्रीय मान के लिए ऐसा प्राप्तांक ज्ञात करने की आवश्यकता हो जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक हो। **गैरेट** (Garrett) ने ठीक ही लिखा है–"When we describe the style of dress or shoes

worn by the 'average woman' for instance, the modal or most popular fashion is usually meant. In like manner, in speaking of the average wage in a certain industry, we often mean the modal wage under specified conditions."

नोट

23.6 सारांश (Summary)

- आँकड़ों का अध्ययन करते समय अध्ययनकर्ता इस बात में रुचि रखता है कि उसे अपने समूह की प्रवृत्ति को जानने के लिये केवल एक ही मापक की सहायता लेनी पड़े। इस प्रकार की मान्यता को ही केन्द्रीय प्रवृत्ति के नाम से जाना जाता है।
- रॉस (Ross) महोदय ने केन्द्रीय प्रवृत्ति की स्पष्ट परिभाषा देते हुए लिखा है–

  "It is the tendency of the scores to bunch or concentrate somewhere near the centre.....It is that value which typifies or best represents the whole distribution."
- केन्द्रीय प्रवृत्ति के तीन मापक हैं–(1) माध्य या मध्यमान (2) मध्यांक एवं (3) बहुलांक।
- **प्रो. बाउले** के अनुसार, मध्यांक, श्रेणी में उस पद का मूल्य है जो कि वितरण को दो बराबर भागों में बाँटता है।"

23.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **आवृत्तियाँ**–बार-बार होना, दुहराव।
2. **माध्य**–सामान्य गणित में जिसे औसत कहा जाता है, वही सांख्यिकी में माध्य कहलाता है।

23.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. केन्द्रीय प्रवृत्ति के मापक से क्या समझते हैं? इसके कल्पित मूल्यों का वर्णन करें।
2. निम्नांकित आँकड़ों के मध्यमान, मध्यांक एवं बहुलांक ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
200–219	6	
180–199	8	
160–179	13	
140–159	10	
120–139	6	
100–119	4	
80–99	8	**Ans.** M = 148.12
60–79	2	Md = 155.5
40–59	1	Mo = 170.26

नोट

3. निम्नांकित आँकड़ों से मध्यमान ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
0–10	2	
10–20	18	
20–30	30	
30–40	40	
40–50	35	
50–60	20	
60–70	6	
70–80	3	**Ans.** M = 37.15

4. निम्नांकित आँकड़ों से मध्यमान ज्ञात करें।

10, 16, 17, 22, 26. 24, 26, 11 **Ans.** M = 19

5. निम्नांकित आँकड़ों से मध्यांक ज्ञात करें।

5, 7, 9, 12, 10, 8, 7, 15, 21 **Ans.** Md = 9

6. निम्नलिखित आँकड़ों से मध्यांक तथा बहुलांक ज्ञात करें।

10, 6, 7, 10, 9, 8, 7, 5, 10 **Ans.** Md = 8
Mo = 10

7. निम्नांकित आँकड़ों से मध्यांक ज्ञात करें।

20, 18, 16, 15, 11, 29, 39, 40, 15, 20 **Ans.** Md = 19

8. निम्नांकित आँकड़ों से मध्यमान, मध्यांक एवं बहुलांक ज्ञात करें।

12, 16, 18, 25, 35, 40, 42, 12, 17, 19, 12. **Ans.** M = 22.5
Md = 18
Mo = 12

9. निम्नांकित आँकड़ों से मध्यांक तथा बहुलांक ज्ञात करें।

62, 80, 72, 74, 72, 78, 76, 92, 88, 84, 80, 72. **Ans.** Md = 77
Mo = 72

10. निम्नलिखित तालिका से मध्यांक ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
90–99	2	
80–89	1	
70–79	0	
60–69	0	
50–59	2	
40–49	0	
30–39	0	
20–29	3	
10–19	2	**Ans.** Md = 39.5

नोट

11. निम्नांकित आँकड़ों से मध्यांक ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
45–49	5	
40–44	5	
35–39	10	
30–34	20	
25–29	0	
20–24	15	
15–19	10	
10–14	8	
5–9	4	
0–4	3	**Ans.** Md = 27.0

12. निम्नांकित आँकड़ों से मध्यांक ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
20–21	2	
18–19	1	
16–17	0	
14–15	0	
12–13	2	
10–11	0	
8–9	0	
6–7	2	
4–5	1	
2–3	1	
0–1	1	**Ans.** Md = 9.5

13. निम्नलिखित आँकड़ों (वितरणों) से मध्यांक ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
1–3	6	
3–5	53	
5–7	85	
7–9	56	
9–11	21	
11–13	16	
13–15	4	
15–17	4	**Ans.** Md = 65

नोट

14. निम्नांकित आँकड़ों के बहुलांक ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
45–49	2	
40–44	3	
35–39	7	
30–34	13	
25–29	8	
20–24	4	
15–19	3	**Ans.** Mo = 31.83

15. निम्नांकित आँकड़ों के मध्यमान, मध्यांक एवं बहुलांक ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
150–159	2	
140–149	2	
130–139	4	
120–129	1	
110–119	5	
100–109	5	
90–99	12	
80–89	10	
70–79	12	
60–69	10	
50–59	1	**Ans.** M = 92.62 Md = 88.50 Mo = 80.26

उत्तर: स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. भाग
2. बहुलांक
3. मध्यमान
4. असत्य
5. सत्य
6. सत्य
7. सत्य

23.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
4. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 24 : प्रायिकता: समवितरण वक्र एवं प्रयोग (Probability: Normal Probability Curve and its Uses)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

24.1 समवितरण की विशेषताएँ (Characteristics of Normal Probability)

24.2 सम-संभावना वक्र (Normal Probability Curve)

24.3 समवितरण का प्रयोग (Uses of Normal Distribution)

24.4 सम-संभावना-वितरण-तालिका का प्रयोग (Uses of Normal Probability Distribution Diagram)

24.5 आँकड़ों के वितरण की विषमता का परिमापन (Measuring Divergence from Normality)

24.6 सारांश (Summary)

24.7 शब्दकोश (Keywords)

24.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

24.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- समवितरण की विशेषताओं को समझने में;
- सम-संभावना वक्र को समझने में;
- सम-वितरण का प्रयोग एवं तालिका प्रयोग को समझने में;
- आँकड़ों की वितरण की विषमता का परिमापन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

जब किसी तालिका के मध्यमान (Mean) के दोनों ओर आँकड़े इस प्रकार स्थित हों कि यदि हम उन्हें एक वक्र-चित्र द्वारा दिखायें और निम्न प्रकार की घन्टी की आकृति (bell-shape) का चित्र बने तो हम उस प्रकार के अंक-वितरण को सम अंक-वितरण (normal distribution) कहते हैं।

नोट

चित्र 24.1

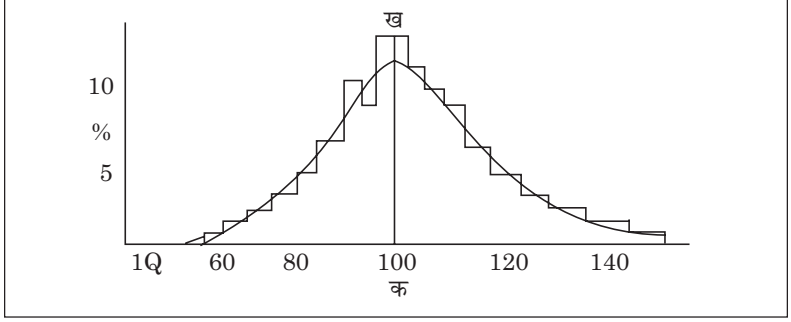

इस प्रकार के वितरण में आँकड़ों की अधिकतम संख्या मध्य में होती है और उस मध्य बिन्दु से जैसे-जैसे हम दोनों की ओर चलते हैं तो आँकड़ों की संख्या कम होती चली जाती है। दोनों छोरों के अन्त में सबसे कम आँकड़े रह जाते हैं। दूसरी बात यह है कि मध्यबिन्दु के दायें-बायें दोनों ओर अंक-वितरण की स्थिति में समानता रहती है।

उपरोक्त आकृति को यदि हम क बिन्दु पर दो बराबर भागों में विभाजित करें तो क उसका मध्यबिन्दु होगा। यदि क ख लम्ब रेखा खीचें तो क ख रेखा के दोनों ओर के विभाजित प्रदेश आकृति और क्षेत्रफल दोनों में लगभग समान होंगे। यही सम-वितरण की प्रमुख विशेषता है।

दूसरे हम देखते हैं कि इसमें सबसे अधिक आँकड़े मध्यबिन्दु के ही आस-पास हैं और शुरू से दोनों ओर जैसे-जैसे हटते जायें, आँकड़ों की संख्या बराबर अनुपात में कम होती जाती है और छोरों पर दोनों ओर बहुत कम आँकड़े रह जाते हैं।

इस आकृति में यदि क बिन्दु पर मध्यमान 100 स्थित है तो उसके दोनों तरफ हम देखते हैं कि एक बराबर आँकड़े हैं। एक ओर 20 उस से कम है तो दूसरी ओर भी 20 उससे अधिक। एक ओर 80-100 तक के बीच 20 आँकड़ें पड़ते हैं तो दूसरी ओर भी 100-120 के बीच 20 आँकड़े पड़ते हैं। फिर एक ओर 60-80 के बीच 80 से नीचे केवल 20 आँकड़े हटे हुए हैं। दूसरी ओर भी ठीक ऐसा ही है। इस प्रकार दोनों और बिल्कुल समानता है। जैसा क के एक ओर है वैसा ही दूसरी ओर है। क के दोनों ओर आँकड़े बराबर दूरी तक हटे हुए हैं। एक ओर 100 से जितने कम हैं दूसरी ओर भी 100 से उतने ही अधिक हैं। यही सम-वितरण का अर्थ होता है।

साँख्यिकी विज्ञान में सम-वितरण का बड़ा महत्त्व है। कई स्थानों पर सम-वितरण का प्रयोग बड़े काम का होता है। सम-वितरण के आधार पर ही हमारे मध्यमान की उपयोगिता, सार्थकता तथा औचित्य निर्धारित होता है। आगे के उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।

(1) 55, 50, 54, 52, 50, 50, 60, 70, 75, 84 मध्यमान $= \frac{600}{10} = 60$

(2) 62, 70, 60, 50, 68, 66, 62, 56, 54, 52 मध्यमान $= \frac{600}{10} = 60$

ऊपर के दोनों अंक-वितरण में म. मा. 60 है। परन्तु दोनों की सार्थकता में जमीन आसमान का फ़र्क है। एक सम है और दूसरा विषम। पहली दशा में आँकड़ों का विस्तार-क्षेत्र 50 से 80 तक है; दूसरी में यह 50 से 70 तक ही है। मध्यमान (Mean) दोनों का 60 ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि पिछले उदहारण में एक ओर 60 से नीचे छोटे से छोटा अंक 50 है बड़े से बड़ा 84। अर्थात् एक ओर 10 अंकों का विस्तार है और दूसरी ओर 24 अंकों का। दूसरे शब्दों में, 60 से ऊपर विस्तार 24 अंकों तक चला गया है और नीचे केवल 10 ही अंकों तक गया है।

नोट

इस प्रकार मध्यमान के दोनों ओर विस्तार-विषमता (ksewness) आ गई है। यदि हम इस ग्राफ (graph) द्वारा दिखाएँ तो इस प्रकार आकृति बनेगी।

चित्र 24.2

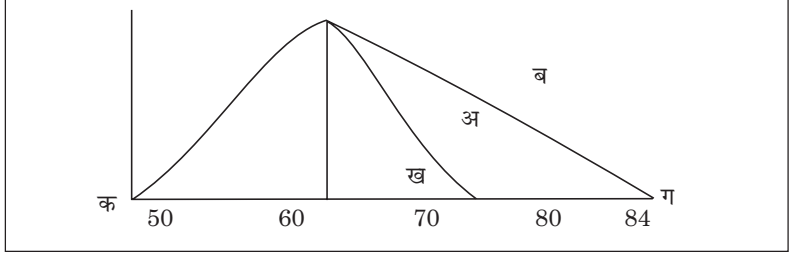

इस आकृति की ब दशा में आँकड़े मध्यमान 60 के आस-पास नहीं हैं और न दोनों ओर बराबर दूरी पर ही स्थित हैं। इससे स्पष्ट है कि 60 से बड़े आँकड़े अधिक हैं और 60 से छोटे आँकड़े कम हैं। इसका अर्थ यह होगा कि 60 मध्यमान बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हो सकता। वह सब आँकड़ों को सही-सही बताने की सामर्थ्य नहीं रखता। म. मा. 60 के अर्थानुसार लगभग सभी आँकड़े 60 के बराबर होने चाहिए, परन्तु ऊपर की दशा में हम देखते हैं कि कुछ आँकड़े 84 के बराबर भी हैं। ये 60 से बहुत अधिक बड़े हैं। दूसरी ओर कम से कम आँकड़े 50 के बराबर हैं। ये फिर भी 60 के कुछ आस-पास हैं। अत: मध्यमान के दोनों ओर अंक-वितरण में समानता नहीं है। इसे विषम वितरण (skewed distributed) कहते हैं।

दूसरी दशा (अ) में भी मध्यमान 60 ही है, परन्तु उस दशा में अंक-वितरण-विस्तार 50 से 70 तक ही है। अर्थात् एक ओर 60 से 10 आँकड़े कम और दूसरी ओर भी 60 से 10 अधिक आँकड़ों तक का ही विस्तार है।

इससे स्पष्ट है कि जितने आँकड़े 60 से कम हैं उतने ही 60 से अधिक हैं। दोनों ओर वितरण-स्थिति एक सी है। अत: इस वितरण में 60 का मध्यमान अधिक सही ढंग से आँकड़ों को व्यक्त करता है। इसे सम-वितरण (normal distribution) कहते हैं।

24.1 समवितरण की विशेषताएँ (Characteristics of Normal Probability)

समवितरण की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं:

(1) यदि N 100 है और उनका वितरण सम है तो इस स्थिति में मध्यमान के ऊपर-नीचे बराबर अर्थात् 50 प्रतिशत आँकड़े होंगे। यदि हम समवितरण का पूर्ण विस्तार-क्षेत्र 100 न मान कर केवल एक मानें तो मध्यमान के ऊपर-नीचे .5 का विस्तार-क्षेत्र रहेगा।

(2) इसी प्रकार मध्यमान के दोनों ओर $\pm 1\sigma$ की सीमा तक कुल मिला कर दो तिहाई भाग आ जाता है। यदि कुल विस्तार-क्षेत्र 100 है तो मध्यमान $+1.0\ \sigma$ से मध्यमान $-1.0\ \sigma$ तक की सीमा के बीच दो तिहाई के लगभग अर्थात् 68.26 आँकड़े आते हैं। यदि कुल-विस्तार-क्षेत्र को 1 मानें तो मध्यमान + 1.0 तथा मध्यमान (M)–1.0 के बीच .6826 भाग आएगा।

(3) इसी प्रकार $M + 2.0\ \sigma$ तथा $(M)-2.0\ \sigma$ की सीमा के बीच लगभग 95.44 प्रतिशत भाग आता है। अर्थात् यदि कुल विस्तार-क्षेत्र 100 आँकड़ों का है तो लगभग 95 आँकड़ों $(M) + 2.0\ \sigma$ और $(M)-2.0\ \sigma$ के बीच पड़ेंगे। यदि कुल विस्तार हम 1 मानें तो $M \pm 2.0\ \sigma$ के बीच आँकड़ों की संख्या .9544 प्रतिशत होगी।

नोट

चित्र 24.3

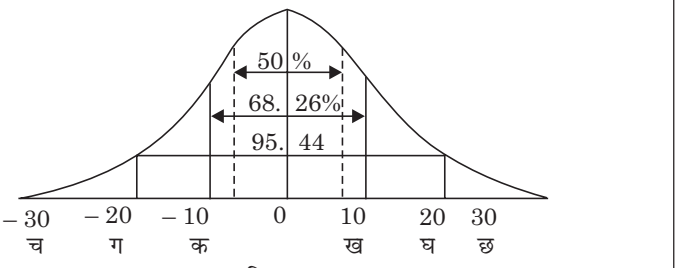

सम-वितरण वक्र

इसी प्रकार $M \pm 3\sigma$ की सीमा के बीच 99.74 प्रतिशत आँकड़े पड़ेंगे।

नीचे की आकृति से यह बात और स्पष्ट हो जाएगी:

इस आकृति में क ख बिन्दुओं के बीच की सीमा $M \pm 1\sigma$ की सीमा बताती है। $(M) + 1\sigma$ के बीच 1/3 भाग है तथा $(M) - 1\sigma$ के बीच 1/3 भाग है। $(M) - 1\sigma$ के बीच के एक तिहाई आँकड़े (M) से नीचे अर्थात् छोटे हैं। इसी प्रकार $(M) + 1\sigma$ के बीच के एक तिहाई आँकड़े मध्यमान से बड़े हैं। इस प्रकार दोनों ओर -1σ से $+1\sigma$ तक कुल दो तिहाई आँकड़े हैं।

इसी प्रकार ग और घ के बीच 95.44 प्रतिशत आँकड़े आते हैं। ग बिन्दु मध्यमान (ल बिन्दु) से -2σ की दूरी पर है तथा घ $+ 2\sigma$ की दूरी पर। इन दोनों बिन्दुओं के बीच 95.44 प्रतिशत आँकड़े आते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि

(M) से नीचे छोटे आँकड़े ((M)–2σ के बीच) $= \frac{95.44}{2} = 47.72$ प्रतिशत आँकड़े होंगे और (M) से ऊपर अर्थात् $(M) + 2\sigma$ के बीच भी इतने ही आँकड़े होंगे।

इसी प्रकार च और छ के बीच की दूरी $(M) \pm 3\sigma$ तक की सीमा बताती है। इनके बीच कुल आँकड़ों की संख्या 99.72 होती है।

उदहारण

मान लीजिए 600 विद्यार्थियों के I.Q's हैं जिनका Mean 107.5 है, प्र. वि. (S.D.) 8.6 है और आँकड़ों का वितरण सम है।

तो सम-वितरण की उपरोक्त विशेषता के अनुसार 600 में से 68.26 प्रतिशत (409.56) विद्यार्थियों के I.Q's $107.5 \pm \times 8.6$ $(M \pm 1\sigma)$ अर्थात् 98.9–116.1 के बीच होंगे। इसी प्रकार 95.44 प्रतिशत के $107.5 \pm 2 \times 8.6$ $(M \pm 2\sigma)$ अर्थात् $107.5 \pm 17.2 = 90.3–124.7$ के बीच होंगे। दूसरे शब्दों में, 95 प्रतिशत की दशा में सम्भावना इस बात की है कि उनके I.Q's 124.7 और 90.3 के बीच होंगे। केवल 5 प्रतिशत में ही उनके I.Q's के इस सीमा के परे होने की सम्भावना है। यदि हम $\pm 3\sigma$ की सीमा को लें तो कह सकते हैं कि 99.72 प्रतिशत के I.Q's $107.5 \pm 3\sigma$ अर्थात् $106.4 \pm 3 \times 8.6 = 107.5 \pm 25.8 = 81.7 – 133.3$ के बीच होंगे। केवल 1 प्रतिशत बालकों के ही I.Q's की इस सीमा से परे होने की सम्भावना है अर्थात् सम-वितरण की दशा में 600 विद्यार्थियों में से केवल 6 विद्यार्थियों के ही I.Q. 81.7–133.3 की सीमा के परे होंगे और 594 के इस सीमा के बीच होंगे।

(*i*) इस प्रकार सम-वितरण में निहित प्रतिशत संख्या और सीमा के द्वारा हम कुल आँकड़ों की स्थिति जान लेते हैं। यह सम-वितरण की एक बहुत बड़ी विशेषता है तथा इसकी बहुत बड़ी उपयोगिता है।

नोट

(*ii*) दूसरी विशेषता यह है कि सम-वितरण में मध्यमान, मध्यांक मान (mdn.) तथा बहु. मा. (mode) सब वितरण के मध्यबिन्दु पर पड़ते हैं और उनका मान भी बराबर ही होता है।

(*iii*) तीसरी विशेषता यह है कि सम-वितरण की स्थिति में अन्तर्चतुर्थक (अ.च.) प्र. वि. (S.D.) का .6745 होता है, अर्थात् S.D. से लगभग 40 प्रतिशत बड़ा होता है। अ. च. (Q) को सम्भावित-त्रुटि अथवा स. त्रु. (Probable Error) अथवा (P.E.) भी कहते हैं। अत: इन सम्बन्धों को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं।

$$P.E.= .6745\ \sigma \text{ अथवा } \sigma = 1.4826\ P.E.$$

अ. च. (Q) तथा मध्यमान के बीच नीचे से अर्थात् उससे छोटे 25 प्रतिशत आँकड़े स्थित होते हैं। इस प्रकार, सम-वितरण में अन्तर्चतुर्थक (Q) का विस्तार-क्षेत्र 'मध्यस्थ पचास' प्रतिशत आँकड़े होते हैं और चूंकि Q और P.E. सम-वितरण में एक ही होते हैं अत: ± P.E. अर्थात् ±.6745 σ (क्योंकि P.E. = .6754 σ) के बीच मध्यमान के ऊपर 25 प्रतिशत और नीचे के 25 प्रतिशत आँकड़े आ जाते हैं।

इस प्रकार हम आँकड़ों की स्थिति जानने के लिए ± 1 σ, ± 2 σ, ± 3 σ का प्रयोग न करके ±PE, ± 2PE, ± 3PE का भी प्रयोग कर सकते हैं।

24.2 सम-सम्भावना वक्र (Normal Probability Curve)

सम-वितरण की यह विशेषता सम्भावना-सिद्धांत (theory of probability) पर आधारित है। सम्भावना सिद्धांत की साँख्यिकी-विज्ञान में ही नहीं बल्कि सब विज्ञानों में बड़ा महत्त्व है। अत: उसे पूर्णतया समझ लेना चाहिये।

यदि एक घटना के घटित होने के 'क' तरीके होते हों और 'ख' तरीके ऐसे हों जिनमें वह घटित नहीं हो सकती तो उस घटना के होने की सम्भावना (Probability) क/क+ख होगी। इसी प्रकार न होने की सम्भावना (probability) ख/क+ख होगी।

इसी प्रकार यदि ताश के 52 पत्तों में से हम 1 पत्ता खींच लें और यह जानना चाहें कि इस पत्ते के बादशाह होने की क्या सम्भावना है, तो सम्भावना सिद्धांत के अनुसार कह सकते हैं कि इसकी सम्भावना $\frac{4}{52}$ होगी, क्योंकि 52 पत्तों में कुल चार रंगों के चार बादशाह होंगे। इस प्रकार पान के बादशाह की सम्भावना $\frac{1}{52}$ होगी, क्योंकि सब ताशों में पान का बादशाह केवल एक ही है।

52 पत्ते हैं अत: खींचे हुए पत्ते की बादशाह होने और न होने की कुल सम्भावना 52 है। इसमें से चार बादशाह हैं। अत: इसमें से 4 तरीकों में इस पत्ते की सम्भावना की जा सकती है और 48 तरीके में इसके बादशाह न होने की सम्भावना होगी।

अत: घटित होने के तरीके = 4 न घटित होने के तरीके = 48

खीचें हुए पत्ते के बादशाह होने की सम्भावना (उपरोक्त क/क+ख नियम के अनुसार) $\frac{4}{4+48} = \frac{4}{52}$

इसी प्रकार ख/क+ख नियम के अनुसार न घटित होने की संभावना $\frac{48}{4+48} = \frac{48}{52}$

नोट

उदाहरण एक सिक्का जिस के एक ओर मूर्ति तथा दूसरी ओर सन् छपी है ऊपर उछाला जाता है। क्या सम्भावना इस बात की है कि सिक्के के जमीन पर गिरने पर ऊपर मूर्ति रहे। घटना के घटित होने के कुल दो तरीके हैं या तो मूर्ति आयेगी या सन्। अतः मूर्ति की संभावना $(P)\frac{1}{2}$ होगी और सन् के रहने की सम्भावना भी $\frac{1}{2}$ होगी।

यदि हम घटना के घटित होने तथा न होने की सम्भावनाओं को जोड़ें तो हर हालत में 1 आयेगा। अब यदि हम ऐसे दो सिक्के उछालें तो निम्नलिखित तरीकों में सिक्कों के जमीन पर गिरने की सम्भावना होगी।

मू.-मू., मू.-सन्, सन्-मू., सन्-सन्

कुल 4 तरीके होने की सम्भावना है या तो दोनों सिक्कों पर मूर्ति होगी या दोनों पर सन् या एक पर सन् और एक पर मूर्ति या एक पर मूर्ति और एक पर सन्। मू.-सन् तथा सन्-मूर्ति एक ही बात है। अतः सन्-मू. की सम्भावना दुगनी होगी अर्थात् दो बार ऐसा हो सकता है कि एक सिक्के पर मूर्ति और एक पर सन् आये। इस प्रकार

1. मू.-मू. होने की सम्भावना $(p) = \frac{1}{4}$

2. 2 मू.-सन् होने की सम्भावना $(p) = \frac{2}{4} = \frac{1}{2}$

3. सन्-सन् होने की सम्भावना $(p) = \frac{1}{4}$

बायीं ओर की घटनाओं तथा दायीं ओर की सम्भावनाओं को जोड़ने पर मू.-मू.+स. मू.+स.स. अथवा (मू.^{2} +2 मू. स. +स.^{2})=(मू. + स.)^2 = 1

इसी प्रकार 3 सिक्कों को उछालने पर निम्नलिखित 8 योग (Combinations) प्राप्त होंगे।

(1)	(2)	(3)	(4)	(5)	(6)	(7)	(8)
मू. मू. मू.	मू. मू. स.	मू. स. मू.	स. मू. मू.	मू. स. स.	स. मू. स.	स. स. मू.	स. स. स.

परन्तु योग (2), (3), (4) एक ही बात है। अतः मू. मू. स. की सम्भावना तीन गुनी अर्थात् $\frac{1}{8}+\frac{1}{8}-\frac{1}{8}=\frac{3}{8}$ होगी, क्योंकि कुल 8 योग है और प्रत्येक की सम्भावना $\frac{1}{8}$ है अर्थात् 3 मू.^{2} स. की सम्भावना $\frac{3}{8}$ होगी।

इसी प्रकार मू. स. स. (5), (6), (7) योगों की सम्भावना भी $\frac{3}{8}$ होगी अर्थात् 3 स.^{2} मू. की सम्भावना (p) भी $\frac{3}{8}$ होगी। दूसरे शब्दों में, दो सिक्कों पर सन् तथा एक पर मूर्ति एक साथ आने के योग की सम्भावना 3 है–अर्थात् 3 बार ऐसा हो सकता है।

इसके अतिरिक्त मू. मू. मू. की सम्भावना (p) $\frac{3}{8}$ स. स. स. की भी $\frac{1}{8}$ होगी।

चूँकि (1) मू. मू. मू. की सम्भावना (P) = $\frac{1}{8}$

नोट

(2) 3 मू.^{2} स. की सम्भावना (P) = $\frac{3}{8}$

(3) 3 स.^{2} मू. की सम्भावना (P) = $\frac{3}{8}$

(4) स. स. स. की सम्भावना (P) = $\frac{1}{8}$

इसलिए मू.^{3} + 3 मू.^{2} स. + 3 स.^{2} मू. + स.^{3} = 1

(बायीं तथा दायीं ओर की घटनाओं तथा सम्भावनाओं को जोड़ने पर)

अथवा (मू. + स.)^3 = 1

इसी प्रकार, यदि हम 10 सिक्के उछालें तो मू. स. (मूर्ति तथा सन्) के योग तथा उनकी सम्भावनाएँ (probability) (मू.+स.)^{10} = 1 का विस्तार होगी, अर्थात्–

मू.^{10} + 10 मू.^{9} स. + 45 मू.^{8} स.^{2} + 120 मू.^{7} स.^{3} + 210 मू.^{6} स.^{4} + 252 मू.^{5} स.^{5} + 210 मू.^{4} स.^{6} + 120 मू^{3} स.^{7} + 45 मू.^{2} स.^{8} + 10 मू. स.^{9} + स.^{10} = 1

अर्थात् घटनाओं के घटने के कुल ढंग

1 + 10 + 45 + 120 + 210 + 252 + 210 + 120 + 45 + 10 + 1 = 1024 होंगे। इनमें से,

(1) मू.^{10} होने की सम्भावना होगी $\frac{1}{1024}$

(दस एक साथ मूर्ति आने की सम्भावना)

(2) मू.^{9} स. होने की सम्भावना होगी $\frac{10}{1024}$

(9 पर मूर्ति, 1 पर सन् आने की सम्भावना = 10)

(3) मू.^{8} स.^{2} होने की सम्भावना होगी $\frac{45}{1024}$

(8 पर मूर्ति 2 पर सन् = 45)

(4) मू.^{7} स.^{3} होने की सम्भावना होगी $\frac{120}{1024}$

(7 पर मूर्ति 3 पर सन् = 120)

(5) मू.^{6}स.^{4} होने की सम्भावना होगी $\frac{210}{1024}$

(6 पर मूर्ति 4 सन् = 210)

(6) मू.^{5} स.^{5} होने की सम्भावना होगी $\frac{252}{1024}$

(इसी प्रकार)

(7) मू.^{4} स.^{6} होने की सम्भावना होगी $\frac{210}{1024}$

(इसी प्रकार)

नोट

(8) मू.^{3} स.^{7} होने की सम्भावना होगी $\frac{120}{1024}$

(इसी प्रकार)

(9) मू.^{2} स.^{8} होने की सम्भावना होगी $\frac{45}{1024}$

(दो मूर्ति 8 पर सन् = 45)

(10) मू. स.^{9} होने की सम्भावना होगी $\frac{10}{1024}$

(इसी प्रकार)

(11) स.^{10} होने की सम्भावना होगी $\frac{1}{1024}$

(इसी प्रकार)

इसी प्रकार binomial theorem के आधार पर घटनाओं की सम्भावना निर्धारित होती है।

अब यदि हम मूर्ति और सन् के इन योगों तथा उनकी सम्भावनाओं (1, 10, 45, 120, 210, 252, 210, 120, 45, 10, 1) से ग्राफ तैयार करें तो वह सम-सम्भावना-हिस्टोग्राम (normal probabiliy histogram) कहलायेगा। इसके लिए वक्र के य-यक्ष (x-axis) पर हम मू^{10} स., मू.^{9} स .....आदि योगों को स्थापित करेंगे तथा र-अक्ष (y-axis) पर उनकी सम्भावना-संख्याओं को। इस प्रकार निम्नलिखित हिस्टोग्राम बनेगा:

चित्र 24.4

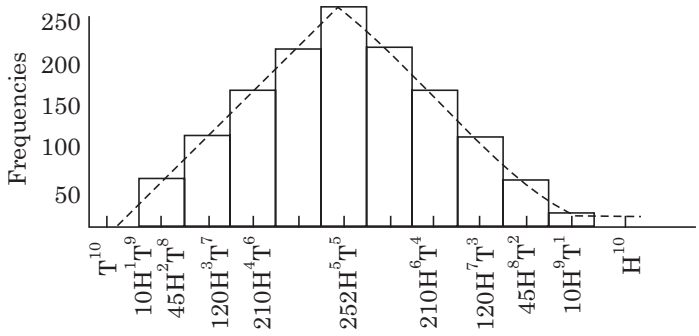

Probability surface obtained from the expansion of $(H + T)^{10}$

उपरोक्त हिस्टोग्राम से एक बात बिल्कुल स्पष्ट है। संख्या 252 बीच की तथा सबसे बड़ी सम्भावना-संख्या है। इसके दोनों ओर संख्याओं का वितरण समान है। एक ओर 210, 120, 45, 10, 1 है तो दूसरी ओर भी 210, 120, 45, 10, 1 ही है। इस प्रकार इस हिस्टोग्राम में 252 के दोनों ओर क्षेत्रफल बराबर है और दोनों ओर के भागों की आकृति भी एक सी है।

उपरोक्त हिस्टोग्राम (मू.स.)^{10} केवल 10 सिक्कों के मू. तथा स. के योगों का ही विस्तार प्रकट करता है। इसीलिये उसमें 10 कोण दिखाई देते हैं। यदि सिक्कों की संख्या (N) असंख्य कर दी जाये तो हिस्टोग्राम में इतने असंख्य कोण

नोट

बनेंगे कि वे दिखाई नहीं देंगे और उनके बिन्दुओं को मिलाने पर एक साल वक्र (smooth curve) बन जायेगा जिसके मध्यबिन्दु के दोनों ओर का क्षेत्रफल उपरोक्त हिस्टोग्राम की भाँति ही बराबर होगा तथा आकृति में भी दोनों भाग एक से होंगे। इसीलिये इस वक्र को सम-सम्भावना-वक्र (normal probability curve) कहते हैं। इसे सम्भावना (probability curve) इसलिये कहते हैं कि घटनाओं के योगों और उनकी सम्भावनाओं (probabilities) के आधार पर इसे तैयार किया जाता है। दूसरे इसलिये भी कहते हैं कि यदि इस वक्र (curve) का मध्यबिन्दु लेकर उसे दो भागों में बाँटें तो दोनों भाग क्षेत्रफल तथा आकृति में एक समान होते हैं। बीच में सबसे अधिक संभावनायें (Probabilities) होती हैं और फिर उसके दोनों ओर संख्याओं का एकसा वितरण होता है, जैसा कि ऊपर के हिस्टोग्राम से स्पष्ट है।

इसी वक्र के आधार पर सम-वितरण (normal distribution) की व्याख्या की जाती है तथा उसका प्रयोग होता है। सम-वितरण की सारी विशेषतायें इसी आधार से ली गई हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. साँख्यिकीय विज्ञान में ..... का बहुत महत्त्व है।
2. समवितरण के आधार पर ही ..... की उपयोगिता, सार्थकता एवं औचित्य निर्धारित होता है।
3. सम-वितरण में मध्यमान, मध्यांक मान तथा बहुलांक मान समवितरण के ..... बिन्दु पर पड़ते हैं।

24.3 समवितरण का प्रयोग (Uses of Normal Distribution)

आगे के दो तीन उदाहरणों से समवितरण का प्रयोग बिल्कुल स्पष्ट हो जायेगा:

उदाहरण 1.

एक समवितरण-स्थित अंक-समूह का M 125 है तथा प्र. वि. (S.D.) = 11 है, तो (अ) 114 और 136 के बीच कुल आँकड़ों में से कितने आँकड़े पड़ेंगे? (ब) कितने आँकड़े 140 से ऊपर पड़ेंगे?

$$M = 125 \text{ प्र. वि. } = 11$$

114 - 136 के बीच अंक प्राप्त करने वालों की संख्या निकालनी है।

(अ) 114 मध्यमान 125 से 11 कम अथवा $-1\ \sigma$ नीचे है। इसी प्रकार 136, मध्यमान 125 से 11 अधिक अथवा $+ 1\ \sigma$ दूर अथवा ऊपर है। अत: 114 - 136 के नीचे आँकड़ों की वही संख्या होगी जो M से $\pm 1\ \sigma$ की सीमा के बीच होगी। चूंकि समवितरण की स्थिति में $M \pm 1\ \sigma$ के बीच 68.26 प्रतिशत आँकड़े पड़ते हैं, अत: 114 - 136 के बीच कुल आँकड़ों का दो तिहाई अथवा 68.26 प्रतिशत आँकड़े होंगे।

(ब) मध्यमान 125 से 140 कुल 15 बड़ा है अथवा 125 से 140 का अंक 15 आँकड़े दूर स्थित है। प्र. वि. (S.D.) 11 से भाग करने पर कहेंगे कि 125 से 140 का अंक $1.36\ \sigma$ की दूरी पर स्थित है। इसलिये मध्यमान $+ 1.36\ \sigma$ (अर्थात् मध्यमान के ऊपर केवल एक ही ओर) 41.31 प्रतिशत आँकड़े पड़ेंगे (तालिका द्वारा)। अत: 140 के ऊपर कुल आँकड़े $50.0 - 41.31 = 8.69$ प्रतिशत अथवा 9% होंगे।

उदाहरण 2.

एक सम-वितरण-स्थित अंक-समूह का Mean 16 है तथा प्र. वि. σ 4 है तो बीच के 75 प्रतिशत आँकड़े किस सीमा के बीच पड़ेंगे।

नोट

बीच के 75 प्रतिशत आँकड़ों के आधे Mean के एक ओर पड़ेंगे तथा आधे दूसरी ओर, अन्यथा सम-वितरण हो ही नहीं सकता अर्थात् 37.5% एक ओर पड़ेंगे और 37.5 प्रतिशत दूसरी ओर। तालिका (A) में देख कर हम पता लगते हैं कि $M + 1.15\ \sigma$ के बीच 37.5 प्रतिशत आँकड़े पड़ते हैं। इसी प्रकार दूसरे 37.5% Mean तथा 1.15 σ के बीच पड़ेंगे। अत: कुल 75% $M \pm 1.15\ \sigma$ के बीच पड़ेंगे। चूंकि $\sigma = 4$, इसलिये 75% आँकड़े $M \pm 1.15 \times 4 = M \pm 4.60$ के बीच पड़ेंगे। $M = 16$ है, इसलिये वे 16 ± 4.6 के बीच पड़ेंगे। अत: यह सीमा 20.6 - 11.4 हुई। 20.6 तथा 11.4 के बीच मध्यस्थ 75 प्रतिशत आँकड़े पड़ेंगे।

24.4 सम-सम्भावना-वितरण-तालिका का प्रयोग (Uses of Normal Probability Distribution Diagram)

किसी वितरण में मध्यमान (Mean) तथा य-यक्ष (x-axis) पर वितरण के किसी प्र. वि. σ के बीच कितने प्रतिशत आँकड़े आते हैं, यह ज्ञात करने के लिये एक तालिका प्रयोग किया जाता है।

पुस्तक के अन्त में तालिका–(A) को देखिये। उसके ऊपर पहली लाइन में लिखा है $\frac{x}{\sigma}$ .00 .02.....09 तथा ऊपर से नीचे स्तंभों में संख्यायें लिखी हैं। पहले स्तंभ में ऊपर से नीचे की ओर प्र. वि. (σ) की दूरी दी गई है जो दशमलव के एक अंक बाद तक की है। यदि हमें म. मा. तथा $1.2\ \sigma$ के बीच आँकड़ों की संख्या देखनी है तो पहले $\frac{x}{\sigma}$ के स्तंभ के नीचे 1.2 का अंक पढ़ेंगे और ऊपर की पहली लाइन में .00 को पढ़कर उसी स्तंभ में नीचे की ओर आयेंगे ठीक 1.2 के आगे। जहाँ दोनों मिलेंगे वह Mean + $1.2\ \sigma$ के बीच आँकड़ों की प्रतिशत संख्या होगी। इसी प्रकार $1.38\ \sigma$ के बीच देखना होगा तो पहले स्तंभ में 1.3 के सामने रेखा खींचेंगे और फिर ऊपर की पहली पंक्ति में .08 देखकर उसी के नीचे स्तंभ में चले आयेंगे। जहाँ 1.3 के सामने वाली रेखा को यह रेखा काटेगी वही आँकड़ों की प्रतिशत संख्या होगी।

दूसरी बात यह याद रखने की है कि तालिका में जो संख्यायें दी गई हैं वे 10,000 में दी गई हैं। अत: प्रतिशत देखना है तो दो अंक बायीं ओर हटाकर दशमलव लगा देंगे।

6. अतिरिक्त उदाहरण प्रश्न

1. $M = 14.4$

प्र. वि. (σ) = 2.5, तो सम्पूर्ण वितरण में 12 - 16 प्राप्तांकों के बीच प्रति हजार कितने विद्यार्थी आयेंगे?

M तथा अंक 12 के बीच σ – दूरी $= \frac{12 - 14.4}{2.5} = \frac{-2.4}{2.5} = -.96\ \sigma$

Mean तथा $-.96\ \sigma$ के बीच प्रतिशत आँकड़ों की संख्या (तालिका से) = 33.15σ दूरी मध्यमान तथा अंक 16 के बीच $= \frac{16 - 14.4}{2.5} = +.64\ \sigma$

मध्यमान तथा $+.64\ \sigma$ के बीच प्रतिशत आँकड़ों की संख्या (तालिका से) = 23.89, अत: 12 - 16 दोनों प्राप्तांकों के बीच कुल प्रतिशत आँकड़े = 33.15 + 23.89 = 57.04

1000 में = $57.04 \times 10 = 570.4$ अर्थात् 570

नोट

2. M = 14.4 σ = 2.5

यदि अंक-वितरण सम हैं तो 1000 में कितने विद्यार्थियों के प्राप्तांकों की 18 से अधिक होने की सम्भावना है?

$$\sigma - \text{दूरी मध्यमान तथा प्राप्तांक 18 के बीच} = \frac{18 - 14.4}{2.5} = \frac{+3.6}{2.5} = + 1.44\ \sigma$$

मध्यमान तथा 1.44 σ के बीच प्रतिशत विद्यार्थियों की संख्या (तालिका से) = 42.51

अत: 18 से ऊपर अंक प्राप्त करने वालों की प्रतिशत संख्या = 50.0 – 42.51 = 7.49 {क्योंकि सम-वितरण में मध्यमान के ऊपर नीचे का प्रत्येक आधा भाग 50% होता है}

अत: 1000 में 18 से ऊपर अंक लेने पर उत्तर पाने वालों की संख्या = 74.9 अथवा 75

परन्तु 18 अंक की अपर सीमा 18.5 लेने पर उत्तर में 25 का अन्तर आयेगा। यदि अपर पूछा जाये तो पूर्णांक की बजाय अपर सीमा को ही लिया जाता है और जहाँ किसी अंक से नीचे के आँकड़ों की संख्या पूछी जाती है वहाँ उस अंक की अधर (lower) सीमा ली जाती है। जैसे–

3. उपरोक्त प्रश्न में 8 से नीचे अंक प्राप्त करने वालों की संख्या निकालनी है।

$$\text{मध्यमान तथा 8 के बीच } \sigma\text{-दूरी} = \frac{7.7 - 14.4}{2.5} - \frac{-6.9}{2.5} = -2.76\ \sigma$$

मध्यमान तथा –2.76 σ के बीच प्रतिशत विद्यार्थी = 49.71 (तालिका)

8 की बजाय 7.5 लेने पर σ -दूरी = 2.76 तथा प्रतिशत आँकड़े = 49.71

अत: 1000 में क्रमश: = 497

7.5 से नीचे = 500 – 497 = 3

4. यदि अंकों के सम-वितरण में

मध्यमान (M) = 14.4

प्र. वि. (σ) = 2.5 तो 15 से अधिक अंक प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की क्या सम्भावना है?

$$\text{मध्यमान तथा 15 प्राप्तांकों अर्थात् } \left(\frac{15.5 - 14.4}{2.5}\right) = .44\ \sigma \text{ दूरी के बीच}$$

आँकड़ों की संख्या = 17.0% (तालिका (A) द्वारा)।

15 से अधिक अंक प्राप्त करने वालों की संख्या = 50 – 17 = 33%

अत: तीन में से एक की सम्भावना है कि उसके प्राप्तांक 15 से ऊपर होंगे।

5. मध्यमान तथा 1.54 σ के बीच कितने आँकड़े आयेंगे?

तालिका (A) में पहले स्तंभ में $\frac{\sigma}{x}$ के नीचे 1.5 देखिये और उसके सामने सीधी रेखा खींचिये। फिर सबसे ऊपर वाली पंक्ति में .04 के नीचे वाले स्तंभ में नीचे की ओर आइये और जहाँ 1.5 के ठीक सामने खींची गई लाइन को यह काटे उस खाने में जो संख्या लिखी है, वह देखिये। यह संख्या 43.83 है। अर्थात् 100 में 43.83 है। यदि पूरे वितरण को 10,000 मानें तो 4383 है। यदि 1 मानें तो .4383 होगी और 10 मानें तो 4.383 होगी।

6. इसी प्रकार मध्यमान तथा –1.73 σ के बीच 45.82 प्रतिशत आँकड़े होंगे। इसमें ऋणात्मक (-) चिन्ह का अर्थ है कि ये आँकड़े म. मा. से कम मान वाले अर्थात् बायीं ओर स्थित होने वाले होंगे।

नोट

7. इसी तरह यदि हमें 1.54 σ तथा –1.73 σ के बीच कुल आँकड़ों की संख्या निकालनी है तो Mean तथा – 1.54 σ और Mean तथा 1.73 σ के बीच के दोनों आँकड़ों को जोड़ देंगे।

अत: कुल आँकड़े = 43.83 + 45.82 = 89.65 प्रतिशत होंगे। सम-वितरण-वक्र में उनकी स्थिति इस प्रकार होगी:

चित्र 24.5

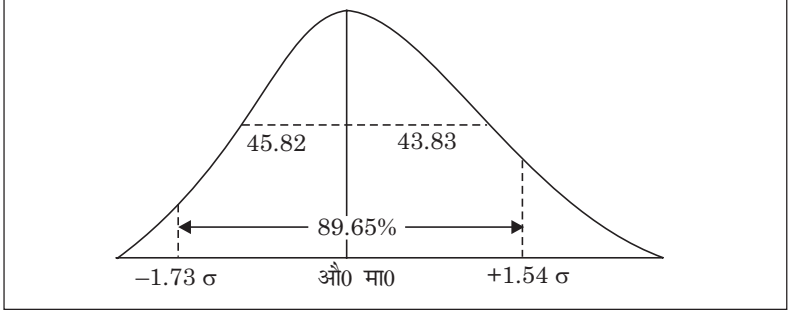

8. इसी प्रकार यदि यह निकालना है कि + 1.54 σ के ऊपर अंक प्राप्त करने वालों की संख्या कितनी होगी तो हम उस स्थिति को चित्र द्वारा इस प्रकार दिखाएँगे।

चित्र 24.6

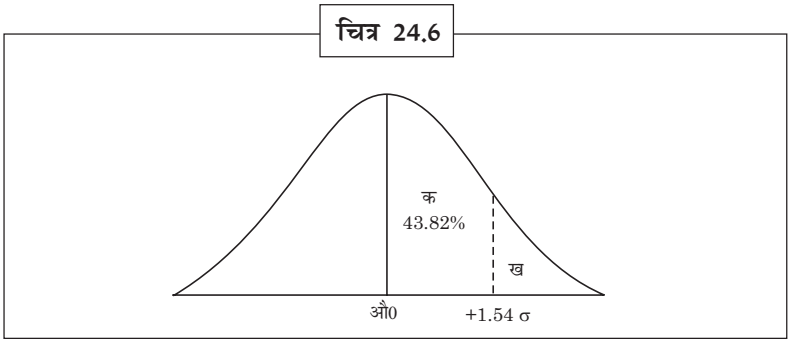

इस आकृति में पूरा क्षेत्र सम-वितरण की हालत में एक इकाई माना जाता है जिसको मध्यमान दो बराबर भागों में बाँटता है। अत: क+ख दोनों पूरे का $\frac{1}{2}$ होगा। यदि पूरे भाग में 100 आँकड़े स्थित हैं तो आधे में अर्थात् क+ख में 50 होंगे। +1.54 σ औसत के दायीं ओर का वह क्षेत्रफल है जिसमें 43.82% आँकड़े आ गये हैं अत: ख भाग में 50.0 – 43.82 = 6.18% होंगे।

यदि पूरे भाग को 1000 मानें तो क + ख भाग में 500 आँकड़े होंगे और तालिका द्वारा क भाग में 4382 होंगे। अत: ख भाग में 61.8 होंगे।

इसी प्रकार औ. के बायीं ओर भी आँकड़ों की संख्या देखी जा सकती है।

संभावना त्रुटि (PROBABLE ERROR)

इसी प्रकार σ के स्थान पर P.E. का प्रयोग भी होता है। P.E. की भी तालिका दी रहती है। उसमें देखकर आँकड़ों की संख्या निकाल सकते हैं। अथवा P.E. को σ में बदल कर फिर आँकड़ों की संख्या निकाली जा सकती है क्योंकि P.E. = .6745 σ के होती है। यदि यह निकालना है कि मध्यमान तथा –2.7P.E. के बीच कितने आँकड़े होंगे तो हम P.E. को σ में बदल लेंगे।

नोट

1 P.E. = .6745 σ

– 2.7 P.E. = 2.7 × .6745 σ = – 1.82 σ

σ की तालिका में मध्यमान तथा 1.82 σ के बीच 46.56% आँकड़े आते हैं। अत: म. मा. तथा – 2.7 P.E. के बीच 46.56% आँकड़े हुये।

9. कक्षा 8 के विद्यार्थियों के इतिहास के प्राप्तांकों का मध्यमान इस समय 40.0 है तथा गणित के प्राप्तांकों का मध्यमान 62.0 है। कुछ महीने पश्चात् पुन: परीक्षा ली जाने पर इतिहास का मध्यमान 52.0 तथा गणित का 72.0 आया, तो विद्यार्थियों ने किस विषय में उन्नति की तथा दूसरे से कितनी अधिक उन्नति की। इतिहास में प्र. वि. (σ) 3.6 तथा गणित का प्र. वि. (σ) = 9.60 है।

	इस समय	कुछ माह पश्चात्	उन्नति
इतिहास का मध्यमान	40.0	52.0	12.0
गणित का मध्यमान	62.0	72.0	10.8
उन्नति σ दूरी में =	(1) इतिहास में = 12/3.60 = 3.33 σ		
	(2) गणित में = 10.8/9.6 = 1.12 σ		

दोनों विषयों की उन्नति को σ-दूरी में बदल लेने पर वे परस्पर तुलनीय (comparable) हो गई। अत: स्पष्ट है कि इतिहास में अधिक उन्नति की है। 3.36/1.12 = लगभग तीन गुना अधिक उन्नति की है।

10. चार प्रश्न अ, ब, स, द में से अ को 50% ब को 60%, स को 70% तथा द को 80%, विद्यार्थी सही-सही करते हैं। अ तथा ब के बीच जो कठिनाई है उसकी स तथा द के बीच की कठिनाई से तुलना कीजिये। यदि वितरण सम है तो चारों प्रश्नों की कठिनता प्र. वि. (σ) में निम्न प्रकार होगी।

चित्र 24.7

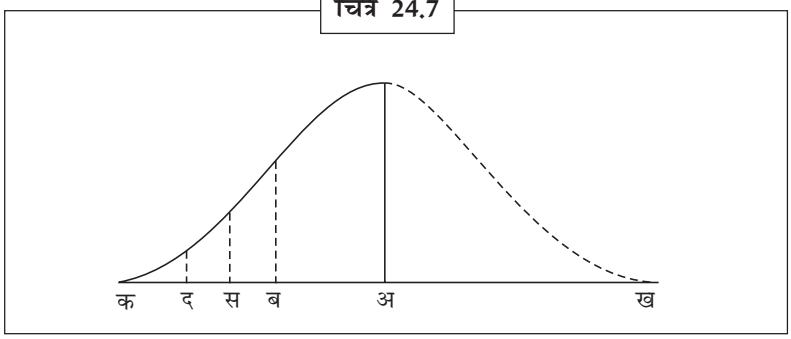

(1) अ को 50% विद्यार्थी सही कर लेते हैं अर्थात् अ σ-पैमाने पर (क ख रेखा पर) अ-बिंदु पर पड़ेगा क्योंकि 50% इधर और 50% भाग उधर रहेगा। अत: यह बिल्कुल उस बिन्दु पर पड़ेगा जहाँ मध्यमान पड़ता है। इसलिये मध्यमान तथा इस बिन्दु की σ-दूरी शून्य होगी।

(2) 'ब' को 60% सही करते हैं तथा 40% नहीं कर पाते। अर्थात् 60% विद्यार्थी ऊपर और 40% नीचे रहे। ख अ तक 50% हो जाते हैं। 60% ऊपर रखने के लिये अ-बिन्दु से नीचे 10% भाग और लेना होगा ब-बिन्दु तक। अत: ब की स्थिति मध्यमान (अ-बिन्दु) से उतनी σ-दूरी नीचे होगी जितनी के बीच 10% आँकड़े आते हैं। तालिका (A) में देखने पर यह –.25 σ आता है।

अ की दूरी = 0.0 σ ब की दूरी = – .25 σ

अन्तर = + .25 σ, अत: अ, ब से +.25 σ अधिक कठिन है।

नोट

इसी प्रकार बिंदु स मध्यमान से 70 – 50 = 20% आँकड़ों की दूरी पर है। 20% आँकड़े .52 σ की दूरी में आते हैं। अत: स, अ से –.52 σ कम कठिन है।

इसी प्रकार 'द', अ से (80 – 50) = 30% अर्थात् –.84 σ कम कठिन है।

स तथा द की कठिनाई का अन्तर = – .84 σ – .52 σ = – .32 σ अर्थात् स, द से –.32 σ अधिक कठिन है।

अत: अ की ब से जो कठिनाई है वह उस कठिनाई से जो स की द से है 1.28 गुनी है $\left(\frac{-.32}{-.25} = 1.28\right)$।

11. एक कक्षा के विद्यार्थियों को अ+, अ, अ–; ब+, ब, ब–; स+, स, स– तथा द ग्रेड (श्रेणियाँ) दी गई हैं। यदि तत्संबंधी योग्यता समवितरित है तो 500 में से कितने विद्यार्थी प्रत्येक श्रेणी में आयेंगे?

इस प्रश्न में सम-वितरण के सम्पूर्ण विस्तार को 10 श्रेणियों में बाँटा गया है। सम-वितरण का सम्पूर्ण विस्तार मध्यमान के दोनों ओर 3 σ तक होता है। अत: कुल विस्तार = 6 σ।

6 σ के विस्तार को 10 श्रेणियों में बाँटा गया है।

अत: प्रत्येक श्रेणी का विस्तार-क्षेत्र = $\frac{6}{10}$ σ = .60 σ होगा। नीचे के चित्र में यह स्थिति इस प्रकार होगी:

चित्र 24.8

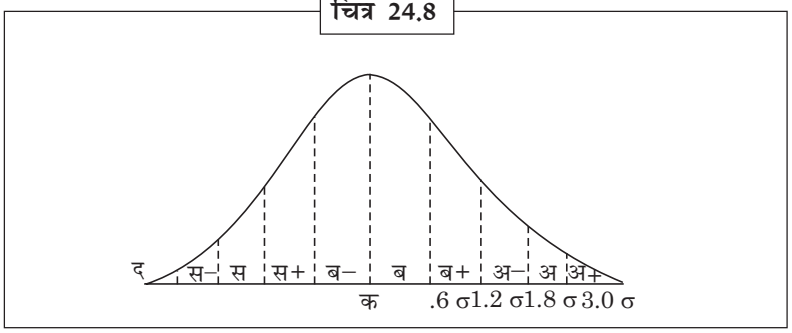

मध्यमान ठीक बीच में क बिंदु पर होगा। क से ब .6 σ दूर है। ब से ब +.6 σ दूर है। अत: ब की दूरी क से (.6 + .6) = 1 .2 σ। इसी प्रकार ख-की दूरी क से 1.8 σ अ की 1.8 + .6 = 2.4 σ तथा अ+ की 2.4 σ + .6 σ = 3.0 σ हुई।

(1) मध्यमान अर्थात् क बिंदु तथा .6 σ के बीच आँकड़ों की संख्या (तालिका A से) = 22.57%। यही ब श्रेणी प्राप्त करने वाले विद्यार्थियों की संख्या होगी। 500 में यह संख्या होगी

$$= 22.57 \times \frac{500}{100} = 112.85 \text{ अथवा } 113.$$

चूंकि मध्यमान के दोनों ओर वितरण एक सा होता है, अत: ब-श्रेणी प्राप्त करने वालों की संख्या भी 113 होगी।

(2) इसी प्रकार मध्यमान तथा ब+ के बीच की दूरी 1.2σ के अन्तर्गत आँकड़ों की संख्या तालिका से 38.49%। परन्तु मध्यमान तथा ब के बीच 22.57% आते हैं। अत: केवल ब- श्रेणी प्राप्त करने वालों की संख्या = 38.49 – 22.57 = 15.92 अथवा 16। यह 500 में = 80। इतने ही स+ श्रेणी वालों की संख्या होगी।

(3) इसी प्रकार मध्यमान तथा अ- के बीच की दूरी 1.8 σ है और इसके बीच आँकड़ों की संख्या = 46.41% है, अत: अ-श्रेणी प्राप्त करने वालों की संख्या 46.41 – 38.49 = 7.92 अथवा 8%, अत: 500 में 8 × 5 = 40। इतनी ही संख्या मध्यमान के बायीं ओर स श्रेणी प्राप्त करने वालों की भी होगी।

नोट

(4) अ तथा स- प्राप्त करने वालों की प्रतिशत संख्या = मध्यमान तथा अ अथवा स- के बीच की दूरी (2.40 σ) के बीच आने वाले आँकड़ों का प्रतिशत होगी। मध्यमान तथा स- के बीच आने वाले आँकड़े = 49.18 – 46.41 = 2.77, ये 500 में = 2.77 × 5 = 13.85 = 14

(5) इसी प्रकार द तथा अ+ श्रेणी प्राप्त करने वालों की संख्या = 49.865 (3.0 σ तक आने वाले आँकड़ों की प्रतिशत संख्या) -49.18 (2.4 σ तक आने वाले आँकड़े) =.685। 500 में = 5 × .685 = 3.425 अथवा 3। इस प्रकार 500 विद्यार्थियों में से प्रत्येक श्रेणी के अन्तर्गत आने वाले विद्यार्थियों की संख्या होगी:

द,	स-,	स,	स+,	ब-,	ब,	ब+,	अ-,	अ,	अ+
3,	14,	40,	80,	113,	113,	80,	40,	13,	3

12. मान लीजिये 500 विद्यार्थियों की बुद्धि-लब्धि (I.Q.) का वितरण सम (normal) है तथा उसका मध्यमान 72 है प्र. वि. (σ) 10 है। इनमें से 10% को अ श्रेणी, 30% को ब, 40% को स, 15% को द तथा 5% को य श्रेणी देनी है। तो प्रत्येक दो श्रेणियों का विभाजन करने वाली बुद्धि-लब्धि (I.Q.) का पता लगाइये।

चित्र 24.9

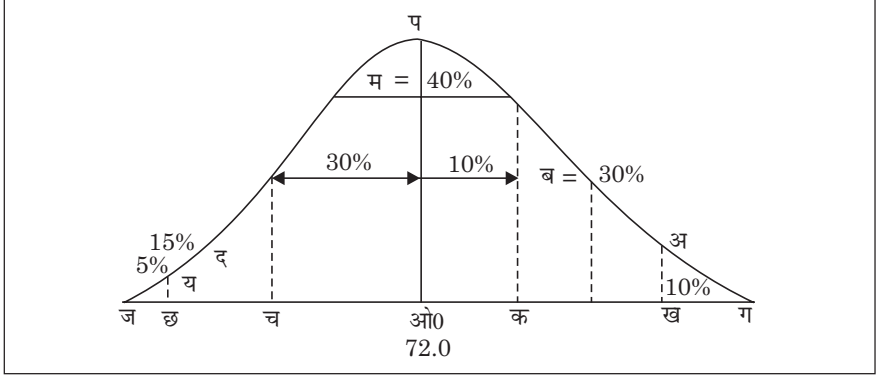

मध्यमान समवितरण के ठीक दो बराबर भाग करता है। अत: मध्यमान पर रेखा वक्र के ठीक बीच में पड़ेगी। ऊपर का 10% भाग अ के अन्तर्गत तथा 30% ब के अन्तर्गत आ जाता है। मध्यमान से ग बिंदु तक पूरा भाग 50% है। क से ग तक यह होगा (30 + 10) = 40% हो अ तथा ब के अन्तर्गत आ गया। अत: मध्यमान तथा क के बीच 50 – 40 = 10% रह गया।

इसी प्रकार छ से ज तक 5% य के अन्तर्गत तथा च से छ तक 15% द के अन्तर्गत आ गया। कुल भाग य तथा द के अन्तर्गत = 5 + 15 = 20%। मध्यमान से ज तक पूरा आधा भाग = 50%। अत: मध्यमान और च के बीच का भाग = 50 – 20 = 30%।

मध्यमान के दोनों ओर च तथा क तक स भाग रह गया जिसमें बायीं ओर 30% तथा दाईं ओर 10% आ जाता है।

प्रत्येक दो श्रेणियों को विभाजित करने वाले I.Q. ख, क, च तथा छ बिन्दुओं पर स्थित होंगे।

(1) क, मध्यमान से उतनी σ-दूरी पर है जितने के बीच 10% आँकड़े आते हैं। तालिका से 10% की σ-दूरी = .25 σ, परन्तु σ = 10। अत: इस बिन्दु पर जो I.Q. होगा वह होगा मध्यमान .25 × 10 = 2.5 I.Q. ऊपर अर्थात् 72 + 2.5 = 74.5 अथवा 75।

नोट

(2) इसी प्रकार 'ख' मध्यमान से उतनी σ-दूरी पर है जितनी σ-दूरी के बीच (10% + 30%) = 40% आँकड़े आते हैं। तालिका से यह दूरी 1.28 σ है। चूंकि $\sigma d = 10$ तथा मध्यमान = 72 है, अत: इस बिंदु पर स्थित होने वाला I.Q. = 72 + 1.28 × 10 = 84.8 या 85 होगा।

(3) इसी प्रकार च बिंदु पर स्थित होने वाला I.Q. मध्यमान से बायीं ओर .84 σ की दूरी पर है क्योंकि 30% आँकड़े मध्यमान तथा .84 σ के बीच आते हैं। अत: इस बिन्दु पर स्थित होने वाला I.Q. = 727.84 × 10 = 72 – 8.4 = 63.6 या 64।

(4) 'द' बिंदु मध्यमान से (30 + 15) = 45% विस्तार-क्षेत्र की दूरी पर है। यह दूरी तालिका A में 1.645 σ है। अत: इस बिन्दु पर स्थित होने वाला I.Q. = 72 – (1.645 ×10) = 72 – 16.45 = 55.55 या 56।

अत: चारों विभाजन-बिन्दुओं पर स्थित होने वाले I.Q. होंगे 56, 64, 75, 85-अर्थात् 85 से ऊपर I.Q. वाले अ श्रेणी में हैं, 75 से ऊपर I.Q. वाले ब श्रेणी में, 64 से ऊपर वाले स श्रेणी में, 56 से ऊपर वाले द श्रेणी तथा 56 से कम वाले य श्रेणी में।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

4. सम-वितरण में वक्र के दोनों ओर के अर्ध भाग बराबर होते हैं।
5. धनात्मक स्क्यू में अधिकतर आँकड़े मध्यमान के दायीं ओर रहते हैं।
6. स्क्यू चार प्रकार का होता है।
7. कुकुद्वक्रता, वक्र के चपटा तथा शिखरीय होने की स्थिति की ओर संकेत करती है।

24.5 आँकड़ों के वितरण की विषमता का परिमापन (Measuring Divergence From Normality)

नोट्स समवितरण (normal distribution) में मध्यमान, मध्यांक मान तथा बहुलांक (mode) तीनों एक ही बिन्दु पर पड़ते हैं तथा वक्र के दोनों ओर के अर्धभाग एक से होते हैं।

उनमें सममिति (symmetry) होती है जैसा कि पहले समवितरण की विशेषताओं के अन्तर्गत बताया गया है। यदि वितरण-वक्र इससे भिन्न स्थिति में हो तो उसे विषम वितरण कहते हैं। विषम-वितरण (abnormal) दो प्रकार का हो सकता है:-

(क) स्क्यू (Skew)

(ख) कुर्टोसिस (Kurtosis) अथवा ककुद्वक्रता

(क) स्क्यू (Skew)

स्क्यू विषमता में मध्यमान तथा मध्यांक मान (Mdn) दोनों एक स्थान पर न पड़कर अलग-अलग पड़ते हैं तथा भ्वाकृष्टि-केन्द्र (center of gravity) दायीं अथवा बायीं ओर हटा हुआ होता है। समवितरण में मध्यमान तथा

नोट

मध्यांक-मान (Mdn) दोनों का मान एक ही होता है तथा विषमता शून्य होती है। जितना ही एक-दूसरे के समीप होंगे उतनी ही स्क्यू-मात्रा कम होती जायेगी तथा उतना ही वितरण कम होगा। स्क्यू भी दो प्रकार का होता है:

(1) धनात्मक स्क्यू (Positive Skew)

(2) ऋणात्मक स्क्यू (Negative Skew)

(1) धनात्मक स्क्यू (Positive Skew): धनात्मक स्क्यू में अधिकतर आँकड़े मध्यमान के बायीं ओर रहते हैं तथा दायीं ओर थोड़े आँकड़े रहते हैं और दूर तक फैले होते हैं जैसा कि नीचे की आकृति में दिखाया गया है। अर्थात् मध्यमान से कम मान वाले आँकड़े संख्या में बहुत अधिक होते हैं तथा उससे अधिक मान वाले आँकड़े कम होते हैं, पर वे मध्यमान से बहुत अधिक दूर तक फैले रहते हैं। दूसरे धनात्मक स्क्यू में मध्यांक मान (Mdn) मध्यमान के बायीं ओर पड़ता है।

चित्र 24.10

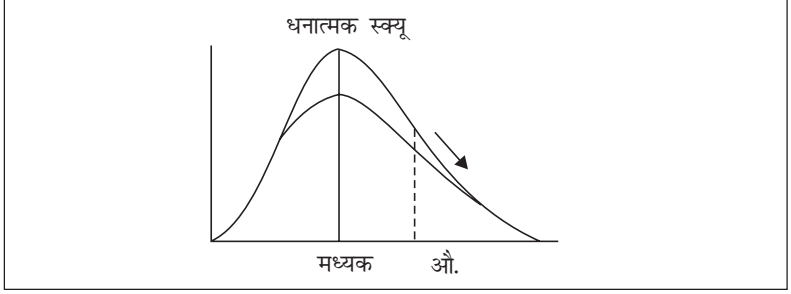

(2) ऋणात्मक स्क्यू (Negative Skew): इस स्थिति में अधिकतर आँकड़े मध्यमान के दाहिनी ओर एकत्रित हो जाते हैं। अर्थात् मध्यमान से अधिक मान वाले आँकड़ों की संख्या अधिक होती है तथा वे एक-दूसरे के पास सटे हुये होते हैं। दूसरे इसमें मध्यांक मान (Mdn) मध्यमान के दायीं ओर पड़ता है अर्थात् मध्यांक का मान मध्यमान से अधिक होता है। नीचे के चित्र से यह स्पष्ट है।

चित्र 24.11

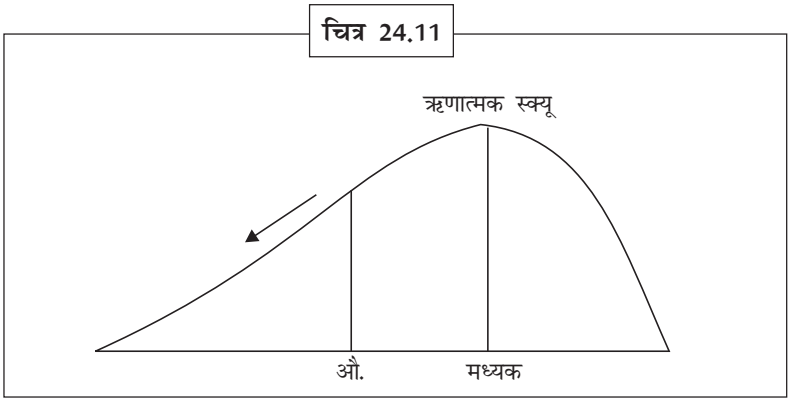

स्क्यू-धर्मता का परिमाप (Measure of Skewness): स्क्यू-विषमता का सूचकाँक (index) निम्नलिखित सूत्र द्वारा निकाला जाता है:

(1) $$SK = \frac{3(Mean - Mdn.)}{\sigma}$$

दूसरा सूत्र शतांशीय मान द्वारा निकालने का है:

(2) $$SK = \frac{P_{90} + P_{10}}{2} - P_{50}$$

नोट

दोनों सूत्र द्वारा निकाले गये परिणामों में जितनी ही विषमता (skewness) अधिक होगी उतना ही अन्तर अधिक होगा। अत: वे परस्पर तुलनीय नहीं हैं।,

(ख) कुकुद्वक्रता (Kurtosis)

कुकुद्वक्रता (Kurtosis), वक्र (curve) के चपटा तथा शिखरीय (peaked) होने की स्थिति की ओर संकेत करती है। सम-वितरण-वक्र को जितना चपटा तथा ऊँचा होना चाहिये यदि उससे अधिक चपटापन अथवा शिखरीयता (peakedness) उसमें पाई जाती है तो वह कुकुद्वक्रता के अन्तर्गत आ जाता है।

सम-वितरण-वक्र को मेसोकुर्टिक (Mesokurtic) भी कहते हैं।

जिस कुकुद्वक्रता की ऊँचाई समवक्र (normal curve) की ऊँचाई से अधिक होती है उसे लैप्टोकुर्टिक (Leptokurtic) कहते हैं।

जिस कुकुद्वक्रता का चपटापन समवक्र के चपटेपन से अधिक होता है उसे प्लैटीकुर्टिक (Platykurtic) कहते हैं। नीचे के चित्र में ये तीनों स्थितियाँ दिखाई गई हैं:

चित्र 24.12

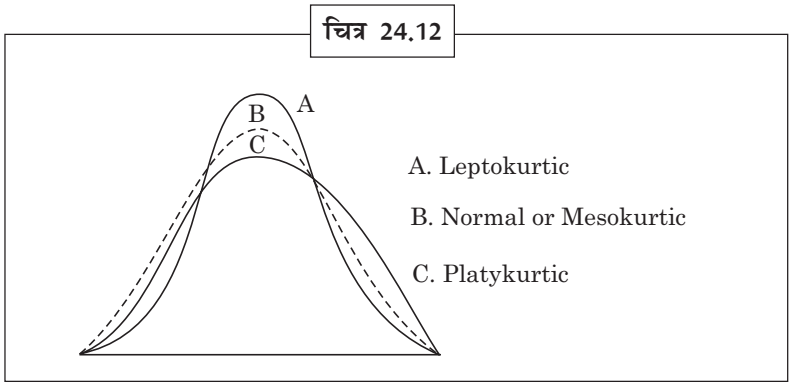

कुकुद्वक्रता का परिमाप (Measure of Kurtosis)

कुर्टोसिस के निकालने का सूत्र निम्नलिखित है: $Ku = \frac{Q}{P_{90} - P_{10}}$

समवितरण-वक्र की कुकुद्वक्रता .263 होती है। यदि किसी वक्र में वह इससे अधिक है तो वितरण लैपटोकुर्टिक होता है।

टास्क कुकुद्वक्रता किसे कहते हैं?

(ग) अंक-वितरण के विषम होने के कारण

अंकों का कोई वितरण सम न होकर विषम (non-normal) क्यों हो जाता है इसके कई कारण हो सकते हैं। मनोवैज्ञानिक तथा शैक्षिक-परीक्षणों में इन कारणों को जानना भी आवश्यक होता है। निम्नलिखित दशाओं में स्क्यू अथवा कुकुद्वक्रता की स्थिति उत्पन्न हो सकती है:

1. प्रतिचयन (Sample)

(1) किसी भी गुण अथवा विशेषता का जब हम परिमापन करते हैं तो हम उन गुणधारी अथवा विशेषताओं-धारी वस्तुओं तथा व्यक्तियों की सृष्टि (population) में से केवल कुछ सीमित संख्या के एक या दो न्यादर्श

नोट

(sample) ले लेते हैं। उन्हीं के गुणों का परिमापन करके उनके परिणामों को सम्पूर्ण सृष्टि पर लागू कर देते हैं। ऐसा इसलिए करते हैं कि सारी सृष्टि का परिमापन असम्भव होता है।

क्या आप जानते हैं विषम-वितरण दो प्रकार का होता है–स्क्यू और कुकुद्वक्रता।

इस न्यादर्श की अपनी विशेषताओं पर ही हमारे परिणामों की शुद्धता तथा यथार्थता निर्भर रहती है। अत: जब यह चयन ठीक नहीं होता अथवा उसमें कोई महत्त्वपूर्ण दोष आ जाता है तो परिमापांकों का वितरण भी सम नहीं हो पाता। उदाहरण के लिए यदि हमारे न्यादर्श में अधिकतर बालक कुशाग्र-बुद्धि अथवा मन्द-बुद्धि वाले होंगे तो उनके बुद्धि-परिणामों के आँकड़ों का वितरण सम नहीं होगा। अत: स्पष्ट है कि न्यादर्श इस प्रकार का हो कि उसमें परिमाप-संबंधी गुण अथवा विशेषता का वितरण भी सम हो; अर्थात् न उस गुण के अधिक मात्रा-धारी हों और न एकदम कम अर्थात् सभी प्रकार के हों।

(2) वस्तुओं अथवा व्यक्तियों की गुण-मात्रा के वितरण का ही नहीं बल्कि उनकी संख्या का भी प्रभाव उनके परिमापांकों के वितरण पर पड़ता है। यदि न्यादर्श बहुत छोटा है अर्थात् उसमें बहुत कम वस्तुओं अथवा व्यक्तियों का परिमापन किया जा रहा है, तो भी वितरण सम नहीं हो पाता।

(3) बहुत से अन्य वाह्य प्रभाव भी जिनका परिमाप-संबंधी विशेषता से संबंध होता है, परिमापांकों के वितरण में विषमता उत्पन्न कर देते हैं जैसे बहुत अधिक आयु, सामाजिक स्तर, भाषा-ज्ञान आदि ऐसे तत्व हैं जिनका संबंध बुद्धि से है। यदि न्यादर्श बहुत अधिक उच्च अथवा निष्ठ चयन करते समय उनका ध्यान न रखा गया और किसी एक की उसमें प्रधानता आ गई तो परिमापांकों के वितरण में स्क्यूनेस अथवा कुकुद्वक्रता आ सकती है।

2. अशुद्ध तथा अनुपयुक्त परीक्षाएँ (Tests)

दूसरा कारण है उन परीक्षाओं का प्रयोग जो उस प्रतिचयन के लिये उपयुक्त नहीं है तथा जिनका निर्माण भी सही तरीके से नहीं हुआ है।

(1) अनुपयुक्त परीक्षाएँ या तो अधिक कठिन होंगी या सरल। फलस्वरूप परिमापांक या तो वक्र के बायीं ओर अधिक रहेंगे या दायीं ओर। इसलिये वितरण सम (normal) नहीं होगा। यदि एक 12 वर्ष की अवस्था वाला टेस्ट आठ वर्ष के बालकों अथवा 9 वर्ष के बालकों को दिया जाता है तो परिमापांक-वितरण सम नहीं होगा। पहली हालत में वह धनात्मक (positive) स्क्यू होगा और दूसरी में ऋणात्मक (negative) स्क्यू होगा।

सावधानी यदि परीक्षा का निर्माण (test construction) ठीक नहीं हुआ है तो वह विश्वसनीय (reliable) तथा यथार्थ नहीं होगी। अत: जो परिमापांक आयेंगे, हो सकता है उनका वितरण सम न हो।

(2) इसी प्रकार यदि परिक्षाओं का प्रशासन (administration of tests) ठीक प्रकार नहीं हुआ है तो भी वितरण-विषमता उत्पन्न हो सकती हैं।

24.6 सारांश (Summary)

- साँख्यिकी विज्ञान में सम-वितरण का बड़ा महत्त्व है। कई स्थानों पर सम-वितरण का प्रयोग बड़े काम का होता है। सम-वितरण के आधार पर ही हमारे मध्यमान की उपयोगिता, सार्थकता तथा औचित्य निर्धारित होता है।

नोट

- सम-वितरण में निहित प्रतिशत संख्या और सीमा के द्वारा हम कुल आँकड़ों की स्थिति जान लेते हैं। यह सम-वितरण की एक बहुत बड़ी विशेषता है तथा इसकी बहुत बड़ी उपयोगिता है।
- सम-वितरण में मध्यमान, मध्यांक मान तथा बहुलांक मान वितरण के मध्य बिन्दु पर पड़ते हैं और उनका मान भी बराबर होता है।
- सम-वितरण की यह विशेषता सम्भावना-सिद्धांत (theory of probability) पर आधारित है। सम्भावना सिद्धांत का साँख्यिकी-विज्ञान में ही नहीं बल्कि सभी विज्ञानों में बड़ा महत्त्व है।

24.7 शब्दकोश (Keywords)

1. **कुकुदवक्रता**–वक्र के चपटा तथा शिखरीय होने की स्थिति को कुकुद्वक्रता कहते हैं।
2. **तालिका**–सारणी, नाम सूची, टेबल बनाना।

24.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. सम-वितरण से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।
2. सम-संभावना वक्र किसे कहते हैं? सोदाहरण समझाइए।
3. सम-संभावना वितरण-तालिका का प्रयोग किस-प्रकार किया जाता है?
4. आँकड़ों के वितरण की विषमता से आप क्या समझते हैं?

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. सम-वितरण	2. मध्यमान	3. मध्य	4. सत्य
5. असत्य	6. असत्य	7. सत्य	

24.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
2. शैक्षिक तकनीकी–*एस. एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शिक्षा अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
4. शिक्षा तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 25 : विचलन के मापक: क्यूडी, एमडी, एसडी (Measures of Dispersion QD, MD, SD)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

25.1 विचलन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Dispersion)

25.2 विचलन मापकों के प्रकार (Kinds of Dispersion Measures)

25.3 चतुर्थांश विचलन (Quartile Deviation): QD

25.4 माध्य विचलन (Mean Deviation): MD

25.5 मानक विचलन (Standard Deviation): SD

25.6 विचलन मानों का प्रयोग (Uses of Standard Deviation)

25.7 सारांश (Summary)

25.8 शब्दकोश (Keywords)

25.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

25.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- विचलन का अर्थ, परिभाषा एवं प्रकारों को समझने में;
- चतुर्थांश एवं माध्य विचलन को समझने में;
- मानक विचलन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

विचलन वह गुण है जिससे यह ज्ञात होता है कि पदों के मान उनके मध्यमानों से किस सीमा तक विचलित हैं। माध्य मूल्यों (माध्य, मध्यांक व बहुलांक) से संपूर्ण श्रेणी की केन्द्रीय प्रवृत्ति का पता लग जाता है परन्तु इसके द्वारा श्रेणी के विभिन्न पद मूल्यों का पूर्ण तथा निश्चित ज्ञान उस अवस्था में नहीं हो पाता है जब मध्यमान तथा अन्य

नोट

पदमूल्यों में अधिक अंतर होता है। अत: ऐसी दशाओं में किसी ऐसे माप (Measures) की आवश्यकता पड़ती है जो अधिक-से-अधिक पदमूल्यों की जानकारी करा दे अर्थात् पदमूल्यों का मध्यमान से कितना विचलन है। इस बिखराव को ही विचलन या विक्षेपन का मापक कहते हैं।

25.1 विचलन का अर्थ एवं परिभाषा (Meaning and Definition of Dispersion)

सामान्य अर्थ में किसी समूह के अलग-अलग प्राप्तांकों का उस समूह के प्रतिनिधि मान अथवा केन्द्रीय मान से अन्तर या फैलाव को ही उस समूह का विचलन कहते हैं।

(The measure of scatter or spread of the separate scores around their central tendency is called the measure of variability or dispersion.)

कुछ विशिष्ट परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

1. क्रो व क्रो (Crow and Crow)– "जिस सीमा तक प्राप्तांकों में, औसत या केन्द्रीय प्रवृत्ति की ओर केन्द्रित होने की प्रवृत्ति होती है या जिस सीमा तक वे अपने को फैलाते हैं, उसको उनकी विचलन-शीलता कहते हैं।"

"The extent to which cases tend to gather around the average or central tendency or the extent to which they disperse themselves is called their variability or deviation."

2. बोरिंग, लैंगफील्ड एवं वेल्ड (Boring, Langfeld and Weld)– "विचलन के मापक हमें यह बताते हैं कि आँकड़े अपने मध्यमान से कितनी दूर तक फैले हुए हैं।"

"Measures of variability tell us how widely the data scatter about their mean."

25.2 विचलन मापकों के प्रकार (Kinds of Dispersion Measures)

विचलन या फैलाव (Spreadness or dispersion) ज्ञात करने के लिए सांख्यिकी में मुख्य रूप से चार मापकों का प्रयोग किया जाता है–

1. प्रसार (Range)
2. चतुर्थांश विचलन (Quartile Deviation)
3. माध्य विचलन (Mean Deviation)
4. मानक विचलन (Standard Deviation)

1. प्रसार (Range)

प्रसार, विचलन का सबसे सरल मापक है। इसके द्वारा बिना किसी गणना के एक ही दृष्टि में बताया जा सकता है कि दो समूहों में से कौन-सा समूह समजातीय (Homogeneous) है अथवा कौन-सा समूह विषमजातीय (Heterogeneous) है।

प्रसार का संकेत चिह्न (Symbol) R है तथा इसका सूत्र है–

$$R = \text{Maximum score} - \text{Minimum score.}$$

नोट

उदाहरण मान लीजिये गणित में दस विद्यार्थियों के प्राप्तांक इस प्रकार हैं–55, 52, 50, 48, 90, 45, 60, 40, 43, 44 तो इनका प्रसार होगा = 90 – 40 = 50.

इस मापक की कुछ परिसीमाएँ भी हैं, इसीलिए प्रसार का प्रयोग बहुत ही सीमित रूप से करना चाहिए। इस मापक की सबसे बड़ी सीमा यह है कि इसमें छोरों (Ends) की संख्याओं को ही महत्त्व दिया जाता है, समूह के अन्य अंकों को नहीं। अत: विचलन का यह मापक समूह के आन्तरिक विसर्जन का कोई ज्ञान नहीं करवाता।

दूसरे, जब N की संख्या कम हो अथवा आवृत्ति वितरण में खाली स्थान (gaps) अधिक हों, तो ऐसी स्थिति में प्रसार, विचलन का सही माप नहीं कर पाता। अत: ऐसी स्थिति में हमें इस मापक का प्रयोग नहीं करना चाहिये।

सावधानी जब दो नमूनों की संख्या भिन्न-भिन्न हों, तो विचलनों की तुलना करने के लिए प्रसार का प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसी स्थिति में N की संख्या बढ़ने के साथ-साथ प्रसार के बढ़ने की भी अधिक सम्भावना रहती है।

25.3 चतुर्थांश विचलन (Quartile Deviation): QD

चतुर्थांश विचलन, विस्तार विचलन का एक सुधरा हुआ रूप है। (It is an improvement over range deviation.) प्रसार मापक के अन्तर्गत केवल छोरों पर स्थित महत्तम व न्यूनतम अंकों पर ही ध्यान दिया जाता है, वितरण के मध्य अंकों को कोई महत्त्व नहीं दिया जाता, जिससे समूह की समजातीयता के बारे में सही जानकारी नहीं मिल पाती। चतुर्थांश विचलन में इस कमी को दूर करने की दृष्टि से मध्य के पचास प्रतिशत अंकों को महत्त्व दिया जाता है। वितरण के ऊपर के 25% तथा नीचे के 25% अंकों को महत्त्व नहीं दिया जाता है।

इसका संकेत चिह्न Q है तथा सूत्र अग्रांकित है–

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2} = \frac{P_{75} - P_{25}}{2}$$

चित्र की सहायता से इसे और अधिक स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है–

चित्र 25.1

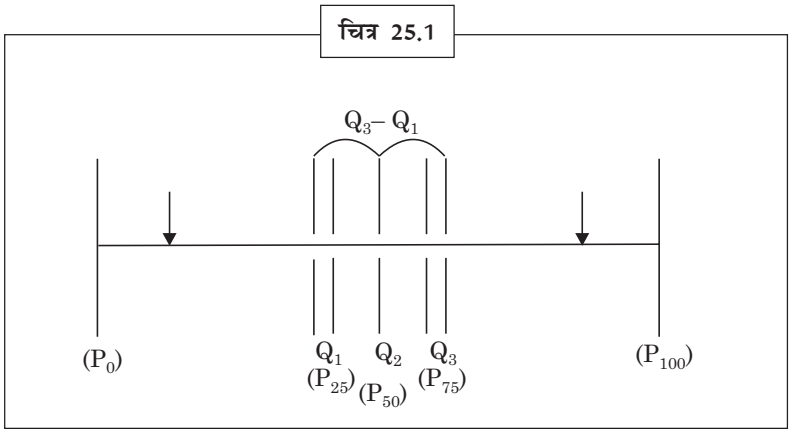

चतुर्थांश विलचन को Semi-inter Quartile Range भी कहा जाता है। कुछ विद्वानों ने इसे इस प्रकार परिभाषित किया है–

नोट

नोट्स

स्किनर (Skinner): "चतुर्थांश वे तीन बिन्दु हैं, जो प्राप्तांकों के वितरण को चार बराबर भागों में विभाजित करते हैं।" "Quartiles are the three points that divide a distribution into four equal parts."

ओडेल (Odell): "चतुर्थांश विचलन या अर्द्ध-अन्तर चतुर्थांश प्रसार, प्रथम और तृतीय चतुर्थांशों के बीच की आधी दूरी होती है।"

"The Quartile deviation or semi-inter Quartile Range is one-half of the distance between the first and third Quartiles."

चतुर्थांश विचलन ज्ञात करना (Calculation of Quartile Deviation: QD)

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों से चतुर्थांश ज्ञात कीजिए।

तालिका 25.1

S.No.	*C.I.*	*f*	*Cf*	
1.	40–42	5	50	
2.	37–39	8	45	← Q_3
3.	34–36	9	37	
4.	31–32	10	28	
5.	28–30	7	18	← Q_1
6.	25–27	5	11	
7.	22–24	4	6	
8.	19–21	2	2	
		N = 50		

Now, $$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2}$$

and $$Q_1 = L + \left(\frac{\frac{N}{4} - f_b}{f_a}\right) \times \text{C.I. and } Q_3 = L + \left(\frac{\frac{3N}{4} - f_b}{f_a}\right) \times \text{C.I.}$$

जहाँ Q_1, Q_3 = समूह का प्रथम तथा तृतीय चतुर्थांश

L = उस वर्गान्तर की निम्न सीमा जिसमें $Q_1(P_{25})$ अथवा $Q_3(P_{75})$ स्थित है।

f_b = उन सभी वर्गान्तरों की आवृत्तियों का योग जो Q_1 अथवा Q_3 वर्गान्तर से नीचे (छोटे) स्थित हैं।

नोट

f_a = Q_1 अथवा Q_3 वर्गान्तर की आवृत्ति।

C.I. = वर्गान्तर की सीमा।

उपरोक्त उदाहरण से Q_1 अर्थात् P_{25} मान इस प्रकार है–

$$Q_1 = 27.5 + \frac{(12.5 - 11)}{7} \times 3$$

$$= 27.5 + \frac{(1.5)}{7} \times 3$$

$$= 27.5 + \frac{(4.5)}{7}$$

$$= 27.5 + .64$$

$$= 28.14 \left(\text{Note } \frac{N}{4} = \frac{50}{4} = 12.5 \right)$$

इसी प्रकार,

$$Q_3 = 36.5 + \frac{(37.5 - 37)}{8} \times 3$$

$$= 36.5 + \frac{(0.5)}{8} \times 3$$

$$= 36.5 + \frac{1.5}{8}$$

$$= 36.5 + .19$$

$$= 36.69$$

Hence,

$$Q = \frac{Q_3 - Q_1}{2} = \frac{36.69 - 28.14}{2}$$

$$= \frac{8.55}{2}$$

$$= 4.28 \quad \textbf{Ans.}$$

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. किसी समूह के अलग-अलग प्राप्ताकों का उस समूह के केन्द्रीय मान से अन्तर या फैलाव को ही उस समूह का ..... कहते हैं।
2. विचलन ज्ञात करने के लिए ..... में मुख्य रूप से चार मापकों का प्रयोग होता है।
3. चतुर्थांश विचलन ..... विचलन का एक सुधरा हुआ रूप है।

25.4 माध्य विचलन (Mean Deviation) : MD

संकेत चिह्न (Symbol) = AD or MD

माध्य विचलन का अर्थ स्पष्ट करते हुए **गैरेट (Garrett)** लिखते हैं–**"औसत विचलन या माध्य विचलन किसी पदमाला में विभिन्न प्राप्तांकों का उनके माध्यमान से विचलनों का औसत होता है।"**

नोट

"The Average Deviation or Mean Deviation (AD or MD) is the mean of the deviations of all the separate scores in a series taken from their mean (occasionally from the median or mode). In averaging deviations to find the A.D., no account is taken of signs and all deviations whether plus or minus are treated as positive."

—Garrett, 1958

माध्य विचलन, माध्य से भिन्न-भिन्न प्राप्तांकों के विचलनों का मध्यमान है। माध्य विचलन ज्ञात करने में हम मध्यमान और प्राप्तांकों में से उनके अन्तर को ज्ञात करते हैं। हम मध्यमान को वास्तविक प्राप्तांकों में से न तो घटाते हैं और न ही हम प्राप्तांकों को मध्यमान में से घटाते हैं, बल्कि हम मध्यमान तथा प्राप्तांकों का अन्तर मालूम करते हैं। यही कारण है कि हम चिह्नों की ओर कोई ध्यान नहीं देते। दरअसल हमारा तात्पर्य तो केवल मात्र मध्यमान से प्राप्तांकों का विचलन, दूरी या फैलाव ज्ञात करना है। Plus (+) तथा Minus (–) चिह्नों की ओर ध्यान न देना ही माध्य विचलन की सबसे बड़ी सीमा है और इसीलिए सांख्यिकी में इसका बहुत कम प्रयोग किया जाता है।

माध्य विचलन दो प्रकार के आँकड़ों का निकाला जाता है–

1. अवर्गीकृत आँकड़े (Ungrouped data)
2. वर्गीकृत आँकड़े (Grouped data)

1. अवर्गीकृत आँकड़े का माध्य विचलन निकालना (Mean Deviation from Ungrouped Data): अवर्गीकृत आँकड़ों का माध्य विचलन निकालने में प्रयुक्त सूत्र निम्नलिखित हैं–

$$\text{M.D.} = \frac{\Sigma |d|}{N}$$

जहाँ, M.D. = माध्य विचलन

d = किसी प्राप्तांक का मध्यमान से अन्तर।

$|d|$ = बिना चिह्नों का ध्यान दिए विचलनों का योग।

N = अंकों की कुल संख्या।

उदाहरण: निम्नांकित अवर्गीकृत आँकड़ों से माध्य विचलन ज्ञात कीजिए।

तालिका 25.2

S. No.	*X (प्राप्तांक)*	*विचलन d = (X – M)*
1.	10	10–18 = – 8
2.	15	15–18 = – 3
3.	10	10–18 = – 8
4.	20	20–18 = 2
5.	25	25–18 = 7
6.	15	15–18 = – 3
7.	25	25–18 = 7
8.	20	20–18 = 2
9.	17	17–18 = – 1
10.	23	23–18 = 5
		$\Sigma \|d\| = 46$

$$M = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{180}{10} = 18$$

नोट

Hence, $\text{M.D.} = \frac{\Sigma|d|}{N} = \frac{46}{10} = 4.6$ **Ans.**

2. वर्गीकृत आँकड़ों का माध्य विचलन निकालना (M.D. of Grouped Data): वर्गीकृत आँकड़ों का माध्य विचलन निकालने में प्रयुक्त सूत्र निम्नलिखित है–

$$\text{M.D.} = \frac{\Sigma|fd|}{N}.$$

उदाहरण: निम्नांकित वर्गीकृत आँकड़ों से माध्य विचलन ज्ञात कीजिए।

तालिका 25.3

S.No.	*C.I.*	*f*	*X*	*d*	*fd*
1.	55–59	1	57	27.4	27.4
2.	50–54	1	52	22.4	22.4
3.	45–49	3	47	17.4	52.2
4.	40–44	4	42	12.4	49.6
5.	35–39	6	37	7.4	44.4
6.	30–34	7	32	2.4	16.8
7.	25–29	12	27	–2.6	–31.2
8.	20–24	6	22	–7.6	–45.6
9.	15–19	8	17	–12.6	–100.8
10.	10–14	2	12	–17.6	–35.2
		N = 50	M = 29.6		$\Sigma\|fd\| = 425.6$

Now, $\text{M.D.} = \frac{\Sigma|fd|}{N} = \frac{425.6}{50}$

$= 8.51$ **Ans.**

Important Steps:

1. समूह के प्राप्तांकों का मध्यमान ज्ञात कीजिए।
2. प्रत्येक वर्गान्तर का मध्य बिन्दु निकालिए।
3. मध्य बिन्दु में से मध्यमान घटाकर विचलन (X–M) निकालिए।
4. प्रत्येक विचलन और सम्बन्धित आवृत्ति की गुणा करके *fd* निकालिए।
5. प्राप्त गुणनफलों का योग $\Sigma|fd|$ ज्ञात कीजिए।
6. इन सभी मानों को सूत्र में प्रतिस्थापित कर माध्य विचलन की गणना कीजिए।

25.5 मानक विचलन (Standard Deviation): SD

माध्य विचलन ज्ञात करते समय विचलन के धन तथा ऋण चिह्नों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता है तथा माध्य विचलन की यही सबसे बड़ी सीमा है। अत: इस दोष को दूर करने के लिए ही मानक विचलन या प्रामाणिक विचलन ज्ञात किया जाता है। दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि मानक विचलन, माध्य विचलन का एक सुधरा हुआ रूप है।

मानक विचलन के अन्तर्गत चिह्नों की समस्या दूर करने के लिए विचलनों का वर्ग कर दिया जाता है जिससे ऋण चिह्न भी धन चिह्न में बदले जाते हैं। फिर, इन वर्ग किये गये विचलनों का औसत ज्ञात करके उनका वर्गमूल ले लिया जाता है। इसी को मानक विचलन या प्रामाणिक विचलन कहते हैं।

नोट

रीशमैन (Reichmann) के अनुसार– **"मानक विचलन को औसत विचलन का वर्गमूल भी कहा जाता है। यह वितरण के औसत से सब विचलनों के वर्गों के वर्गमूल का औसत है।"**

"The standard deviation is also known as root mean square deviation. It is the square root of the mean value of all the deviation squared taken from the distribution mean."

साधारण शब्दों में मानक विचलन को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है–

Very generally, the standard deviation is a measure of how the scores cluster or disperse around the mean and is conventionally represented by the Greek letter sigma.

$$\text{Symbolically, } \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$$

गणना (Calculation): मानक विचलन की गणना के लिए प्रश्नों के निम्नलिखित तीन प्रारूप प्रयुक्त किये जाते हैं–

केस I : जब केवल अवर्गीकृत आँकड़े ही दिये गये हों।

केस II: जब अवर्गीकृत आँकड़ों के साथ उनकी आवृत्तियाँ भी दी गई हों।

केस III: जब वर्गीकृत आँकड़े दिये गये हों।

केस I: जब केवल अवर्गीकृत आँकड़े ही दिये गए हों।

इस प्रकार के प्रश्नों को दो विधियों से हल किया जाता है–वास्तविक माध्य विधि (Actual Mean Method) तथा कल्पित माध्य विधि (Assumed Mean Method)। इन विधियों में प्रयुक्त सूत्र इस प्रकार हैं–

$$\text{S.D.} = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}} \quad \text{(वास्तविक माध्य विधि)}$$

तथा

$$\text{S.D.} = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N} - \left(\frac{\Sigma d}{N}\right)^2} \quad \text{(कल्पित माध्य विधि)}$$

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों से वास्तविक माध्य विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात कीजिए।

तालिका 25.4

S.No.	*X*	*d = (X – M)*	d^2
1.	10	10–18 = –8	64
2.	15	15–18 = –3	9
3.	10	10–18 = –8	64
4.	20	20–18 = 2	4
5.	25	25–18 = 7	49
6.	15	15–18 = –3	9
7.	25	25–18 = 7	49
8.	20	20–18 = 2	4
9.	17	17–18 = –1	1
10.	23	23–18 = 5	25
N = 10	ΣX = 180		$\Sigma d^2 = 278$

नोट

$$M = \frac{\Sigma X}{N} = \frac{180}{10} = 18$$

Now, $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{278}{10}}$$

$$= \sqrt{27.8}$$

$$= 5.27 \textbf{ Ans.}$$

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों से कल्पित माध्य विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात कीजिए।

तालिका 25.5

S.No.	*X*	*d = (X – M)*	d^2
1.	10	10–17 = –7	49
2.	15	15–17 = –2	4
3.	10	10–17 = –7	49
4.	20	20–17 = 3	9
5.	25	25–17 = 8	64
6.	15	15–17 = –2	4
7.	25	25–17 = 8	64
8.	20	20–17 = 3	9
9.	17	17–17 = 0	0
10.	23	23–17 = 6	36
N = 10		Σd = 10	Σd^2 = 288

Now, $$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N} - \left(\frac{\Sigma d}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{288}{10} - \left(\frac{10}{10}\right)^2}$$

$$= \sqrt{28.8 - 1}$$

$$= \sqrt{27.8}$$

$$= 5.27 \textbf{ Ans.}$$

महत्त्वपूर्ण चरण:

1. अंक वितरण को व्यवस्थित कीजिए।
2. प्राप्तांक वितरण से वास्तविक माध्य निकालिए।
3. सूत्र $d = X - M$ का प्रयोग कर विचलन निकालिए।
4. विचलन का वर्ग d^2 ज्ञात कीजिए।

नोट

5. प्राप्त विचलन वर्गों को जोड़कर Σd^2 ज्ञात कीजिए।

6. इन सभी मानों को सूत्र में प्रतिस्थापित कर S.D. की गणना कीजिए।

केस I: जब अवर्गीकृत आँकड़ों के साथ उनकी आवृत्तियाँ भी दी गई हों।

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों से कल्पित माध्य विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात कीजिए।

तालिका 25.6

S. No.	*X*	*f*	*d = (X – M)*	*fd*	*fd²*
1.	65	3	65–75 = –10	–30	300
2.	68	4	68–75 = –7	–28	196
3.	70	4	70–75 = –5	–20	100
4.	72	5	72–75 = –3	–15	45
5.	74	6	74–75 = –1	–6	6
6.	75	7	75–75 = 0	0	0
7.	78	6	78–75 = 3	18	54
8.	80	5	80–75 = 5	25	125
9.	82	4	82–75 = 7	28	196
10.	84	6	84–75 = 9	54	486
		N = 50		$\Sigma fd = 26$	$\Sigma fd^2 = 1508$

Now,

$$\text{S.D. or } \sigma = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{N} - \left(\frac{\Sigma d}{N}\right)^2}$$

$$= \sqrt{\frac{1508}{50} - \left(\frac{26}{50}\right)^2}$$

$$= \sqrt{30.16 - (.52)^2}$$

$$= \sqrt{3.16 - .27}$$

$$= \sqrt{29.89}$$

$$= 5.47 \textbf{ Ans.}$$

Note:

1. यदि आँकड़े 10–20 के विस्तार में हो, तो वास्तविक माध्य विधि सुविधाजनक रहती है।
2. यदि वास्तविक माध्य दशमलव बिन्दु में आए, तो कल्पित माध्य विधि का प्रयोग करें।
3. कल्पित माध्य आँकड़ों का चयन सावधानी से किया जाना चाहिए।

केस III: जब वर्गीकृत आँकड़े दिए गए हों।

वर्गीकृत आँकड़ों से संबंधित प्रश्नों का मानक विचलन दो विधियों से ज्ञात किया जाता है–लंबी विधि (Long Method) तथा संक्षिप्त विधि (Short-cut Method)। इन विधियों में प्रयुक्त सूत्र निम्नलिखित हैं–

नोट

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}} \text{ (लंबी विधि)}$$

तथा

$$\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2} \times C.I \text{ (संक्षिप्त विधि)}$$

उदाहरण: निम्नांकित वर्गीकृत आँकड़ों से लम्बी विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात कीजिए।

तालिका 25.7

S. No.	*C.I.*	*f*	*X*	*fX*	*d(X – M)*	*fd*	*fd²*
1.	40–44	3	42	126	14.3	42.9	613.47
2.	35–39	4	37	148	9.3	37.2	345.96
3.	30–34	4	32	128	4.3	17.2	73.96
4.	25–29	7	27	189	0.7	4.9	3.43
5.	20–24	5	22	110	5.7	28.5	162.45
6.	15–19	3	17	51	10.7	32.1	343.47
7.	10–15	2	12	24	15.7	31.4	492.98
		N = 28		$\Sigma fX = 776$			$\Sigma fd^2 = 2035.72$

$$M = \frac{\Sigma fX}{N} = \frac{776}{28} = 27.7$$

Now,

$$S.D. = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N}}$$

$$= \sqrt{\frac{2035.72}{28}}$$

$$= \sqrt{72.71}$$

$$= 8.52 \textbf{ Ans.}$$

क्या आप जानते हैं मानक विचलन को औसत विचलन का वर्गमूल भी कहा जाता है।

महत्त्वपूर्ण चरण:

1. प्रत्येक वर्गान्तर का मध्यबिन्दु (X) ज्ञात कीजिए। संबंधित सूत्र है–

$$X = \frac{+}{2}$$

2. सभी वर्गान्तरों के मध्य बिन्दुओं में संबंधित आवृत्ति से गुणा करके fX निकालिए।

नोट

3. इस प्रकार प्राप्त सभी fX मानों का योगफल निकालिए।

4. सूत्र ($M = \Sigma fX/N$) का प्रयोग कर माध्य की गणना कीजिए।

5. सूत्र $d = X - M$ प्रयोग कर विचलन (d) निकालिए।

6. प्रत्येक वर्गान्तर की आवृत्ति को उसी वर्ग के विचलन से गुणा करके fd ज्ञात कीजिए।

7. fd तथा d को गुणा करके fd^2 ज्ञात कीजिए।

8. इस प्रकार प्राप्त सभी fd^2 मानों का योगफल ज्ञात कीजिए।

9. Σfd^2 मान को N से भाग दीजिए।

10. प्राप्त भागफल का वर्गमूल निकालिए। यही अभीष्ट मानक विचलन होगा।

उदाहरण: निम्नांकित आँकड़ों का संक्षिप्त विधि द्वारा मानक विचलन ज्ञात कीजिए।

तालिका 25.8

S. No.	*C.I.*	*f*	*d*	*fd*		*fd²*
1.	90–99	1	+4	4		16
2.	80–89	4	+3	12	+ 40	36
3.	70–79	7	+2	14		28
4.	60–69	10	+1	10		10
5.	50–59	9	0	0		0
6.	40–49	9	–1	–9		9
7.	30–39	4	–2	–8	– 38	16
8.	20–29	3	–3	–9		27
9.	10–19	3	–4	–12		48
		N = 50		$\Sigma fd = 2$		$\Sigma fd^2 = 190$

Now, S.D. or $\sigma = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{N} - \left(\frac{\Sigma fd}{N}\right)^2} \times C.I.$

प्राप्त मानों को सूत्र में प्रतिस्थापित करने पर हम पाते हैं,

$$\sigma = \sqrt{\frac{190}{50} - \left(\frac{2}{50}\right)^2} \times 10 = \sqrt{3.8 - (.04)^2} \times 10$$

$$= \sqrt{3.8 - .016} \times 10$$

$$= \sqrt{3.7984} \times 10$$

$$= 1.95 \times 10$$

$$= 19.50 \textbf{ Ans.}$$

महत्त्वपूर्ण चरण:

नोट

1. उपयुक्त वर्गान्तर अथवा सबसे अधिक आवृत्ति वाले वर्गान्तर को कल्पित माध्य मानना।
2. चयनित वर्गान्तर के विचलन को शून्य मानना।
3. सभी वर्गान्तरों को विचलन प्रदान करना। इसके लिए चयनित वर्गान्तर (Assumed C.I.) से ऊपर वाले (बड़े) वर्गान्तरों को क्रमश: धनात्मक क्रमिक अंक (Integral values) जैसे, + 1, + 2, +3 तथा नीचे वाले (छोटे) वर्गान्तरों को ऋणात्मक क्रमिक अंक जैसे, – 1, – 2, – 3 ..... दिये जाते हैं।
4. प्रत्येक वर्गान्तर की आवृत्ति और विचलन को गुणा करके fd ज्ञात करना।
5. चिह्नों का ध्यान रखते हुए प्राप्त fd मानों का योग ज्ञात करना। यह Σfd कहलायेगा।
6. प्रत्येक वर्गान्तर के fd में d से गुणा करके fd^2 निकालना।
7. प्राप्त fd^2 मानों का योगफल निकालना। यह Σfd^2 कहलायेगा।
8. प्राप्त मानों को सूत्र में प्रतिस्थापित कर S.D. की गणना करना।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. प्रसार, विचलन का सबसे ..... मापक है।
   (क) सरल (ख) जटिल (ग) खर्चीला (घ) दीर्घकालिक
5. चतुर्थांश का संकेत चिह्न ..... है।
   (क) R (आर) (ख) Q (क्यू) (ग) N (एन) (घ) M (एम)
6. ..... विचलन, माध्य से भिन्न प्राप्तांकों के विचलनों का मध्यमान है।
   (क) प्रसार (ख) माध्य (ग) मध्यमान (घ) मानक
7. मानक विचलन को औसत विचलन का ..... भी कहा जाता है।
   (क) बराबर (ख) आधा (ग) वर्गमूल (घ) संपूर्ण

25.6 विचलन मानों का प्रयोग (Uses pf Standard Deviation)

प्रसार (Range)

1. जब विचलन मान अतिशीघ्र ज्ञात करना हो।
2. जब उच्चतम एवं निम्नतम प्राप्तांकों के बारे में जानकारी प्राप्त करनी हो।

चतुर्थांश विचलन (Q.D.)

1. जब केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान मध्यांक द्वारा प्रदर्शित किया गया हो।
2. जब वितरण अपूर्ण (Incomplete) हो।
3. जब कुछ प्राप्तांकों का मान बहुत अधिक अथवा बहुत कम हो।

माध्य विचलन (M.D.)

1. जब वितरण लगभग सामान्य हो।
2. जब विचलन अत्यधिक फैला हुआ हो।
3. जब साधारण विश्वसनीयता की आवश्यकता हो।

नोट

टास्क विचलन मानों का प्रयोग कब किया जाता है?

मानक विचलन (S.D.)

1. जब अधिक विश्वसनीयता की आवश्यकता हो।
2. जब सह-संबंध गुणांक आदि ज्ञात करना हो।
3. जब वितरण सामान्य हो।
4. जब केन्द्रीय प्रवृत्ति का मान मध्यमान द्वारा प्रदर्शित किया गया हो।

25.7 सारांश (Summary)

- सामान्य अर्थ में किसी समूह के अलग-अलग प्राप्तांकों का उस समूह के प्रतिनिधि मान अथवा केन्द्रीय मान से अन्तर या फैलाव को ही उस समूह का विचलन कहते हैं।
- बोरिंग लैंगफील्ड एवं वेल्ड के अनुसार, "विचलन के मापक हमें यह बताते हैं कि आँकड़े अपने मध्यमान से कितनी दूर तक फैले हुए हैं।"
- विचलन या फैलाव ज्ञात करने के लिए सांख्यिकी में मुख्य रूप से चार मापकों का प्रयोग किया जाता है– 1. प्रसार, 2. चतुर्थांश विचलन, 3. माध्य विचलन, 4. मानक विचलन।

25.8 शब्दकोश (Keywords)

1. **चतुर्थांश (Quartile)**–वह बिन्दु जो प्राप्तांकों के वितरण को चार बराबर भागों में बाँटता है।
2. **विचलन (Deviation)**–किसी समूह के अलग-अलग प्राप्तांकों का उस समूह के केंद्रीय मान से अंतर।

25.9 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. निम्नांकित अंकों की सहायता से प्रसार ज्ञात करें।

   15, 7, 19, 18, 21, 27, 18, 12, 29, 13 **Ans. 22**

2. निम्नांकित आँकड़ों की सहायता से चतुर्थांश विचलन ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
40–44	3	
35–39	3	
30–34	5	
25–29	7	
20–24	5	
15–19	3	
10–14	2	**Ans.** Q = 6.0

नोट

3. निम्नांकित तालिका की सहायता से चतुर्थांश विचलन ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
55–59	1	
50–54	1	
45–49	3	
40–44	4	
35–39	6	
30–34	7	
25–29	12	
20–24	6	
15–19	8	
10–14	2	**Ans.** Q = 7.5

4. निम्नांकित आँकड़ों की सहायता से चतुर्थांश विचलन ज्ञात करें

तालिका

C.I.	*f*	
80–89	5	
70–79	2	
60–69	3	
50–59	2	
40–49	5	
30–39	4	
20–29	3	
10–19	2	
0–9	4	**Ans.** Q = 21.67

5. निम्नांकित अंकों की सहायता से माध्य विचलन प्राप्त करें–

4, 6, 8, 10, 12, 14, 16, 18, 20. **Ans.** M.D. = 4.44

6. निम्नलिखित अंकों की सहायता से माध्य विचलन ज्ञात करें–

6, 8, 10, 12, 14. **Ans.** M.D. = 24

7. निम्नलिखित अंकों की सहायता से मानक विचलन ज्ञात करें–

(*a*) 12, 18, 17, 13, 14, 16. **Ans.**σ = 2.10

(*b*) 24, 23, 12, 14, 17, 18, 16, 20. **Ans.** σ = 3.90

(*c*) 4, 6, 8, 10, 12, 14, 16, 18, 20. **Ans.** σ = 5.16

(*d*) 16, 13, 18, 17, 20, 19, 21, 17, 22, 12, 16, 16, 18, 15, 18, 19, 16, 13, 21, 17. **Ans.** σ = 2.7

नोट

8. निम्नांकित खंडित श्रेणियों की मदद से मानक विचलन ज्ञात करें।

X : 65, 68, 60, 72, 74, 71, 73, 80, 82, 83.

f : 3, 4, 4, 5, 6, 9, 6, 5, 2, 6. **Ans.** σ = 6.36

9. निम्नांकित आँकड़ों की मदद से माध्य विचलन ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
40–45	3	
35–40	4	
30–35	4	
25–30	7	
20–25	5	
15–20	3	
10–15	2	**Ans.** M.D. = 6.9

10. निम्नलिखित आँकड़ों की मदद से माध्य विचलन ज्ञात करें–

तालिका

C.I.	*f*	
29–31	2	
26–28	3	
23–25	4	
20–22	3	
17–19	2	
14–16	1	**Ans.** M.D. = 3.52

11. मानक विचलन को परिभाषित करें। साथ ही निम्नांकित आँकड़ों की सहायता से इसे (SD) ज्ञात करें–

तालिका

C.I.	*f*	
100–104	3	
95–99	4	
90–94	4	
85–89	11	
80–84	3	
75–79	4	
70–74	2	**Ans.** σ = 8.15

नोट

12. निम्नांकित आँकड़ों से मानक विचलन ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
40–42	5	
37–39	8	
34–36	9	
31–33	10	
28–30	7	
25–27	5	
22–24	4	
19–21	2	**Ans.** σ = 5.70

13. निम्नलिखित आँकड़ों से मानक विचलन ज्ञात करें

तालिका

C.I.	*f*	
70–74	3	
65–69	6	
60–64	7	
55–59	8	
50–54	15	
45–49	10	
40–44	7	
35–39	3	
30–34	1	**Ans.** σ = 9.45

14. निम्नलिखित आँकड़ों की सहायता से चतुर्थांश, माध्य एवं मानक विचलन ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
60–65	2	
54–59	2	
48–53	6	
42–47	3	
36–41	8	
30–35	8	
24–29	4	
18–23	6	
12–17	10	
6–11	6	
0–5	5	**Ans.** Q = 12.88 M.D. = 14.35 S.D. = 16.62

नोट

15. निम्नलिखित आँकड़ों की सहायता से चतुर्थांश, माध्य एवं मानक विचलन ज्ञात करें।

तालिका

C.I.	*f*	
77–83	3	
70–76	13	
63–69	16	
56–62	13	
49–55	6	
42–48	22	
35–41	18	
28–34	6	
21–27	1	
14–20	2	**Ans.** Q = 12.42
		M.D. = 13.06
		S.D. = 14.94

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. विचलन
2. साँख्यिकी
3. विस्तार या प्रसार
4. (क) सरल
5. (ख) Q(क्यू)
6. (ख) माध्य
7. (ग) वर्गमूल

25.10 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी–*एस. एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट, ब्रदर्स।*
3. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*

नोट

इकाई 26 : सह-संबंधः क्रमांतर विधि, गुणन आघूर्ण विधि (Correlation: Rank Differance Method, Product Moment Method)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

26.1 सह-संबंध की परिभाषा (Definition of Correlation)

26.2 सह-संबंध के प्रकार (Kinds of Correlation)

26.3 सह-संबंध गुणांक (Coefficient of Correlation)

26.4 स्पीयjमैन की क्रमांतर विधि (Spearman's Rank Difference Method)

26.5 गुणन आघूर्ण विधि (Product Moment Method)

26.6 सारांश (Summary)

26.7 शब्दकोश (Keywords)

26.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

26.9 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- सह-संबंध की परिभाषा एवं प्रकार को समझने में;
- सह-संबंध गुणांक को समझने में;
- क्रमांतर तथा गुणन-आघूर्ण विधि को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

सामान्यत: हम कहते हैं कि विज्ञान विषय उन विद्यार्थियों को लेना चाहिये जिनकी रुचि इन्जीनियरिंग अथवा मेडिकल के क्षेत्र में जाने की हो, कॉमर्स उन विद्यार्थियों को लेना चाहिए जो व्यापार के क्षेत्र में रुचि रखते हों, हिन्दी, अंग्रेजी एवं संस्कृत उन विद्यार्थियों को लेनी चाहिये जो साहित्यिक रुचि के हों, संगीत एवं कला उन विद्यार्थियों के लिए उचित रहेगी जो कलात्मक रुचि (Aesthetic Sense) रखते हों अथवा हम यह कहें कि नाटे कद वाले व्यक्ति, लंबे कद वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक प्रतिभाशाली होते हैं, ऊँचे ललाट वाले व्यक्ति समाज में सबसे अधिक

नोट

प्रतिष्ठा प्राप्त करते हैं, जिसके सिर पर कम बाल होते हैं, वह धनवान होता है आदि-आदि। हमारी इन धारणाओं के पीछे एक दीर्घकालीन अनुभव अथवा विशेष तथ्य जुड़े होते हैं। साथ ही, हमारे इस प्रकार के कथन अथवा भविष्यवाणी मात्र कुछ ही समय के अवलोकन पर आधारित नहीं होते वरन् इनकी पुष्टि में पर्याप्त तर्क जुटाये जा सकते हैं। उदाहरण के तौर पर यदि हम मनोविज्ञान के क्षेत्र में यह निश्चित करना चाहते हैं कि किसी व्यक्ति विशेष की एक क्षेत्र में उपलब्धि दूसरे क्षेत्र की उपलब्धि से किस सीमा तक जुड़ी हुई है अथवा प्रभावित है, तब मनोविज्ञान की भाषा में हम इसे चर राशियों (Variables) के मध्य संबंध से सम्बोधित करेंगे। विभिन्न चर राशियों के मध्य संबंध स्थापित करके हम आसानी से यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि कोई व्यक्ति किसी व्यवसाय विशेष में चयन के योग्य है अथवा नहीं। साथ ही, व्यक्ति के व्यवहार को भी आसानी से नियंत्रित कर सकते हैं।

उपरोक्त विवेचना के आधार पर यह स्पष्ट है कि स्कूली विषयों के चयन का संबंध विभिन्न प्रकार के व्यवसायों से है तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व की विशेषताओं का संबंध उनके भावी जीवन की सफलताओं एवं उपलब्धियों से है। चर-राशियों के मध्य इस प्रकार के पारस्परिक संबंध को ही सह-संबंध (Correlation) कहा जाता है। निम्नलिखित उदाहरणों की सहायता से सह-संबंध के अर्थ को और अधिक स्पष्ट किया जा सकता है।

1. अभिभावकों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति का बच्चों पर प्रभाव।
   (Effect of Socio-economic conditions of the parents on child's performance)
2. बुद्धि-लब्धि एवं उपलब्धि का संबंध।
   (Relationship between I.Q. and Achievement)
3. प्रेरणा का अधिगम पर प्रभाव।
   (Effect of Motivation on Learning)
4. घरेलू वातावरण का बालकों की सामाजिक क्रियाओं पर प्रभाव।
   (Effect of Home Environment on child's social activities)
5. शिक्षण को प्रभावी बनाने में सहायक सामग्री का योगदान।
   (Role of Material Aids in increasing Teaching-Effectiveness)
6. व्यवहार-परिवेश का बच्चों के मनोबल पर प्रभाव।
   (Effect of Treatment-environment on Child's Morale)
7. बालकों के मनोबल एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि में संबंध।
   (Relationship between Student Morale and Academic Achievement)

26.1 सह-संबंध की परिभाषा (Definition of Correlation)

कुछ मुख्य परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

जब दो चर राशियाँ एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक राशि के बढ़ाने से दूसरी राशि भी बढ़े अथवा घटे तथा इसके विपरीत, एक राशि के घटने से दूसरी राशि भी घटे अथवा बढ़े, तब उस स्थिति में हम कह सकते हैं कि इन दो राशियों के मध्य सह-संबंध है।

इस प्रकार, सह-संबंध दो चर राशियों अथवा समूहों के मध्य संबंध दर्शाता है।

(Whenever two variables are related in such a fashion that the increase in one variable causes increase or decrease in another variable or decrease in one variable causes decrease or increase in another variable, *i.e. vice-versa,* then the two variables are said to be correlated.

नोट

Thus, correlation is the relationship between two variables or two different sets of data.)

सह-संबंध के अन्तर्गत हम दो या दो से अधिक समूहों के मध्य इस आशय से संबंध स्थापित करते हैं कि उन समूहों के मध्य वास्तव में कोई संबंध है अथवा नहीं और अगर संबंध है, तो वह कितना अर्थात्, उसकी मात्रा क्या है?

"Correlation deals with the relationship between two or more different groups of data in order to ascertain whether any relation exists between them or not and to obtain a numerical expression of the degree of such a relationship." ***—Bayliss***

नोट्स सह-संबंध दो चरों के बीच सन्निकटता के स्तर का एक सांख्यिकीय माप है। "Correlation is a statistical measure of the degree of association between two variables."

सह-संबंध मनोवैज्ञानिक परीक्षक के लिए उतना ही महत्त्वपूर्ण है, जितना कि एक रसायनशास्त्री के लिए उसकी तराजू।

"The coefficient of correlation is almost as important to the psychological tester as is the balance to the chemist."

***—W.L. Sumner, 'Statistics in Schools'*, Oxford Basic Blackwell, 1950**

26.2 सह-संबंध के प्रकार (Kinds of Correlation)

सह-संबंध मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है।

1. धनात्मक सह-संबंध (Positive Correlation)
2. ऋणात्मक सह-संबंध (Negative Correlation)
3. शून्य सह-संबंध (Zero Correlation)

धनात्मक सह-संबंध (Positive Correlation)

धनात्मक सह-संबंध उस स्थिति में होता है जब एक चर राशि के बढ़ने से दूसरी चर राशि भी बढ़े अर्थात्, जिस छात्र के गणित में उच्चतम अंक आये हैं उसी छात्र के अंग्रेजी में भी उच्चतम अंक आयें अथवा इसके विपरीत, एक चर राशि के घटने से दूसरी चर राशि भी घटे अर्थात् जिस छात्र के कला में निम्नतम अंक आये हैं उसी छात्र के हिन्दी में भी निम्नतम अंक आयें, उदाहरणार्थ–बुद्धि-लब्धि व शैक्षिक उपलब्धि का संबंध।

उदाहरण (Example)

High I.Q.	⟶	High percentage of marks
(उच्च बुद्धि-लब्धि)	⟵	अधिक अंक प्रतिशतता
Low I.Q.	⟶	Low percentage of marks
(निम्न बुद्धि-लब्धि)	⟵	(कम अंक प्रतिशतता)

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार एक छात्र जिसकी बुद्धि-लब्धि का स्तर श्रेष्ठ है, उसके अंकों की प्रतिशतता भी उच्च ही आनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, एक छात्र जिसके परीक्षा में उच्च अंक आते हैं, उसकी बुद्धि-लब्धि भी श्रेष्ठ होनी

नोट

चाहिए। ठीक इसी प्रकार, जिस छात्र की बुद्धि-लब्धि का स्तर निम्न है, उसके अंकों की प्रतिशतता भी निम्न आनी चाहिए। दूसरे शब्दों में, एक छात्र जिसके परीक्षा में अंक कम आते हैं, उसकी बुद्धि-लब्धि भी कम होनी चाहिए। यह स्थिति धनात्मक सह-संबंध की होती हैं।

असंबद्ध ग्राफ सह-संबंध + 1.00 का दर्शा रहा है।

एक आनुपातिक रेखा इसे ग्राफ से जोड़ती है।

चित्र 26.1

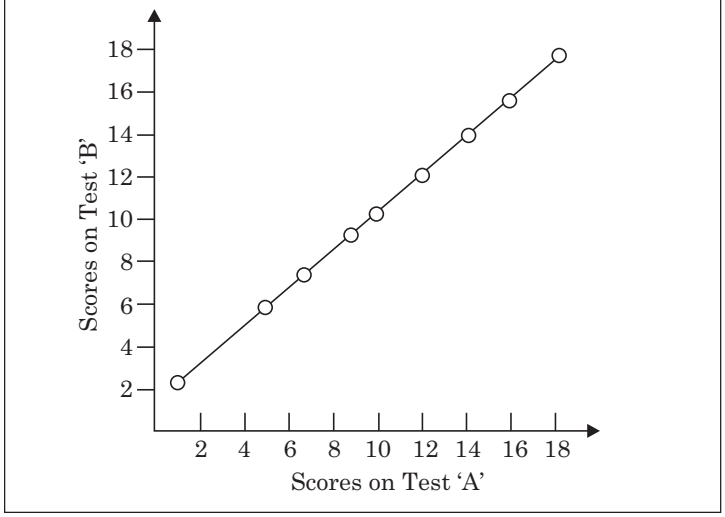

ऋणात्मक सह-संबंध (Negative Correlation)

ऋणात्मक सह-संबंध उस स्थिति में होता है जब एक चर राशि के बढ़ने से दूसरी चर राशि घटे अर्थात्, जो छात्र एक परीक्षा में प्रथम आता है, उसी छात्र की दूसरी परीक्षा में अन्तिम अनुस्थिति (Position or Rank) आती है और उसी प्रकार सभी छात्रों की अनुस्थितियाँ एकदम उल्टी हो जायें अथवा इसके विपरीत, हम कहें कि जब एक चर राशि के घटने से दूसरी चर राशि बढ़े, अर्थात्, जो छात्र एक परीक्षा में अन्तिम अनुस्थिति प्राप्त करता है वही छात्र दूसरी परीक्षा में प्रथम आता है। इस प्रकार की स्थिति में नकारात्मक अथवा ऋणात्मक पूर्ण सह-संबंध (Negative perfect correlation) होता है। इस प्रकार की पूर्ण परिस्थितियाँ प्राय: कम ही होती हैं।

उदाहरण (Example)

More extrovert students	⟶	Low pass percentage
(अधिक बहिर्मुखी छात्र)	⟵	(कम उत्तीर्ण प्रतिशतता)
Less extrovert students	⟶	High pass percentage
(कम बहिर्मुखी छात्र)	⟵	(अधिक उत्तीर्ण प्रतिशतता)

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार, जो छात्र अधिक बहिर्मुखी होते हैं वे कम उत्तीर्ण होते हैं अथवा हम कह सकते हैं कि छात्र के असफल होने का कारण उनका बहिर्मुखी व्यक्तित्व है। ठीक इस प्रकार, जो छात्र कम बहिर्मुखी होते हैं अर्थात्, अन्तर्मुखी (Introvert) होते हैं, वे परीक्षा में अधिक सफलता प्राप्त करते हैं अथवा हम कहें, उनकी इस सफलता का रहस्य उनका अन्तर्मुखी व्यक्तित्व है।

असंबद्ध ग्राफ सहसंबंध –1.00 का दर्शा रहा है।

नोट

चित्र 26.2

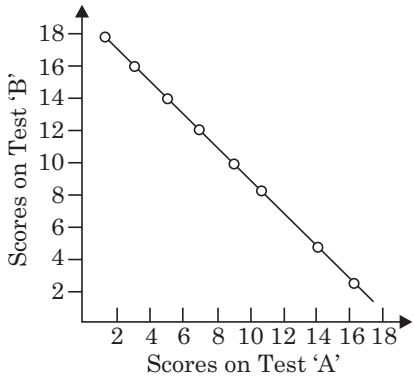

शून्य सह-संबंध (Zero Correlation)

शून्य सह-संबंध उस स्थिति में होता है जब एक चर राशि के बढ़ने अथवा घटने का दूसरी राशि पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता अर्थात्, किसी छात्र के एक विषय में प्राप्त फलांकों के आधार पर हम उसी छात्र के किसी अन्य विषय के फलांकों के बारे में कुछ अनुमान नहीं लगा सकते।

उदाहरण (Example)

Children from good social status	⟶	Pass percentage 80
(उच्च सामाजिक-स्तर वाले बालक)	⟵	(80% उत्तीर्ण)
Children from poor social status	⟶	Pass percentage 80
(निम्न सामाजिक-स्तर वाले बालक)	⟵	(80% उत्तीर्ण)

उपरोक्त उदाहरण के अनुसार, बालकों के सामाजिक स्तर का उनकी शैक्षिक उपलब्धि अर्थात्, उत्तीर्ण, अनुत्तीर्ण होने से कोई संबंध नहीं है। बालक चाहे प्रतिष्ठित घरानों से आयें अथवा गरीब परिवारों से, उनकी उत्तीर्ण प्रतिशतता समान ही होगी। इसी प्रकार, एक अच्छा संगीतकार एक अच्छा कलाकार हो भी सकता है और नहीं भी।

असंबद्ध ग्राफ सहसंबंध 0 के नजदीक दर्शा रहा है।

चित्र 26.3

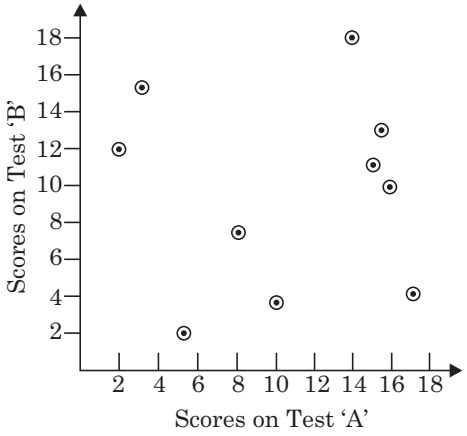

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. सह-संबंध दो चर राशियों अथवा समूहों के ..... संबंध दर्शाता है।
2. सह-संबंध मुख्यतया ..... प्रकार के होते हैं।
3. जो छात्र अधिक ..... होते हैं वे परीक्षा में कम उत्तीर्ण होते हैं।

26.3 सह-संबंध गुणांक (Coefficient of Correlation)

शिक्षा के क्षेत्र में बहुधा फलांकों की दो श्रेणियों के संबंध की मात्रा निर्धारित करने की आवश्यकता पड़ती है। इस संबंध को सह-संबंध गुणांक (Coefficient of Correlation) से व्यक्त किया जाता है।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर यह निष्कर्ष निकलता है कि धनात्मक सह-संबंध में एक चर राशि में निपुणता अधिक होने से दूसरी राशि में भी अधिक होती है तथा एक में कम होने से दूसरी में भी कम होती है। ऋणात्मक सह-संबंध में एक विषय में कम निपुणता का संबंध दूसरे विषय में अधिक निपुणता के साथ है। सम्बन्ध उतना ही घनिष्ठ माना जायेगा जितनी अधिक गुणांक की मात्रा होगी। शून्य सह-संबंध में एक विषय की उपलब्धि के आधार पर दूसरे विषय की उपलब्धि के बारे में कोई अनुमान नहीं लगाया जा सकता। इन तीनों संबंधों को आंकिक रूप में क्रमश: + 1.00, –1.00 तथा .00 से प्रदर्शित करते हैं। इस प्रकार की पूर्ण परिस्थितियाँ प्राय: कम ही आती हैं, इसलिए सह-संबंध की यह मात्रा +1.00 तथा –1.00 के मध्य मानी जाती है।

वास्तव में सह-संबंध हमें यह दर्शाता है कि दो राशियों के संबंध की प्रकृति (Nature) क्या है? इस दृष्टि से सह-संबंध गुणांक वह अंक होता है जो हमें यह संकेत देता है कि दो चर राशियाँ किस सीमा तक एक दूसरे से संबंधित हैं अर्थात्, एक चर राशि में होने वाले परिवर्तन के कारण दूसरी चर राशि में किस सीमा तक परिवर्तन संभव है। इस सह-संबंध गुणांक की सीमाएँ + 1.00 तथा – 1.00 ($\pm$ 1) के मध्य होती हैं तथा इसे (ρ) अथवा rho से प्रदर्शित किया जाता है।

"The coefficient of correlation (r) is a convenient quantitative index of relationship, *i.e.* what is the degree of relationship? or, to what extent two variables are related with each other? The coefficient of correlation is almost as important to the psychological tester as is the balance to the chemist." ***W.L. Sumner, 'Stat, in Schools'***

—Lindquist and Blummers.

सह-संबंध गुणांक अथवा परिणाम व्याख्या (Interpretation of Correlation Coefficient or Results)

सह-संबंध गुणांक अथवा प्राप्त निष्कर्षों की व्याख्या करने के लिए हमें चिह्न (Sign) तथा परिणाम की मात्रा (magnitude) इन दो बातों पर ध्यान देना होता है। यदि सह-संबंध गुणांक धनात्मक आता है तो इसका अर्थ यह होगा कि दिये गये वितरण में एक चर राशि के बढ़ने से दूसरी चर राशि भी बढ़ेगी अथवा एक चर राशि के घटने पर दूसरी चर राशि भी घटेगी। उदाहरणार्थ, यदि बालकों की बुद्धि-लब्धि और उनकी विषयगत उपलब्धि में सह-संबंध ज्ञात किया जाये तो इस स्थिति में सह-संबंध गुणांक धनात्मक (Positive) आयेगा तथा इस गणितीय तथ्य (Mathematical fact) की व्याख्या करते हुए कहा जायेगा कि जैसे-जैसे बालकों की बुद्धि-लब्धि (I.Q.) बढ़ेगी उनकी विषयगत उपलब्धि में भी बढ़ोतरी होगी।

इसी प्रकार, इसके विपरीत यदि सह-संबंध गुणांक ऋणात्मक आता है तो इसका अर्थ यह होगा कि दिये गये वितरण में एक चर राशि घटेगी अथवा एक चर राशि के घटने से दूसरी बढ़ेगी। उदाहरणार्थ, यदि मनुष्य की आयु एवं उसकी

नोट

स्मृति में सह-संबंध ज्ञात किया जाये तो इस स्थिति में सह-संबंध गुणांक ऋणात्मक आयेगा तथा इस गणितीय तथ्य की व्याख्या करते हुए कहा जायेगा कि जैसे-जैसे व्यक्ति की आयु बढ़ती है उसकी स्मृति (Memory or Retention power) क्षीण होती जाती है।

सह-संबंध गुणांक अथवा प्राप्त निष्कर्षों की व्याख्या करने के लिए **गिलफर्ड तालिका** (Guilford's Table) का प्रयोग किया जाता है, जो निम्न है–

सह-संबंध गुणांक की मात्रा	व्याख्या
.00 से ± .20 तक	नगण्य (Negligible)
± .21 से ± .40 तक	निम्न (Low)
± .41 से ± .70 तक	सामान्य (Moderate)
± .71 से ± .90 तक	उच्च (High)
± .91 से ± .99 तक	अति उच्च (Very High)
± 1.00 तक	पूर्ण (Perfect)

सह-संबंध गुणांक ज्ञात करने की विधियाँ (Methods of Computing Coefficient of Correlation)

सह-संबंध गुणांक ज्ञात करने की प्रमुख विधियाँ निम्न तीन हैं–

1. क्रमान्तर विधि (Spearman's Rank Difference Method)
2. गुणन-आघूर्ण विधि (Pearson's Product-Moment Method)
3. प्रकीर्णन-आरेख विधि (Scatter-Diagram Method)

26.4 स्पीयर मैन की क्रमान्तर विधि (Spearman's Rank Difference Method)

क्रमान्तर विधि को हम श्रेणी क्रम विधि के नाम से भी पुकारते हैं। इस विधि का प्रतिपादन चार्ल्स स्पीयर-मैन (Charles Spearman) ने किया था तथा उन्हीं के नाम पर इस विधि को स्पीयरमैन सह-संबंध विधि कहते हैं तथा इस विधि द्वारा प्राप्त सह-संबंध गुणांक को हम स्पीयरमैन सह-संबंध गुणांक अथवा स्पीयरमैन श्रेणीक्रम सह-संबंध गुणांक भी कहते हैं। इस विधि से प्राप्त सह-संबंध गुणांक को लैटिन भाषा के अक्षर ρ (rho) से प्रदर्शित करते हैं।

Where there are relatively few measures in the series, the Rank Difference method of correlation is employed generally. As the name indicates the size of the correlation coefficient (ρ) depends upon the sum of the differences in ranks between each pair of meausres (a pair means one individual's measures in the two variables).

इस विधि में दोनों चरों के प्राप्तांकों को उनके आकार के आधार पर अलग-अलग क्रमबद्ध किया जाता है। दोनों चरों के प्राप्ताकों को अलग-अलग क्रम देने के पश्चात् विभिन्न छात्रों द्वारा प्राप्त दोनों क्रमों (Rank assigned on two variables) का अन्तर (D) ज्ञात करके उसका वर्ग कर दिया जाता है, जो D^2 कहलाता है। फिर, ΣD^2 का मान ज्ञात कर लेने के पश्चात् निम्न सूत्र की सहायता से सह-संबंध गुणांक का मान ज्ञात कर लेते हैं।

$$\rho \text{ or rho} = 1 - \frac{6\,\Sigma D^2}{N\,(N^2 - 1)}$$

नोट

जहाँ,

ρ = सह-संबंध गुणांक

ΣD^2 = क्रमों के अंतर के वर्गों का योग

N = कुछ छात्र संख्या

उदाहरण 1: दो विषयों गणित और अर्थशास्त्र में बारह छात्रों को मिले प्राप्तांक नीचे दिये गए हैं। क्रमांतर विधि के द्वारा इनके सह-संबंध गुणांक निकालें।

अर्थशास्त्र :	60	34	40	50	45	41	22	43	42	66	64	46
गणित :	75	32	34	40	45	33	12	30	36	72	41	57

समाधान: सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें।

तालिका 26.1

छात्र	अर्थशास्त्र	गणित	R_1	R_2	D	D^2
A	60	75	3	1	2	4
B	34	32	11	10	1	1
C	40	34	10	8	2	4
D	50	40	4	6	2	4
E	45	45	6	4	2	4
F	41	63	9	9	0	0
G	22	12	12	12	0	0
H	43	30	7	11	4	16
I	42	36	8	7	1	1
J	66	72	1	2	1	1
K	64	41	2	5	3	9
L	46	57	5	3	2	4
N = 12						$\Sigma d^2 = 48$

$$\rho = 1 - \frac{6\,\Sigma D^2}{N(N^2 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{6 \times 48}{12\,(12^2 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{288}{12\,(144 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{288}{12 \times 143}$$

$$= 1 - \frac{288}{1716}$$

नोट

$$= \frac{1716 - 288}{1716}$$

$$= \frac{1428}{1716}$$

$$= +.83 \textbf{ Ans.}$$

व्याख्या: अर्थशास्त्र एवं गणित के दो विषयों में बारह छात्रों को मिले प्राप्तांक का परिणाम यह दर्शाता है कि इनके बीच सह-संबंध उच्च धनात्मक है।

उदाहरण: निम्नांकित आंकड़ों के द्वारा पिता एवं पुत्र के मध्य लम्बाई का सह-संबंध गुणांक प्राप्त करें।

पिता की लंबाई इंचों में	20	25	32	28	30	27	35	60	80
पुत्र की लंबाई इंचों में	21	27	30	24	28	22	37	64	82

समाधान: पिता और पुत्र के बीच लम्बाई के सह-संबंध गुणांक की गणना करें।

तालिका 26.2

पिताकी लम्बाई	*पुत्रकी लम्बाई*	R_1	R_2	D	D^2
20	21	9	9	0	0
25	27	8	6	2	4
32	30	4	4	0	0
28	24	6	7	1	1
30	28	5	5	0	0
27	22	7	8	1	1
35	37	3	3	0	0
60	64	2	2	0	0
80	82	1	1	0	0
N = 9					$\Sigma D^2 = 6$

$$\rho = 1 - \frac{6\,\Sigma D^2}{N(N^2 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{6 \times 6}{9(9^2 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{36}{9(81 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{36}{9 \times 80}$$

$$= 1 - \frac{36}{720}$$

नोट

$$= 1 - \frac{1}{20}$$

$$= 20 - \frac{1}{20}$$

$$= \frac{19}{20}$$

$$= + .95 \textbf{ Ans.}$$

क्या आप जानते हैं क्रमान्तर विधि का प्रतिपादन चार्ल्स स्पीयरमैन ने किया था।

व्याख्या: यह परिणाम दर्शाता है कि पिता और पुत्र की लंबाई के मध्य सह-संबंध अति उच्च-धनात्मक है।

उदाहरण 3: निम्नांकित आँकड़ों (वितरणों) के द्वारा श्रेणी क्रम सह-संबंध गुणांक की गणना करें।

छात्र	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J	K	L
विज्ञान	50	54	56	59	60	62	61	65	67	71	71	74
गणित	22	25	34	28	26	30	32	30	28	34	36	40

समाधान:

तालिका 26.3

छात्र	*विज्ञान के प्राप्तांक*	*गणित के प्राप्तांक*	R_1	R_2	D	D^2
A	50	22	12	12	0	0
B	54	25	11	11	0	0
C	56	34	10	3.5	6.5	42.25
D	59	28	9	8.5	.5	.25
E	60	26	8	10	2	4
F	62	30	6	6.5	.5	.25
G	61	32	7	5	2	4
H	65	30	5	6.5	1.5	2.25
I	67	28	4	8.5	4.5	20.25
J	71	34	2.5	3.5	1	1
K	71	36	2.5	2	.5	.25
L	74	40	1	1	0	0
N = 12						$\Sigma D^2 = 74.50$

नोट

$$\rho = 1 - \frac{6\,\Sigma D^2}{N(N^2-1)} = 1 - \frac{6\times 74.50}{12(12^2-1)}$$

$$= 1 - \frac{447}{12(144-1)} = 1 - \frac{447}{12\times 143}$$

$$= 1 - \frac{447}{1716} = \frac{1716-447}{1716}$$

$$= \frac{1269}{716}$$

$$= +\ .739\ \textbf{Ans.}$$

व्याख्या: गणित और विज्ञान के दो विषयों में बारह छात्रों को मिले प्राप्तांक का परिणाम यह दर्शाता है कि इनके मध्य सह-संबंध उच्च धनात्मक हैं।

व्याख्या (Interpretation): विज्ञान व गणित प्राप्तांकों के मध्य श्रेणीक्रम सह-संबंध का मान + .739 है। स्पष्ट है कि सह-संबंध गुणांक धनात्मक तथा उच्च श्रेणी का है। अत: इस सह-संबंध गुणांक के आधार पर कहा जा सकता है कि जिस छात्र ने विज्ञान में अधिक अंक प्राप्त किये हैं उसकी प्रवृत्ति गणित में भी अधिक अंक प्राप्त करने की है तथा जिस छात्र ने विज्ञान में कम अंक प्राप्त किये हैं उसकी प्रवृत्ति गणित में भी कम अंक प्राप्त करने का है। साथ ही, ऐसा अधिकांश छात्रों ने किया है।

उदाहरण 4: क्रमांतर विधि के द्वारा निम्नांकित आँकड़ों के दो समुच्चयों के मध्य का सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें।

Set A	80	80	80	75	75	62	74	66	71	59	67	67
Set B	75	75	69	73	62	58	70	61	61	61	63	72

समाधान:1

तालिका 26.4

Set A	*Set B*	R_1	R_2	*D*	D^2
80	75	2	1.5	.5	.25
80	75	2	1.5	.5	.25
80	69	2	6	4	16
75	73	4.5	3	1.5	2.25
75	62	4.5	8	3.5	12.25
62	58	11	12	1	1
74	70	6	5	1	1
66	61	10	10	0	0
71	61	7	10	3	9
59	61	12	10	2	4
67	63	8.5	7	1.5	2.25
67	72	8.5	4	4.5	20.25
N = 12					$\Sigma D^2 = 68.50$

नोट

$$\rho = 1 - \frac{6\,\Sigma D^2}{N(N^2-1)} = 1 - \frac{6\times 68.50}{12(12^2-1)}$$

$$= 1 - \frac{411}{12(144-1)} = 1 - \frac{411}{12\times 143}$$

$$= 1 - \frac{411}{1716} = \frac{1716-411}{1716}$$

$$= \frac{1305}{1716}$$

$$= +\ .76$$ **Ans.**

व्याख्या: दो समुच्चयों के आँकड़ों के मध्य उच्च धनात्मक संबंध को यह परिणाम यहाँ दर्शाता है।

स्थान क्रम विधि की सीमाएँ (Limitations of Rank-Method): स्थान क्रम विधि अधिक विश्वसनीय नहीं है। इस विधि में अंकों के केवल स्थान क्रम (Ranks) पर ही ध्यान दिया जाता है, उनके अपने मान पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। उदाहरणार्थ, A, B, C के गणित में अंक क्रमश: 30, 40, 50 हैं तथा अंग्रेजी में 70, 80, 90 तो पहली तथा दूसरी परिस्थिति में स्थानक्रम 3, 2, 1 ही होंगे। अब यदि अंग्रेजी के अंकों को 100, 110, 120 कर दिया जाये तब भी स्थान क्रम वही रहेंगे। अब इस विधि से प्रत्येक स्थिति में एक समान ही उत्तर आयेगा। स्पष्ट है, यह विधि अधिक सही नहीं है।

सावधानी प्रारम्भिक अवस्था में इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है, लेकिन अनुसंधान एवं सही परिणामों के लिए इस विधि का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

इसके अतिरिक्त जब आँकड़ों की संख्या, जिनके मध्य हमें अनुबंध की मात्रा निकालनी होती है, 30 से अधिक हो तब ऐसी स्थिति में इस विधि का प्रयोग अधिक उचित नहीं है।

सह-संबंध गुणांक के उपयोग (Utility of Correlation Coefficient): सह-संबंध गुणांक के प्रमुख उपयोग इस प्रकार हैं–

1. भविष्यवाणी में सहायक (Prediction)
2. परीक्षण की विश्वसनीयता ज्ञात करने में (To determine Reliability)
3. परीक्षण की वैधता ज्ञात करने में (Estimation of Validity)
4. कठिनाइयों के निदान में सहायक (Useful in Diagnosis)
5. वंशानुक्रम एवं वातावरण के प्रभाव की जानकारी प्राप्त करने में।
6. भ्रान्तियों का निवारण करने में (False Beliefs)
7. कारक-विश्लेषण में उपयोग (Use in Factor-Analysis)
8. कार्य-कारण संबंध स्थापित करने में (Cause and effect Relationship)

उपरोक्त बिन्दुओं के अतिरिक्त सह-संबंध गुणांक की उपयोगिता इस प्रकार भी स्पष्ट की जा सकती है–

1. यदि किसी विद्यार्थी ने गृह परीक्षाओं में उच्चतम अंक प्राप्त किये हैं तो हम इसके आधार पर यह भविष्यवाणी कर सकते हैं कि वह छात्र बोर्ड परीक्षा में भी प्रथम श्रेणी अवश्य प्राप्त करेगा।

2. विश्वसनीयता ज्ञात करने में चाहे हम Test—Retest Method लगायें या Split Half Method या अन्य कोई, हमें सह-संबंध गुणांक का मान निकालना ही होगा।

नोट

3. वैधता निर्धारण में हमें अपने परीक्षण को किसी कसौटी से सह-संबंधित करना पड़ता है तथा सह-संबंध गुणांक के आधार पर ही वैधता ज्ञात की जाती है।

4. यदि किसी बड़े समूह पर परीक्षण देकर हमने यह सिद्ध किया है कि विज्ञान एवं गणित में धनात्मक सह-संबंध होता है और प्रत्यक्ष में हम कक्षा में ऐसा नहीं देखते तो इस स्थिति में सह-संबंध हमारी इस समस्या का निदान करता है।

5. **फ्रांसिस गाल्टन, कार्ल पियरसन** तथा **थार्नडाइक** ने वंशानुक्रम एवं वातावरण का व्यक्तियों पर प्रभाव देखने के लिए अनेक प्रयोग किये हैं।

उदाहरण कार्ल पियर्सन ने 5000 बालकों पर प्रयोग करके यह सिद्ध किया कि सिर की बनावट, मुखाकृति आदि का व्यक्ति की मानसिक योग्यताओं से कोई संबंध नहीं है।

6. बुद्धि के स्वरूप को समझने के लिए सर्वप्रथम स्पीयरमैन ने Factor-Analysis Technique का सहारा लिया था।

7. वातावरण का छात्रों की उपलब्धि तथा मनोबल पर क्या प्रभाव पड़ता है, इस प्रकार के संबंध भी देखे जाते हैं।

टास्क सह-संबंध गुणांक के उपयोग पर अपने विचार व्यक्त करें।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नांकित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the following Statement are True or False):

1. सह-संबंध दो चरों के बीच सन्निकटता के स्तर पर एक सांख्यिकीय माप है।
2. धनात्मक सह-संबंध तब होता है जब एक चर राशि के बढ़ने से दूसरी चर राशि घटे।
3. क्रमान्तर विधि को श्रेणी क्रम विधि भी कहते हैं।
4. बालकों के मनोबल एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि में कोई संबंध नहीं होता।

26.5 गुणन आघूर्ण विधि (Product Moment Method)

इस विधि को पियर्सन विधि भी कहते हैं।

दो चरों x तथा y जोकि $(x_1y_1), (x_2y_2), \ldots\ldots (x_ny_n)$ जैसे अनन्त जोड़ों के मानों की क्रमशः कुछ विशेषताओं को (समय, स्थान आदि को) व्यक्त करते हैं। वर्तमान अध्ययन में कार्ल पियर्सन विधि का प्रयोग दो चरों के मध्य अनुरेखीय सह-संबंध में किया जाता है।

कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक को $r(x, y)$ द्वारा निम्नानुसार परिभाषित किया जाता है–

$$r(x, y) = \frac{\sum_{i=1}^{n}(x_i - \bar{x})(\bar{y}_i - \bar{y})}{\sqrt{\sum_{i=1}^{n}(x_i - \bar{x})^2}\sqrt{\sum_{i=1}^{n}(y_i - \bar{y})^2}}$$

नोट

या सामान्यतया, $$r = \frac{\Sigma(x - \bar{x})(y - \bar{y})}{\sqrt{\Sigma(x - \bar{x})^2}\sqrt{\Sigma(y - \bar{y})^2}}$$

जहाँ $\bar{x}$ और $\bar{y}$ AM's की क्रमशः x शृंखला और y शृंखला हैं।

इसे कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक के परिकलन की प्रत्यक्ष (सीधी) विधि कही जाती है।

यदि इसमें भ्रम की कोई संभावना न हो तो, हम $r(x, y)$ को बस r लिखते हैं।

इसे गणितीय विधि द्वारा $-1 \le r \le 1$ सिद्ध किया जा सकता है।

यदि चरों के मध्य सह-संबंध अनुरेखीय है तो कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक के मान की व्याख्या निम्नांकित तरह से करेंगे–

'r' का मान	*चरों के मध्य सह-संबंध अनुरेखीय की स्थिति*
$r = +1$	• पूर्ण स्पष्ट धनात्मक सह-संबंध
$0.75 \le r < 1$	• उच्च स्थिति धनात्मक सह-संबंध
$0.50 \le r < 0.75$	• सामान्य धनात्मक सह-संबंध
$0 < r < 0.50$	• निम्न स्थिति धनात्मक सह-संबंध
$r = 0$	• कोई सह-संबंध नहीं
$-0.50 < r < 0$	• निम्न स्थिति ऋणात्मक सह-संबंध
$-0.75 < r \le -0.50$	• सामान्य स्थिति ऋणात्मक सह-संबंध
$-1 < r \le -0.75$	• उच्च स्थिति ऋणात्मक सह-संबंध
$r = -1$	• पूर्ण स्पष्ट ऋणात्मक सह-संबंध

टिप्पणी 1. कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक को प्रोडक्ट मोमेंट सह-संबंध गुणांक या कार्ल पियर्सन प्रोडक्ट मोमेंट सह-संबंध गुणांक के रूप में भी वर्णन किया जा सकता है।

टिप्पणी2. कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक में r को $P(x, y)$ या केवल P के द्वारा भी निर्दिष्ट किया जा सकता है।

अक्षर P ग्रीक वर्ण का '*rho*' है।

टिप्पणी 3. कार्ल पियर्सन के ज्यामितिय, सह-संबंध गुणांक को गणना (निर्धारण) का गुणांक भी कहा जाता है।

उदाहरणतया

यदि $r = 0.753$ है तब निर्धारण का

गुणांक $(0.753)^2 = 0.567$ होगा।

निर्धारण का गुणांक सदैव 0 और 1 के बीच स्थित होता है। (जिसमें दोनों शामिल हैं।)

टिप्पणी 4. $$r = \frac{\Sigma(x - \bar{x})(y - \bar{y})}{\sqrt{\Sigma(x - \bar{x})^2}\sqrt{\Sigma(y - \bar{y})^2}}$$ जोकि व्यक्त होता है।

$$r = \frac{\Sigma(x - \bar{x})(y - \bar{y})}{\sqrt[n]{\frac{\Sigma(x - \bar{x})^2}{n}}\sqrt{\frac{\Sigma(y - \bar{y})^2}{n}}}$$

नोट

$$r = \frac{\Sigma(x - \bar{x})(y - \bar{y})}{n\sigma_x \, \sigma_y}$$

उदाहरण: निम्नांकित तालिका की सहायता से सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें।

X	10	12	15	8	5	16
Y	15	16	8	10	11	12

इसके अनुसार ऊपर वाले प्रश्न को इस प्रकार करेंगे–

तालिका 26.5

X	***Y***	***x***	***y***	x^2	y^2	***xy***
10	15	–1	+3	1	9	–3
12	16	+1	+4	1	16	+4
15	8	+4	–4	16	16	–16
8	10	–3	–2	9	4	+6
5	11	–6	–1	36	1	+6
16	12	+5	–0	25	0	+0
66	72	0	0	$\Sigma x^2 = 88$	$\Sigma y^2 = 46$	$\Sigma xy = -3$

म. मा. $x = 11$, म. मा. $y = 12$। इस प्रकार,

1. पहले हम दोनों अंक-समूहों का अलग-अलग म.मा. निकाल लेंगे।

2. फिर दोनों अंक-समूह के म. मा. तथा अंकों का अन्तर निकाल लेंगे। पहली सूची के हर अंक में से उसके म. मा. घटाते चलेंगे। इस प्रकार म.मा. (11) तथा पहली सूची के अंकों का अन्तर (x) आ जायेगा। इसी प्रकार दूसरी सूची के प्रत्येक अंक में से उसका म.मा. (12) घटाते चले जायेंगे। इस प्रकार हमें (y) स्तम्भ मिल जायेगा।

3. अब अगले स्तम्भों में हम x तथा y वाले स्तम्भों की संख्याओं का वर्ग कर देंगे। इस प्रकार, x^2 तथा y^2 वाले स्तम्भ मिल जायेंगे।

4. फिर आगे वाले स्तम्भ में हम x तथा y वाले स्तम्भों की संख्याओं को आपस में क्रमश: गुणा करके रखेंगे। इस प्रकार xy वाला स्तम्भ मिलेगा।

5. फिर x^2, y^2 तथा xy वाले तीनों स्तम्भों की संख्याओं को अलग-अलग जोड़ लेंगे। ये क्रमश: Σx, Σy तथा Σxy इस प्रकार लिखे जायेंगे।

इतना करने के पश्चात् अब हम सूत्र का प्रयोग करेंगे। प्रोडक्ट मोमेंट विधि से अनु.गु. निकालने का सूत्र इस प्रकार है:

$$r = \frac{\Sigma xy}{\sqrt{\Sigma x^2 \times \Sigma y^2}}$$

ऊपर के प्रश्न में,

$$\Sigma xy = -3$$
$$\Sigma x^2 = 88$$
$$\Sigma y^2 = 46$$

नोट

अत:

$$r = \frac{3}{\sqrt{(88)(46)}} = \frac{-3}{\sqrt{4048}}$$

$$= \frac{-3}{63.62}$$

$$= -.047$$

3. एक तीसरी रीति के अनुसार हम वास्तविक म.मा. (actual mean) न निकाल कर केवल मानी गई (assumed mean) से भी काम चला सकते हैं। नीचे इसी प्रश्न को कल्पित म.मा. से निकला गया है:

तालिका 26.6

X	Y	x	y	x^2	y^2	xy
10	15	0	5	0	25	0
12	16	2	6	4	36	12
15	8	5	–2	25	4	–10
8	10	–2	0	4	0	0
5	11	–5	+1	25	1	–5
16	12	+6	+2	36	4	+12
66	72			94	70	+9

वा.म.मा. $x = 11$, वा.म.मा. $y = 12$

माना हुआ म.मा. $x = 10, y = 10$

$$C_x = 1, C_y = 2$$

C_x [पहले वा.म.मा. (mean) तथा माने हुए म.मा. (mean) का अन्तर] $= 11 - 10 = 1$

C_y [दूसरे वा.म.मा. (mean) तथा माने हुए म.मा. (mean) का अन्तर] $= 12 - 10 = 2$

$$C_x^2 = (1)^2 = 1$$

$$C_y^2 = 4$$

$$\sigma_x = \sqrt{\frac{\Sigma x^2}{N} - C_x^2} = \sqrt{\frac{94}{6} - 1} = 3.83$$

$$\sigma_y = \sqrt{\frac{\Sigma y^2}{N} - C_y^2}$$

$$= \sqrt{\frac{70}{6} - 4} = 2.76$$

सूत्रानुसार

$$r_{xy} = \frac{\frac{\Sigma xy}{N} - C_x \cdot C_y}{\sigma_x \cdot \sigma_y}$$

$$= \frac{\frac{9}{6} - 1 \times 2}{3.83 \times 2.76}$$

नोट

$$= \frac{-.5}{10.57} = (-.047)$$

इस विधि का प्रयोग ऐसी परिस्थितियों में सुविधाजनक और उपयोगी होता है जिनमें वास्तविक म.मा. दशमलव भिन्न में आता है, जैसे 104.3 अथवा 98.6 आदि, क्योंकि ऐसी स्थिति में म.मा. (mean) को वास्तविक अंकों (true scores) में से घटाने में तथा उनके अन्तर का वर्ग बनाने में बड़ी कठिनाई पड़ती है। अत: हम उसके स्थान पर उसी के आस-पास पूर्ण संख्या में अंकों का मध्यमान ले लेते हैं। यह अनुमानित मध्यमान (assumed mean) कहलाता है। इससे x तथा y और उनके वर्ग बनाने की असुविधा दूर हो जाती है।

वास्तव में रेंक प्रणाली (rho) का प्रयोग तब अधिक उचित रहता है जब थोड़े आँकड़ों के बीच अनु.गु. निकालना हो। आँकड़ों की 30 संख्या तक रेंक प्रणाली का प्रयोग किया जा सकता है। इससे अधिक संख्या वाले आँकड़ों का अनु.गु. प्रोडक्ट-मोमेंट प्रणाली से निकालना चाहिये।

रेंक प्रणाली से निकाला हुआ अनु.गु. (rho) लगभग प्रोडेक्ट-मोमेंट रीति से निकाले हुये अनु.गु. के बराबर ही आता है। **जे.पी. गिल्फोर्ड** का कहना है कि किसी भी हालत में दोनों रीतियों से निकाले हुए अनु.गु. में .018 से अधिक अन्तर नहीं होता और प्रत्येक स्थिति में प्रोडक्ट-मोमेंट द्वारा निकाला हुआ अनु.गु. (r) रेंक प्रणाली द्वारा निकाले हुये अनु.गु. (rho) से बड़ा होता है। (केवल शून्य तथा + 1.0 अनु.गु. की स्थिति को छोड़कर) परन्तु यह कथन व्यावहारिक दृष्टिकोण से बिल्कुल सही नहीं उतरता। पिछले उदाहरण से यह बात स्पष्ट है। रेंक प्रणाली से अनु.गु. (rho) +.085 आता है और प्रोडक्ट-मोमेंट से –.047 आता है। दोनों का अन्तर .038 के लगभग है। दूसरे (rho) बड़ा है r से। प्रोडक्ट मोमेंट अनु.गु. उन्हीं परिस्थितियों में निकाला जाता है जहाँ निम्नलिखित शर्तें पूरी होती हों–

1. जब प्रतिदर्श (sample) बड़ा (large) हो।
2. जब अंकों का वितरण सम हो।
3. जब मापांक अनवरत (continuous) रूप से उपलब्ध हो।

26.6 सारांश (Summary)

- जब दो चर राशियाँ एक दूसरे से इस प्रकार सम्बन्धित हों कि एक राशि के बढ़ाने से दूसरी राशि भी बढ़े अथवा घटे तथा इसके विपरीत, एक राशि के घटने से दूसरी राशि भी घटे अथवा बढ़े, तब उस स्थिति में हम कह सकते हैं कि इन दो राशियों के मध्य सह-संबंध है।
- सह-संबंध मुख्य रूप से तीन प्रकार का होता है– 1. धनात्मक सह-संबंध, 2. ऋणात्मक सह-संबंध, 3. शून्य सह-संबंध।
- शिक्षा के क्षेत्र में बहुधा फलांकों की दो श्रेणियों के संबंध की मात्रा निर्धारित करने की आवश्यकता पड़ती है। इस संबंध को सह-संबंध गुणांक (Coefficient of Correlation) से व्यक्त किया जाता है।
- क्रमान्तर विधि को हम श्रेणी क्रम विधि के नाम से भी पुकारते हैं। इस विधि का प्रतिपादन चार्ल्स स्पीयर-मैन (Charles Spearman) ने किया था तथा उन्हीं के नाम पर इस विधि को स्पीयरमैन सह-संबंध विधि कहते हैं तथा इस विधि द्वारा प्राप्त सह-संबंध गुणांक को हम स्पीयरमैन सह-संबंध गुणांक अथवा स्पीयरमैन श्रेणीक्रम सह-संबंध गुणांक भी कहते हैं।
- स्थान क्रम विधि अधिक विश्वसनीय नहीं है। इस विधि में अंकों के केवल स्थान क्रम (Ranks) पर ही ध्यान दिया जाता है, उनके अपने मान पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता।
- इसे कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक के कम्प्यूटिंग की डाइरेक्ट विधि कही जाती है।

नोट

26.7 शब्दकोश (Keywords)

1. आघूर्ण–चक्कर खाता हुआ, घूमता हुआ।
2. प्रकीर्णन–छितराना, बिखेरना।

26.8 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. सह-संबंध से क्या तात्पर्य है? क्या यह हमेशा दो चर राशियों के बीच कारण एवं प्रभाव संबंधों को दर्शाता है।
2. कार्ल पियर्सन के सह-संबंध गुणांक की मुख्य विशेषताएँ क्या हैं। यह फार्मूला कौन से अवधारणाओं पर आधारित है?
3. सह-संबंध गुणांक से क्या समझते हो? इसके सामान्य नियम की व्याख्या करें।
4. स्पीयर मैन के क्रमांतर विधि द्वारा इनके सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें

छात्र	A	B	C	D	E	F	G	H	I	J
गणित	78	36	98	25	75	80	25	62	36	40
हिन्दी	84	54	36	60	54	92	36	62	36	98

(उत्तर: .46)

5. निम्नांकित आँकड़ों के द्वारा स्पीयर मैन की सह-संबंध गुणांक ज्ञात करें–

X	15	25	38	25	15	12	40	25
Y	40	60	20	25	30	50	20	30

(उत्तर: .64)

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. मध्य
2. तीन
3. बहिर्मुखी
4. सत्य
5. असत्य
6. सत्य
7. असत्य।

26.9 संदर्भ ग्रंथ (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
2. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 27 : काई वर्ग परीक्षा (Chi-Square Test)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

27.1 अप्राचलीय परीक्षाओं का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Structure of Non-Parametrical Test)

27.2 काई वर्ग परीक्षा (Chi-Square Test)

27.3 सारांश (Summary)

27.4 शब्दकोश (Keywords)

27.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

27.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- अप्राचलीय परीक्षाओं के अर्थ एवं स्वरूप को समझने में;
- काई वर्ग परीक्षा को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

यह पहले बताया जा चुका है कि प्राचलीय (parametric) परीक्षाओं जैसे–टी–टेस्ट तथा एफ–टेस्ट के प्रयोग कई शर्तों पर आधारित होते हैं। जब तक ये शर्तें पूरी नहीं होतीं इनका प्रयोग नहीं किया जा सकता। सम–वितरण तथा विचरण–समरूपता (homogeneity of variance) ये दो सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण शर्तें हैं। अनुसन्धान की अनेक परिस्थितियों में ये पूरी नहीं होतीं। अत: उनमें इन परीक्षाओं का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इन परिस्थितियों में अप्राचलीय परीक्षाओं (non-parametric tests) का प्रयोग किया जाता है। प्रत्येक प्राचलीय परीक्षा के कई अप्राचलीय विकल्प उपलब्ध हैं।

27.1 अप्राचलीय परीक्षाओं का अर्थ एवं स्वरूप (Meaning and Structure of Non-Parametrical Test)

प्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग जनसंख्या–विशेषताओं (प्राचलों) के विषय में कुछ अवधारणाओं पर आधारित होता है। इन प्राचलों (parameters) की विशेषताओं पर इनका प्रयोग निर्भर करता है। इसलिए इन्हें प्राचलीय परीक्षाएँ

नोट

कहते हैं। ठीक इसके विपरीत अप्राचलीय परीक्षाएँ जनसंख्या के प्राचलों के विषय में किसी की कोई शर्तें नहीं लगातीं, इसीलिए उन्हें अप्राचलीय परीक्षाएँ कहते हैं। किसी-किसी अप्राचलीय परीक्षा में कुछ अभिधारणायें निहित होती हैं, परन्तु वे बहुत कम एवं साधारण प्रकार की होती हैं। समग्र सृष्टि में चरों के वितरण-सम्बन्धी इनकी कोई शर्त नहीं होती। अत: इन्हें प्राय: वितरण-मुक्त (distribution free) संख्यिकीय विधि भी कहते हैं। अप्राचलीय सांख्यिकीय तकनीकों में प्राचलों (parameters) जैसे-मध्यमान, विचरण आदि के स्थान पर चरों के वितरणों (distributions) के आधार पर समूहों की तुलना की जाती है।

अप्राचलीय परीक्षाओं के लाभ

इन परीक्षाओं के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. बहुत छोटी न्यादर्श (N = 6) की स्थिति में केवल इन्हीं परीक्षाओं का प्रयोग किया जा सकता है।

2. इनका प्रयोग वहाँ भी किया जा सकता है। जहाँ न्यादर्शों को भिन्न-भिन्न जनसृष्टियों में से छाँटा गया हो।

3. समग्र जनसृष्टि में चरों के वितरण का रूप (shape) कैसा ही क्यों न हो, परन्तु ये परीक्षाएँ उपलब्ध परिणाम की सम्भावना (probability) का सही-सही कथन करने की सामर्थ्य रखती हैं।

4. जब शोध-सामग्री श्रेणियों (categories) तथा अनुस्थितियों (ranks) के रूप में उपलब्ध हों तो केवल इन्हीं परीक्षाओं का प्रयोग सम्भव होता है।

5. इन परीक्षाओं को समझना, उनके प्रयोग को सीखना तथा उनसे सम्बन्धित संगणना आदि बहुत सरल होते हैं।

6. उन परिस्थितियों में भी इनका प्रयोग किया जा सकता है जिनमें प्राचलीय परीक्षाएँ प्रयुक्त होती हैं।

7. किसी भी प्राचलीय परीक्षा की ऐसी स्थिति में जहाँ उसकी शर्तें पूरी न होती हों, अप्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग किया जा सकता है।

अप्राचलीय परीक्षाओं के दोष

इन परीक्षाओं की कुछ अपनी सीमाएँ भी हैं– जिनका उल्लेख नीचे किया गया है–

1. प्राचलीय परीक्षा की किसी एक स्थिति में निश्चित आकार वाले न्यादर्श पर जितनी परीक्षा-शक्ति (power of the test) उपलब्ध होती है उतनी ही परीक्षा-शक्ति प्राप्त करने के लिए अप्राचलीय परीक्षाओं की स्थिति में न्यादर्श के आकार को बहुत अधिक बड़ा करना होगा। दूसरे शब्दों में, इन परीक्षाओं की शक्ति (power) कम होती है।

2. इन परीक्षाओं में कोई भी परीक्षा ऐसी नहीं है जिसमें चरों के अन्तर्क्रिया प्रभावों का अध्ययन किया जा सके।

इन कठिनाइयों के होते हुए भी अप्राचलीय परीक्षाओं का बहुत महत्त्व है क्योंकि अनुसन्धान की परिस्थितियाँ प्राय: ही ऐसी होती हैं कि उनमें प्राचलीय शर्तें पूरी नहीं होतीं तथा उनके विकल्प ढूँढने होते हैं।

कुछ विशिष्ट एवं अधिक प्रयुक्त अप्राचलीय परीक्षाओं का वर्णन इस अध्याय में किया गया है।

अप्राचलीय स्वतन्त्र समूह आकल्प

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन अप्राचलीय परीक्षाओं का वर्णन किया गया है जिनका प्रयोग स्वतन्त्र समूहों की तुलना करने में किया जाता है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. काई-वर्ग आकल्प दो चरों के पारस्परिक संबंध की ..... है।

नोट

2. एकल न्यादर्श की स्थिति में प्रत्याशित आवृत्तियाँ ज्ञात करने के लिए ..... उपकल्पना का प्रयोग किया जा सकता है।
3. काई वर्ग प्राचलीय परीक्षा ..... का ही अप्राचलीय विकल्प है।

27.2 काई वर्ग परीक्षा (Chi-Square Test)

काई वर्ग (χ^2) एक ऐसी अप्राचलीय सांख्यिकीय विधि है जिसमें यह परीक्षा की जाती है कि आवृत्तियों का एक वितरण जो किसी अनुसन्धान के आधार पर प्राप्त हुआ है वह किसी उपकल्पना के आधार पर प्रत्याशित आवृत्तियों के वितरण से सार्थक रूप से भिन्न है अथवा नहीं। यदि भिन्न नहीं है तो उन दोनों को सम्बन्धित समझा जाता है। इस प्रकार काई-वर्ग दो चरों के अथवा दो आवृत्ति-विचरणों के पारस्परिक सम्बन्ध की परीक्षा विधि है। प्राप्त एवं प्रत्याशित आवृत्तियों के बीच जो अन्तर हैं क्या वे केवल संयोगवश हैं अथवा वास्तविक हैं, यह जानने के लिए भी इस विश्लेषण-विधि का सहारा लिया जाता है। इस आकल्प के कई प्रकार हैं। मुख्य रूप से चार भिन्न परिस्थितियों में इसका प्रयोग किया जाता है। ये हैं:

1. एकल समूह स्थिति।
2. दो स्वतन्त्र समूहों की स्थिति।
3. कन्टिंजेंसी-विश्लेषण।
4. दो से अधिक स्वतन्त्र समूहों की स्थिति।

1. एकल समूह स्थिति

इस विधि का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ प्राप्त आवृत्ति-वितरण की तुलना किसी ऐसे वितरण से की जाती है जोकि एक मानक (standard) वितरण होता है तथा जो किसी निश्चित उपकल्पना जैसे-सम-वितरण की उपकल्पना अथवा समान वितरण की उपकल्पना के आधार पर प्रत्याशित होता है। नीचे दिये गये उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा।

उदाहरण 1

एक शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि क्या पढ़ी लिखी स्त्रियाँ वास्तव में नौकरी करना पसन्द करती हैं। यह जानने के लिए उसने 48 पढ़ी-लिखी स्त्रियों को चुना तथा उनसे पूछा कि क्या वे नौकरी करना पसन्द करेंगी। उन्हें तीन विकल्पों ('हाँ', 'नहीं', 'तटस्थ') में से एक विकल्प चुनने को कहा। प्रत्येक उत्तर की आवृत्तियाँ उसे इस प्रकार प्राप्त हुईं–24, 12, 12। समान वितरण के आधार पर उसने यह परीक्षा की कि क्या प्राप्त वितरण (24, 12, 12) समान वितरण (16, 16, 16) से सार्थक रूप से भिन्न है। उसकी धारणा यह थी कि यदि वास्तव में स्त्रियाँ नौकरी करना पसन्द करती हैं तो उनका यह वितरण प्रत्याशित वितरण (16, 16, 16) से भिन्न होना चाहिए अर्थात् दूसरे शब्दों में कहें कि यदि नौकरी करने अथवा न करने, किसी की ओर उनका विशेष झुकाव नहीं है तो 48 स्त्रियों का वितरण तीनों विकल्प उत्तरों के अन्तर्गत समान (16, 16, 16) होना चाहिए। इस वितरण से प्राप्त वितरण सार्थक रूप से भिन्न है या नहीं इसकी परीक्षा उसने काई-वर्ग द्वारा की। इसके लिए पहले उसने निम्न प्रकार तालिका तैयार की तथा उसके अधार पर काई-वर्ग का मान निकाला। इस गणना की सम्पूर्ण विधि नीचे की तालिका में दी गई है–

नोट्स काई वर्ग आकल्प दो चरों के अथवा दो आवृत्ति-विचरणों के पारस्परिक संबंध की परीक्षा विधि है।

नोट

तालिका 27.1

One sample Chi-Square Test

	Preferred	*Not-perferred*	*Indifferent*	*Total*
Fo	24	12	12	48
Fe	16	16	16	48
Fo – Fe	8	4	4	
$(Fo - Fe)^2$				
$\frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$	64 / 4	16 / 1	16 / 1	$6 = \chi^2$ value

उपरोक्त तालिका में *Fo* का अर्थ है प्राप्त आवृत्तियाँ, *Fe* का अर्थ है प्रत्याशित आवृत्तियाँ।

यह एकल न्यादर्श काई-वर्ग का उदाहरण है क्योंकि इसमें शोध-सामग्री केवल एक ही न्यादर्श (48 स्त्रियों) से एकत्र की गई है अर्थात् एक ही न्यादर्श का प्रयोग किया गया है।

काई-वर्ग निकालने का सूत्र है–

$$\chi^2 = \sum \frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$$

जिसमें *Fe* का अर्थ है प्रत्याशित आवृत्तियाँ तथा *Fo* का अर्थ है प्राप्त आवृत्तियाँ।

उपरोक्त सूत्र द्वारा तालिका-1 की प्रत्येक कोषा का काई-वर्ग मान निकाला गया है। बाद में सब कोषाओं के मान को जोड़ लिया गया है। यह सम्पूर्ण काई-वर्ग 6.0 आया है।

उदाहरण जैसे-टी-टेस्ट में टी के मान की सार्थकता की परीक्षा की जाती है, ठीक उसी प्रकार काई-वर्ग परीक्षा में काई-वर्ग के मान की सार्थकता की परीक्षा काई-वर्ग तालिका-D के आधार पर करते हैं।

यदि प्राप्त काई-मान तालिका-D में दिये गये मान के बराबर अथवा उससे अधिक है तो उसे सार्थक माना जाता है। शेष समस्या प्रक्रिया व तर्क ठीक टी-टेस्ट की तरह ही रहते हैं।

स्वातंत्र्यांशों (*df*) की गणना

तालिका-D के प्रयोग में *df* की संकल्पना का प्रयोग भी किया जाता है। इसे ज्ञात करने का सूत्र है $(r-1) \times (k-1)$ अर्थात् पंक्तियों एवं स्तम्भों की संख्या में से एक-एक घटाकर शेष को परस्पर गुणा कर लेते हैं। पीछे दिये गये उदाहरण में 3 स्तम्भ तथा पंक्तियाँ हैं। अत: $df = (3-1) \times (2-1) = 2$ ।

सार्थकता–तालिका-D में 2*df* तथा 0.5 स्तर पर काई-मान 5.991 है। प्राप्त मान 6.0 है जो तालिका मान से अधिक है। अत: उपकल्पना H_o कि "दोनों वितरणों में कोई अन्तर नहीं है" को अस्वीकार करके यह निष्कर्ष निकलेगा कि वितरणों में सार्थक अन्तर है। दूसरे शब्दों में कहना होगा कि स्त्रियाँ नौकरी करना पसन्द करती हैं क्योंकि "हाँ" उत्तर की आवृत्तियाँ सबसे अधिक हैं। यदि "न" उत्तर की आवृत्तियाँ अधिक होतीं तो निष्कर्ष यह होता कि वे नौकरी करना पसन्द नहीं करतीं। अत: वास्तव में निष्कर्ष क्या होगा, यह कोषाओं की आवृत्तियों के निरीक्षण पर निर्भर करता है।

यदि एक छोरीय परीक्षा करनी हो तो काई का मान तालिका-D में .05 स्तर के लिए स्तम्भ .01 में तथा .01 के लिए स्तम्भ .02 में देखना चाहिये।

नोट

प्रत्याशित आवृत्तियों की उपकल्पनाएँ

एकल न्यादर्श की स्थिति में प्रत्याशित आवृत्तियाँ ज्ञात करने के लिए "समान वितरण" उपकल्पना का प्रयोग किया जा सकता है जैसा कि पीछे दिये गये उदाहरण में स्पष्ट किया गया है। इसके अतिरिक्त "सम-वितरण" उपकल्पना का भी प्रयोग किया जा सकता है। किसका प्रयोग किया जाना चाहिये यह अनुसन्धान परिस्थिति पर निर्भर करता है। उदाहरण के लिए यदि हम यह जानना चाहते हैं कि किसी कक्षा के प्राप्तांकों का वितरण सम है या नहीं तो प्रत्याशित आवृत्तियाँ सम-वितरण के आधार पर निकालनी होंगी।

काई-वर्ग की सीमाएँ

काई-वर्ग परीक्षा का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में वर्जित हैं–

1. जब df केवल 1 हो अर्थात् k (समूह) = 2 हो तथा कोई प्रत्याशित आवृत्ति 5 से कम हो।

2. जब df तो 1 से अधिक हो, परन्तु 20% से अधिक आवृत्तियाँ 5 से कम हों अथवा कोई प्रत्याशित आवृत्ति 1 से कम हो।

2. दो स्वतन्त्र समूह आकल्प

इस स्थिति में दो स्वतन्त्र समूहों की तुलना काई-वर्ग के आधार पर की जाती है, ठीक वैसे ही जैसे–टी टेस्ट में टी का मान निकालकर की जाती है। अन्तर इतना है कि इसमें टी के स्थान पर काई-वर्ग का मान निकालकर उसकी सार्थकता की परीक्षा की जाती है तथा इस निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है कि दोनों समूह किसी विशेषता अथवा आश्रित चर के दृष्टिकोण से एक-दूसरे से भिन्न हैं या नहीं। "दोनों समूह एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं" यह उपकल्पना (H_o) परीक्षा का आधार होती है। अत: काई-वर्ग प्राचलीय परीक्षा टी का ही अप्राचलीय विकल्प है। टी-परीक्षा की शर्तें पूरी न होने पर जहाँ उनका प्रयोग नहीं किया जा सकता वहाँ काई-वर्ग का प्रयोग किया जा सकता है। उदाहरण के लिए मान लीजिए एक शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि "नौकरी करने की इच्छा में पुरुषों तथा स्त्रियों में कोई अन्तर है।" वह ऐसा एक प्रश्न कुछ स्त्रियों एवं पुरुषों से पूछता है तथा उत्तर के तीन विकल्पों "हाँ", "न" तथा "तटस्थ" के रूप में शोध-सामग्री प्राप्त करता है। इस स्थिति में काई-वर्ग परीक्षा का प्रयोग किया जा सकता है।

प्रयोग की विधि

काई-वर्ग के प्रयोग की इस स्थिति में भी वही विधि होगी जिसका वर्णन एकल समूह की स्थिति में पहले किया गया है। दोनों में अन्तर यही है कि इस स्थिति में एक समूह की जगह दो समूह है। तालिका तैयार करके उसकी प्रत्येक कोषा का काई-वर्ग मान निकालना होगा तथा अन्त में सबको जोड़कर सम्पूर्ण काई-वर्ग प्राप्त करना होगा। काई-वर्ग निकालने का सूत्र भी पूर्ववत् ही होता है अर्थात्

$$\text{काई-वर्ग} = \sum \frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$$

नीचे दिये गये उदाहरण द्वारा संगणना की विधि का स्पष्टीकरण किया गया है।

उदाहरण–2

मान लीजिये ऊपर दिये गये प्रश्न को शोधकर्ता ने 90 पुरुषों तथा 100 स्त्रियों से पूछा तथा 'हाँ', 'न' और "तटस्थ" तीन प्रकार के विकल्पों के रूप में उत्तर प्राप्त किये। उन उत्तरों का आवृत्ति-वितरण तैयार करके एक तालिका बनाई तथा इस उपकल्पना की परीक्षा की कि "पुरुषों तथा स्त्रियों की नौकरी की इच्छा में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।" निम्नलिखित तालिका शोध-सामग्री एवं संगणन की प्रक्रिया को प्रदर्शित करती है।

नोट

तालिका 27.2

रोजगार की आवश्यकता और लैंगिकता में संबंध

		Response			*Mode*
		Yes	***No***	***Indifferent***	***Total***
पुरुष	*Fo*	14.0	66.0	10.0	90
	Fe	19.42	62.52	8.05	
	Fo – Fe	5.42	3.48	1.95	
	$\frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$	1.51	0.20	0.47	
महिलाएँ	*F*o	27.0	66.0	7.0	100
	Fe	21.57	64.44	9.0	
	*F*o – *Fe*	5.43	3.49	2.0	
	$\frac{(Fo - Fe)^2}{Fe}$	1.30	0.18	0.49	
कुल		41	132	17	190

इस समस्या के समाधान में, काई वर्ग मान में प्रत्येक कोश की आवृत्ति की गणना करनी पड़ेगी और अन्त में सभी प्राप्त मानों को निम्न प्रक्रिया द्वारा रखकर हल किया जाएगा।

1. *Fe* (1) *i.e.*, cell-1 = $\frac{41}{190} \times \frac{90}{0}$ – 19.42 (out of 190 total *Fe* for 'yes' response = 41; how many out of 90, total of first row).

2. *Fe* (2) *i.e.*, for cell-2 = $\frac{132}{190} = \frac{90}{1}$ = 16.52 (out of 190 *Fe* for 'No' response = 132; how many out of 90).

3. *Fe* (3) *i.e.*, for cell-3 = $\frac{17}{190} \times \frac{90}{1} = 8.05$

   (out of 190 *Fe* for cell-3, indiff. response = 17; how many out of 90).

4. *Fe* (4) = $\frac{11}{190} \times \frac{100}{1} = 21.57$ (same argument).

5. *Fe* (5) = $\frac{132}{190} \times \frac{100}{1} = 64.44$ (same argument).

6. *Fe* (6) = $\frac{17}{190} \times \frac{100}{1} = 9.00$ (same argument).

नोट

After this, we find out $(F_o - Fe)$ for each cell. These values are also given in the table for each cell.

इसके पश्चात् प्रत्येक $(F_o - Fe)$ का वर्ग निकालकर उसे Fe से भाग देकर काई-वर्ग में बदल लेते हैं। ये क्रमश: 1.51 + .20 + .47 + 1.30 + .18 + .49 आते हैं। इन सबका योग अर्थात् $\sum \chi^2 = 4.51$।

काई-वर्ग की सार्थकता

तालिका-D में $(2 \times 1 = 2df)$ पर तथा .05 स्तर पर काई का मान है 4.991, परन्तु प्राप्त मान आता है 4.15 जो तालिका मान से कम है। अत: .05 स्तर पर H_o अर्थात् "अन्तर नहीं है" की उपकल्पना को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। फलस्वरूप "अन्तर नहीं है" को स्वीकार करना पड़ेगा क्योंकि काई-वर्ग का मान सार्थक नहीं है। वह संयोगवश भी हो सकता है।

निष्कर्ष

अत: यह निष्कर्ष निकला कि लिंग (Sex) का नौकरी की इच्छा के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

3. कन्टिंजेंसी विश्लेषण (2 × 2 तालिका)

आवृत्तियों का वितरण यदि 2 × 2 तालिका में प्रस्तुत किया गया हो तो काई-वर्ग निकालने की एक दूसरी विधि भी होती है जो बहुत सरल है तथा जिसका प्रयोग अधिकतर परिस्थितियों में किया जाता है। इसमें पंक्तियों (r) की संख्या भी 2 तथा स्तम्भों (k) की संख्या भी 2 होती है। अत: इसमें $df = (r-1)(k-1)$ अर्थात् $(2-1)(2-1) = 1$ होती है। काई वर्ग निकालने का सूत्र निम्न प्रकार होता है–

$$\chi^2 = \frac{H\left[|AD - BC| - \frac{N}{2}\right]^2}{(A+B)(C+D)(A+C)(B+D)}$$

जिसमें $|AD - BC|$ का अर्थ है कि AD में से BC अथवा BC में से AD किसी को भी किसी में से घटाया जा सकता है।

उपरोक्त सूत्र में $(AD - BC)$ में से $\frac{N}{2}$ को घटाया जाता है जिसे येट्स-शुद्धि (Yates Correction) कहते हैं। इसका कारण प्राप्त काई-मानों को उनके वास्तविक अर्थात् सिद्धान्ताधारित एवं प्रत्याशित काई-वर्ग वितरण के अनुरूप बनाना होता है। **मोरोने** (1954) के अनुसार, तालिकागत वितरण बायनोमियल वितरण (bionomial distribution) होता है जो अखण्ड (continuous) नहीं होता जबकि काई-वर्ग वितरण अखण्ड होता है। अत: बायनोमियल वितरण को काई-वर्ग वितरण के समरूप बनाने के लिए यह शुद्धि की जाती है।

उदाहरण-3

एक शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि क्या छात्रों का आर्थिक-सामाजिक स्तर उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करता है। वह 48 निम्न स्तर आर्थिक-सामाजिक स्तर के छात्रों को चुनकर उनकी शैक्षिक उपलब्धि को सफल अथवा असफल दो श्रेणियों में बाँटकर एकत्र करता है। इस शोध-सामग्री को वह 2 × 2 की तालिका में व्यवस्थित करता है तथा काई-वर्ग का मान कन्टिंजेंसी सूत्र के आधार पर निकालकर उपलकल्पना की परीक्षा करता है। निम्न तालिका तथा तदाधारित संगणना नीचे दी गई है।

नोट

तालिका 27.3

परीक्षा परिणाम

	अनुत्तीर्ण	उत्तीर्ण	कुल
उच्च SES	36 (A)	12(B)	48
निम्न SES	32(C)	16(D)	48
कुल	**68**	**28**	**96**

इस समस्या में मौजूद प्रश्न का उत्तर जानने के लिए काई वर्ग परीक्षा अपनाई जा सकती है। इसमें आँकड़ों को 2 × 2 की कंटिंजेन्सी तालिका बनाकर, मानों को सूत्र में रखने पर,

$$\chi^2 = \frac{N\left(|AD - BC| - \frac{N}{2}\right)^2}{(A+B)(C+D)(C+A)(B+D)}$$

$$= \frac{\left[96|(36)(16) - (12)(32)| - 96/2\right]^2}{48 \times 48 \times 68 \times 28}$$

$$= \frac{96\,[576 - 384 - 48]^2}{4386816}$$

$$= \frac{1990656}{4386816} = 0.4537 \text{ for } df$$

सार्थकता एवं निष्कर्ष

तालिका-D में 1 *df* तथा .05 स्तर पर काई-वर्ग का मान है 3.84। प्राप्त काई-वर्ग मान 0.4537 है जो तालिका मान से बहुत कम है। अत: H_o उपकल्पना "दोनों समूहों (HSES तथा LSES) की शैक्षिक उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं है" को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। प्राप्त काई-वर्ग सार्थक नहीं है अर्थात् वह संयोगवश भी हो सकता है। इसलिए अन्तिम निष्कर्ष यह होगा कि छात्रों का आर्थिक-सामाजिक स्तर उनकी शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित नहीं करता। आर्थिक-सामाजिक स्तर एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच कोई सम्बन्ध प्रतीत नहीं होता।

2 × 2 कन्टिंजेंसी विधि की सीमाएँ

क्या आप जानते हैं कंटिंजेंसी विधि का प्रयोग वहीं किया जा सकता है जहाँ प्रत्याशित आवृत्तियाँ पर्याप्त रूप से बड़ी हों।

नोट

यदि यह शर्त पूरी नहीं होती तो आस-पास की अवृत्तियों को मिलाकर तथा कोषाओं (cells) की संख्याओं को कम करके 2×2 तालिका की आवृत्तियों को बढ़ाया जा सकता है, तो भी निम्नलिखित बातों को ध्यान में रखना जरूरी है–

1. जब N का आकार 40 से अधिक हो तो अखण्डता हेतु शुद्धि का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

2. जब N 20–40 के बीच हो तो उपरोक्त सूत्र का प्रयोग तभी करें जब कोषाओं की सभी प्रत्याशित आवृत्तियाँ 5 अथवा 5 से अधिक हों।

सावधानी जब N 20 से कम हो तो काई-वर्ग का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

4. दो से अधिक स्वतन्त्र समूह

यदि दो से अधिक स्वतन्त्र समूहों की तुलना करनी है तब भी काई-वर्ग का प्रयोग किया जा सकता है। इस स्थिति में आवृत्तियों को $K \times r$ तालिका में व्यवस्थित किया जाता है। अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_o) पहले जैसी रहती है कि k-न्यादर्श आपस में एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं। काई-वर्ग परीक्षा भी वैसे ही की जाती है जैसे पीछे वर्णन किया गया है, परन्तु इसमें प्रत्येक कोषा की प्रत्याशित आवृत्तियाँ निकालने की विधि भिन्न होती है। इसका वर्णन एक उदाहरण द्वारा आगे किया जायेगा।

यह विधि प्राचलीय परीक्षा एकल दिक् विचरण विश्लेषण (one-way analysis of variance) का ही अप्राचलीय विकल्प है। यदि किसी अनुसन्धान की स्थिति में दो से अधिक समूहों की तुलना करनी हो परन्तु F-परीक्षा की शर्तें पूरी न होती हों तो वहाँ इसका प्रयोग किया जा सकता है।

उदाहरण–4

एक शोधकर्ता, बुद्धि एवं शैक्षिक उपलब्धि के बीच कोई सम्बन्ध है या नहीं, यह जानने के लिये एक कक्षा के 100 छात्रों की बुद्धि का मापन करता है तथा उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटता है, जैसे–अधिक बुद्धिमान, साधारण रूप से बुद्धिमान तथा कम बुद्धिमान। इसी प्रकार उनकी शैक्षिक उपलब्धि को चार श्रेणियों में बाँटता है, जैसे प्रथम, द्वितीय, तृतीय तथा असफल। जिस श्रेणी में जितने छात्र आते हैं उन्हें लेकर 4×3 की एक तालिका तैयार करता है जिसका प्रारूप तथा काई-वर्ग की संगणना उसके नीचे प्रस्तुत की गई है।

तालिका 27.4

शैक्षिक उपलब्धि

		असफल	*III श्रेणी*	*II श्रेणी*	*I श्रेणी*	*योग*
बुद्धि	अधिक O	5	6	9	8	28
	बुद्धिमान E	5.88	8.40	7.84	5.88	
	O-E	.88	2.40	1.16	3.88	
	साधारण O	5	16	13	8	42
	बुद्धिमान E	8.82	12.00	11.76	8.82	
	O-E	3.82	3.40	1.24	.82	

नोट

कम	O	11	8	6	5	30
बुद्धिमान	E	6.30	9.0	8.40	6.30	
	O-E	4.70	1.0	2.40	1.30	
योग		21	30	28	21	100

तालिका-4 में O के सामने प्रत्येक कोषा की प्राप्त आवृत्तियाँ दी गई हैं तथा E के सामने प्रत्याशित आवृत्तियाँ दी हैं। प्रत्याशित आवृत्तियाँ निकालने के प्रत्येक कोषा के पंक्ति-योग तथा स्तम्भ योग को गुणा करके कुल आवृत्तियों की संख्या (N) से भाग दे देते हैं। इसके पीछे इस प्रकार का तर्क रहता है। कोषा एक को लीजिये। इसमें सभी व्यक्ति वे हैं जो प्रथम पंक्ति एवं प्रथम स्तम्भ में आते हैं। किसी एक व्यक्ति के इस पंक्ति में होने की सम्भावना (probability) वह होगी जो इस पंक्ति के योग की कुल संख्या (N) अर्थात् 100 से भाग करने पर आयेगी अर्थात् वह होगी 28/100। इसी प्रकार उस व्यक्ति के प्रथम स्तम्भ में होने की सम्भावना होगी 21/100। अत: उसकी प्रथम पंक्ति एवं स्तम्भ में होने की सम्भावना होगी $\frac{28}{100}\times\frac{21}{100}$। यह हुई सम्भावना (probability) जो एक में से होती है। कुल आवृत्तियाँ 100 हैं। अत: 100 में से वे कितनी होंगी यह जानने के लिये इस सम्भावना $\left(\frac{28}{100}\times\frac{21}{100}\right)$ को 100 से गुणा कर देंगे। इस प्रकार प्रथम कोषा की कुल प्रत्याशित आवृत्तियाँ होंगी $\frac{28}{100}\times\frac{21}{100}\times\frac{100}{1}$ = 5.88

इसी प्रकार अन्य सभी कोषाओं की प्रत्याशित आवृत्तियाँ उनके पंक्ति-योग एवं स्तम्भ योग को गुणा करके 100 से भाग देकर निकाल सकते हैं। तालिका-4 में ये अंकित हैं। इनके आधार पर अग्रलिखित सूत्र द्वारा प्रत्येक कोषा का काई-वर्ग निकाल सकते हैं:

टास्क काई-वर्ग के दो से अधिक स्वतंत्र समूह पर प्रकाश डालें।

$\chi^2 = \frac{(O-E)^2}{E}$ अर्थात्

$(.88)^2/5.88 + (2.40)^2/8.40 + (1.16)^2/7.84 + (3.88)^2/5.88 + (3.82)^2/8.82$
$+ (3.40)^2/12.60 + (1.24)^2/11.76 + (.82)^2/8.82 + (4.70)^2/6.30$
$+ (1.0)^2/9.0 + (2.40)^2/8.40 + (1.30)^2/6.30$

उपरोक्त का मान निकालने पर काई-वर्ग =

$.774 + .686 + .172 + 2.560 + 1.654 + .917 + 1.538 + 0.76 + .506$
$+ .111 + .686 + .268 = 12.948.$

सार्थकता एवं निष्कर्ष

इस उदाहरण में, $df = (4-1)(3-1) = 6$।

नोट

तालिका-D में *df* 6 तथा .05–स्तर पर काई-वर्ग 12.59 है। उदाहरण में प्राप्त मान 12.948 है जो तालिका-मान से अधिक है। अत: H_o कि "बुद्धि शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित नहीं करती" अथवा बुद्धि का शैक्षिक उपलब्धि के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है" को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष स्थापित किया जाता है कि बुद्धि शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है अथवा वे दोनों एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (State whether the follwoing Statement are True or False):

4. काई-वर्ग वितरण अखण्ड होता है।
5. कंटिंजेंसी विधि का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ प्रत्याशित आवृत्तियाँ पर्याप्त रूप से छोटी हों।
6. काई-वर्ग परीक्षा में प्रत्येक कोषा की प्रत्याशित आवृत्तियाँ निकालने की विधि भिन्न हैं।
7. जब दो से कम स्वतंत्र समूह की तुलना करनी हो तो काई-वर्ग का प्रयोग किया जा सकता है।

27.3 सारांश (Summary)

- प्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग जनसंख्या-विशेषताओं (प्राचलों) के विषय में कुछ अवधारणाओं पर आधारित होता है। ठीक इसके विपरीत अप्राचलीय परीक्षाएँ जनसंख्या के प्राचलों के विषय में कोई शर्तें नहीं लगातीं। इसीलिए उन्हें अप्राचलीय परीक्षाएँ कहते हैं।
- काई-वर्ग (χ^2) एक ऐसी अप्राचलीय सांख्यिकीय विधि है जिसमें यह परीक्षा की जाती है कि आवृत्तियों का एक वितरण जो किसी अनुसन्धान के आधार पर प्राप्त हुआ है वह किसी उपकल्पना के आधार पर प्रत्याशित आवृत्तियों के वितरण से सार्थक रूप से भिन्न है अथवा नहीं।
- इस आकल्प के कई प्रकार हैं। मुख्य रूप से चार भिन्न परिस्थितियों में इसका प्रयोग किया जाता है। ये हैं: 1. एकल समूह स्थिति, 2. दो स्वतन्त्र समूहों की स्थिति, 3. कन्टिंजेंसी-विश्लेषण, 4. दो से अधिक स्वतन्त्र समूहों की स्थिति।

27.4 शब्दकोश (Keywords)

1. **सिद्धांताधारित**–सिद्धांत के आधार पर।
2. **ऋणात्मक**–आंकड़ों के अंतर्गत वे संख्याएं जो ऋणावेशित (Negative) होती है उन्हें ऋणात्मक कहा जाता है।

27.5 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. अप्राचलीय परीक्षाओं से क्या समझते हैं? इनके गुण एवं दोषों का वर्णन करें।
2. काई-वर्ग आकल्प से क्या समझते हैं? इसके प्रकारों का वर्णन करें।
3. दो-स्वतंत्र समूह आकल्प से क्या समझते हैं? वर्णन करें।
4. कंटिंजेंसी विश्लेषण क्या है–वर्णन करें।

नोट

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. परीक्षा विधि
2. 'समान या सम वितरण'
3. टी परीक्षा
4. सत्य
5. असत्य
6. सत्य
7. असत्य

27.6 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
2. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डॉ. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 28 : टी-टेस्ट
(T-Test)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

28.1 सांख्यिकीय विश्लेषण के प्रमुख आधार (Main Basis of Statistical Analysis)

28.2 प्राचलीय परीक्षा: टी-टेस्ट (Parametrical Test: T-Test)

28.3 टी-टेस्ट: विशिष्ट टिप्पणी (T-Test: Special Remark)

28.4 एक-पुच्छीय एवं द्वि-पुच्छीय परीक्षण (Single-end and Double-end Test)

28.5 सारांश (Summary)

28.6 शब्दकोश (Keywords)

28.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

28.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- सांख्यिकीय विश्लेषण के प्रमुख आधार को जानने में;
- प्राचलीय परीक्षा टी-टेस्ट को समझने में;
- एक-पुच्छीय एवं दो-पुच्छीय परीक्षण को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

पूर्वागत अध्यायों में प्रयोगात्मक आकल्पों की व्यूह-रचना, उनके प्रकार एवं नियमों आदि की व्याख्या की गई थी। आगामी अध्यायों में शोध-सामग्री के सांख्यिकीय विश्लेषण की कुछ विशिष्ट विधियों का वर्णन किया गया है। अनुसंधानकर्ता विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न प्रकार की शोध-सामग्री एकत्र करते हैं। सभी प्रकार की शोध-सामग्री का विश्लेषण किसी एक सांख्यिकीय विधि द्वारा सम्भव नहीं होता। भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री का विश्लेषण भिन्न-भिन्न विधियों से किया जाता है। ऐसी अनेक सांख्यिकीय विधियाँ हैं जिनका प्रयोग किया जा सकता है। अत: शोधकर्ता को एक ऐसी विधि का चयन करना होता है जो समस्या के स्वरूप, उद्देश्यों एवं एकत्रित सामग्री के संदर्भ में अधिकाधिक उपयुक्त हों। अत: शोधकर्ता के लिये यह जानना अत्यंत आवश्यक है कि कौन-कौन सी प्रमुख

नोट

विधियाँ हैं, किस विधि का प्रयोग किन परिस्थितियों में किया जाता है तथा उसका प्रयोग किस प्रकार किया जाता है। आगामी अध्यायों में विभिन्न सांख्यिकीय विधियों का इन्हीं संदर्भों में वर्णन किया गया है।

28.1 सांख्यिकीय विश्लेषण के प्रमुख आधार (Main Basis of Statistical Analysis)

प्रस्तुत अध्याय में सांख्यिकीय विश्लेषण की प्रक्रिया से संबंधित कुछ अन्य बातों की व्याख्या की गई है। ऐसा करना आवश्यक प्रतीत होता है क्योंकि सांख्यिकीय विश्लेषण के ये प्रमुख आधार हैं:

1. मूलभूत प्रक्रिया
2. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना
3. सार्थकता परीक्षा
4. त्रुटियों के प्रकार (सार्थकता के संदर्भ में)
5. सांख्यिकीय परीक्षण प्रतिमान
6. प्राचलीय परीक्षण
7. अप्राचलीय परीक्षण।

1. मूलभूत प्रक्रिया

प्रत्येक प्रयोगात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सांख्यिकीय विश्लेषण की प्रक्रिया में निम्नलिखित पद-क्रम होता है–

1. सांख्यिकीय उपकल्पना अथवा अप्रतिष्ठेय (null) उपकल्पना का उल्लेख।
2. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना की अस्वीकृति हेतु एक उपयुक्त सांख्यिकीय परीक्षा (test) (जैसे टी-टेस्ट अथवा एफ-टेस्ट अथवा कोई अन्य परीक्षा) का चयन।
3. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना की अस्वीकृति हेतु सार्थकता के स्तर (जैसे .01 अथवा .05) का चयन एवं उल्लेख।
4. पद-2 के अन्तर्गत निर्धारित सांख्यिकीय परीक्षा-मान (Value of statistical test) का आगणन (computation)।
5. पद-4 के अन्तर्गत प्राप्त सांख्यिकीय मान की तत्संबंधी तालिकागत सांख्यिकीय मान से तुलना करना तथा यह निर्णय लेना कि उसके आधार पर अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को अस्वीकार किया जाना चाहिये अथवा नहीं।
6. निष्कर्ष-निरूपण अनुसंधान उपकल्पना के संबंध में।

2. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना

प्रयोगात्मक शोध-सामग्री के विश्लेषण का प्रथम द्वार, जहाँ से प्रवेश करना होता है, अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (null hypothesis) है। इसका आविष्कार दिवंगत वैज्ञानिक गणितज्ञ रोनाल्ड फिशर ने किया था। अनुसंधान उपकल्पना जिसे वैज्ञानिक उपकल्पना (scientific hypothesis) अथवा मौलिक उपकल्पना (substantive hypothesis) भी कहते हैं तथा जो एक सकारात्मक एवं व्यावहारिक (operational) कथन मात्र होता है तथा जिसमें दो चरों के बीच एक संबंध विशेष की कल्पना निहित रहती है, को अप्रतिष्ठेय उपकल्पना में बदलना होता है क्योंकि अप्रतिष्ठेय उपकल्पना का ही सांख्यिकीय परीक्षण सम्भव होता है। उसी की अस्वीकृति के आधार पर

नोट

अनुसंधान उपकल्पना के विषय में कुछ कहना अथवा निष्कर्ष निकालना सम्भव होता है। ऐसी कोई भी सांख्यिकीय विधि नहीं है जिसके आधार पर अनुसंधान उपकल्पना को सीधे-सीधे स्वीकार अथवा अस्वीकार किया जा सके तथा उसके संबंध में निष्कर्ष-निरूपण किया जा सके। केवल अप्रतिष्ठेय उपकल्पना के प्रतिख्यान (rejection) अथवा अप्रतिख्यान (non-rejection) के आधार पर ही अनुसंधान उपकल्पना के सम्बन्ध में निष्कर्ष-स्थापना की जाती है। इसी कारण अनुसंधान उपकल्पना को विकल्प उपकल्पना (alternative hypothesis) H_1 भी कहा जाता है। यदि अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) अस्वीकृत हो जाती है तो विकल्प उपकल्पना (H_1) अर्थात्, अनुसंधान उपकल्पना को स्वीकार कर लिया जाता है। इसी प्रकार यदि अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) को अस्वीकार नहीं किया जा सकता तो अनुसंधान उपकल्पना अर्थात् विकल्प उपकल्पना (H_1) को अस्वीकार किया जाता है। अप्रतिष्ठेय (H_0) एवं अनुसंधान (H_1) उपकल्पनाओं के बीच इस प्रकार का प्रतीप (inverse) संबंध रहता है। अनुसंधान आकल्प की रचना करते समय आरंभ में ही इन दोनों प्रकार की उपकल्पनाओं का उल्लेख करना आवश्यक होता है।

अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को उस स्थिति में अस्वीकार किया जाता है जब प्राप्त सांख्यिकीय मान (टी.एफ, काई-वर्ग आदि) पूर्वनिर्धारित सार्थकता-स्तर पर तत्संबंधी तालिका में दिये गये मान के बराबर अथवा उससे अधिक होता है। इस प्रकार H_0 ही उपलब्ध शोध-सामग्री के परीक्षण का एकमात्र आधार होता है।

3. सार्थकता-परीक्षा

सार्थकता-परीक्षा का उद्देश्य यह जानना होता है कि सांख्यिकीय परीक्षा के आधार पर जो परिणाम, जो सांख्यिकीय मान प्राप्त हुआ है, वह केवल संयोगवश तो नहीं है अर्थात् वह उस चर के कारण है, उस उपचार के कारण है, आश्रित चर पर जिसके प्रभाव का अध्ययन किया जा रहा है। जब H_0 को किसी सार्थकता-स्तर पर अस्वीकार कर दिया जाता है तो यह स्वीकार किया जाता है कि प्राप्त परिणाम अध्ययनगत स्वतन्त्र चर अथवा उपचार के कारण उत्पन्न हुआ है। वह केवल संयोग मात्र नहीं है। दूसरे शब्दों में, प्राप्त परिणाम वास्तविक, यथार्थ (real) है अर्थात् स्वतन्त्र चर के प्रभावस्वरूप उत्पन्न हुआ है, ऐसा माना जाता है। इस प्रकार अग्रलिखित तार्किक क्रम सार्थकता-परीक्षा में निहित रहता है:

H_0 अस्वीकृत $\rightarrow$ परिणाम सार्थक $\rightarrow$ परिणाम वास्तविक अर्थात् प्रयोगाधीन उपचार के प्रभाव के कारण, संयोगवश नहीं,

H_0 अस्वीकृत नहीं $\rightarrow$ परिणाम सार्थकताविहीन $\rightarrow$ परिणाम संयोगमात्र, अर्थात् प्रयोगाधीन उपचार का कोई प्रभाव नहीं,

इस संदर्भ में सार्थकता-स्तर की संकल्पना को अच्छी तरह समझना अत्यन्त आवश्यक है। इसे ग्रीक भाषा के वर्ण अल्फा (α) के नाम से जाना जाता है। इसका अर्थ होता है। "वह सम्भावना जिसका शोधकर्ता अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को अस्वीकार करने हेतु चयन करता है।" उदाहरण हेतु .05 स्तर को इस उद्देश्य से चुना जाता है तो इसका अर्थ होगा कि प्राप्त सांख्यिकीय मान (टी, एफ, काई आदि) के घटित होने की संभाविता (probability) यदि .05 (पाँच प्रतिशत) अथवा उससे कम है तो H_0 को अस्वीकार किया जायेगा। अत: जैसे ही सार्थकता-स्तर का निर्धारण हो जाता है उसी समय यह भी निश्चित हो जाता है कि अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) को कब अस्वीकार किया जायेगा। इस प्रकार सार्थकता-स्तर वह कसौटी है, वह आधार है जिसका प्रयोग H_0 को अस्वीकार करने में किया जाता है। अल्फा अथवा सार्थकता-स्तर समसंभाविता-वक्र की आधार रेखा पर स्थित एक ऐसा विभाजन बिन्दु होता है जिससे नीचे वे सब समसंभावितायें होती हैं जो H_0 को अस्वीकार करती हैं तथा ऊपर वे जो उसे स्वीकार नहीं करतीं।

नोट

अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को अस्वीकार करने हेतु साधारणतया .05 तथा .01 स्तरों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु इनका चयन अधिकतर स्वच्छन्दत: (मनमाने ढंग से) किया जाता है। नियमानुसार सार्थकता-स्तर का चयन वैज्ञानिक एवं तर्कपूर्ण होना चाहिए। साथ ही उसका चयन शोध-सामग्री एकत्र करने से पहले ही किया जाना चाहिए क्योंकि न्यादर्श-परिभाषा (size) एक ऐसा तत्व है जिसका इस निर्णय में ध्यान रखना आवश्यक होता है। अत: शोधकर्ता को समस्या के स्वरूप को ध्यान में रखते हुए परिणामों के महत्त्व एवं वांछनीय शुद्धता के आधार पर अल्फा का चयन करना चाहिए। यह निर्णय लेते समय कुछ इस प्रकार के प्रश्नों के उत्तर देने चाहिए:

1. परिणाम कितने महत्त्वपूर्ण हैं?
2. अशुद्ध परिणामों में कितना जोखिम (हानि) होने की संभावना है?
3. कितनी शुद्धता (accuracy) अनिवार्य है?
4. परिस्थितियों के अनुसार संयोग-त्रुटि (chance error) के घटित होने की क्या संभावना है? आदि

4. त्रुटियों के प्रकार

चाहे अनुसंधान का आकल्प किसी भी प्रकार का हो तथा अल्फा-स्तर भी कोई हो, अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) को अस्वीकार करने अथवा अस्वीकार न करने में त्रुटि होना स्वाभाविक है। सार्थकता-स्तर का निर्णय करते ही इन त्रुटियों का भी निर्धारण हो जाता है। अप्रतिष्ठेय उपकल्पना के अस्वीकृत होने एवं अस्वीकृत न होने पर दो प्रकार की त्रुटियाँ हुआ करती हैं। इन्हें टाइप-I तथा टाइप–II प्रकार की त्रुटियाँ कहते हैं। टाइप–I त्रुटि का अर्थ होता है H_0 की अशुद्ध अथवा गलत (incorrect) अस्वीकृति (rejection): अर्थात् H_0 सत्य होते हुये भी उसे अस्वीकार कर देना। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ है कि यह निष्कर्ष निकालना कि स्वतन्त्र चर अथवा उपचार का आश्रित चर पर प्रभाव पड़ा है जबकि वास्तव में कोई प्रभाव नहीं पड़ा है क्योंकि आश्रित चर में उत्पन्न अथवा उपलब्ध परिवर्तन केवल संयोगवश हो सकता है। दूसरी टाइप–II त्रुटि का अर्थ है H_0 की अशुद्ध अथवा गलत स्वीकृति, अर्थात् H_0 को स्वीकार कर लेना जबकि उसे अस्वीकार किया जाना चाहिए था। दूसरे शब्दों में, यह निष्कर्ष निकालना कि स्वतन्त्र चर का आश्रित चर पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता, जबकि प्रभाव पड़ता है, कोई संबंध नहीं है, जबकि संबंध है। टाइप–I त्रुटि की संभावित सार्थकता-स्तर पर निर्भर करती है। यदि सार्थकता का स्तर बड़ा हो (जैसे .01 के स्थान पर .05) तो H_0 के अशुद्ध रूप से अस्वीकार होने की संभावना बढ़ जाती है अर्थात् टाइप–I त्रुटि की संभावना बढ़ जाती है। अत: टाइप–I त्रुटि सार्थकता-स्तर में ही निहित रहती है तथा उसे अल्फा (α) ही कहा जाता है। टाइप–II त्रुटि को बीटा (β) कहा जाता है। इन दोनों त्रुटियों की सीमा न्यादर्श के परिमाण पर भी निर्भर करती है। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि अल्फा (α) तथा N (न्यादर्श-परिणाम) दोनों के संबंध में निर्णय अनुसंधान के प्रारम्भ में, नियोजन के समय ही लिया जाना चाहिए। **सीगल** का कहना है कि "यदि हम दोनों प्रकार की त्रुटियों की संभावना को कम करना चाहते हैं तो हमें न्यादर्श का परिमाण (N) बढ़ाना चाहिए।"

दोनों प्रकार की त्रुटियों के बीच एक विशिष्ट प्रकार का सम्बन्ध होता है। यदि एक प्रकार की त्रुटि को कम करने का प्रयास किया जाता है तो दूसरे प्रकार की त्रुटि बढ़ जाती है। इसलिए शोधकर्ता को दोनों प्रकार की त्रुटियों के बीच एक समझौता करके अधिक से अधिक सन्तुलन स्थापित करने का प्रयास करना चाहिये। इसी को सांख्यिकीय परीक्षा की शक्ति (power) कहते हैं। सांख्यिकीय परीक्षा (statistical test) की शक्ति का अर्थ होता है "H_0 की शुद्ध (सही-सही) अस्वीकृति" जिसे एक सूत्र के माध्यम से इस प्रकार व्यक्त किया जाता है–

$$\text{शक्ति (Power)} = 1 - \beta \text{ (टाइप–II त्रुटि)}$$

क्योंकि टाइप–II त्रुटि की सम्भावना न्यादर्श के N के बढ़ने पर कम होती है, यह भली-भाँति समझा जा सकता है कि न्यादर्श का परिमाण बड़ा कर देने पर सांख्यिकीय परीक्षा की शक्ति भी बढ़ जाती है।

5. सांख्यिकीय परीक्षा का प्रतिमान

नोट

सार्थकता ज्ञात करने अथवा उपकल्पना की परीक्षा करने हेतु किसी एक सांख्यिकीय परीक्षा (टी-टेस्ट अथवा एफ-टेस्ट आदि) का प्रयोग किया जाता है। इनमें से प्रत्येक सांख्यिकीय विधि अथवा परीक्षा एक विशिष्ट सांख्यिकीय प्रतिमान (statistical model) पर आधारित होती है। जैसे–टी-टेस्ट का आधार टी-वितरण प्रतिमान होता है। इसी प्रकार एफ-टेस्ट का आधार एफ वितरण होता है। इसी प्रकार के अनेक सांख्यिकीय प्रतिमान अथवा परीक्षाएँ हैं जिनका प्रयोग विभिन्न परिस्थितियों में उपकल्पनाओं की परीक्षा हेतु किया जाता है। अत: यह समस्या उत्पन्न हो जाती है कि किसी एक परिस्थिति में किस सांख्यिकीय परीक्षा का प्रयोग किया जाये। कई विकल्प सम्भव होने पर किसी एक को चुनने के पीछे एक ठोस तर्क एवं विचार होना चाहिए।

एक सबसे महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि उसी सांख्यिकीय परीक्षा का प्रयोग करना चाहिए जो उस परिस्थिति में सबसे अधिक शक्तिशाली हो अर्थात् जिसमें अप्रतिष्ठेय उपकल्पना की अशुद्ध अस्वीकृति की सम्भावना कम तथा शुद्ध अस्वीकृति से सम्भावना अधिक हो। यही सांख्यिकीय परीक्षा की शक्ति कहलाती है। अत: सांख्यिकीय प्रतिमान के चयन में एक बात ध्यान में रखने की उसकी शक्ति होती है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ बातों का भी ध्यान रखना होता है, जैसे–न्यादर्श के चयन की विधि, जनसंख्या की विशेषताएँ, मापांकों का प्रकार, माप के लिए प्रयुक्त किया गया पैमाना आदि। इन सबसे सम्बन्धित प्रत्येक सांख्यिकीय परीक्षा की कुछ शर्तें होती हैं। ये शर्तें पूरी होने पर ही उस परीक्षा का प्रयोग किया जा सकता है। कुछ सांख्यिकीय परीक्षाएँ ऐसी हैं जिनकी शर्तें बहुत जटिल हैं तथा इसीलिए वे अधिक शक्तिशाली होती हैं। दूसरी ओर कुछ परीक्षाओं की शर्तें या तो हैं ही नहीं और यदि हैं तो बहुत साधारण-सी हैं। अत: ये परीक्षाएँ अधिक शक्तिशाली नहीं होतीं। उनके आधार पर जो परिणाम प्राप्त होते हैं, वे बहुत अधिक शुद्ध एवं वैध न होकर सामान्य स्तर के होते हैं, परन्तु यह भी स्मरण रखना चाहिए कि शक्तिशाली परीक्षाओं की शर्तें, उनकी आधारभूत अभिधारणाएँ यदि पूरी नहीं होतीं तो उन परिस्थितियों में उनके परिणाम कम शक्तिशाली परीक्षाओं के परिणामों से भी कम शुद्ध हो सकते हैं। अत: महत्त्वपूर्ण बात यह देखने की है कि प्रस्तुत परिस्थितियों में कौन-सी परीक्षा अधिक उपयुक्त होगी। कोई सांख्यिकीय परीक्षा ऐसी नहीं है जो सभी परिस्थितियों में शक्तिशाली बनी रहे।

शक्ति एवं आधारभूत अभिधारणाओं (assumptions) के दृष्टिकोण से दो प्रकार के सांख्यिकीय प्रतिमान हैं, जिनका प्रयोग किया जाता है। ये हैं–

(*i*) प्राचलीय (parametric)

(*ii*) अप्राचलीय (non-parametric)

प्राचलीय परीक्षाओं के अन्तर्गत टी-टेस्ट, एफ-टेस्ट तथा उनके विभिन्न रूप आते हैं। ये परीक्षाएँ अधिक शक्तिशाली होती हैं, परन्तु इनकी शर्तें भी बहुत कठोर हैं। अत: ये तभी शक्तिशाली होती हैं जब उनकी ये शर्तें पूरी होती हों। दूसरी ओर अप्राचलीय परीक्षाएँ हैं जिनकी नाम मात्र की ही कुछ शर्तें होती हैं, कुछ में तो प्राचल (parameter) सम्बन्धी कोई भी शर्त नहीं होती। प्रत्येक की शर्तें एवं आधारभूत अभिधारणाएँ आगे वर्णित की गई हैं।

6. प्राचलीय परीक्षाओं की शर्तें

बहुत से लेखकों के अनुसार अधिकतर प्राचलीय परीक्षाओं की शर्तें निम्नलिखित होती हैं–

1. न्यादर्श का चयन उस समग्र जनसंख्या में से किया गया हो जिसमें चरों का वितरण सम (normal) हो। इस सम्बन्ध में **ननली** का कहना है कि इस शर्त के पूरा न होने से तब तक कोई बड़ी समस्या उत्पन्न नहीं होती जब कि मापांकों का वितरण, सम-वितरण से बहुत अधिक भिन्न (जैसे–J–वक्र) न हो। **ननली** का यह भी कहना है कि यदि यह नियम भंग भी होता है तो भी उससे कोई बहुत बड़ी हानि नहीं होती क्योंकि टी-टेस्ट तथा एफ-टेस्ट अत्यधिक शक्तिशाली माने जाते हैं तथा "सम-वितरण की अभिधारणा के पूरा न होने का परिणामों पर नाममात्र का ही प्रभाव पड़ता है।"

नोट

2. दूसरी अभिधारणा (assumption) वितरण की सजातिता (homogeneity) की है। इसका अर्थ होता है कि सभी तुलनीय समूहों का अन्त: समूह विचरण समान होना चाहिए। एफ-टेस्ट के प्रयोग की स्थिति में तो यह अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है। ऐसा न होने पर एफ-टेस्ट के परिणाम की सार्थकता उभर कर नहीं आयेगी जबकि वास्तव में समूहों के बीच सार्थक अन्तर होगा।

उपरोक्त दोनों अभिधारणाओं के सम्बन्ध में **कर्लिंगर** बोनू (1960), **एण्डरसन** (1961), **गेम्स** तथा **लुकास** (1966) आदि का कहना है कि "सम-वितरण एवं सजातिता पर आवश्यकता से अधिक बल दिया गया है।"

3. एक तीसरी अभिधारणा यह है कि चरों पर उपलब्ध मापांक अखण्ड (continuous) एवं सम-अन्तराली (equal interval) होने चाहिये ताकि गणितीय प्रक्रियाओं का सम्पादन सम्भव हो सके।

4. एक चौथी अभिधारणा जिसका उल्लेख **सीगल** ने किया है, यह है कि समूहों में इकाइयों का वितरण एवं समग्र जनसंख्या में से उनका चयन सम-सम्भाविक विधि द्वारा किया जाना चाहिए, अर्थात् निरीक्षण (observations), मापन आदि स्वतन्त्र होने चाहिए।

यदि ये शर्तें अथवा अभिधारणाएँ किसी शोध-परिस्थिति में पूरी नहीं होती तो प्राचलीय परीक्षाओं के विषय में यह कहना है कि वे अधिक शक्तिशाली होती हैं, उचित नहीं होगा। सम्भवत: यह कहना भी कठिन होगा कि अमुक परीक्षा की शक्ति क्या है। उस स्थिति में शोध के परिणामों की शुद्धता के विषय में भी अनुमान लगा सकना कठिन होगा। साथ ही उस स्थिति में उपकल्पना-परीक्षण की सम्भाविता उल्लेख भी अर्थपूर्ण नहीं होगा।

7. अप्राचलीय परीक्षाओं की शर्तें

अप्राचलीय परीक्षाएँ मापांकों के वितरण के सम्बन्ध में सम-वितरण जैसी किसी अभिधारणा का बन्धन नहीं लगातीं। अत: इस दृष्टिकोण से उन्हें वितरणमुक्त (distribution-free) परीक्षाएँ कहा जाता है। इसी प्रकार मापांकों की अखण्डता एवं उनके सम-अन्तराली होने की शर्त भी ये नहीं लगातीं। इन परीक्षाओं का प्रयोग बहुत छोटे न्यादर्शों की स्थिति में भी किया जा सकता है। अत: उन्हें लघु-न्यादर्श परीक्षाएँ भी कहा जाता है। बहुत छोटे न्यादर्श की स्थिति में प्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग नहीं किया जा सकता।

अप्राचलीय परीक्षाओं का प्रयोग निम्नलिखित परिस्थितियों में किया जाता है–

(*i*) जब शोध-सामग्री अर्थात् मापांक (जैसे–I, II, III) अथवा अनुस्थिति (ranks) के रूप में हों।

(*ii*) जब मापांकों का वितरण अत्यन्त विषम (skewed) हो अथवा वितरण कैसा होगा, अनुमान लगा सकना सम्भव न हो।

(*iii*) जब न्यादर्श का परिमाण बहुत छोटा हो।

(*iv*) जब शोध-सामग्री खण्ड मापांकों में न होकर केवल प्रवृत्तियों के रूप में उपलब्ध हों।

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि सांख्यिकीय परीक्षा का चयन करते समय उपरोक्त बहुत-सी बातों को ध्यान में रखना पड़ता है। विशेष रूप से–

(*i*) परीक्षा की शक्ति।

(*ii*) परीक्षा की आधारभूत अभिधारणाएँ।

(*iii*) उपलब्ध मापांकों का स्वरूप, आदि।

आगामी कुछ अध्यायों में महत्त्वपूर्ण प्राचलीय एवं अप्राचलीय परीक्षाओं का वर्णन किया गया है। उनका प्रयोग कहाँ तथा कैसे किया जाता है, इसका विस्तार से वर्णन किया गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

नोट

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. अप्रतिष्ठेय उपकल्पना का आविष्कार दिवंगत वैज्ञानिक गणितज्ञ .....ने किया था।
2. अनुसंधान उपकल्पना को ..... उपकल्पना (H_1) भी कहा जाता है।
3. टी टेस्ट का आधार ..... प्रतिमान होता है।
4. सांख्यिकीय परीक्षा की शक्ति का अर्थ होता है '(H_o) की शुद्ध .....।'

28.2 प्राचलीय परीक्षा: टी-टेस्ट (Parametrical Test: T-Test)

प्राचलीय परीक्षाओं के अन्तर्गत टी-टेस्ट तथा एफ-टेस्ट आते हैं। इस अध्याय में केवल टी-टेस्ट का वर्णन किया गया है।

यदि स्वतन्त्र चर पर केवल समूहों की रचना की गई है अर्थात् स्वतन्त्र चर का प्रहस्तन (manipulation) केवल दो श्रेणियों में किया गया है तथा केवल इन दो समूहों की ही तुलना आश्रित चर पर की जानी है तो उस स्थिति में टी-टेस्ट का प्रयोग किया जाता है। टी-टेस्ट प्राचलीय परीक्षा है तथा इसमें एक ही स्वतन्त्र चर होता है जिसका दो या दो से अधिक श्रेणियों में प्रहस्तन किया जाता है। इस प्रकार के अनुसंधान आकल्पों को "एकल चर आकल्प" (single variable designs) कहते हैं।

इस दृष्टिकोण से टी-टेस्ट दो प्रकार के होते हैं–

(*i*) स्वतन्त्र समूहाधारी, तथा

(*ii*) सह-सम्बन्धी अथवा पुनर्मापाधारी।

स्वतन्त्र समूह की स्थिति में दोनों समूहों की इकाइयाँ भिन्न होती हैं। सह-सम्बन्धी समूहों की स्थिति में इकाइयों के एक ही समूह को दो उपचारों के आधीन रखा जाता है। यदि इकाइयों को समानीकृत करके दोनों समूहों में वितरित किया जाता है तो समूहों की इकाइयाँ भिन्न होते हुए भी उन्हें सह-सम्बन्धी ही समझा जाता है। टी-टेस्ट का प्रयोग दोनों ही स्थितियों में किया जा सकता है, परन्तु दोनों के सूत्र अलग-अलग हैं।

एक दूसरे दृष्टिकोण से उपरोक्त दोनों प्रकार की टी-परीक्षाओं के दो रूप होते हैं–

(*i*) लघु-न्यादर्शीय तथा

(*ii*) वृहद्-न्यादर्शीय।

इन दोनों स्थितियों में भी अलग-अलग सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार टी-परीक्षा के कुल चार प्रकार होते हैं–

(*i*) वृहद्-न्यादर्श स्वतंत्र समूह,

(*ii*) वृहद् न्यादर्श सह-सम्बन्धी समूह,

(*iii*) लघु-न्यादर्श स्वतंत्र समूह,

(*iv*) लघु न्यादर्श सह-सम्बन्धी समूह।

प्रत्येक का अलग-अलग वर्णन आगे किया गया है।

1. वृहद् न्यादर्श स्वतंत्र समूह टी-टेस्ट

इस परीक्षा का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ समूहों की संख्या दो हो, समूह स्वतंत्र हों, न्यादर्श वृहद् हो तथा प्राचलीय परीक्षाओं की शर्तें पूरी होती हों। इसमें समूहों की तुलना उनके मध्यमानों के अन्तर के आधार पर की जाती

नोट

है। उपकल्पना, जिसका परीक्षण किया जाता है वह इस प्रकार की होती है, "समूहों के मध्यमानों में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।" इसके लिये मध्यमानों के अन्तर को टी-मान अथवा काष्ठा-अनुपात (C.R. Value) में परिवर्तित किया जाता है। प्राप्त टी अथवा काष्ठा अनुपात की तुलना पूर्वचयनित सार्थकता-स्तर पर (.05 अथवा .01) टी-तालिका में दिये गये मान से की जाती है। तालिका में टी का मान देखते समय स्वातन्त्र्यांशों (degrees of freedom) को भी ध्यान में रखना होता है। यदि प्राप्त टी-मान उस सार्थकता-स्तर पर तथा उतने स्वातन्त्र्यांश पर तालिका मान के बराबर अथवा उससे अधिक होता है तो अप्रतिष्ठेय उपकल्पना (H_0) को अस्वीकार कर दिया जाता है और विकल्प उपकल्पना (H_1) को स्वीकार किया जाता है। यदि यह प्राप्त मान तालिका मान से कम पाया जाता है तो H_0 को अस्वीकार न करके H_1 को अस्वीकार किया जाता है। इस प्रकार, अप्रत्यक्ष रूप से अर्थात् H_0 को अस्वीकार न करके अनुसंधान-उपकल्पना के विषय में निष्कर्ष निकाला जाता है। नीचे दिये गये उदाहरण द्वारा यह स्पष्ट हो जायेगा:

उदाहरण **उपकल्पना–**ग्यारह वर्षीय बालकों की उपलब्धि-प्रेरणा के स्तर एवं उनकी शैक्षिक उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं होता।

विश्लेषण आकल्प–उच्च उपलब्धि प्रेरणा (ach. motivation) वाले एवं निम्न उपलब्धि प्रेरणा वाले 11 वर्षीय बालकों के दो स्वतन्त्र समूहों की रचना करके उनकी शैक्षिक उपलब्धि (परीक्षा के अंकों) के अलग-अलग मध्यमान तथा विचलन मान निकाले जाते हैं।

निम्न उदाहरण की तालिका में सामग्री को प्रस्तुत किया गया है–

तालिका 28.1

उपलब्धि–प्रेरणा एवं शैक्षिक-उपलब्धि में सम्बन्ध

	समूह–I (निम्न प्रेरणा)	*समूह II (उच्च प्रेरणा)*
मध्यमान	88.80	90.5
वि.मान	7.81	11.56
सं. (N)	83	97

यह वृहद् न्यादर्श स्वतन्त्र समूह का उदाहरण है। इसमें काष्ठा अनुपात (C.R. अथवा टी) निकालने की प्रक्रिया इस प्रकार की होती है–

पदक्रम 1: प्रत्येक मध्यमान की प्र.त्रुटि (S.E.) निकालिये। इसका सूत्र है–

$$S.E. = \frac{S.D.}{\sqrt{N}}$$

अत:

$$S.E._1 = \frac{7.81}{\sqrt{83}} = .857$$

इसी प्रकार,

$$S.E._2 = \frac{11.56}{\sqrt{95}} = 1.86$$

नोट

पदक्रम 2: अब इनके आधार पर $S.E._D$ (S.E. of difference) निकालिये। इसका सूत्र है–

$$S.E._D = \sqrt{[S.E._1)^2 + (S.E._2)^2]} \quad \text{...सूत्र (1)}$$

इस सूत्र के अनुसार, $S.E._D = \sqrt{[(.857)^2 + (1.86)^2]}$

$= 1.463$

पदक्रम 3: अब टी का मान ज्ञात कीजिये। इसका सूत्र है–

$$t = \frac{D}{S.E._D} = \frac{1.70}{1.463} = 1.162$$

पदक्रम 4:

सार्थकता की जाँच–इसके लिए 196 *df* तथा .05 स्तर पर तालिका (B) में दिये गये टी मान (1.97) के साथ प्राप्त टी-मान की तुलना करनी होगी। स्पष्ट है कि प्राप्त टी-मान 1.162 तालिकागत टी मान 1.97 से कम है। अत: यह अन्तर .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। इस स्तर पर सार्थक नहीं है तो .01 स्तर पर भी सार्थक नहीं होगा। अत: H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परिणामस्वरूप H_1 (अन्तर होता है) को अस्वीकार किया जाता है।

पदक्रम 5:

निष्कर्ष–अत: यह निष्कर्ष निकला कि दोनों समूहों के मध्यमानों में वास्तविक अन्तर नहीं है अर्थात् उपलब्धि-प्रेरणा तथा शैक्षिक उपलब्धि में सम्भवत: कोई सम्बन्ध नहीं होता।

2. वृहद्-न्यादर्श सह-सम्बन्धी समूह टी-टेस्ट

उदाहरण–1 में दी गई विधि का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ समूह स्वतंत्र होते हैं, परन्तु जब समूह सह सम्बन्धी अथवा समानीकृत (matched) होते हैं तो निम्नलिखित विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें प्रमाप त्रुटि (S.E.) निकालने का सूत्र तो उदाहरण–1 की भाँति ही रहता है, परन्तु $S.E._D$ निकालने का सूत्र निम्नलिखित होता है–

$$S.E._D = (S.E._1^2 + S.E._2^2 - 2r_{12} S.E._1 S.E._2) \quad \text{.....सूत्र (2)}$$

अथवा

$$\sqrt{\left[\frac{1}{N}\left(S.D._2^2 - 2r_{12}\right)\left(S.D._1 \times S.D._2\right)\right]}$$

इसी प्रकार टी का मान निकालने का सूत्र भी पूर्ववत् ही रहता है अर्थात्

$$t = \frac{D}{S.E._D}$$

नीचे दिये गये उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है।

उदाहरण–2: ग्यारह वर्षीय 625 बालकों के एक समूह को एक व्यक्तित्व सन्तुलन परीक्षा दी गई। इस पर उनके मध्यमान एवं प्र.वि. (S.D.) क्रमश: 96.7 तथा 8.0 पाये गये। इसके बाद उन्हें दो माह तक सामूहिक परामर्श उपचार दिया गया। दो माह पश्चात् उन्हें पुन: वही सन्तुलन परीक्षा दी गई। इस बार उनके सन्तुलन का मध्यमान 106.7 तथा प्र.वि. 10.0 पाया गया। दोनों बार की सन्तुलन परीक्षाओं के बीच सह-सम्बन्ध 0.52 था। क्या सामूहिक परामर्श उपचार प्रभावशाली था?

नोट

इस प्रश्न का उत्तर प्राप्त करने के लिये दोनों बार की सन्तुलन परीक्षा के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता की परीक्षा करनी होगी, क्योंकि दोनों समूह सह-सम्बन्धी हैं। अत: उनके मध्यमानों के अन्तर की $S.E._D$ निकालने के लिये सूत्र-2 का प्रयोग करना होगा। सम्पूर्ण प्रक्रिया इस प्रकार होगी–

1. $S.E._1$ (प्रथम बार के मध्यमान की) $= \frac{S.D.}{\sqrt{N}} = \frac{8}{\sqrt{625}} = \frac{8}{25} = .32$

2. $S.E._2$ (दूसरी बार के मध्यमान की) $\frac{S.D.}{\sqrt{N}} = \frac{10}{\sqrt{625}} = \frac{10}{25} = .40$

3. $S.E._D = \sqrt{(S.E._1^2 + S.E._2^2 - 2r_{12}\, S.E._1\, S.E._2)}$

$= \sqrt{[(.32)^2 + (.04)^2 - 2 \times .52 \times .32 \times .40]}$

$= .3596$

दूसरे विकल्प-सूत्र का प्रयोग करने पर भी $S.E._D$ का यही मान जायेगा।

4. $t = \frac{D}{S.E_D} = \frac{106.7 - 96.7}{.3596} = \frac{10}{.3596} = 27.80$

यह टी-मान प्रत्येक स्तर पर तालिका-B में 624 $df\,(N-1)$ पर दिये गये मान से बहुत अधिक है। अत: H_0 को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष निकलता है कि सामूहिक परामर्श उपचार का सन्तुलन पर निश्चित प्रभाव पड़ता है।

स्वातंत्र्यांशों का आगणन

यह स्मरण रखना आवश्यक है कि स्वतन्त्र समूहों की स्थिति में स्वातंत्र्यांशों का आगणन $n_1 + n_2 - 2$ सूत्र के आधार पर किया जाता है। इसका कारण यह है कि सह-सम्बन्धी तथा समानीकृत समूहों की स्थिति में एक ही व्यक्ति की परीक्षा दो बार होती है, अत: उनके मापांकों के बीच सह-सम्बन्ध स्थापित हो जाता है। दूसरी बार की परीक्षा पर प्राप्त होने वाले मापांकों के परिवर्तन की स्वतंत्रता घट जाती है क्योंकि समूह वही रहने के कारण समूह की दूसरी बार की उपलब्धि पहली बार की उपलब्धि से बिल्कुल भिन्न, स्वतन्त्र नहीं हो सकती। अत: पहली बार जो मापांक आया है उससे दूसरी बार का मापांक सर्वश: स्वतंत्र नहीं हो सकता। इसलिये एक व्यक्ति के दोनों बार के मापांकों को दो df न देकर एक df ही दी जाती है। इस प्रकार सह-सम्बन्धी समूहों की स्थिति में df निकालने के लिये $N - 1$ सूत्र का ही प्रयोग किया जाता है।

3. लघु न्यादर्श स्वतंत्र समूह टी-टेस्ट

यदि दोनों स्वतंत्र समूहों की इकाइयों का योग 30 से कम हो तो उसे लघु न्यादर्श समझा जाता है। इस स्थिति में S.D. तथा $S.E._D$ निकालने के सूत्र भिन्न होते हैं। शेष प्रक्रिया पूर्ववत रहती है। S.D. तथा $S.E._D$ निकालने के सूत्र इस प्रकार होते हैं–

(i) S.D. $= \sqrt{\left(\frac{\Sigma x^2 + \Sigma y^2}{N_1 + N_2 - 2}\right)}$

जिसमें Σx^2 तथा Σy^2 क्रमश: दोनों समूहों के अंकों के अपने-अपने मध्यमानों से लिए गये अन्तरों के वर्गों का योग है।

नोट

(*ii*) $S.E._D = S.D.\sqrt{\left(\frac{N_1 + N_2}{N_1 \times N_2}\right)}$

आगणन की सम्पूर्ण प्रक्रिया का स्पष्टीकरण आगे दिये गये उदाहरण द्वारा किया गया है।

तालिका 28.2

GroupX			*Group Y*		
X	***x***	***x^2***	***Y***	***y***	***y^2***
110	4.5	20.25	115	2.0	4.0
112	6.5	42.25	112	– 1.0	1.0
95	– 10.5	110.25	109	– 4.0	16.0
105	– 0.5	0.25	112	– 1.0	1.0
111	5.5	30.25	117	+ 4.0	16.0
97	– 8.5	72.25			
112	6.5	42.25			
102	– 3.5	12.25			
Sum = 844		330	565		38
N 8		Σx^2	5		Σy^2
Mean = 105.5			Mean = 113.0		

Steps:

1. Pooled S.D. $= \sqrt{\left(\frac{\Sigma x^2 + \Sigma y^2}{N_1 + N_2 - 2}\right)} = \sqrt{\left(\frac{330 + 38}{8 + 5 - 2}\right)} = 5.78$

2. S.E. = Pooled S.D. $\times \left(\frac{N_1 + N_2}{N_1 \times N_2}\right) = 5.78 \times \sqrt{\left(\frac{13}{40}\right)} = 3.302$

3. C.R. $(t) = \frac{\text{Diff.}}{3.302} = \frac{7.5}{3.302} = 2.271$ for df 11

टास्क स्वातंत्र्यांशों का आगणन कैसे किया जाता है।

4. निष्कर्ष: तालिका–B में 11 $df\,(n_1 + n_2 - 2)$ तथा .05 स्तर पर टी का मान है 2.20, परन्तु प्राप्त टी का मान है 2.271। अत: दोनों मध्यमानों का अन्तर वास्तविक (सार्थक) है। इसलिए इस स्तर पर H_0 को अस्वीकार किया जाता है। .01 स्तर पर यह सार्थक नहीं है क्योंकि उस स्तर पर टी का तालिका मान 3.11 है तथा प्राप्त मान उससे कम है।

यह विश्लेषण–विधि प्रयोगशाला में किये जाने वाले अध्ययनों के संदर्भ में बहुत महत्त्वपूर्ण है क्योंकि इन अध्ययनों में न्यादर्श का परिणाम छोटा ही होता है परन्तु इस स्थिति में समूहों की सजातिता अथवा समरूपता की जाँच करना

नोट

आवश्यक होता है। विचलन-समरूपता (homogeneity of variance) होने पर ही इस विधि का प्रयोग किया जा सकता है।

4. लघु न्यादर्श सह-संबंधी समूह टी-टेस्ट

इस स्थिति में भी $S.E._D$ निकालने का सूत्र वही रहता है जो वृहद् न्यादर्श सह-संबंधी समूह की स्थिति में प्रयोग किया जाता है अर्थात् इस स्थिति में,

$$S.E._D = \sqrt{S.E._1^2 + S.E._2^2 - 2r_{12} \times S.E._1 \times S.E._2}$$

परन्तु इसे प्राप्त करने की एक दूसरी विधि भी है। इसका आधार दोनों समूहों के मापांकों के अन्तरों का वितरण होता है। अन्तरों के मध्यमानों एवं प्र.वि. (S.D.) निकाले जाते हैं। इन्हें क्रमशः D तथा S_D की संज्ञा दी जाती है। इनके आधार पर $S.E._D$ निकाली जाती है जिसका सूत्र है–

$$S.E._D = \frac{S_D}{\sqrt{N}}$$

इस $S.E._D$ को $\frac{D}{S.E._D}$ सूत्र द्वारा टी मान में बदल लिया जाता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा–

तालिका 28.3

X	*Y*	*D*	D^2
100	105	– 5.0	25
90	95	– 5.0	25
106	100	+ 6.0	36
95	105	– 10.0	100
102	99	+ 3.0	9
104	98	+ 6.0	36
90	110	– 20.0	400
105	106	– 1.0	1
99	100	– 1.0	1
		$\Sigma D = -27.0$	$\Sigma D^2 = 633$

1. $\bar{D} = \frac{-27}{9} = 3.0$

Let $d = (D - \bar{D})$, a deviation score in D. Then:

2. $\Sigma d^2 = \Sigma D^2 - \frac{(\Sigma D)^2}{n} = 633 - \frac{(-27)^2}{9} = 552.00$

3. $S_D = \sqrt{\left(\frac{\Sigma d^2}{n-1}\right)} = \sqrt{\left(\frac{552.0}{8}\right)} = 8.306$

नोट

4. $S.E._D = \frac{S_D}{\sqrt{N}} = \frac{8.306}{\sqrt{9}} = 2.768$

5. $Z\ (t) = \frac{D}{S.E._D} = \frac{-3.0}{2.768} = -1.08$

यदि सूत्र-2 का प्रयोग करके टी का मान निकाला जाये तो भी उतना ही आयेगा जितना उपरोक्त विधि द्वारा प्राप्त होता है।

तालिका-B में 8 $df(N-1)$ तथा .05 पर टी का मान 2.31 मिलता है। प्राप्त टी-मान 1.08 है जो तालिका मान से कम है। अत: H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। इसीलिए अनुसंधान उपकल्पना (H_1) को अर्थात् "अन्तर है" को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष स्थापित किया जाता है कि X तथा Y मापांकों के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

इस विधि का प्रयोग वृहद् न्यादर्श सह-संबंधी समूहों की स्थिति में भी किया जा सकता है। आगणन के दृष्टिकोण से यह विधि बहुत सरल है, परन्तु इसके आधार पर बहुत कम सूचना प्राप्त होती है। इससे दोनों समूहों के मापांकों के बीच सह-संबंध का ज्ञान नहीं होता और न इससे समूहों के मध्यमानों एवं प्र.वि. का ही पता चलता है।

परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वृहद् एवं लघु न्यादर्श सह-संबंधी समूहों दोनों स्थितियों में टी का मान निकालने की विधियाँ एक ही हैं, परन्तु यदि समूहों को मध्यमान एवं प्र.वि. के आधार पर समान बनाया गया है तो $S.E._D$ निकालने का सूत्र निम्नलिखित होता है–

$$S.E._D = \sqrt{[S.E._1^2 + S.E._2^2 \times (1 - r_{xy}^2)]}$$

शेष समस्त प्रक्रिया इस स्थिति में भी पूर्ववत् ही रहती है।

क्या आप जानते हैं प्रत्येक सांख्यिकीय विधि या परीक्षा एक विशिष्ट सांख्यिकीय प्रतिमान पर आधारित होती है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहुविकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

5. उपकल्पना की परीक्षा करने हेतु किसी एक ..... परीक्षा का प्रयोग किया जाता है।
   (क) गणितीय (ख) सांख्यिकीय (ग) राजनीति (घ) इनमें से कोई नहीं
6. आधारभूत अवधारणाओं की दृष्टि से सांख्यिकीय प्रतिमान ..... प्रकार की होती हैं।
   (क) एक (ख) दो (ग) चार (घ) पाँच
7. टी-टेस्ट ..... परीक्षा है।
   (क) प्राचलीय (ख) अप्राचलीय (ग) न्यादर्शीय (घ) सजातीय
8. इस तरह के अनुसंधान (टी-टेस्ट) आकल्पों को ..... कहते हैं।
   (क) द्वि-चर आकल्प (ख) चर आकल्प (ग) एकल चर आकल्प (घ) तीनों

28.3 टी-टेस्ट : विशिष्ट टिप्पणी (T-Test: Special Remark)

टी-टेस्ट के प्रयोग से संबंधित कुछ अभिधारणाओं का उल्लेख किया जा चुका है। इनमें कुछ हैं: (*i*) जनसंख्या में चरों के वितरण का सम (normal) होना तथा (*ii*) न्यादर्शों की जनसंख्याओं (populations) के विचरण

नोट

(variances) का समरूप होना। इनकी सांख्यिकीय विधियों द्वारा जाँच भी की जा सकती है। इनका उल्लेख सांख्यिकी की उच्च स्तरीय पुस्तकों जैसे, **हेज** (1973) की पुस्तक आदि में किया गया है। फिर भी महत्त्वपूर्ण बात यह है कि टी-टेस्ट एक शक्तिशाली सांख्यिकीय परीक्षा है तथा उसके परिणाम उपरोक्त अभिधारणाओं के भंग होने पर भी अधिक कुप्रभावित नहीं होते, परन्तु भिन्न आकार (N) वाले स्वतंत्र समूहों की स्थिति इसका अपवाद (exception) है। इस स्थिति में यदि विचरण की सजातिता (homogeneity of variance) की शर्त पूरी नहीं होती तो परिणाम अवांछनीय रूप से प्रभावित हो सकते हैं। अत: इस स्थिति में उपरोक्त अभिधारणा की जाँच अवश्य की जानी चाहिए। यदि यह शर्त पूरी नहीं होती तो टी-परीक्षा का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वृहद् न्यादर्श की स्थिति में इन शर्तों के पूरा न होने पर विशेष अन्तर नहीं पड़ता, परन्तु लघु न्यादर्श की स्थिति में विचरण की समानता का अभाव परिणामों को प्रभावित करता है। परन्तु इस स्थिति में भी यदि न्यादर्शों के परिमाण (N*s*) समान हों तो समस्या कुछ कम हो जाती है।

सावधानी लघु न्यादर्शों की स्थिति में टी-परीक्षा का प्रयोग करने से पहले विचरण-सजातीयता की जाँच अवश्य की जानी चाहिए।

28.4 एक-पुच्छीय एवं द्वि-पुच्छीय परीक्षण (Single-end and Double-end Test)

इस संकल्पना की व्याख्या अध्याय-10 में प्रयोगात्मक आकल्प के अन्तर्गत की जा चुकी है। यहाँ केवल यह बताना है कि एक-छोरीय परीक्षा की स्थिति में तालिका का टी मान कैसे देखते हैं। एक-पुच्छीय अथवा एक-छोरीय अथवा सदिश परीक्षा के लिए तालिका में .05 स्तर पर .10 स्तम्भ तथा .01 स्तर पर .02 स्तम्भ में टी का मान देखा जाता है। यदि द्वि-छोरीय परीक्षा के आधार पर कोई प्राप्त टी-मान किसी सार्थकता-स्तर पर सार्थक (significant) नहीं आता है तो एक-छोरीय परीक्षा का प्रयोग करने पर वह कभी-कभी सार्थक घटित हो जाता है, परन्तु यह निर्णय कि कौन सी परीक्षा (एक-पुच्छ अथवा द्वि-पुच्छ) का प्रयोग किया जायेगा, अनुसंधान की सामग्री एकत्र करने से पूर्व नियोजन स्तर पर ही लिया जाना चाहिए।

टी-टेस्ट की संवेदनशीलता बढ़ाना

नोट्स टी-टेस्ट की संवेदनशीलता का अर्थ है स्वतंत्र चर अथवा उपचारों के आश्रित चर पर पड़े प्रभाव को उभारकर प्रस्तुत करने की उसकी क्षमता अर्थात् उसकी प्रभाविता (कार्यदक्षता)।

कई ऐसे उपाय हैं जिनके द्वारा टी-परीक्षा की इस संवेदनशीलता को बढ़ाया जा सकता है। इनका उल्लेख आगे किया गया है।

1. कोलाहल के स्तर को घटाना: इस संदर्भ में कोलाहल का अर्थ है अनियंत्रित चरों का प्रभाव। ये प्रभाव अनेक रूपों में उपस्थित होते हैं। प्रयोगात्मक आकल्पों के नियमों एवं विभिन्न प्रकारों के अन्तर्गत इनका वर्णन किया जा चुका है। मुख्य रूप से इनके स्रोत होते हैं–

(*i*) अनुसंधानाधीन व्यक्तियों को दिये गये निर्देश,

(*ii*) अध्ययनेतर चरों का अपूर्ण नियंत्रण,

(*iii*) अध्ययन की व्यवस्था एवं परिस्थितियों पर नियंत्रण न होना,

नोट

(*iv*) शोधकर्ता की अभिनति (bias) तथा

(*v*) अनुसंधानाधीन व्यक्तियों की मानसिक स्थिति (mental set)।

अत: इनके कारण उत्पन्न हुए "कोलाहल" (प्रभाव) को नियंत्रित करने का हर संभव प्रयास करना चाहिए जिससे प्रयोगात्मक प्रभाव (experimental effects) जो स्वतंत्र चर अथवा उपचारों के कारण प्रत्याशित होते हैं, उभरकर सामने आ सकें।

2. न्यादर्श के परिमाण (size) को बढ़ाना: टी-परीक्षण की संवेदनशीलता को बढ़ाने का यह दूसरा उपाय है। ऐसा करने से समसंभाविक त्रुटि (random error) कम हो जाती है तथा टाइप-I और टाइप-II त्रुटियाँ भी घट जाती हैं। इस प्रकार, स्वतंत्र चर का प्रभाव अधिक स्पष्ट हो जाता है तथा टी-परीक्षा की संवेदनशीलता बढ़ जाती है।

3. "फर्श" एवं "छत" के प्रभाव को दूर करना: इसका अर्थ है कि चरों के मापन हेतु प्रयुक्त परीक्षाएँ न तो बहुत सरल होनी चाहिए और न बहुत कठिन। यदि वे बहुत सरल होंगी तो अधिकतर व्यक्तियों के अंक बहुत ऊँचे होंगे, शत-प्रतिशत भी हो सकते हैं। उस स्थिति में कुछ के परीक्षा पर और ऊँचे जाने की संभावना घट जायेगी। परिणामस्वरूप उपचारों द्वारा उत्पन्न अन्तर कम हो जायेंगे। इस स्थिति को "छत से टकराकर नीचे फर्श की ओर आने की घटना" कहा जाता है। इसी प्रकार यदि परीक्षा बहुत कठिन है तो बहुत से व्यक्ति (प्राप्तांकों के दृष्टिकोण से) फर्श से ही ऊपर नहीं उठ पायेंगे। इसे "फर्श का प्रभाव" कहा जाता है। इस स्थिति में भी उपचारों के प्रभाव स्पष्ट नहीं हो पाते। अत: परीक्षाएँ न तो अधिक कठिन होनी चाहिए और न अधिक सरल, तभी टी-टेस्ट की संवेदनशीलता अधिक हो जाती है।

4. मापांकों की विश्वसनीयता बढ़ाना: ऐसा मनोवैज्ञानिक परीक्षणों की विश्वसनीयता बढ़ाने, एक बार की बजाए कई बार मापन करके तथा उनका औसत लेकर एवं मापन-परिस्थितियों एवं व्यवस्था को अच्छी तरह नियंत्रित करके किया जा सकता है।

5. अधिक उपयुक्त आकल्प का चयन: अध्ययन-10 में बहुत से प्रयोगात्मक आकल्पों का उल्लेख किया गया है। इनमें स्वतंत्र समूह आकल्प, समानीकृत समूह आकल्प, सहसंबंधी पुनर्मापाधारी समूह आकल्प (repeated measures design) भी आते हैं। टी-परीक्षा की संवदेनशीलता पुनर्मापाधारी समूह आकल्प में सबसे अधिक होती है, उससे कम समानीकृत समूह आकल्प में तथा सबसे कम स्वतंत्र समूह आकल्प में होती है। ऐसा अध्ययनेतर चरों के कम एवं अधिक नियंत्रण के फलस्वरूप होता है। स्वतंत्र समूह आकल्प में यह नियंत्रण सबसे कम होता है। अत: टी-परीक्षा की संवेदनशीलता बढ़ाने का एक उपाय यह भी है कि उस आकल्प का चयन किया जाये जिसमें टी-परीक्षा की संवेदनशीलता सबसे अधिक होती है, परन्तु सदैव ऐसा संभव नहीं होता। उस स्थिति में टी-परीक्षा की संवेदनशीलता भी अन्य दो की अपेक्षा कम होती है। अत: प्रत्येक के गुण-दोषों एवं उसकी प्रयुक्तता को ध्यान में रखना भी आवश्यक होता है। फिर भी यदि अनुसंधान की परिस्थिति में संभव हो तो उसी आकल्प का चयन करना चाहिए जो टी-परीक्षा की सबसे अधिक संवेदनशीलता को धारण करता है।

28.5 सारांश (Summary)

- प्रयोगात्मक शोध-सामग्री के विश्लेषण का प्रथम द्वार, जहाँ से प्रवेश करना होता है, अप्रतिष्ठेय उपकल्पना है। इसका आविष्कार दिवंगत वैज्ञानिक गणितज्ञ रोनाल्ड फिशर ने किया था।
- यदि स्वतन्त्र चर पर केवल समूहों की रचना की गई है अर्थात् स्वतन्त्र चर का प्रहस्तन (manipulation) केवल दो श्रेणियों में किया गया है तथा केवल इन दो समूहों की ही तुलना आश्रित चर पर की जानी है तो उस स्थिति में टी-टेस्ट का प्रयोग किया जाता है।

नोट

- टी-टेस्ट प्राचलीय परीक्षा है तथा इसमें एक ही स्वतन्त्र चर होता है जिसका दो या दो से अधिक श्रेणियों में प्रहस्तन किया जाता है।
- टी-टेस्ट दो प्रकार के होते हैं– (*i*) स्वतन्त्र समूहाधारी तथा (*ii*) सह-सम्बन्धी अथवा पुनर्मापाधारी।
- लघु न्यादर्श सह-संबंधी समूह टेस्ट का प्रयोग वृहद् न्यादर्श सह-संबंधी समूहों की स्थिति में भी किया जा सकता है। आगणन के दृष्टिकोण से यह विधि बहुत सरल है, परन्तु इसके आधार पर बहुत कम सूचना प्राप्त होती है।

28.6 शब्दकोश (Keywords)

1. **अप्रतिष्ठेय उपकल्पना**–प्रयोगात्मक शोध सामग्री के विश्लेषण का प्रथम चरण, जहाँ से शोध क्रिया आरम्भ होती है, अप्रतिष्ठेय उपकल्पना कहते हैं।
2. **सम-अन्तराली**–समान दूरी वाले, समान अंतराल वाले।

28.7 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. सांख्यिकीय विश्लेषण के प्रमुख आधारों का वर्णन करें।
2. प्राचलीय परीक्षा-टी-टेस्ट से क्या समझते हैं? इसके प्रकारों का वर्णन करें।
3. एक-पुच्छीय एवं द्वि-पुच्छीय परीक्षण का वर्णन करें।
4. वृहद्-न्यादर्श सह-संबंधी समूह टी-टेस्ट पर प्रकाश डालें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. रोनाल्ड फिशर
2. विकल्प
3. टी-वितरण
4. अस्वीकृति
5. (ख) सांख्यिकीय
6. (ख) दो
7. (क) प्राचलीय
8. (ग) 'एकल चर आकल्प'

28.8 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एल. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
3. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 29 : एफ-टेस्ट
(F-Test)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

29.1 एकल-दिक् विचरण-विश्लेषण (One-way Analysis-variance)

29.2 सम-संभाविक समूह आकल्प (Normal Probability Group Design)

29.3 पुनर्मापाधारी आकल्प (एकल दिक् अनोवा) (One-way Anova)

29.4 द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण (स्वतंत्र समूह) (Two-way Analysis of Variance)

29.5 द्वि-दिक् विचरण विश्लेषण (सह-संबंधी समूह) (Two-way Analysis of Variance)

29.6 सम-संभाविक संवर्ग आकल्प (Randomized Block Design)

29.7 सह-विचरण विश्लेषण (Co-variance Analysis)

29.8 लैटिन वर्ग आकल्प (L.S.D) (Latin Square Design)

29.9 सारांश (Summary)

29.10 शब्दकोश (Keywords)

29.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

29.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे–

- एकल दिक् विचरण विश्लेषण एवं सम-संभाविक समूह आकल्प को समझने में;
- पुनर्मापाधारी आकल्प (एकल दिक् अनोवा) को समझने में;
- द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण को समझने में;
- सम-संभाविक संवर्ग आकल्प एवं सह-विचरण विश्लेषण को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

पिछले अध्याय में सांख्यिकीय विश्लेषण की टी-परीक्षा का वर्णन किया गया था। टी-परीक्षा का प्रयोग उसी स्थिति में किया जा सकता है जिसमें केवल दो समूहों की तुलना करनी हो। इसमें एक स्वतन्त्र चर को केवल दो उपचारों

नोट

अथवा दो स्तरों में विभाजित किया जाता है, परन्तु अनुसंधान की परिस्थितियाँ सदैव ही ऐसी नहीं होतीं कि वे स्वतन्त्र चर के केवल दो स्तरों अथवा दो उपचारों तक ही सीमित हों। अनेक परिस्थितियों में स्वतन्त्र चर को कई उपचारों अथवा स्तरों में विभाजित करना अधिक वांछनीय समझा जाता है। उस स्थिति में दो से अधिक समूहों की परस्पर तुलना करनी होती है। उदाहरण के लिये प्रेरणा के स्तर पर छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है, इसका अध्ययन करने हेतु शोधकर्ता प्रेरणा के तीन स्तर (बहुत अधिक प्रेरित, साधारण रूप से प्रेरित, बहुत कम प्रेरित) अथवा तीन से भी अधिक स्तर निर्धारित कर समस्त छात्रों को तीन अथवा उससे भी अधिक समूहों में वितरित कर सकता है तथा शैक्षिक उपब्धि पर उनकी तुलना करके अध्ययन करता है। इस स्थिति में टी-परीक्षा का प्रयोग नहीं किया जा सकता। इस परिस्थिति में जिस विधि, जिस परीक्षा का प्रयोग किया जाता है उसे विचरण-विश्लेषण (analysis of variance) कहते हैं। इसका आविष्कार रोनाल्ड फिशर ने किया था तथा संक्षेप में इसे अनोवा (Anova) कहते हैं।

विचरण-विश्लेषण में दो मध्यमानों के अन्तर की जगह समूहों के समस्त मापांकों की सम्पूर्ण विचरणता (total variance) एवं उसके विभिन्न भाग अथवा खण्ड विश्लेषण का आधार होते हैं। इसके प्रयोग के पीछे भी वही अभिधारणाएँ रहती हैं जिनका उल्लेख टी-परीक्षा के संदर्भ में किया गया है। टी-टेस्ट की भाँति यह परीक्षा भी जिसे एफ-टेस्ट भी कहा जाता है, एक प्राचलीय परीक्षा है। अत: इसका प्रयोग तभी किया जा सकता है जब प्राचलीय परीक्षाओं की अभिधारणाओं की पूर्ति होती हो। यह एक अत्यन्त अतिप्रयुक्त (versatile) परीक्षा है जिसके अनेक परिवर्तित रूप हैं तथा जिसका अनेक अनुसंधान परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है। इसका सबसे सरल रूप सरल विचरण-विश्लेषण (simple analysis of variance) तथा पूर्णतया समसंभाविक समूह आकल्प (completely randomized groups design) अथवा एकल दिशि विचरण विश्लेषण (one way analysis of variance) है। दूसरे जटिल रूप द्वि-दिश विचरण विश्लेषण (two-way Anova) एवं हत-विश्लेषण (factorial analysis) हैं। पहले सरल विचरण-विश्लेषण विधि का वर्णन किया जायेगा।

29.1 एकल-दिक् विचरण-विश्लेषण (One-way Analysis-variance)

'विचरण' का शाब्दिक अर्थ भाषा में 'अन्तर' होता है, परन्तु सांख्यिकी की भाषा में इसका अर्थ होता है "अन्तरों के वर्गों का औसत।" ये अन्तर मापांकों एवं मध्यमान के बीच लिये जाते हैं। मूल रूप से विचरण का सूत्र होता है:

$$\text{विचरण (variance)} = \frac{\Sigma (X - \bar{X})^2}{N}$$

अथवा और शुद्ध रूप में $= \frac{\Sigma (X - \bar{X})^2}{N-1}$ अथवा $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$

1. सम्पूर्ण विचरण के खण्ड

नोट्स

सम्पूर्ण विचरण (total variance) अर्थात् समस्त मापांकों के मध्यमान से लिए गये अन्तरों के योग को कई खण्डों अथवा उपांगों (components) में विभाजित किया जा सकता है।

कम से कम दो भाग अथवा खण्ड तो सदैव ही रहते हैं। ये हैं: (1) अन्तर्समूह विचरण (between groups variance) तथा अन्त: समूह विचरण (within groups variance)। यदि इन दोनों का योग करें तो वह सम्पूर्ण विचरण के बराबर होगा। नीचे दिये गये उदहारण द्वारा इसे स्पष्ट किया गया है:

नोट

तालिका 29.1

तीन समुच्चयों के आँकड़े

A-1			*A-2*			*A-3*		
X_1	x_1	x_1^2	X_2	x_2	x_2^2	X_3	x_3	x_3^2
6	2	4	4	1	1	6	+1	1
2	–2	4	2	–1	1	5	+0	0
3	–1	1	5	2	4	4	–1	1
5	1	1	1	–2	4	4	–1	1
4	0	0	3	0	0	6	1	1
$\Sigma X = 20$			15			25		
$\Sigma X = 20$			3			5		
Σx^2		10			10			04
$\Sigma X_1 = 60$								

मान लीजिये कि उपरोक्त तालिका तीन स्वतन्त्र सह-सम्भाविक समूहों (उच्च प्रेरणा, सामान्य प्रेरणा, निम्न प्रेरणा स्तर वाले) के बालकों की शैक्षिक उपलब्धि के प्राप्तांक प्रस्तुत करती है। इन समूहों को A–1, A–2, A–3 कह सकते हैं। इस तालिका के विश्लेषण के आधार पर यह परीक्षा करनी है कि "क्या प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव पड़ता है?"

इस तालिका के आधार पर पहले सम्पूर्ण विचरण की गणना करते हैं जिसे उदाहरण-1 में प्रस्तुत किया गया है।

उदाहरण-1

कुल विचरण की गणना

X	x	x^2
6	2	4
2	–2	4
3	–1	1
5	+1	1
4	0	0
4	0	0
2	–2	4
5	+1	1
1	–3	9
3	–1	1
6	2	4
5	1	1

कुल विचरण $e(V_1) = \frac{\Sigma x^2}{N-1} = \frac{34}{14}$

= 2.428

इस सूत्र का प्रयोग करने पर $\frac{\Sigma x^2}{N}$, आता है

$\frac{34}{15}$ = 2.266

नोट

4	0	0	
4	0	0	
6	2	4	
X = 60			
M = 4.0			
Σx^2 =		34	

यह सम्पूर्ण विचरण दो कारणों से उत्पन्न माना जा सकता है। एक तो उन अन्तरों के कारण जो प्रेरणा के तीन भिन्न स्तरों में निहित हैं। दूसरे उन अन्तरों के कारण जो प्रत्येक समूह में स्थित बालकों के बीच रहते हैं। इन दोनों कारणों से उत्पन्न विचरण को (*i*) अन्तर्समूह विचरण एवं (*ii*) अन्त: समूह विचरण कहते हैं। अन्तर्समूह विचरण उपचारों के कारण तथा अन्त: समूह विचरण न्यादर्श-चयन की त्रुटि (sampling error) अथवा संयोगजन्य त्रुटि (chance error) जिसे समसम्भाविक त्रुटि भी कहते हैं और जो सारे समूहों को समान बना देने के पश्चात् भी कुछ न कुछ रह ही जाती है, के कारण उत्पन्न हुआ माना जाता है। अन्त:समूह विचरण (within groups variance) प्रत्येक प्रयोगात्मक अनुसंधान में त्रुटि (error) के रूप में ही जाना जाता है।

2. अन्तर्समूह विचरण (Between Groups Variance)

नीचे दी गई उदहारण-2 तालिका के आधार पर जिसमें तीनों समूहों के मध्यमानों को मापांकों के रूप में व्यवस्थित किया गया है, अन्तर्समूह विचरण की गणना की गई है। यह सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ के द्वारा 1.0 आती है तथा सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ के द्वारा .666 आती है।

उदाहरण-2

विचरण की गणना

X	***x***	***x²***	
4	0	0	अंतर्समूह विचरण
3	–1	1	
5	+1	1	$(V_b) = \frac{\Sigma x^2}{N-1} = \frac{2}{2} = 1.00$
ΣX = 12			सूत्र प्रयोग करने पर $\frac{\Sigma x^2}{N}$, यह
M = 4.0			आता है $\frac{2}{3} = .666$
$\Sigma x^2 = 2$			

3. अन्त:समूह विचरण (Within Groups Variance)

तालिका-1 के प्रत्येक समूह (A-1, A-2, A-3) का अन्त:विचरण ज्ञात करने का भी सूत्र वही है जो पीछे दिया गया है। इसे ज्ञात करने के लिये तीनों समूहों का विचरण अलग-अलग ज्ञात करके उनका औसत ले लिया जाता है। प्रत्येक

नोट

समूह का Σx^2 तालिका-1 में दिया गया है। यह क्रमशः 10, 10, 4 है। प्रत्येक में $N - 1 = 4$ है। अतः

अन्तःसमूह विचरण $(V_b) = \frac{\frac{10}{4} + \frac{10}{4} + \frac{4}{4}}{3} = \frac{6}{3} = 2.0$ $\left(\text{सूत्र } \frac{\Sigma x^2}{N-1} \text{ द्वारा}\right)$

अन्तःसमूह विचरण $(V_b) = \frac{\frac{10}{5} + \frac{10}{5} + \frac{4}{5}}{3} = 1.60$ $\left(\text{सूत्र } \frac{\Sigma x^2}{n} \text{ द्वारा}\right)$

दोनों सूत्रों द्वारा उपरोक्त दोनों प्रकार के विचरण निम्न प्रकार हुये:

(*i*) सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ द्वारा (*a*) $V_b = 2.0$ (*b*) $V_w = 1.0$

अतः इस सूत्र के अनुसार,

$$V_b + V_w = (2.0 = 1.0) = 3.00$$

(*ii*) सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ द्वारा (*a*) $V_b = 1.60$ (*b*) $V_w = .666$

अतः इस सूत्र के अनुसार,

$$V_b + V_w = 1.60 + .666 = 2.266$$

(*iii*) सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ के अनुसार,

सम्पूर्ण विचरण $(V_b) = 2.428$

सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ के अनुसार, $V_b = 2.266$

सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ के अनुसार,

$$V_t\,(2.428) = V_b + V_w\,(3.0)$$

सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ के अनुसार,

$$V_t\,(2.666) = V_b + V_w\,(1.60 + .666) = 2.266$$

उपरोक्त गणना के आधार पर यह स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है कि सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ का प्रयोग करने पर सम्पूर्ण विचरण (V_t) जो 2.666 है, अन्तर्समूह विचरण (V_b) तथा अन्तःसमूह विचरण (V_w) जो क्रमशः 1.60 तथा .666 हैं, के योग के बिल्कुल बराबर है। अतः यह सिद्ध होता है कि सम्पूर्ण विचरण अन्तर्समूह एवं अन्तःसमूह विचरण दोनों के योग के बराबर होता है। इसे सूत्र के रूप में इस प्रकार व्यक्त किया जा सकता है:

$$V_t = V_b + V_w$$

नोट

परन्तु सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ का प्रयोग करने पर ऐसा नहीं पाया जाता। उनमें थोड़ा अन्तर आता है। इस स्थिति में $V_t = 2.48$ है तथा $V_b + V_w = 1 + 2 = 3.0$ आता है। यह अन्तर इसलिये आता है कि सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N-1}$ में हर (denominator) के स्थान पर स्वतंत्र्यांश $(N-1)$ की संकल्पना को प्रयोग में लाया जाता है। गणित के नियमों के अनुसार ऐसा किया जाना अधिक वैज्ञानिक एवं सन्तोषप्रद समझा जाता है, क्योंकि इस सूत्र के आधार पर उपलब्ध ये मान समग्र जनसंख्या (population) में स्थित इन्हीं मानों के बहुत समीप आ जाते हैं। अत: इसी सूत्र का प्रयोग इन मानों को ज्ञात करने में सर्वदा किया जाता है। सूत्र $\frac{\Sigma x^2}{N}$ का तो यहाँ प्रयोग केवल यह स्पष्ट करने के लिये किया गया है कि (V_t) को सदैव ही दो भागों (V_b तथा V_w) में बाँटा जा सकता है। V_b को SS_A तथा V_w को SS_w तथा V_t को SS_T के रूप में लिखा जाता है। अत: $SS_T = SS_A + SS_w$। इस सूत्र को सदा याद रखना चाहिये।

4. अन्तर्समूह विचरण (SS_A) की व्याख्या

अन्तर्समूह विचरण वह विचरण होता है जो प्रत्येक समूह के मध्यमान एवं तीनों समूहों के (यदि तीन से अधिक समूह हैं तो उन सबके) सामूहिक मध्यमान के अन्तरों के वर्गों के योग को $N-1$ से भाग करने पर आता है। उदाहरण-2 से यह स्पष्ट है। इस विचरण की उत्पत्ति का कारण स्वतंत्र चर (उसके विभिन्न स्तरों में किये गये अन्तरों अथवा विभिन्न उपचरों) को माना जाता है।

नोट्स अंतर्समूह विचरण, वह विचरण होता है जिसमें उपचर अथवा स्वतंत्र चर का प्रभाव निहित होता है तथा जिसकी खोज हेतु अनुसंधान किया जाता है।

यह विचरण पूरा का पूरा उपचरों (स्वतंत्र चर) के कारण प्राय: नहीं होता। कम से कम सम-सम्भाविक त्रुटि (संयोगजन्य), त्रुटि तो उसमें रहती ही है। इस त्रुटि से यदि यह विचरण अधिक हो तभी उसे निश्चित रूप से उपचरों के कारण स्वीकार किया जा सकता है।

अन्त:समूह विचरण (SS_A) की व्याख्या

यह वह विचरण होता है जो अलग-अलग समूहों में स्थित व्यक्तियों अथवा इकाइयों के बीच शेष रहे अन्तरों के कारण उत्पन्न होता है। यह सही है कि समूहों को सम-सम्भाविक विधि द्वारा तथा अध्ययनेतर चरों को नियंत्रित करके यथासम्भव समान बनाने का प्रयास किया जाता है तो भी ऐसा हो नहीं पाता कि सब समूहों की इकाइयों के बीच अन्तर पूर्णतया समाप्त हो जाये। अत: इस कारण से अन्त:समूह विचरण भी पूर्णतया शून्य नहीं हो पाता। इस शेष विचरण को ही SS_W कहा जाता है तथा इसे संयोगजन्य माना जाता है। इस विचरण की विशेषता यह है कि इसका अनुमान (estimate) लगाया जा सकता है, परन्तु इसे पूर्णतया समाप्त नहीं किया जा सकता। इसीलिये इसे "त्रुटि" की संज्ञा दी गई है।

एफ-अनुपात (F-Ratio)

उदाहरण SS_A तथा SS_w के अनुपात के आधार पर इस बात का निर्णय किया जाता है कि प्रयोगात्मक प्रभाव अर्थात् स्वतन्त्र चर अथवा उपचारों का आश्रित चर पर प्रभाव पड़ा है या नहीं।

नोट

अनोवा (Anova) में समूहों के बीच अन्तर की सार्थकता, उनकी पारस्परिक तुलना का आधार यही अनुपात होता है। इसी अनुपात अर्थात् SS_A/SS_W को एफ-अनुपात (F-ratio) कहते हैं। **सर रोनाल्ड फिशर** के एक शिष्य **स्नेडेकोर** (Snedecor) ने उनके सम्मानस्वरूप इस अनुपात को **एफ** (F) की संज्ञा दी थी।

यदि प्राचलीय परीक्षाओं की अभिधारणाओं की पूर्ति होती है तथा अनेक सम-सम्भाविक न्यादर्शो को लेकर एफ-अनुपात निकाले जाते हैं तो उनका वितरण सम होगा, गणितज्ञों की ऐसी मान्यता है। इसी आधार पर एफ-मानों की एक तालिका भिन्न-भिन्न स्वतंत्र्यांशों को लेकर **स्नेडेकोर** ने तैयार की है जिसे **एफ-तालिका** कहा जाता है। इसे इस पुस्तक के अन्त में परिशिष्ट के अन्तर्गत तालिका-C करके प्रस्तुत किया गया है। इस तालिका में दिये गये एफ-मानों के साथ प्राप्त एफ-मान की तुलना करके निष्कर्ष-स्थापन किया जाता है। इस मूल्यांकन के पीछे तर्क इस प्रकार रहता है। यदि उपचारों में किये गये अन्तरों का कोई प्रभाव आश्रित चर पर नहीं पड़ता तो SS_A का मान SS_W के बराबर ही होना चाहिये। उस स्थिति में एफ का मान 1.0 होगा।

इसी प्रकार यदि स्वतन्त्र चर का वास्तव में आश्रित चर पर प्रभाव पड़ा है अर्थात् वह आश्रित चर का कारण है तो एफ का मान 1.0 से अधिक होना चाहिये, परन्तु 1.0 से वह कितना ऊपर हो यह कहा जा सके कि स्वतन्त्र चर अथवा उपचरों का प्रभाव सार्थक (significant) अर्थात् वास्तविक है? इस समस्या का समाधान एफ-तालिका में दिये गये मानों के द्वारा हो जाता है। प्रक्रिया इस प्रकार की है कि शोध-सामग्री के आधार पर पहले एफ का मान निकाला जाता है। इस एफ-मान की तुलना फिर तालिका में दिये गये मान से की जाती है। यदि शोध-सामग्री के आधार पर प्राप्त किया गया एफ-मान तालिका के .05 अथवा .01 किसी भी स्तर पर निर्धारित स्वतंत्र्यांशों पर दिये गये मान के बराबर अथवा उससे अधिक है तो अप्रतिष्ठेय उपकल्पना को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि उपचारों का आश्रित चर पर वास्तविक प्रभाव पड़ता है। एफ-मान के समबन्ध में कुछ अन्य तथ्यों को भी अच्छी तरह समझना चाहिये। ये हैं–

1. एफ-मान निकालने के नियम तो यह हैं कि SS_A तथा SS_W में जो भी बड़ा हो उसे ऊपर अंश (numerator) के स्थान पर तथा दूसरे को नीचे हर (denominator) के स्थान पर रखा जाता है। बड़ा दोनों में से कोई भी हो सकता है। अत: कोई भी ऊपर या नीचे रखा जा सकता है, परन्तु विचरण विश्लेषण की स्थिति में SS_A को ही सदैव ऊपर रखना चाहिये। यदि किसी स्थिति में SS_A कम तथा SS_W अधिक हो तो एफ का मान निकालने की आवश्यकता ही नहीं है क्योंकि इससे यह तुरन्त स्पष्ट हो जाता है कि उपचारों का कोई प्रभाव परिणामों पर नहीं है अर्थात् एफ सार्थक नहीं है।

2. एफ-टेस्ट अनिवार्यत: एक-छोरीय (one-tailed) टेस्ट है क्योंकि उसके संदर्भ में यह विचार किया जाता है कि क्या SS_A मान SS_W से इतना ऊपर है कि उसे सार्थक कहा जा सके? इसके लिये SS_W को समवितरण वक्र के मध्य (0.0 बिन्दु पर) रखा जाता है तथा यह देखा जाता है कि SS_A उससे कितना ऊपर है। ऊपर वक्र का एक छोर, एक ही दिशा में हो सकता है। इसीलिये यह एक पुच्छ परीक्षा होती है।

3. स्वतंत्र्यांशों की संकल्पना एफ-टेस्ट में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इनका प्रयोग तालिकागत उस मान के चयन में किया जाता है जिसके साथ प्राप्त एफ-मान की तुलना करनी होती है। इसके लिये एफ-अनुपात तालिका-C को अच्छी तरह समझना आवश्यक है। इस तालिका में सबसे ऊपर क्षैतिज दिशा में SS_A के स्वतंत्र्यांश (*df*) तथा बायीं ओर स्तम्भ में लम्बीय रूप में SS_W के *df* देखकर दोनों ओर से चलकर जहाँ एक बिन्दु पर मिलते हैं उस स्थान पर दो मान उपलब्ध होते हैं। इनमें एक हल्के काले रंग में तथा दूसरा मोटे गहरे रंग का होता है। गहरे काले रंग वाला अथवा बड़ा मान .01 स्तर का तथा हल्के काले रंग वाला अर्थात् छोटा मान .05 स्तर का होता है। आगे दिये गये उदहारणों से ये सब बातें स्पष्ट हो जायेंगी।

नोट

29.2 सम-सम्भाविक समूह आकल्प (Normal Probability Group Design)

(एकल दिक् अनोवा)

पिछले अध्याय में SS_t, SS_A, तथा SS_W निकालकर दिखाये गये थे, परन्तु जिस विधि से उन्हें निकाला गया था, वास्तव में उसका प्रयोग नहीं किया जाता है। वास्तव में जिस विधि का प्रयोग किया जाता है, उसका पद-क्रम इस इस प्रकार होता है:

(1) C शुद्धि-पद का मान (correction term) निकालना,
(2) SS_t निकालना,
(3) SS_A निकालना,
(4) SS_W निकालना,
(5) SS_A तथा SS_W को मध्यमानों में बदलना,
(6) एफ-अनुपात निकालना,
(7) इसकी तालिका के मान से तुलना करना,
(8) सार्थकता की परीक्षा के आधार पर निष्कर्ष निकालना।

नीचे दी गई तालिका के आधार पर इन सबको ज्ञात करने की विधियाँ स्पष्ट की गई हैं। इस तालिका में X स्वतन्त्र चर है जिसके तीन स्तर, X_1, X_2 तथा X_3 हैं। इन तीनों समूहों में स्थित व्यक्तियों के आश्रित चर पर प्राप्तांक बीच में दिये गये हैं–

उदाहरण-3

तालिका 29.2

विचरण का एकल-दिक् विश्लेषण

X_1	X_2	X_3
6	4	6
2	2	5
3	5	4
5	1	4
4	3	6
Σ = 20	15	25 = 60

(Having obtained measures on dependent variable for all the subjects in the different groups a table like the above is prepared. In this X is our independent variable which has three treatment conditions or levels, X_1, X_2 and X_3. The analysis of variance will follow the following steps):

1. Correction Term (C) = $(\Sigma X)^2/N = (60)^2/15 = 240.0$

2. SS_T = तालिका-2 में वर्गों के सभी आँकड़ों का योग दिया गया है।

$$E x^2 - c = (6^2 + 2^2 \ldots 4^2 + 6^2) - 240.0 = 34.0$$

3. $$SS_A = \frac{(\Sigma X_1)^2}{N_1} + \frac{(\Sigma X_2)^2}{N_2} + \frac{(\Sigma X_3)^2}{N_3} - C$$

नोट

यदि सभी समूहों में N समान है, तो उपरोक्त सूत्र इस तरह लिखेंगे $\frac{\Sigma X_1^2 + \Sigma X_2^2 + \Sigma X_3^2}{N} - C$; सभी मानों को रखने पर,

$$SS_A = \frac{(20)^2 + (15)^2 + (25)^2}{5} - 240.0 = 10.0$$

4. $SS_W = SS_T - SS_A = 34.0 - 10.0 = 24.00$

5. Mean $SS_W = \frac{10}{2} = 5.0$, जैसा कि यहाँ तीन समूह हैं और *df* है $(3 - 1) = 2$

6. Mean $SS_W = \frac{24}{12} = 2.00$, *df* होगा 12.

7. F-ratio $\frac{^{M}SS_A}{^{M}SS_W} = \frac{5}{2} = 2.50$

8. सार्थकता–एफ-मान सार्थक नहीं है क्योंकि 2, 12 *df* पर तथा .05 स्तर पर तालिका-C का एफ-मान 3.88 है। प्राप्त F-ratio इससे कम है। अत: H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। परिणाम सार्थक नहीं है।

9. निष्कर्ष–उपचार एक-दूसरे से भिन्न नहीं हैं तथा प्रत्येक का आश्रित चर पर समान प्रभाव पड़ता है। दूसरे शब्दों में, स्वतन्त्र चर X आश्रित चर को प्रभावित नहीं करता।

टिप्पणी-1

SS_W के स्वतंत्र्यांशों (*df*) की गणना दो प्रकार से की जा सकती है:

(*i*) प्रत्येक समूह के N में से एक घटाकर शेष सबको जोड़कर जैसे पिछले उदाहरण में $(5 - 1) + (5 - 1) + (5 - 1) = 12$ किया गया है।

(*ii*) दूसरी विधि है कि सम्पूर्ण *df* में से समूहों के *df* की संख्या घटाकर, जैसे पिछले उदहारण में सम्पूर्ण *df* की संख्या $15 - 1 = 14$ है तथा समूहों के *df* की संख्या $3 - 1 = 2$ है। अत: SS_W की $df = 14 - 2$ अथवा 12।

(*iii*) SS_A के स्वातंत्र्यांशों की संख्या समूहों की कुल संख्या में से एक घटाकर आ जाती है।

टिप्पणी-2

यह भी देखें कि SS_t तथा SS_A के निकालने की विधि भी वही है जिसका स्पष्टीकरण उदाहरण-1 तथा 2 में किया गया था। केवल अन्तर यह है कि उस उदाहरण में यह विधि मध्यमान तथा प्रत्येक के अन्तर (deviation) के रूप में थी जबकि उपरोक्त उदाहरण में वह मौलिक मापांकों (raw scores) के प्रयोग पर आधारित है। अन्तर-प्रधान मापांकों (deviation form) के रूप में उसका सूत्र था $\Sigma x^2/N_1$, परन्तु मौलिक अंकों के रूप में यह सूत्र होता है:

$$\Sigma x^2 - \frac{(\Sigma X)^2}{N}$$

जिसमें $\Sigma x^2/N_1$ शुद्धि-पद (C) होता है। यह शुद्धि-पद SS_A तथा SS_t सबके निकालने में एक ही रहता है। अत: उसे एक बार केवल आरम्भ में ही निकालना होता है क्योंकि इस विधि में मौलिक अंकों का प्रयोग किया जाता है। अत: SS_T का अर्थ होता है समस्त आँकड़ों (scores) के अलग-अलग वर्गो का योग। इसी प्रकार SS_A का अर्थ होता है समूहों (स्तंभों) के योग के अलग-अलग वर्गो का जोड़।

क्या आप जानते हैं SS_A/SS_w को एफ-अनुपात (F-ratio) भी कहते हैं।

नोट

29.3 पुनर्मापाधारी-आकल्प (एकल दिक् अनोवा) (One-way Anova)

पूर्वगत उदाहरण में स्वतन्त्र समूहों को लेकर एकल-दिक् अनोवा के विश्लेषण की विधि का वर्णन किया गया था। यहाँ उसी विधि का वर्णन पुनर्मापाधारी आकल्प (repeated measures design) के संदर्भ में किया जा रहा है। इस स्थिति में व्यक्तियों का एक ही समूह सब उपचारों के अधीन रखा जाता है। जैसे पूर्व-परीक्षण, पश्च-परीक्षण आकल्प में व्यक्तियों के एक ही समूहों का पहले तथा बाद में दो बार परीक्षण किया जाता है। इसी प्रकार व्यक्तियों को एक या दो चरों पर समान बनाकर फिर उन्हें समूहों में वितरित करके उनका मापन किया जाता है। इन दोनों प्रकार की व्यवस्थाओं में अनोवा (एकल दिक्) के पुनर्मापाधारी आकल्प का प्रयोग किया जाता है। इस विधि के अन्तर्गत जो गणना की जाती है वह पूर्वगत स्वतन्त्र समूहों की विधि से थोड़ा भिन्न होती है।

पुनर्मापाधारी आकल्प की विशेष उपयोगिता इस बात में निहित है कि उसके द्वारा समूहगत इकाइयों के मध्य स्थित अन्तरों के कारण जो विचरण उत्पन्न होता है तथा जिसे त्रुटि-विचरण कहते हैं, वह कम हो जाता है तथा इस प्रकार अनुसंधान की शुद्धता एवं वैधता बढ़ जाती हैं। अत: इकाइयों की भिन्नता (heterogeneity of subjects) के नियंत्रण का यह एक सशक्त माध्यम है, परन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिये कि ये अन्तर, भिन्नतायें बिल्कुल समाप्त हो जाती हैं। कुछ तो फिर भी बनी रहती हैं, फिर भी वे कम अवश्य हो जाती हैं, क्योंकि इसमें एक ही समूह की इकाइयाँ नियन्त्रित समूह की इकाइयों के रूप में कार्य करती हैं।

इस आकल्प का एक दोष यह बताया जाता है कि इसमें इकाइयों के पूर्व-परीक्षण का प्रभाव उनके पश्च-परीक्षण पर पड़ता है। पूर्व-परीक्षण के पश्चात् इकाइयों में बहुत से परिवर्तन आ जाते हैं और वे उस समग्र जनसंख्या (population) की प्रतिनिधि नहीं रहतीं जिसमें से उनका चयन किया गया है। इन दो कारणों से अनुसंधान के परिणमों की शुद्धता (precision) एवं बाह्य वैधता (external validity) दोनों पर अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। इन कठिनाइयों के होते हुये इस आकल्प को स्वतन्त्र-समूह आकल्प से श्रेष्ठ समझा जाता है। इसे अन्त:समूह आकल्प अथवा सह-सम्बन्धी समूह आकल्प भी कहा जाता है। इस आकल्प में विचरण का एक नया स्रोत और जुड़ जाता है जिसे अन्तर्व्यक्ति विचरण (between subjects variance) अथवा SS_S कहते हैं जिसे SS_T में से निकाल देने पर त्रुटि-विचरण SS_w और भी कम हो जाता है। इस प्रकार इस स्थिति में SS_T के तीन भाग हो जाते हैं अर्थात् $SS_T = SS_A + SS_s + SS_w$। इसमें SS_w को SS_{error} भी कहते हैं। आगे दिये गये उदाहरण से स्पष्ट हो जायेगा कि इन विचरणों की गणना किस प्रकार की जाती है तथा किस प्रकार निष्कर्ष की स्थापना की जाती है।

उदाहरण-4

प्रत्यास्मरण (recall) पर याद करने की क्रम-पद्धति (order) के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु 8 छात्रों को एक शब्दों के 10 युग्म याद करने को दिये गये तथा दो दिन बाद उन्हें प्रत्यास्मरण करने को कहा गया। इसके बाद उन्हें शब्दों के 10 युग्मों की दूसरी सूची याद करने को दी गई तथा दो दिन बाद पुन: उन्हें प्रत्यास्मरण करने को कहा गया। इस प्रकार याद करना, प्रत्यास्मरण करना यह कार्य शब्दों की 6 सूचियों तक चला। इसके आधार पर जिस उपकल्पना की परीक्षा की जानी थी वह थी "प्रत्यास्मरण पर याद करने की क्रम-पद्धति का कोई प्रभाव नहीं पड़ता।" ऐसी धारणा थी कि प्रथम सूची के बाद प्रत्यास्मरण सबसे अधिक होता है तथा उसके बाद क्रमश: वह कम होता जाता है।

परीक्षण-विधि का स्पष्टीकरण करने हेतु शोध-सामग्री को निम्नलिखित तालिका में प्रस्तुत किया गया है। सांख्यिकीय गणना एवं विश्लेषण हेतु थोड़े परिवर्तन के साथ उसी पद-क्रम को अपनाया गया है जिसका वर्णन स्वतन्त्र-समूहों की स्थिति में किया जा चुका है। यह इस प्रकार है:

नोट

तालिका 29.3

तालिका का पद-क्रम

विषय	*L-1*	*L-2*	*L-3*	*L-4*	*L-5*	*L-6*	*योग*
S_1	7	3	2	2	1	1	16
S_2	4	8	3	8	1	2	26
S_3	7	6	3	1	5	4	26
S_4	8	6	1	0	2	0	17
S_5	7	2	3	0	1	3	16
S_6	6	3	3	1	1	1	15
S_7	4	2	0	0	0	0	6
S_8	6	7	5	1	3	2	24
योग Σ =	49	37	20	13	14	13	146

इस केस में विश्लेषण को पूरा करने के लिए हम स्वतंत्र समूह आकल्प के पिछले उदाहरण का अनुसरण करेंगे।

1. $C = (146)^2/48 = 444.08$

2. $SS_T = (7^2 + 4^2 .... (0)^2 + 2^2) - 444.08$

$= 740.0 - 444.08 = 295.92$

3. $SS_A = \frac{(49)^2 + (37)^2 + (20)^2 + (13)^2 + (14)^2 + (13)^2}{8} - 444.08$

$= \frac{4704}{8} - 444.08 = 143.92$

4. $SS_s = \frac{16^2 + 26^2 + 26^2 + 17^2 + 16^2 + 15^2 + 6^2 + 24^2}{6} - 444.08$

$= \frac{2990}{6} - 444.08 = 54.25$

5. $SS_{e \times r} = SS_T - (SS_A + SS_s)$

$= 295.92 - (143.42 + 54.25)$

$= 295.92 - 198.17 = 97.75$

उपरोक्त में, $SS_{e \times r}$ का अर्थ है स्तम्भों (columns) तथा पंक्तियों (rows) के बीच होने वाली अन्तर्क्रिया द्वारा उत्पन्न विचरण। इसे अन्तर्क्रिया-विचरण (interaction variance) कहते हैं।

6. Mean $SS_A = 143.92/5 = 28.78$

7. Mean $SS_{e \times r} = 97.75/35 = 2.79$

8. $\text{F-ratio} = \frac{28.78}{2.79} = 10.32$

9. निष्कर्ष–तालिका–C में 3, 35 *df* तथा .01 स्तर पर F का मान 3.59 है। प्राप्त एफ-मान 10.32 है जो तालिका-मान से बहुत अधिक है। अत: H_o को अस्वीकार करके यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि याद करने की

नोट

क्रम-पद्धति का प्रत्यास्मरण पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। प्रथम सूची के बाद प्रत्यास्मरण सबसे अधिक था। उसके बाद वह क्रमशः कम होता जाता है।

संगणना-सम्बन्धी व्याख्या (Computational Explanation)

पुनर्मापाधारी आकल्प की स्थिति में एफ-मान निकालने की विधि स्वतंत्र समूह आकल्प की स्थिति से कुछ भिन्न होती है। इस स्थिति में प्रत्येक व्यक्ति का दूसरी, तीसरी, चौथी बार आदि अर्थात् एक से अधिक बार मापन किया जाता है। अतः उनके मापांकों के बीच सह-सम्बन्ध (correlation) घटित हो जाता है। दूसरे शब्दों में, व्यक्तियों (subjects) के युग्मों के बीच भी एक नये प्रकार का विचरण उत्पन्न हो जाता है। यद्यपि प्रत्येक समूह में वही व्यक्ति रहते हैं, परन्तु एक परीक्षण के बाद उनमें कई प्रकार के अन्तर आ जाते हैं तथा वे पूर्णतया वैसे ही नहीं रहते जैसे थे। इस कारण विचरण का एक नया प्रकार जुड़ जाता है। अतः SST के तीन भाग हो जाते हैं– $SS_A + SS_S + SS_W$। इनमे से SS_S को वह विचरण समझा जाता है जो व्यक्तियों के एक ही समूह को भिन्न-भिन्न मापन-स्थितियों में रखने के कारण उत्पन्न हुए उनके बीच अन्तरों द्वारा पैदा होता है। इसे पंक्ति-मध्य (between rows) विचरण SS_r अथवा SS_s भी कहा जाता है। SS_A की भाँति SS_s क्रमबद्ध (systematic) विचरण होता है। समूहों के मापांकों के बीच जितना अधिक सह-सम्बन्ध होता है, क्रमबद्ध विचरण उतना ही अधिक होता है तथा त्रुटि विचरण उतना ही कम होता है। इसीलिये SS_s अथवा SS_{rows} की संगणना की जाती है। उदाहरण के पद-क्रम-4 के अन्तर्गत इसे स्पष्ट किया गया है।

स्वतंत्र समूह आकल्प एवं पुनर्मापाधारी आकल्प के बीच सांख्यिकीय विश्लेषण के दृष्टिकोण से दूसरा अन्तर त्रुटि-पद (error term) अर्थात् SS_w के चयन में होता है। स्वतन्त्र-समूह आकल्प की स्थिति में यह SS_w होता है, परन्तु पुनर्मापाधारी आकल्प में यह "शेष विचरण" (residual variance) जिसे अन्तर्क्रिया-विचरण (interaction variance) अथवा $SS_{c \times r}$ भी कहते हैं, होता है। वास्तव में पुनर्मापाधारी आकल्प की स्थिति में SS_w की संगणना समभव ही नहीं होती, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिये कि SS_w तथा SS_{res}, दोनों त्रुटि का ही अनुमान (estimate) प्रस्तुत करते हैं, बल्कि SS_{res} अधिक अच्छा अनुमान समझा जाता है। अतः पुनर्मापाधारी आकल्प की स्थिति में SS_w की बजाय SS_{res} का ही एफ-मान निकालने में प्रयोग किया जाता है। इसकी संगणना जैसाकि पूर्वगत उदाहरण के पद-क्रम-5 में दर्शाया गया है SS_T से SS_A तथा SS_s दोनों के योग को घटाकर की जाती है। इसीलिये इसे "शेष विचरण" (residual अथवा remainder variance) भी कहा जाता है।

29.4 द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण (स्वतंत्र समूह) (Two-way Analysis of Variance)

पूर्वोल्लिखित विधि का प्रयोग जैसाकि उदाहण में बताया गया है, वहाँ किया जाता है जहाँ इकाइयों के एक ही समूह का आश्रित चर पर बार-बार मापन किया जाए अथवा समानीकृत समूहों का प्रयोग किया जाए, परन्तु इसका प्रयोग उस स्थिति में भी किया जा सकता है जहाँ किसी एक चर के प्रभाव को नियंत्रित करना हो। इसका एक उदाहरण नीचे दिया गया है। यह विधि द्वि-दिक् विचरण-विश्लेषण (स्वतन्त्र समूह) की श्रेणी में आती है।

उदाहरण-5

एक शोधकर्ता 11-वर्षीय बालकों के गृह-परिवेश के उनके मनोवैज्ञानिक विकास पर पड़े प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है। वह पाँच विद्यालयों के बालकों के गृह-परिवेश एवं उनके मनोवैज्ञानिक विकास के मापांक एकत्र करता है। गृह-परिवेश पर वह विद्यालयवार बालकों के दो समूह (वांछनीय एवं अवांछनीय गृह-परिवेश वाले) बनाता है।

नोट

विद्यालयवार उनके आश्रित चर (विकास) पर प्राप्तांकों को मध्यमान के रूप में नीचे दी गई तालिका में व्यवस्थित करके एफ-टेस्ट द्वारा विश्लेषण करना चाहता है। परन्तु वह संदेह करता है कि विभिन्न विद्यालयों का वातावरण एक-दूसरे से बहुत भिन्न होने के कारण विद्यालयों का प्रभाव गृह-परिवेश के प्रभाव को उभरने से रोक सकता है। अत: उसे नियन्त्रित किया जाना चाहिये। इसलिये वह पूर्वोक्त विधि का निम्नलिखित प्रकार प्रयोग करता है जिससे विद्यालयों का प्रभाव समाप्त हो जाए।

तालिका 29.4

गृह-परिवेश एवं मनोवैज्ञानिक विकास के मध्य संबंध (N = 9 in each Cell)

स्कूल	*गृह-परिवेश*		*कुल*
	(निम्न समूह)	*(उच्च समूह)*	
1	56	35	91
2	59	38	97
3	62	32	94
4	57	31	88
5	52	45	97
योग	286	181	
Means	6.36	4.02	467

इसे ठीक उसी तरह किया जा सकता है जैसा कि पहले उदाहरण में किया गया था जिसमें कि विषयों के मध्य अंतर होने के कारण विचरण समाप्त कर दिया गया था (पंक्तियों के मध्य अन्तर) इस पूरी प्रक्रिया को इस तरह देखें:

1. C (correction term) = $(467)^2/10 = 21808.9$

(प्रत्येक समूह के माध्य स्कोर को व्यक्तिगत स्कोर के रूप में लिया गया।)

2. $SS_T - (56^2 + 59^2 ..... 31^2 + 45^2) - C$ =1204.1

3. SS_A (गृह परिवेश) $= \frac{286^2 + 181^2}{5} - C$ =1102.5

4. SS_{row}(विद्यालय) $= \frac{91^2 + 97^2 ..... 88^2 + 97^2}{2} - C$

5. $SS_{res} = SS_T - (SS_A + SS_{schools})$

$= 1284.1 - (1102.5 + 30.6)$ = 151.0

6. Mean $SS_{(A)} = 1102.5/1$, *df* being 1 = 1102.5

7. Mean SS_{res} = Mean $SS_{H \times s} = \frac{151 - 0}{4}$ = 37.75

8. $F = \frac{1102.5}{37.75}$ = 29.20

नोट

9. निष्कर्ष–तालिका–C में 1, 4 *df* तथा .01–स्तर पर एफ का मान है 21.27 जबकि शोधकर्ता का प्राप्त एफ–मान 29.20 है जो तालिका मान से अधिक है। अत: H_0 को अस्वीकार किया जाता है तथा यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि गृह–परिवेश बालकों के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रभावित करता है।

इसमें भी पूर्वोल्लिखित विधि की भाँति SS_T को तीन भागों में विभाजित किया जाता है– $SS_A + SS_{schools} + SS_{res}$। विद्यालयों के अन्तरों के कारण उत्पन्न विचरण $(SS_s)_{rows}$ को SS_T में से निकाल दिया जाता है। यह ध्यान में रखने की बात है कि यदि विद्यालयों के बालकों की संख्या समान है तो उनके मापांकों के मध्यमानों को एक–एक मापांक के रूप में मानकर तालिका में प्रयुक्त किया जा सकता है। संगणना के दृष्टिकोण से इससे परिणामों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया ठीक वैसी है जैसी उदाहरण–4 में उल्लिखित है।

त्रुटि–विचरण (SS_{res})

उदहारण–4 तथा उदाहरण–5 के अन्तर्गत जिस त्रुटि–विचरण का उल्लेख किया गया है इसके कई नाम हैं जैसे "शेष विचरण" (remainder अथवा residual variance) तथा "अन्तर्क्रिया विचरण" (interaction variance)। इसी प्रकार इसे लिखा भी कई प्रकार से जाता है जैसे SS_{res}, $SS_{e \times r}$ आदि। यह वह विचरण होता है जो उपचारों के कारण कोई अन्तर न होने पर भी रहता है तथा जिसे संयोगजन्य अथवा सम–सम्भाविक विधि द्वारा इकाइयों का चयन करने तथा समूहों में उनका वितरण करने पर भी उनके बीच रह गये अन्तरों द्वारा उत्पन्न माना जाता है। साथ ही यह वह विचरण होता है जो सम्पूर्ण विचरण में से उपचारों के विचरण (SS_A) तथा विद्यालयों के विचरण (SS_S) दोनों को निकाल देने पर शेष बचता है। इसीलिये इसे SS_w की अपेक्षा अधिक शुद्ध माना जाता है। यदि विद्यालयों के वातावरण के अन्तरों के प्रभाव, अध्ययनेतर चरों के प्रभाव एवं उपचारों के प्रभाव को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाये तो SS_{cxr} का मान SS_w के बराबर ही होगा अन्यथा SS_{cxr} का मान SS_w से सदैव कम ही होता है। यदि यह उससे कम हो तो उसे संयोगवश ही समझना चाहिये तथा उस स्थिति में SS_w का ही एफ मान हेतु प्रयोग करना चाहिए।

स्व–मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. एफ–टेस्ट एक ..... परीक्षा है।
2. विचरण का सांख्यिकीय भाषा में अर्थ होता है ..... ।
3. एफ–टेस्ट अनिवार्यत: ..... टेस्ट है।

29.5 द्वि–दिक् विचरण–विश्लेषण (सह–सम्बन्धी समूह) (Two-way Analysis of Variance)

द्वि–दिक् अथवा द्विपथ (स्वतन्त्र–समूह) विचरण विश्लेषण का उदाहरण पिछले पृष्ठों में (उदाहरण–5) में प्रस्तुत किया जा चुका है, परन्तु अनुसंधान की ऐसी स्थिति भी हो सकती है जिसमें समूह सह–सम्बन्धी अथवा समानीकृत हों। इस स्थिति में भी अनोवा का प्रयोग किया जा सकता है परन्तु इसकी विधि में पहले से थोड़ा अन्तर होता है। द्विपथ विचरण–विश्लेषण (सह–सम्बन्धी समूह) की इस विधि का उदाहरण आगे दिया गया है।

उदाहरण–6

एक शोधकर्ता 6–वर्षीय बालकों के सीखने पर अभ्यास के प्रभाव का अध्ययन करना चाहा। लिंग (sex) के प्रभाव को उसने नियन्त्रित किया। अत: 5 बालक एवं 5 बालिकाओं को उसने सम–सम्भाविक विधि से चुना तथा उन्हें पाँच अभ्यास–अन्वीक्षाओं (practice trial) के अधीन किया। प्रत्येक अन्वीक्षा के बाद उनके अधिगम का मापन किया

गया। इस प्रकार जो शोध-सामग्री प्राप्त हुई उसके आधार पर आगामी तालिका तैयार की गई तथा आवश्यक विभिन्न विचरणों की संगणना की गई। सम्पूर्ण संगणना को तालिका के नीचे दर्शाया गया है:

नोट

(द्वि-दिक् विचरण)
(सह-संबंध मापक आकल्प)
सीखने की प्रक्रिया

तालिका 29.5

	S_S	*I*	*II*	*III*	*IV*	*V*	*Total*
	1	4	7	3	4	6	24
	2	3	4	6	9	7	29
लड़के	3	2	2	8	5	8	25
	4	5	5	5	8	5	28
	5	4	6	7	6	9	32
		18	24	29	32	35	138
	E*x*						(समूह-I)
	1	6	3	4	8	10	31
	2	8	5	5	7	8	33
लड़कियाँ	3	4	5	5	5	9	28
	4	3	3	6	6	10	28
	5	6	6	8	9	10	39
		27	22	28	35	47	159
	E*x*						(समूह-II)

इस विश्लेषण में निम्नांकित पद-क्रम शामिल हैं–

1. C = कुल संख्या को समूह I तथा समूह II में विभक्त करने पर वर्गों का कुल योग

$$= \frac{297^2}{50} = 1764.18$$

2. SS_t = 1991-1764.18 = 226.82

3. SS_T = Sum of squares of the totals of all the ten groups divided by n minus the correction.

$$= 18^2 + 24^2 + ... + 35^2 + 47^2/5 - 1764.18$$

$$= \frac{9421}{5} - 1764.18 = 1884.2 - 1764.18 = 120.02$$

4. SS_s = Sum of squares of the totals of all the rows divided by n minus the correction term.

$$= 24^2 + 29^2 + ... 28^2 + 39^2/5 - 1764.18$$

$$= \frac{8989}{5} - 1764.18 = 1797.8 - 1764.18 = 33.62$$

नोट

5. SS_{Trials} = Sum of squares of the totals of all the trials (column sum of scores for boys and girls both for each trial divided by n minus correction).

$$= \frac{45^2 + 46^2 + 57^2 + 67^2 + 82^2}{10} - 1764.18$$

$$= 18603/10 - 1764.18$$

$$= 1860.3 - 1764.18 = 96.12$$

6. SS_G = Sum of Squares between Groups of boys and girls

$$= \frac{138^2 + 159^2}{25} - 1764.18$$

$$= \frac{44325}{25} - 1764.18 = 1773 - 1764.18 = 8.82$$

7. SS_w = Within groups sum of squares.

This is obtained by subtracting between-groups variance from SS_s

(sum of squares among subjects).

$$33.62 - 8.82 = 24.8$$

8. $SS_{s \times Trials}$ = This can be obtained by subtracting SS_s and SS_{Trials} from SS_t (total sum of squares).

$226.82 - (33.62 + 96.12) = 97.08$

9. $SS_{Groups \times Trials}$

This we can get by subtracting SS_{Groups} (Sum of squares between groups) and SS_{Trials} from SS_{Tr} as follows:

$120.02 - (8.82 + 96.12) = 15.08$

10. Pooled $SS_{s \times Trials}$

This we can get by subtracting $SS_{groups \times Trials}$ from $SS_{s \times Trial}$. It is used as the error term for determining the significance of treatments.

$$= 97.08 - 15.08 = 82.0$$

सारांश तालिका 29.6

विचलन के स्रोत	***SS***	***df***	***MeanSS***	***F***
Groups (Sex)	8.82	1	8.82	3.44 Sig. at .05 level
Within groups (error)	24.80	8	3.10	
Trials	96.12	4	24.03	9.386**
Groups × Trials	15.08	4	3.77	1.472 Not Sig.
Pooled $SS_{s \times Trials}$	82.00	32	2.56	
		49		

** Sig. at .01 level.

नोट

निष्कर्ष–एफ तालिका–C में 4, 32 *df* तथा .01-स्तर पर F का मान है 4.02 *wf* जबकि अभ्यास का प्राप्त F-मान है 9.386 जो तालिका-मान से बहुत अधिक है। अत: H_0 को अस्वीकार किया गया तथा यह निष्कर्ष निकाला गया है कि अभ्यास का अधिगम पर निश्चित प्रभाव पड़ता है। लिंग (sex) की F-ratio (3.44) भी .05 स्तर पर सार्थक है। अत: स्वीकार करना होगा कि लिंग का प्रभाव भी अधिगम पर पड़ता है अर्थात् बालक एवं बालिकाओं के अधिगम में अन्तर होता है, परन्तु अन्तर्क्रिया-विचरण (1.472) सार्थक नहीं है जिसके आधार पर कहना होगा पड़ेगा कि अभ्यास तथा लिंग दोनों जब एक-दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया करते हैं तो उसका अधिगत पर कोई सार्थक प्रभाव नहीं पड़ता।

द्वि-दिक् अनोवा (सह-सम्बन्धी समूह) का प्रयोग वहाँ किया जाता है जहाँ दो स्वतन्त्र चर हों तथा इकाइयों के एक ही समूह का आश्रित चर पर मापन बार-बार किया गया हो। इसका प्रयोग वहाँ भी किया जा सकता है जहाँ किसी एक चर के प्रभाव को नियन्त्रित करके दूसरे के प्रभाव का अध्ययन किया जाना हो।

29.6 सम-सम्भाविक संवर्ग-आकल्प (Randomized Block Design)

इस अध्याय के आरम्भ में "सम-सम्भाविक समूह आकल्प" का वर्णन किया गया था जिसमें इकाइयों को सम-सम्भाविक विधि से समूहों में वितरित किया जाता है तथा यह मान लिया जाता है कि समूह अध्ययनेतर चरों के दृष्टिकोण से समरूप हो गये, परन्तु वास्तव में समरूप हो नहीं पाते। उनकी इकाइयों में फिर भी अन्तर रह जाते हैं जिनके कारण अनुसंधान की शुद्धता (accuracy) कम हो जाती है। इकाइयों, विशेष रूप से मनुष्यों, के बीच अनेक प्रकार की विभिन्नतायें पाई जाती हैं। समूहों में उनका सम-सम्भाविक वितरण इन अन्तरों एवं भिन्नताओं को पूर्णतया समाप्त करने में सक्षम नहीं होता। परिणामस्वरूप उपचारों के प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं हो पाते । अत: इन अन्तरों को और भी कम करने तथा अनुसंधान की शुद्धता अथवा आन्तरिक वैधता बढ़ाने के उद्देश्य से शोधकर्ता एक अन्य आकल्प का प्रयोग करते हैं जिसे "सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प" (randomized block-design) कहते हैं। संक्षेप में इसे RB-*k* आकल्प के रूप में लिखा जाता है जिसका अर्थ है *k* संख्या-समूह आधारित सम-समभाविक संवर्ग आकल्प। इस आकल्प के द्वारा शोध-सामग्री प्राप्त होती है उसका विचरण-विश्लेषण भी उदाहरण-5 में दी गई विधि के अनुरूप होता है, जिसमें त्रुटि-पद (error term) के स्थान पर SS_w का प्रयोग न करके $SS_{e \times r}$ का प्रयोग किया जाता है। आगे दिये गये उदाहरण में इसकी सम्पूर्ण प्रक्रिया का वर्णन किया गया है।

उदाहरण-7

एक शोधकर्ता 11-वर्षीय बालकों के अधिगम पर व्यवहार-नियन्त्रण की दो तकनीकों (प्रशंसा एवं दण्ड) के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता था। साथ ही बुद्धि को नियंत्रित करना चाहता था क्योंकि बुद्धि अधिगम का प्रमुख कारक तत्व समझा जाता है। अत: उसने बुद्धि पर 3-3 बालकों के समान बुद्धि वाले पाँच संवर्ग (blocks) बनाये। एक संवर्ग में तीन बालकों की क्रमश: 119, 120, 121 बुद्धि-लब्धि थी, दूसरे में 110, 111, 112 बुद्धि-लब्धि थी, तीसरे में 99, 100, 101 चौथे में 90, 91, 92 तथा पाँचवें में 81, 82, 83 बुद्धि-लब्धि थी। प्रत्येक संवर्ग में से एक-एक बालक को सम-सम्भाविक विधि से उसने तीन समूहों (प्रशंसित समूह, दण्डित समूह, नियन्त्रित समूह) में वितरित किया। प्रयोग एक माह तक चला। उसके बाद उनके अधिगम का मापन किया गया। समस्त सामग्री को निम्न प्रकार तालिका में समाहित किया गया। इसके पश्चात् विचरण-विश्लेषण किया गया। सम्पूर्ण संगणन-प्रक्रिया तालिका में नीचे दी गई है:

नोट

तालिका 29.7

सम-संभाविक संवर्ग आकल्प

संवर्ग	*पुरस्कृत समूह*	*दंडित समूह*	*नियंत्रित समूह*	*योग*
1	14	13	10	37
2	13	14	11	38
3	15	10	12	37
4	18	14	13	45
5	10	11	14	35
Sum	70	62	60	192

Now, the ANOVA was carried out. The following values were computed stepwise.

1. $C = (192)^2/15 = 2457.6$

2. $SS_T = 14^2 + 13^2 .... 13^2 + 14^2) - 2457.6$

$= 2526 - 2457.6 = 68.4$

3. $SS_A = \frac{70^2 + 62^2 + 60^2}{5} - 2457.6 = 2468.8 - 2457.6 = 11.2$

4. $SS_{Blocks} = \frac{37^2 + 38^2 + 37^2 + 45^2 + 35^2}{3} - 2457.6$

$= 2477.3 - 2457.6 = 19.7$

5. $SS_{e \times r} = SS_T - (SS_A + SS_{Blocks}) = 68.4 - (11.2 + 19.73)$

$= 68.4 - 30.93 = 37.47$

6. Mean $SS_A = \frac{11.2}{2} = 5.6$, *df* being 2

7. Mean $SS_{c \times r} = \frac{37.47}{8} = 4.68$ *df* being 8 (2 × 4, *i.e.,* 2 for columns and 4 for rows)

8. F-ratio $= \frac{Mss_{(A)}}{Mss_{(C \times r)}} = \frac{5.6}{4.68} = 1.196$

9. निष्कर्ष–प्राप्त F-ratio (1.196) तालिका–C में 2, 8 *df* तथा .05-स्तर पर दिये गये मान 4.46 से कम है। अत: H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। यह निष्कर्ष निकला कि व्यवहार-नियंत्रण की विधियों में कोई अन्तर नहीं है। उनका अधिगम पर समान प्रभाव पड़ता है।

सरलता से इस बात को जाना जा सकता है कि $SS_{block \times treatment}$ अर्थात् शेष विचरण SS_w से कभी भी अधिक नहीं हो सकती। इसका परिमाण (size) SS_{blocks} के परिमाण पर निर्भर करता है। यदि यह बड़ा होगा तो $SS_{c \times r}$ का परिमाण छोटा होगा।

RB-*k* आकल्प की उपयोगिता

इस आकल्प के निम्नलिखित लाभ हैं–

1. इसमें इकाइयों के बीच स्थित अन्तर कम हो जाते हैं क्योंकि उन्हें समान बनाकर संवर्गों में वितरित किया जाता है। इस कारण त्रुटि-विचरण SS_w भी कम हो जाता है तथा अनुसंधान की आन्तरिक वैधता बढ़ जाती है।

नोट

2. संवर्गों में अन्तर होने के कारण जो विचरण उत्पन्न होता है उसे भी निकाल दिया जाता है। अत: इस कारण त्रुटि भी कम हो जाती है।

3. स्वतन्त्र समूह-सम्भाविक आकल्प की तुलना में यह आकल्प श्रेष्ठ है। इसकी प्रभाविकता (efficiency) की संगणना भी सूत्र $\frac{\text{Mean SS}_w}{\text{Mean SS}_{c\times r}} \times 100$ के आधार पर की जा सकती है। इससे स्पष्ट है कि यह आकल्प सम-सम्भाविक समूह आकल्प की तुलना में अधिक शक्तिशाली है।

4. यह आकल्प अत्यन्त लचीला है। संवर्गो तथा उपचार के कितने ही स्तरों को लेकर यह विश्लेषण किया जा सकता है।

5. विश्लेषण की सरलता इसकी अतिरिक्त विशेषता है।

दोष–इस आकल्प का एक दोष, उसकी एक असुविधा भी है। जब उपचारों की संख्या अधिक होती है। तो संवर्गों में समरूप इकाइयों की संख्या अधिक होने के कारण उन्हें समरूप बनाना कठिन हो जाता है। एक संवर्ग में इतनी अधिक समान इकाइयों का मिलना बहुत असुविधाजनक हो जाता है और यदि एक से अधिक चरों पर उन्हें समान बनाना हो तो यह और अधिक कठिन हो जाता है।

29.7 सह-विचरण विश्लेषण (Co-Variance Analysis)

प्रयोगात्मक अनुसंधान में अध्ययनेतर चरों का नियंत्रण अत्यन्त आवश्यक समझा जाता है क्योंकि उसके अभाव में परिणाम अधिक शुद्ध एवं वैध नहीं हो पाते। इस उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कई उपायों एवं विधियों का उल्लेख किया गया है। इनमें से एक सह-विचरण-विश्लेषण (analysis of covariance) हैं। इसे संक्षेप में "अनकोवा" (ANCOVA) भी कहते हैं। यह अनोवा का ही विस्तार-रूप है। अनकोवा चरों के नियंत्रण की एक सांख्यिकीय विधि है। इससे अनुसंधान के परिणामों की शुद्धता एवं वैधता बढ़ जाती है। पिछले उदाहरण में सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प का वर्णन किया गया था जिसमें बुद्धि पर इकाइयों को समान बनाकर उन्हें उपचारों के अन्तर्गत वितरित किया गया था इस प्रकार बुद्धि को नियन्त्रित किया गया था। सहविचरण-विश्लेषण में ऐसा न करके उसका मापन किया जा सकता है और सांख्यिकीय विश्लेषण के द्वारा उसके प्रभाव को निष्कासित किया जा सकता है। उपचारों के विचरण (SS_{Tr}) में सांख्यिकीय विधि से संशोधन करके सहचर (covariate) बुद्धि पर आरम्भ में इकाइयों के बीच स्थित अन्तरों के कारण उत्पन्न प्रभाव को निष्कासित किया जा सकता है। बाद वाले मापांकों के प्रारम्भिक मापांकों पर प्रतिगमन प्रभाव जिसे अन्त: समूह प्रतिगमन कहते हैं, के माध्यम से ऐसा सम्भव हो जाता है। इस प्रकार सहविचरण-विश्लेषण एक ऐसी सांख्यिकीय विधि है जिसमें विभिन्न उपचारों के विचरणों के बीच अन्तरों की सार्थकता की परीक्षा तक की जाती है, जब उनमें से उस विचरण को निकाल दिया जाता है जो आरम्भ में अध्ययनेतर चर अथवा चरों के कारण उनके बीच उत्पन्न हुई थी। दूसरे शब्दों में, अन्तर्समूह विचरण में से सहचरों में प्रारम्भिक अन्तरों द्वारा उत्पन्न हुये विचरण को निकालकर अर्थात् उसे संशोधित करके यह विश्लेषण किया जाता है। अत: $SS_{T(y)}$, $SS_{A(y)}$ तथा $SS_{w(y)}$ में से उस विचरण को निकाल दिया जाता है जो X (सहचर) तथा Y (उपचार) के बीच सह-सम्बन्ध होने के कारण उत्पन्न होता है। इस प्रकार अन्तिम विश्लेषण इन संशोधित विचरणों के आधार पर ही किया जाता है। आगामी उदाहरण से यह स्पष्ट हो जायेगा।

निम्नांकित तालिका में X मान लीजिये चर बुद्धि है तथा Y बालकों की अधिगम उपलब्धि है। तीन उपचार समूह (प्रशंसित, दण्डित एवं नियंत्रित) हैं। शोधकर्ता यह जानना चाहता है कि क्या बालकों की अधिगम उपलब्धि पर इन उपचारों का सार्थक रूप से अलग-अलग प्रभाव पड़ता है, परन्तु बुद्धि के प्रभाव को वह नियंत्रित करना चाहता है। सम्पूर्ण शोध-सामग्री तालिका में प्रस्तुत की गई है तथा विश्लेषण की प्रक्रिया का पद-क्रम भी उसके नीचे दिया गया है।

नोट

उदाहरण-8

तालिका 29.8

सह-विचरण विश्लेषण

प्रशंसित समूह			*दण्डित समूह*			*नियंत्रित समूह*		
X_1	Y_1	X_1Y_1	X_2	Y_2	X_2Y_2	X_3	Y_3	X_3Y_3
33	18	594	34	31	1054	34	15	510
42	34	1428	55	45	2475	4	08	32
40	22	880	09	1	0009	12	18	216
31	24	744	50	33	1650	16	15	240
Sum 146	98	3646	148	110	5188	66	56	998

1. First of all, we have to find out three correction terms for X, Y and XY:

   (*a*) C_x (correction term for X) = $(146 + 148 + 66)^2/12$

   $= (360)^2/12 = 10800.0$

   (*b*) C_y (correction term for Y) = $(98 + 110 + 56)^2/12 = 5808.00$

   (*c*) C_{xy} (correction term for XY) = $(\Sigma x)\ (\Sigma Y)/N$

   $$= \frac{360 \times 264}{12} = 7920.00$$

2. Now, total sum of squares have to calculated for X, Y and XY:

   (*a*) $SS_{T(x)} = (33^2 + 42^2 .... 12^2 + 16^2) - C$

   $= 13748.0 - 10800.0$

   $= 2948.0$

   (*b*) $SS_{T(Y)} = (18^2 + 34^2 ..... 18^2 + 15^2) - C$

   $= 7454.0 - 5808$

   $= 1646.0$

   (*c*) $SS_{T(Xy)}$ = Sum of XY total for each treatment group-C

   $= (3646 + 5188 + 998) - C$

   $= 9832 - 7920$

   $= 1921.0$

3. Now, we have to calculate between-groups sum of squares for X, Y and XY as follows:

   (*a*) $SS_{A(x)} = \frac{146^2 + 148^2 + 66^2}{4} - C$

   $= 11894.0 - 10800.0 = 1094.0$

   (*b*) $SS_{A(y)} = \frac{98^2 + 110^2 + 56^2}{4}\ C$

नोट

$= 6210.0 - 5808.0 = 402.0$

(*c*) $SS_{A(xy)} = \frac{X_1Y_1 + X_2Y_2 + X_3Y_3}{4} - C$

$= \frac{146 \times 98 + 148 \times 110 + 66 \times 56}{4} - C$

$= 8571 - 7920$

$= 651.0$

4. Now, SS_w for X, Y and XY can be calculated by just subtracting SS_A from SS_r.

(*a*) $SS_{w(x)} = 2948.0 - 1094.0 = 1854.0$

(*b*) $SS_{w(y)} = 1646.0 - 402 = 1244.0$

(*c*) $SS_{w(xy)} = 1912.0 - 651.0 = 1261.0$

Upto this point the calculations were done exactly in the same way as they were done in case of simple analysis of variance. After this, now, adjusted values of $SS_{T(y)}$ and $SS_{w(y)}$ have to be calculated. It is here stage that adjustment for initial differences on the covariate X has to be made. The procedure is as follows:

5. (*a*) Adj. $SS_{T(y)} = SS_{T(y)} - \frac{SS^2_{T(xy)}}{SS_{T(x)}} = 1646.0 - \frac{(1912)^2}{2948} = 405.93$

(*b*) Adj. $SS_{w(y)} = SS_{w(y)} - \frac{SS^2_{W(xy)}}{SS_{W(x)}} = 1244.0 - \frac{(1261)^2}{1854} = 386.33$

(*c*) Adj. $SS_{A(y)} = 405.93 - 386.33 = 19.6$

Adj. $SS_{A(y)}$ is calculated by subtracting Adj. $SS_{W(y)}$ from Adj. $SS_{T(y)}$

6. Next step is to convert Adj. $SS_{A(y)}$ and $SS_{W(y)}$ into mean squares by dividing them by their dergees of freedom as follows:

(*a*) Mean Adj. $SS_{A(y)} = \frac{19.6}{2} = 9.8$, *df* being 2.

(*b*) Mean $SS_{w(y)} = \frac{386.33}{8} = 48.29$, *df* being 8 as one more *df* is lost in case to ANCOVA as compared to ANOVA.

7. F-ratio $= \frac{\text{MeanAdj. } SS_{A(y)}}{\text{Mean Adj. } SS_{W(y)}} = \frac{9.8}{48.29}$ Not Sig.

8. निष्कर्ष–H_0 को अस्वीकार नहीं किया जा सकता। Mean Adj. $SS_{A(y)}$ का मान Mean Adj $SS_{W(y)}$ के मान से कम है। अत: F-ratio निकालने की आवश्यकता ही नहीं है। वह इससे भी कम होगा। अत: सार्थक नहीं हो सकता। इसलिए निष्कर्ष यह निकला कि बुद्धि को नियन्त्रित करने के बाद उपचारों का कोई प्रभाव बालकों की अधिगम उपलब्धि पर नहीं पड़ता।

नोट

अनकोवा निहित अभिधारणाएँ

अनकोवा का प्रयोग जिन शर्तों अथवा अभिधारणाओं पर आधारित है। वे हैं:

सावधानी उपचार-समूहों को सम-सम्भाविक विधि द्वारा एक ही जनसृष्टि से चुना जाना चाहिये।

1. अन्त: समूह संशोधित मापांकों का वितरण सम होना चाहिये।
2. उपचार समूहों को समरूप (homogeneous) होना चाहिये।
3. Y मापांकों (बाद वाले) का X मापांक (प्रारम्भिक) पर प्रतिगमन प्रत्येक उपचार समूह में समान होना चाहिये।
4. प्रतिगमन रेखीय (linear) होना चाहिये।

अनकोवा की उपयोगिता

निम्नलिखित परिस्थितियों में अनकोवा की बहुत अधिक उपयोगिता होती है:

1. जहाँ यथास्थित (intact) समूहों का प्रयोग किया जाता है, जैसे–शिक्षा के क्षेत्र में किन्हीं स्कूलों की पूरी कक्षा पर प्रयोग करना क्योंकि कक्षा से केवल कुछ छात्रों को अलग निकालकर उन पर प्रयोग करना सम्भव नहीं होता। उस स्थिति में इकाइयों को सम-सम्भाविक विधि से समूहों में वितरित करना भी सम्भव नहीं होता, परन्तु स्कूल बहुत से दृष्टिकोणों से एक-दूसरे से भिन्न होते हैं। अत: उनके बीच अन्तरों का कुप्रभाव परिणामों पर पड़ता है। उसे समाप्त करने के लिये एक दो महत्त्वपूर्ण चरों का नियन्त्रण अनकोवा के माध्यम से किया जा सकता है।

2. आरम्भ में यदि किसी चर पर इकाइयों के बीच अन्तर होने का आभास न हुआ हो तथा बाद में उसके प्रभाव को निष्कासित करना आवश्यक हो तो अनकोवा का प्रयोग सहायक सिद्ध होता है।

टास्क अनकोवा की उपयोगिता पर अपने विचार व्यक्त करें।

बहु-सहविचरण विश्लेषण

ऊपर एक सहचर (covariate) का उदाहरण प्रस्तुत किया गया है, परन्तु सहविचरण-विश्लेषण का प्रयोग उस स्थिति में भी किया जा सकता है जहाँ एक से अधिक सहचरों (covariates) को नियन्त्रित करना हो। दो सहचरों तक तो संगणना सरल होती है, परन्तु एक से अधिक सहचरों का नियंत्रण करना हो तो संगणना बहुत लम्बी तथा कठिन होती है, परन्तु नियमों में कोई परिवर्तन नहीं होता। इस विधि का सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प के साथ भी प्रयोग किया जा सकता है। लैटिन वर्ग आकल्प तथा हत-आकल्प (factorial designs) के साथ-साथ भी प्रयोग किया जा सकता है। **किर्क** (1968) तथा **लिंडक्विस्ट** (1970) ने इनका विस्तार से वर्णन किया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

बहु-विकल्पीय प्रश्न (Multiple Choice Questions):

4. पुनर्मापाधारी आकल्प में व्यक्तियों का एक ही ..... सभी उपचारों में रखा जाता है।

(क) संगठन (ख) जाति (ग) समूह (घ) संरचना

नोट

5. सम-संभाविक संवर्ग आकल्प के द्वारा ..... प्राप्त होती है।
   (क) नियम (ख) शोध सामग्री (ग) अंतर्क्रिया (घ) सामान्यन
6. प्रयोगात्मक अनुसंधान में अध्यनेत्तर चरों का ..... अतिआवश्यक होता है।
   (क) नियंत्रण (ख) मापन (ग) शुद्धता (घ) परिणाम,
7. ..... आकल्प सम-संभाविक संवर्ग आकल्प से भी श्रेष्ठ है।
   (क) हत आकल्प (ख) लैटिन वर्ग (ग) अनकोवा (घ) अनोवा

29.8 लैटिन वर्ग आकल्प (L.S.D) (Latin Square Design)

यह आकल्प सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प से भी श्रेष्ठ है। इसमें दो अध्ययनेतर चरों का नियन्त्रण किया जा सकता है। संवर्ग आकल्प की भाँति इसमें भी समूहों को समरूप बनाने के लिये संवर्गों का प्रयोग किया जाता है, परन्तु इसमें दो अध्ययनेतर चरों पर समान संवर्ग बनाये जाते हैं। इस प्रकार प्रत्येक संवर्ग की इकाइयाँ कम से कम उन दो चरों पर समान हो जाती हैं। इन अध्ययनेतर चरों के विभिन्न स्तरों को स्तम्भों एवं पंक्तियों में वितरित कर दिया जाता है। इस प्रकार लैटिन वर्ग आकल्प (L.S.D.) में अध्ययनेतर चरों के प्रभावों के विषय में जानकारी मिल जाती है।

अभिधारणाएँ

इस आकल्प का प्रयोग तभी सम्भव होता है:

जब संवर्गाधीन (blocking variables) तथा उपचारों की संख्या बराबर हो। उपचारों को पंक्तियों में तथा स्तम्भों में सम-सम्भाविक विधि से वितरित किया जाता है। साथ ही यह बात भी ध्यान में रखने की है कि प्रत्येक उपचार, प्रत्येक स्तम्भ तथा पंक्ति में एक ही बार आना चाहिए। पंक्ति तथा स्तम्भ के प्रत्येक कोषा (cell) में एक ही उपचार आना चाहिए।

एक यह भी शर्त है इस आकल्प की कि उपचारों के प्रभाव जोड़े जा सकने वाले (additive) होने चाहिए तथा स्तम्भों एवं पंक्तियों के साथ उनकी अन्तर्क्रिया नहीं होनी चाहिए। साथ ही स्तम्भों तथा प्रक्तियों की भी एक-दूसरे के साथ अन्तर्क्रिया नहीं होनी चाहिए। नीचे एक उदाहरण द्वारा इसके उपयोग की प्रक्रिया को समझाया गया है।

मान लीजिये एक शोधकर्ता चूहों की सामान्य क्रियाशीलता पर एक औषधि की पाँच मात्राओं के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है, परन्तु वह सोचता है कि चूहों की उम्र भी एक ऐसा तत्व है जो उनकी क्रियाशीलता को प्रभावित कर सकता है। अत: उम्र को नियन्त्रित करने के लिए वह चूहों के समान उम्र वाले पाँच संवर्ग बनाता है–एक में 5-6 माह, दूसरे में 7-8, तीसरे में 9 से 10, चौथे में 11 से 12 तथा पाँचवें में 13 से 14 माह के चूहे रखता है। प्रत्येक संवर्ग में 5 चूहे रखता है। यदि प्रयोग इस प्रकार का है कि एक दिन में केवल 5 चूहों की परीक्षा ही की जा सकती है तो वह सोचता है कि दिन-प्रतिदिन होने वाले परिवर्तन भी परिणाम को प्रभावित कर सकते हैं तो उन्हें भी वह नियन्त्रित करने का प्रयास करता है। इन सब बातों को ध्यान में रखकर वह शोध-सामग्री को विश्लेषण हेतु व्यवस्थित करने के लिये निम्न प्रकार से एक तालिका तैयार करता है। इसमें दिनों को ऊपर स्तम्भ-शीर्षकों के रूप में तथा उम्र के संवर्गों को बायीं ओर ऊपर से नीचे की ओर रखता है। फिर चूहें के प्रत्येक संवर्ग में से एक-एक लेकर सम-सम्भाविक विधि से पाँच दिनों में अलग-अलग वितरण करता है। उक्त तालिका इस प्रकार का रूप लेती है:

नोट

उदाहरण–9

तालिका 29.9

लैटिन वर्ग आकल्प

उम्र महीनों में	दिन				
	सोम.	मंगल.	बुध.	बृ.	शुक्र.
13–14	1	3	4	2	5
11–12	5	4	3	1	2
9–10	2	5	1	4	3
7–8	4	2	5	3	1
5–6	3	1	2	5	4

इसके बाद उपचारों (औषधि) की विभिन्न मात्राओं को सम-सम्भाविक विधि से प्रत्येक स्तम्भ एवं पंक्ति में आरोपित किया जाता है, परन्तु यह शर्त रहती है कि प्रत्येक उपचार पंक्ति एवं स्तम्भ में केवल एक ही बार आये। इस प्रकार वितरित उपचारों की जो व्यवस्था बनती है वह आगे दी गई तालिका में प्रस्तुत की गई है:

तालिका 29.9 (क)

उपचारों की व्यवस्था

उम्र महीनों में	दिन				
	सोम.	मंगल.	बुध.	बृ.	शुक्र.
13–14	*A*	*E*	*C*	*B*	*D*
11–12	*D*	*C*	*B*	*A*	*E*
9–10	*E*	*A*	*D*	*C*	*B*
7–8	*B*	*D*	*A*	*E*	*C*
5–6	*C*	*B*	*E*	*D*	*A*

These *A, B, C, D* and *E* letters denote five levels of durg in which:

A = 10 mg, B = 15 mg,

C = 20 mg, D = 25 mg.

E = 30 mg,

Suppose the experiment was conducted and the researcher obtained following scores on the dependent variable.

नोट

तालिका 29.9 (ख)

लैटिन वर्ग आकल्प आँकड़ा

उम्र महीनों में	दिन					
	सोम.	मंगल.	बुध.	वृ..	शुक्र.	कुल
13–14	8	10	4	6	10	38
11–12	8	2	4	14	15	43
9–10	12	10	6	5	9	42
7–8	5	4	12	14	3	38
5–6	3	7	12	7	10	39
	36	33	38	46	47	200

The analysis of the data cast in this table is done as follows:

1. $C = \frac{\Sigma X^2}{N} = \frac{200^2}{25} = 1600.00$

2. SS_t = Sum of sequars of all scores in the cells minus the correction term.
= 1948.0 – 1600.0 = 348.0

3. SS_{age} = Sum of squares of all the row totals divided by n minus the correction term.

$$= \frac{38^2 + 43^2 + 42^2 + 38^2 + 39^2}{5} - 1600$$

$$= \frac{8022}{5} - 1600 = 4.4$$

4. SS_{Days} = Sum of squares of column totals divided by column n

$$= \frac{36^2 + 33^2 + 38^2 + 46^2 + 47^2}{5} - 1600$$

= 1630.8 – 1600 = 30.8

We, now, have to find out the sum of all scores for *A, B, C, D* and *E* with the help of table-1- How to do it is demonstrated below:

$A = 8 + 10 + 12 + 14 + 10$ = 54, *i.e.,* A में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

$B = 5 + 7 + 4 + 6 + 9$ = 31, *i.e.,* B में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

$C = 3 + 2 + 4 + 5 + 3$ = 17, *i.e.,* C में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

$D = 8 + 4 + 6 + 7 + 10$ = 35, *i.e.,* D में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

$E = 12 + 10 + 12 + 14 + 15$ = 63, *i.e.,* E में पाँचों कॉलम के सभी आँकड़ों का योग।

5. $SS_{Tr} = \frac{54^2 + 31^2 + 17^2 + 35^2 + 63^2}{5} - 1600$

नोट

$$= \frac{9360}{5} - 1600 = 1872 - 1600 = 272.0$$

6. $SS_W = SS_{TC} - (SS_{age} + SS_{days} + SS_{Tr})$

$= 348 - (4.4 + 30.8 + 272.0) = 348 - 307.2 = 40.8$

तालिका 29.9 (ग)

परिणामों का सारांश

विचरण के स्रोत	*SS*	*df*	*Mean SS*	*F*
उम्र	4.4	4	1.1	
दिन	30.8	4	7.7	2.26
उपचार (Drugs)	272.0	4	68.0	20.00
गलती	40.8	12	3.4	

इस प्रकार प्राप्त परिणामों से स्पष्ट होता है कि औषधि की विभिन्न मात्राओं का चूहों की क्रियाशीलता के स्तर पर अलग-अलग सार्थक प्रभाव पड़ता है क्योंकि उपचारों के विचरणों के अन्तर .01 -स्तर पर सार्थक हैं। उपरोक्त उदाहरण में उपचारों का एफ-मान (20.0) है जो 4, 12 *df* पर 01-स्तर पर सार्थक है। अत: निष्कर्ष निकलता है कि औषधि चूहों की क्रियाशीलता को प्रभावित करती है।

लैटिन वर्ग आकल्प के प्रयोग

यह आकल्प उस स्थिति में बहुत उपयोगी है जहाँ शोधकर्ता दो अध्ययनेतर चरों के प्रभाव को नियन्त्रित करना चाहता है। ये चर वे होते हैं जो आश्रित चर से सम्बन्धित होते हैं तथा उन्हें नियन्त्रित नहीं किया जाता तो परिणामों की शुद्धता एवं वैधता संदिग्ध हो जाती है। अत: इन्हें संवर्गीकरण (blocking) के माध्यम से निष्क्रिय किया जाता है।

जीव-विज्ञान एवं औषधि विज्ञान में L.S.D. का बड़ा महत्त्व है क्योंकि इनमें इकाइयों के बीच स्थित अन्तरों के प्रभाव को समाप्त करके औषधि अथवा स्वतन्त्र चरों के प्रभाव का जीवों के व्यवहार पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन किया जाता है। संवर्गीकरण के माध्यम से इन अध्ययनेतर चरों के प्रभाव को इस आकल्प में शून्य बना दिया जाता है। इन चरों पर इकाइयों को समान बनाकर उन्हें एक संवर्ग में रखा जाता है। इस प्रकार कई संवर्ग बनाकर इस आकल्प का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिये, यदि भार एवं आकार (size) के आधार पर संवर्ग बनाने हैं तो इस प्रकार बनेंगे:

तालिका 29.10

	Size		
वजन	*छोटा*	*मध्यम*	*ऊँचा*
40 – 50 kg.			
60 – 70 kg.			
80 – 90 kg.			

नोट

इस प्रकार, भार एवं आकार के विभिन्न स्तरों को स्तम्भ तथा पंक्तियों में वितरित किया जा सकता है और उनके प्रभाव को प्रयोग से निष्कासित किया जा सकता है। इसकी दूसरी उपयोगिता उपचारों में क्रम प्रतितोलक (counter balancing) में होती है जैसाकि आगे वाली तालिका में दिखाया गया है:

तालिका 29.11

	क्रम-1	*क्रम-2*	*क्रम-3*
समूह-1	a_3	a_1	a_2
समूह-2	a_1	a_2	a_3
समूह-3	a_2	a_3	a_1

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि प्रत्येक उपचार क्रम के अन्तर्गत समान रूप से घटित होता है।

पूर्ण सम-सम्भाविक समूह तथा संवर्ग आकल्पों एवं एल. एस. डी. आकल्पों की त्रुटि की तुलना

उदाहरण अनुसंधान की शुद्धता एवं वैधता के दृष्टिकोण से एल. एस. डी. (लैटिन वर्ग आकल्प) पूर्ण सम-सम्भाविक-समूह आकल्प तथा सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प दोनों से श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें त्रुटि का परिमाण (size of error) उन दोनों से कम होता है।

इसे इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:

पूर्ण-सम-सम्भाविक समूह आकल्प त्रुटि = पूर्ण विचरण (SS_T) -उपचार विचरण (SS_{Tr}) सम-सम्भाविक संवर्ग आकल्प में त्रुटि = $SS_{Tr} - SS_{blocks}$ *i.e.,* $SS_{Tr} - SS_{rows}$ परन्तु एल. एस. डी. में त्रुटि = $SS_{Tr} - (SS_{rows} + SS_{columns})$.

स्पष्ट है कि एल. एस. डी. में $SS_{columns}$ के कारण उत्पन्न त्रुटि का एक अतिरिक्त भाग कम हो जाने से वह उपरोक्त दोनों की तुलना में कम होती है।

सम-सम्भाविक वर्गों की स्वतन्त्र अभ्यावृत्ति

इस आकल्प में स्वतंत्र्यांशों की कमी हो जाती है क्योंकि स्तम्भों तथा पंक्तियों दोनों के df को SS_w के df में से घटाया जाता है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि अधिक df के साथ SS_W का मान निकाला जाये। इस उद्देश्य की पूर्ति हेतु सम्पूर्ण प्रयोग के अतिरिक्त लैटिन वर्गों की स्वतन्त्र रूप से लेकर अभ्यावृत्ति (replication) की जाये। ये लैटिन वर्ग पहले वाले वर्गों से स्वतन्त्र होने चाहिये तथा सम-सम्भाविक विधि से उनका चयन किया जाना चाहिये। इन सभी लैटिन वर्गों को एक साथ मिलाकर विश्लेषण करने पर df की संख्या बढ़ जाती है तथा अधिक शुद्ध परिणाम प्राप्त होते हैं। इससे उपचारों के प्रभाव भी अधिक स्पष्ट रूप से उभर आते हैं।

29.9 सारांश (Summary)

- टी-टेस्ट की भाँति यह परीक्षा भी जिसे एफ-टेस्ट भी कहा जाता है, एक प्राचलीय परीक्षा है। यह एक अत्यन्त अतिप्रयुक्त परीक्षा है जिसके अनेक परिवर्तित रूप हैं तथा जिसका अनेक अनुसंधान परिस्थितियों में प्रयोग किया जा सकता है।

नोट

- 'विचरण' का शाब्दिक अर्थ भाषा में 'अन्तर' होता है, परन्तु सांख्यिकी की भाषा में इसका अर्थ होता है "अन्तरों के वर्गों का औसत।" ये अन्तर मापांकों एवं मध्यमान के बीच लिये जाते हैं।
- अन्तर्समूह विचरण वह विचरण होता है जो प्रत्येक समूह के मध्यमान एवं तीनों समूहों के सामूहिक मध्यमान के अन्तरों के वर्गो के योग को $N - 1$ से भाग करने पर आता है।
- SS_A/SS_W को एफ-अनुपात (F-ratio) कहते हैं। **सर रोनाल्ड फिशर** के एक शिष्य **स्नेडेकोर** (Snedecor) ने उनके सम्मानस्वरूप इस अनुपात को **एफ** (F) की संज्ञा दी थी।

29.10 शब्दकोश (Keywords)

1. **विचरण**–अन्तर, सांख्यिकी के अन्तर्गत प्राप्त आंकड़ों में–अन्तरों के वर्गों का औसत।
2. **आकल्प**–रचना, वेश, प्रकार।

29.11 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. एकदिश विचरण विश्लेषण से आप क्या समझते हैं?
2. सम-संभाविक समूह आकल्प क्या है? सोदाहरण बताएँ।
3. पुनर्मापाधारी आकल्प पर प्रकाश डालें।

अथवा

एकल दिक् अनोवा की सोदाहरण व्याख्या करें।

4. द्वि-दिक् विचरण विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? विस्तृत वर्णन करें।
5. सम-संभाविक संवर्ग आकल्प किसे कहते हैं? उदाहरण सहित स्पष्ट करें।
6. लैटिन वर्ग आकल्प (L.S.D.) को समझाएँ।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answers: Self Assessment)

1. प्राचलीय 2. अंतरों के वर्गों का औसत 3. एक छोरीय 4. (ग) समूह
5. (ख) शोध-सामग्री 6. (क) नियंत्रण 7. (ख) लैटिन वर्ग

29.12 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डा. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
2. शैक्षिक तकनीकी–*एस.एस. माथुर, भट्ट ब्रदर्स।*
3. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शिक्षा तकनीकी–*आर.ए. शर्मा, भट्ट ब्रदर्स।*

नोट

इकाई 30 : अनुसन्धान प्रतिवेदन का लेखन (Preparation of Research Report)

अनुक्रमणिका (Contents)

उद्देश्य (Objectives)

प्रस्तावना (Introduction)

30.1 विवरण प्रस्तुति की रूपरेखा (Format of the Thesis)

30.2 लेखन शैली (Style of Writing)

30.3 तालिकाओं एवं आकृतियों की रचना (Construction of Tables and Figures)

30.4 उद्धरित सामग्री की प्रस्तुति (Presentation of Reference Materials)

30.5 परिशिष्टों की प्रस्तुति (Presentation of an Appendix)

30.6 प्रतिवेदन का टंकन (Typing of Report)

30.7 प्रतिवेदन का मूल्यांकन (Evaluation of Report)

30.8 सारांश (Summary)

30.9 शब्दकोश (Keywords)

30.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

30.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

उद्देश्य (Objectives)

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् विद्यार्थी योग्य होंगे:

- विवरण प्रस्तुति की रूपरेखा एवं लेखन-शैली को समझने में;
- तालिकाओं एवं आकृतियों की रचना को समझने में;
- उद्धरित सामग्री एवं परिशिष्टों की प्रस्तुति को समझने में;
- प्रतिवेदन का टंकन तथा मूल्यांकन को समझने में।

प्रस्तावना (Introduction)

अनुसंधान कार्य पूर्ण हो जाने के बाद सम्पूर्ण विवरण शोध-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत करना होता है। शोध-प्रबंध किस रूप में तैयार किया जाना चाहिए, इस संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर थोड़े हेर-फेर के साथ सर्वमान्य नियमों का पालन

नोट

किया जाता है। शोधकर्ता को इन नियमों एवं विधियों का ज्ञान होना आवश्यक है। इन नियमों एवं विधियों के अनुसार ही उसे अपना शोध-प्रबंध तैयार करना चाहिए। इनका वर्णन इस अध्याय में किया गया है। अध्याय की सम्पूर्ण सामग्री को निम्नलिखित भागों में बाँटा गया है–

(क) लिखित विवरण-प्रस्तुति की रूपरेखा (Format of the Thesis)

(ख) लेखन-शैली (Style of Writing)

(ग) तालिकाओं एवं आकृतियों की रचना (Constructions of Tables and Figures)

(घ) उद्धरित सामग्री की प्रस्तुति (Presentation of Reference Material)

(ङ) परिशिष्टों की प्रस्तुति (Presentation of Appendix)

(च) प्रतिवेदन का टंकन (Typing of Report)

(छ) प्रतिवेदन का मूल्यांकन (Evaluation of Report)

30.1 विवरण प्रस्तुति की रूपरेखा (Format of the Thesis)

इसके अन्तर्गत इस बात का वर्णन किया गया है कि अनुसंधान पूर्ण हो जाने पर उसके सम्पूर्ण विवरण को लिखित रूप में किस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए अर्थात् शोध-प्रबंध का लिखित आकार-रूप (format) कैसा होना चाहिए। पूरे शोध-प्रबंध को इस दृष्टिकोण से निम्नलिखित भागों में बाँटा जाता है–

1. प्रारम्भिक आवश्यकताएँ

I. मुख पृष्ठ (Title Page)

II. अनुमोदन पत्र (Letter of Approval)

III. आभाराभिव्यक्ति (Acknowledgement)

IV. प्राक्कथन (Preface)

V. विषय-वस्तु (Contents)

VI. सारणी सूची (List of Tables)

VII. आकृतियों की सूची (List of Figures)

2. मुख्य विषय-वस्तु

I. पृष्ठभूमि (Introduction)

1. समस्या का कथन (Statement of the Problem)
2. समस्या के उद्देश्य (Purpose of the Problem)
3. सम्बन्धित अनुसंधानों का विश्लेषण (Analysis of related Researchs)
4. परिकल्पनाओं की आधारभूत अवधारणाएँ (Basic concepts of Hypothesis)
5. परिकल्पनाओं का कथन (Statement of Hypothesis)
6. तकनीकी शब्दों की व्याख्या (Describe of Technical Words)।

II. सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण

III. अध्ययन की विधि एवं प्रक्रिया

IV. अध्ययन के परिणाम

V. अध्ययन के परिणामों की व्याख्या

VI. सारांश (सम्पूर्ण विवरण का)

3. संदर्भ-सामग्री (संदर्भ-ग्रंथों की सूची, परिशिष्ट आदि)

नोट

1. प्रारम्भिक आवश्यकताएँ

प्रत्येक शोध-प्रबंध में अनुसंधान का वर्णन करने से पहले विश्वविद्यालय के नियमों एवं परम्परा के अनुसार कुछ पृष्ठ औपचारिकता के नाते जोड़ने पड़ते हैं। इनमें मुख पृष्ठ, अनुमोदन पत्र, आभाराभिव्यक्ति, प्राक्कथन, विषय-वस्तु (अध्याय सूची), तालिका-सूची एवं आकृति-सूची के पृष्ठ सम्मिलित होते हैं।

I. मुख्य पृष्ठ

इस पृष्ठ पर जो सूचनाएँ रहती हैं, वे इस प्रकार होती हैं–(*i*) समस्या का शीर्षक, (*ii*) शोधकर्ता का नाम (उपाधियों सहित), (*iii*) संकाय एवं उस विश्वविद्यालय का नाम जहाँ शोध-प्रबंध उपस्थापित किया जाना है, (*iv*) उपाधि का नाम जिसके लिए शोध-प्रबंध उपस्थापित किया जाना है, (*v*) वर्ष जिसमें उसे उपस्थापित किया जा रहा है। इन सूचनाओं को किस प्रकार पृष्ठ पर टंकित किया जाना चाहिए। इस संबंध में विशिष्ट नियम इस प्रकार हैं–

(*i*) समस्या का शीर्षक बड़े शब्दों (Capital letters) में टंकित किया जाता है। पृष्ठ के बीच में दोनों ओर बराबर हाशिया छोड़ा जाता है। ऊपर से 1½″ स्थान छोड़ा जाता है। यदि एक से अधिक पंक्तियों का शीर्षक है तो उसे डबल स्पेस में तथा उल्टे पिरामिड के रूप में टंकित किया जाता है। अगले पृष्ठ पर दिये गये नमूने को देखिए। यह अंग्रेजी में है परन्तु हिन्दी में भी इसी रूप में होना चाहिए।

(*ii*) इस पृष्ठ की अन्य सभी सूचनाओं के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण शब्द का प्रथम अक्षर ही कैपिटल में टंकित किया जाता है। अगले पृष्ठ पर दिए गये नमूने को देखिए।

हिन्दी में कैपिटल अक्षरों का प्रश्न नहीं उठता। अत: समस्या-शीर्षक के थोड़े बड़े टाइप में तथा शेष सारी सूचनाओं को उससे छोटे टाइप में टंकित किया जा सकता है। इलेक्ट्रोटाइपिंग में ऐसी व्यवस्था रहती है। यदि ऐसी व्यवस्था नहीं है तो समस्या-शीर्षक को रेखांकित किया जा सकता है।

II. अनुमोदन पत्र

यदि विश्वविद्यालय के नियमानुसार अनुमोदन-पत्र को लगाना आवश्यक है तो उसकी फोटोकापी कराकर उसे उसी रूप में थीसिस में लगाना चाहिए।

A STUDY OF THE RELATIONSHIP BETWEEN PERSONALITY FACTORS AND ADMINISTRATIVE EFFECTIVENESS OF THE PRINCIPALS IN ORISSA

By

NARAYAN TRIPATHY

M.A. (Education), M. Phil, (Education),

Lecturer (Education)

Bhadrak College, Orissa.

नोट

A THESIS

Submitted to the University of Meerut (U.P.)
in Fulfilment of the Requirement for the
Degree of Ph. D. in Education.

Supervised by

DR. R.P. BHATNAGAR
Retd. Professor and Head,
Department of Education,
Dean, Faculty for Education,
Meerut University, Meerut.

DEPARTMENT OF EDUCATION
Institute of Advanced Studies
Meerut University (U.P.)
1984

TABLE OF CONTENTS

APPROVAL SHEET	II
ACKNOWLEDGEMENT	III
LIST OF TABLES	V
LIST OF FIGURES	VII
Chapter	
I. INTRODUCTION	1
Background of the Study	3
Statement of the Problem	7
Objectives of the Study	8
Hypothesis of the Study	9
Significance of the Study	10
Definition of Terms	12
Scope of the Study	14
II. REVIEW OF RELATED LITERATURE	15
(Subdivisions as in the First Chapter)	
III. METHOD AND PROCEDURE	40
IV. THE DATA AND THE RESULTS	82
V. INTERPRETATION AND DISCUSSION OF RESULTS	102
VI. IMPLICATIONS OF FINDINGS AND SUGGESTIONS FOR FURTHER RESEARCH	114
VII. SUMMARY AND CONCLUSION	135
BIBLIOGRAPHY	156

APPENDIX-A 177
APPENDIX-B 181

नोट

तालिका-सूची अलग एक पृष्ठ पर टंकित की जाती है।

LIST OF TABLES

Table

1. Mean and Standard Deviation of Group-A 30
2. Mean and Standard Deviation of Group-B 36
3. *t*-Values on All Variables between Group-A and Group-B 40

LIST OF ILLUSTRATIONS

Figure **Page**

1. I.Q. Distribution Curve of Boys 38
2. Comparative Bar-diagrams Showing Achievements of Boys and Girls 46
3. I.Q. Distribution Curve of Girls 58
4. Comparative Bar-diagram Showing I.Q. Distributions of Boys and Girls 60

आकृति-सूची अलग पृष्ठ पर टंकित की जाती है।

III. आभाराभिव्यक्ति पृष्ठ एवं प्राक्कथन

प्रत्येक शोध-प्रबंध में अनुमोदन-पत्र के पश्चात् एक या दो पृष्ठों में आभाराभिव्यक्ति एवं प्राक्कथन रहते हैं। प्राक्कथन के अन्तर्गत अत्यन्त संक्षेप में शोध के उद्देश्यों एवं विस्तार (scope) का उल्लेख करना होता है। उसके बाद जिन लोगों से शोध-कार्य में महत्त्वपूर्ण सहायता मिली है, उनके प्रति आभार व्यक्त किया जाता है, परन्तु आभार-अभिव्यक्ति बढ़ा-चढ़ाकर करना अच्छा नहीं समझा जाता। यह चापलूसी नहीं लगनी चाहिए। वस्तुनिष्ठ होनी चाहिए। जब तक आवश्यक न हो आभार-अभिव्यक्ति एवं प्राक्कथन को अलग-अलग न रखकर एक साथ ही लिखा जाना चाहिए।

IV. विषय-वस्तु

इसके बाद प्रत्येक थीसिस में वे पृष्ठ रहते हैं जिनमें यह दर्शाया जाता है कि सम्पूर्ण शोध-प्रबंध में कहाँ क्या है। इसके सबसे पहले पृष्ठ पर ऊपर से एक इंच छोड़कर तथा पृष्ठ के बीचो-बीच विषय-सूची (यदि हिन्दी में हो तो) अथवा टेबिल आफ कन्टेंट्स (Table of Contents) यदि अंग्रेजी में है तो टंकित किया जाता है। उसके नीचे एक इंच स्थान छोड़कर बाईं ओर कैपिटल अक्षरों में अनुमोदन-पत्र (Approval sheet), आभाराभिव्यक्ति एवं प्राक्कथन (Acknowledgement and Preface) आदि तथा अध्यायों एवं संदर्भ-ग्रंथों की सूची (Bibliography) आदि शीर्षक प्रत्येक दो के बीच डबल स्पेस देकर टंकित किए जाते हैं। यदि अंग्रेजी में शोध-प्रबंध है तो जहाँ से अध्याय (chapters) आरंभ होते हैं, उसके ऊपर शीर्षक चैप्टर (Chapter) टंकित किया जाता है जिसका केवल प्रथम अक्षर ही कैपिटल होता है। प्रत्येक शीर्षक के सामने दाईं ओर उसकी पृष्ठ संख्या रहती है। पृष्ठ संख्या जहाँ से आरंभ होती है, उसके 1/2″ ऊपर शीर्षक (page) टंकित होता है जिसका पहला अक्षर ही कैपिटल होता है। हिन्दी में कैपिटल का प्रश्न नहीं उठता।

अनुमोदन-पत्र से लेकर आकृतियों की सूची तक पृष्ठों की संख्या रोमन अंकों में (यथा I, II, III, IV आदि) तथा उसके बाद सारे पृष्ठों की संख्या अरबी अंकों में डाली जाती है। संदर्भ-ग्रंथ-सूची तथा परिशिष्टों की पृष्ठ-संख्या भी सम्पूर्ण शोध-प्रबंध की पृष्ठ-संख्या के क्रम में ही आगे चलती चली जाती है।

नोट

अध्यायों के शीर्षक कैपिटल में, परन्तु उनके उपभागों के शीर्षक छोटे अक्षरों में (प्रारंभिक अक्षर कैपिटल में) टंकित किए जाते हैं। प्रत्येक शीर्षक की पृष्ठ-संख्या वही होनी चाहिए जो थीसिस में है तथा शीर्षक की शब्दावली भी ठीक वही होनी चाहिए जो थीसिस में है।

शीर्षकों में जहाँ तक सम्भव हो एक ही पंक्ति होनी चाहिए तथा उनकी वाक्य-संरचना एक सी होनी चाहिए। विषय-सूची (content) पृष्ठ का नमूना पिछले पृष्ठ पर दिया गया है।

V. सारणी-सूची

विषय-सूची (content) के पश्चात् वे पृष्ठ रहते हैं जिन पर सारणियों अथवा तालिकाओं की सूची प्रस्तुत की जाती है। तालिकाओं तथा अकृतियों की सूची अलग-अलग पृष्ठों पर टंकित की जाती है। उसके अन्तर्गत जो सूचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं, वे हैं–(*i*) तालिका अथवा आकृति की क्रम-संख्या (शोध-प्रबंध के अनुसार) जो अरबी अंकों में टंकित की जाती है, (*ii*) तालिका का शीर्षक, (*iii*) उस पृष्ठ की संख्या जिस पर वह शोध-प्रबंध में उपलब्ध है। पिछले पृष्ठों पर इनके नमूने दिए गए हैं, उन्हें देखें।

2. मुख्य-विषय वस्तु

नोट्स शोध-प्रबंध के मुख्य विषय-वस्तु में अनुसंधान कार्य का वर्णन किया जाता है। यह भाग ही मुख्य रूप से पठनीय एवं स्थायी महत्त्व का होता है।

इसके अन्तर्गत मूल रूप से छः अध्याय आते हैं (*i*) पृष्ठभूमि, भूमिका अथवा विषय-प्रवेश (Introduction), (*ii*) संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण, (*iii*) अध्ययन-विधि, प्रक्रिया अथवा अभिकल्प (Design of the study), (*iv*) शोध-सामग्री का विश्लेषण, परिणाम एवं उनकी व्याख्या, (*v*) निष्कर्षों की उपयोगिता एवं आगामी अनुसंधान हेतु सुझाव तथा (*vi*) सारांश।

I. पृष्ठभूमि

इसके अन्तर्गत शोधकर्ता सम्पूर्ण पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है अर्थात् वह इस बात पर प्रकाश डालता है कि समस्या की उद्भावना किस प्रकार हुई, वह संबंधित अनुसंधानों से किस प्रकार भिन्न है, उसका विस्तृत अर्थ क्या है, उसके चर कौन-कौन से हैं, उसका अर्थ क्या है, समस्या के उद्देश्य क्या हैं, उसकी परिकल्पनाएँ क्या हैं, उसका विस्तार-क्षेत्र (scope) क्या है, उसका महत्त्व क्या है आदि।

II. संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण

इसके अन्तर्गत समस्या से संबंधित जितना भी साहित्य उपलब्ध है, उसका अध्ययन करके यथा-स्थान आवश्यक होने पर उसका उल्लेख किया जाता है। कुछ शिक्षाविद् इसका उल्लेख पूरे शोध-प्रबंध में जहाँ-जहाँ भी उसका उल्लेख करना आवश्यक एवं सार्थक समझा जाए, वहीं-वहीं करने के पक्ष में हैं तथा एक अलग अध्याय उसके लिए बनाने को उचित नहीं समझते। इस संबंध में यह उचित है अथवा वह ऐसा न सोचकर शोधकर्ता को अपने शोध-मार्गदर्शन के मतानुसार कार्य करना चाहिए। यदि अलग एक अध्याय बनाया जाता है तो उसे कई परिप्रेक्ष्यों में बाँटकर विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति हेतु उसका उल्लेख करना चाहिए। समस्या के क्षेत्र में हुए पिछले अनुसंधानों का अध्ययन करके यह बताना चाहिए कि किन-किन पक्षों को लेकर तथा किस-किस प्रकार के अनुसंधान हो चुके हैं, उनके परिणाम कहाँ तक समस्या का समाधान प्रस्तुत करते हैं अथवा प्रश्नों के उत्तर खोज चुके हैं, आगे और अनुसंधान करने की कितनी, क्यों और किस दिशा में आवश्यकता है। उस समस्त पृष्ठभूमि में प्रस्तावित शोध का क्या महत्त्व है, समस्या

नोट

की परिकल्पनाओं को संबंधित साहित्य किस प्रकार तर्कपूर्ण आधार प्रस्तुत करता है, परिकल्पनाओं के चरों को संबंधित साहित्य में किस प्रकार परिभाषित किया गया है, उनका मापन किस प्रकार किया गया है आदि अनेक पहलू हैं जिनकी व्याख्या करने में संबंधित साहित्य एवं सूचनाओं के सर्वेक्षण से बहुत लाभ हो सकता है। इस अध्याय में क्या होना चाहिए तथा सम्पूर्ण सामग्री का गठन किस प्रकार किया जाना चाहिए, इस संबंध में कोई निश्चित रूपरेखा नहीं हो सकती। यह बहुत कुछ समस्या के प्रकार पर निर्भर करता है।

III. अध्ययन की विधि एवं प्रक्रिया शोध

प्रबंध के तीसरे अध्याय में अनुसंधान की सम्पूर्ण प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है। शोधकर्ता सही-सही तथा विस्तार से लिखता है कि अनुसंधान किस प्रकार किया गया है। इसके अन्तर्गत समष्टि की परिभाषा, न्यादर्श के चयन की विधि, चरों की परिभाषा, उनके मापन हेतु प्रयोग की गई परीक्षाओं का वर्णन, सूचनाओं के विश्लेषण की विधि आदि का विस्तार से वर्णन किया जाता है। क्या-क्या लिखा जाएगा, यह बहुत कुछ इस बात पर भी निर्भर करता है कि अध्ययन किस प्रकार का है। विशेष ध्यान देने की बात यह है कि कोई आवश्यक जानकारी छूटनी नहीं चाहिए। पाठकों के मन में पढ़ते समय यह प्रश्न नहीं उठना चाहिए कि 'यह कैसे किया'।

IV. सूचनाओं का विश्लेषण एवं परिणाम

साधारणतया शोध-प्रबंध के चौथे अध्याय में शोध-सामग्री तथा सूचनाओं का विश्लेषण एवं शोध-परिणामों को प्रस्तुत किया जाता है। यह सम्पूर्ण शोध-कार्य का प्रमुख भाग होता है। शोध-सामग्री गुणात्मक अथवा संख्यात्मक किसी भी प्रकार की अथवा दोनों प्रकार की हो सकती है। उसकी प्रस्तुति के विषय में कोई निश्चित नियम अथवा प्रक्रिया का उल्लेख करना उचित नहीं होगा क्योंकि यह इस पर निर्भर करता है कि समस्या किस प्रकार की है तथा संबंधित शोध-सामग्री किस प्रकार की है। एक सामान्य सुझाव यह है कि सामग्री की प्रस्तुति एवं उसका विश्लेषण परिकल्पनाओं के क्रमानुसार होना चाहिए। परिकल्पना का कथन करके यह बताना चाहिए कि उसके परीक्षण हेतु किस प्रकार की सूचनाएँ एवं सामग्री एकत्र की गई हैं। उसकी सही ढंग से तालिका के रूप में प्रस्तुति करना चाहिए। उसके बाद उसका विश्लेषण किस प्रकार किया गया तथा परिणाम क्या आया इसका उल्लेख करना चाहिए। उसी के क्रम में परिणाम की व्याख्या दी जानी चाहिए। व्याख्या अर्थात् परिणाम की सार्थकता का निरूपण एक कठिन कार्य होता है। इसमें शोधकर्ता को प्रयुक्त विधि, प्रक्रिया की अपनी कमियों, सामग्री के संग्रह में हुई त्रुटियों, पूर्व में अनुसंधानों द्वारा उपलब्ध परिणामों आदि को ध्यान में रखते हुए तथा उनका उल्लेख करते हुए यह कथन करना होता है कि प्राप्त परिणाम कहाँ तक तर्कपूर्ण, सम्भावित एवं विश्वसनीय हैं। यदि अन्य अनुसंधानों के परिणामों से भिन्न कोई परिणाम आया है तो यह उल्लेख करना भी आवश्यक है कि ऐसा क्यों है।

V. आगामी अनुसंधान हेतु सुझाव एवं परिणामों की उपयोगिता

कोई भी अनुसंधान अपने में पूर्ण नहीं होता। अत: शोधकर्ता इस कार्य के बीच कई बार यह अनुभव करता है कि यदि उसे दूसरे प्रकार से किया जाता, दूसरे प्रकार की सूचनाएँ एकत्र की जातीं, बड़े न्यादर्श का चयन किया जाता अथवा भिन्न समष्टि को लेकर शोध किया जाता, विश्लेषण की किसी दूसरी विधि का प्रयोग किया जाता तो अधिक अच्छा होता। इसी प्रकार अनुसंधान-कार्य के बीच कुछ नई शोध-समस्याएँ उसके मस्तिष्क में उभर सकती हैं। परन्तु वह स्वयं अब न तो दूसरी समस्या पर अनुसंधान कर सकता है और न उसकी प्रक्रिया में कोई परिवर्तन कर सकता है। अत: शोध-प्रबंध के अध्याय-IV में ही अथवा एक अलग अध्याय-V बनाकर उसमें इन्हें प्रस्तुत करता है। इसी के क्रम में उसी अध्याय में प्राप्त परिणाम किस प्रकार शिक्षा के क्षेत्र में उपयोगी हो सकते हैं, उसका उल्लेख करता है। साधारणतया इसके लिए एक अलग अध्याय रखना ही अधिक उपयुक्त समझा जाता है।

नोट

VI. सारांश एवं निष्कर्ष

यह शोध-प्रबंध का अन्तिम अध्याय होता है। इस अध्याय में शोधकर्ता सम्पूर्ण शोध-प्रबंध की कार्य-प्रणाली एवं सारे अध्यायों का (केवल अध्याय-II को छोड़कर) सारांश प्रस्तुत करता है। यही अध्याय है जो बहुत अधिक पढ़ा जाता है। परीक्षक भी पहले इसी को पढ़ता है। अध्याय-II में संबंधित साहित्य का सर्वेक्षण रहता है। उसका अलग से सारांश प्रस्तुत करना आवश्यक नहीं होता। उसे संक्षेप में समस्या-कथन के साथ ही लिखना होता है। यह 15 से 20 पृष्ठों में लिखा जाना पर्याप्त होता है।

कुछ शोधकर्ता इसी अध्याय को सार (abstract) के रूप में उपस्थापित (submit) कर देते हैं। वास्तव में सार 'सारांश एवं निष्कर्ष' वाले अध्याय से भिन्न होता है। सार (abstract) लगभग 600 शब्दों में लिखने का नियम है। विश्वविद्यालय के नियमानुसार इसकी अलग से चार-पाँच प्रतियाँ माँगी जाती हैं। कहीं-कहीं शोध-प्रबंध के आरंभ में ही इसे जोड़ देने की प्रथा है। इसका उद्देश्य पाठक को केवल यह बताना होता है कि शोध किस विषय पर है तथा उसे पाठक को सम्पूर्ण रूप में पढ़ना चाहिए अथवा नहीं।

3. संदर्भ-सामग्री

छहों अध्यायों के समाप्त हो जाने के बाद उसी के क्रम में संदर्भ-सामग्री को शोध-प्रबंध में सम्मिलित किया जाता है। इसके अन्तर्गत पहले संदर्भ-ग्रंथ सूची प्रस्तुत की जाती है। उसके बाद उसी क्रम में परिशिष्ट प्रस्तुत किए जाते हैं। इन्हें किस प्रकार लिखा एवं प्रस्तुत किया जाता है, इसका विस्तार से उल्लेख आगे किया गया है।

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

रिक्त स्थानों की पूर्ति करें (Fill in the blanks):

1. अनुसंधान कार्य पूरा होने पर संपूर्ण विवरण ..... के रूप में प्रस्तुत करना होता है।
2. समस्या का शीर्षक बड़े शब्दों में ..... किया जाता है।
3. प्रत्येक शोध प्रबंध में अनुमोदन पत्र के पश्चात् आभाराभिव्यक्ति एवं ..... रहते हैं।
4. अनुमोदन पत्र से लेकर आकृतियों की सूची तक पृष्ठों की संख्या ..... अंकों में डाली जाती है।

30.2 लेखन शैली (Style of Writing)

पूर्वगत खण्ड-क में यह बताया गया है कि शोध-प्रबंध में कहाँ, क्या लिखा जाता है। इस खण्ड में यह बताने का प्रयास किया गया है कि उस सबको किस प्रकार लिखना चाहिए।

अनुसंधान का प्रतिवेदन अथवा शोध-प्रबंध अनुसंधान की एक वैज्ञानिक एवं तकनीकी रिपोर्ट होती है। उसे विशेषज्ञ ही पढ़ते हैं जो इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि उसमें कहाँ, क्या और किस ढंग से लिखा जाना चाहिए। अत: इन विशेषज्ञों के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर ही शोध-प्रबंध लिखा जाना चाहिए। अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर मान्य निर्देशिकाओं (कैम्पबेल, 1954; डगडेल, 1962 तुराबियन, 1960) में इन दृष्टिकोणों का परिचय मिल सकता है। प्रत्येक शोधकर्ता को शोध-प्रबंध लिखना आरंभ करने से पहले इनमें से किसी एक को अच्छी तरह से पढ़कर उसी के निर्देशों का आरंभ से अन्त तक पालन करना चाहिए। कुछ सामान्य सुझाव नीचे प्रस्तुत किए गए हैं–

1. लेखन-शैली तथ्याधारित, वस्तुनिष्ठ, तर्कपूर्ण एवं सीधी-सीधी होनी चाहिए। घुमा-फिराकर बात को कहना, उसका तथ्यों पर आधारित न होना, सांवेगिक एवं भावुकतापूर्ण होना, अपनी बात को कहने में अत्यधिक प्रतिरक्षी (defensive) होना, पाठकों को अनावश्यक रूप से प्रभावित करने का प्रयास शैली में अभिव्यक्त होना-ये सब लेखन-शैली के दोष माने जाते हैं।

नोट

2. लेखन-शैली में शोधकर्ता की विद्वत्ता, उसका गहन तकनीकी अध्ययन, लेखन-कौशल एवं भाषा-आधिपत्य का आभास स्पष्ट झलकना चाहिए।

3. विवरण का संगठन–प्रत्येक अध्याय के सम्पूर्ण विवरण का संगठन क्रमबद्ध एवं शृंखलाबद्ध होना चाहिए अर्थात् पहले उसे कुछ प्रमुख खण्डों में बाँटना चाहिए। प्रमुख खण्ड के शीर्षक को पृष्ठ के केन्द्र में तथा उपखण्डों के शीर्षकों को बाईं ओर हाशिये में लिखना चाहिए। प्रत्येक खण्ड एवं उपखण्ड के अन्तर्गत उसी से संबंधित विवरण आना चाहिए। प्रत्येक खण्ड एवं उपखण्ड विचारों का संगठन भी क्रमबद्ध रूप में होना चाहिए अर्थात् जो विचार जिसके पहले अथवा बाद में आना चाहिए उसे उसी क्रम में लिखना चाहिए। कोई बात कहीं लिख दी, कोई कहीं दूसरी जगह, ऐसा नहीं करना चाहिए। संबंधित विचार एक ही स्थान पर और उसी क्रम में आने चाहिए जिस क्रम में वे एक-दूसरे से संबंधित हैं। यह संबंध-क्रम (coherence) लेखन-शैली का अत्यंत वांछनीय पक्ष है। प्रत्येक खण्ड अथवा उपखण्ड का एक मूल विचार (theme) होता है। उसी को केन्द्र में रखकर सारे विचारों का उसी के इर्द-गिर्द क्रमानुसार संगठन किया जाना चाहिए। प्रत्येक खण्ड एवं उपखण्ड में विवरण की, विचारों की, तथ्यों की, तर्कों की जैसी वांछनीय है, एक शृंखला सी बन जानी चाहिए। साथ ही वह इतनी सुगठित होनी चाहिए कि उसकी एक कड़ी भी बीच से निकले तो शृंखला के टूटने का आभास तुरंत हो जाए।

4. भाषा–अनुसंधान प्रतिवेदन का उद्देश्य होता है पाठकों को अनुसंधान की वस्तुनिष्ठ जानकारी देना। भाषा इस जानकारी का सशक्त माध्यम है। अत: वह ऐसी होनी चाहिए कि अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में सफल हो सके। क्योंकि अनुसंधान प्रतिवदेन का उद्देश्य वस्तुनिष्ठ जानकारी देना होता है, अत: साहित्यिक अलंकारिक भाषा का प्रयोग, क्लिष्ट भाषा का प्रयोग, कठिन शब्दों का प्रयोग, लच्छेदार भाषा का प्रयोग, ऐसे शब्दों का प्रयोग जो प्रचलन में नहीं हैं, लम्बे-लम्बे वाक्यों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। इस प्रकार की भाषा विचारों एवं तथ्यों को समझने में कठिनाई पैदा करती है। भाषा सरल, स्पष्ट तथा सीधी-सीधी होनी चाहिए जिससे अध्ययन संबंधी बात तुरंत समझ में आ जाए तथा गलतफहमी से बचा जा सके। यदि किसी ऐसे शब्द अथवा ऐसी संकल्पना का प्रयोग अपरिहार्य हो जिसके विषय में लगे कि उसे समझना कठिन होगा तो वहीं उसे दो-तीन वाक्यों में स्पष्ट कर देना चाहिए।

5. सन्तुलन एवं विशिष्टीकरण–सम्पूर्ण प्रतिवेदन की विवरण-सामग्री की प्रस्तुति में सन्तुलन होना आवश्यक है अर्थात् विवरण के विभिन्न खण्डों, उपखण्डों भागों आदि को जितने विस्तार से लिखने की आवश्यकता है, उतने ही विस्तार से लिखना चाहिए। किसी एक अध्याय को बहुत विस्तार से तथा दूसरे को अनावश्यक रूप से संक्षेप में लिखना प्रतिवेदन में असन्तुलन पैदा करता है। यह सन्तुलन प्रत्येक अध्याय के भीतर भी बना रहना आवश्यक है। किसी अत्यंत महत्त्वपूर्ण पक्ष को आठ-दस पंक्तियों में लिखकर समाप्त कर देना तथा साधारण से पक्ष को कई पृष्ठों में लिखना भी असन्तुलन के उदाहरण हैं। प्रतिवेदन में कुछ विचार-बिन्दु अथवा शब्द अथवा कथन ऐसे होते हैं जो विशिष्ट होते हैं। उन पर बल देने की आवश्यकता होती है ताकि वे पाठक का ध्यान आकर्षित कर सकें। अत: उन्हें रेखांकित, बड़े अक्षरों में अथवा भिन्न प्रकार के टाइप में लिखना होता है। इस विशिष्टीकरण की प्रक्रिया में भी सन्तुलन होना आवश्यक है। जहाँ बल देना आवश्यक है, वहीं दिया जाना चाहिए। महत्त्वहीन विचारों, कथनों, शब्दों पर बल देना उचित नहीं है।

6. विचारों की एकता एवं स्पष्टता–प्रतिवेदन के सम्पूर्ण विवरण में विचारों एवं सामग्री की एकता एवं स्पष्टता होना अत्यंत आवश्यक है। अनुसंधान के किसी एक पक्ष से संबंधित सभी विचार एक जगह आने चाहिएँ। यदि परिप्रेक्ष्य एक परीक्षा के निर्माण का है तो उसका पूरा विवरण तीसरे अध्याय में एक ही स्थान पर आना चाहिए। जगह-जगह पर उसी अध्याय में अथवा अन्य अध्यायों में उससे संबंधित सामग्री बिखरी हुई नहीं होनी चाहिए। विवरण-प्रस्तुति की यह एकता प्रतिवेदन की स्पष्टता को बढ़ाती है। स्पष्टता प्रतिवेदन-लेखन की सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता होती है।

नोट

7. कुछ अन्य सुझाव–प्रतिवेदन के लेखन में शोधकर्ता को निम्नलिखित बातों को भी ध्यान में रखना चाहिए–

(*i*) प्रतिवेदन लिखने में अन्य पुरुष का प्रयोग किया जाता है, यथा "शोधकर्ता ने अनुभव किया", "मैंने अनुभव किया" नहीं।

(*ii*) प्रतिवेदन के मूलपाठ (text) में शब्द-संक्षेपों (abbreviations) का प्रयोग नहीं किया जाता। फुटनोट, संदर्भ-ग्रन्थ-सूची तथा परिशिष्ट एवं तालिका आदि में उनका प्रयोग वर्जित नहीं है।

(*iii*) प्रतिशत को शब्दों में लिखा जाता है। इस प्रकार (%) नहीं।

(*iv*) वाक्य के आरम्भ में संख्या को शब्दों में लिखा जाता है, अंकों में नहीं।

(*v*) वह संख्या जो 100 से कम होती है, शब्दों में लिखी जाती है, अंकों में नहीं।

(*vi*) पैराग्राफ के बीच में यदि विचारों को क्रमसंख्या देनी होती है तो उस क्रम संख्या को कोष्ठक में लिखा जाता है, यथा (3) अथवा (ग)।

(*vii*) जो कुछ शोधकर्ता अथवा अन्य व्यक्तियों द्वारा पूर्व में किया जा चुका है उसका उल्लेख करते समय भूतकाल का प्रयोग किया जाता है, यथा "न्यादर्श का चयन" समसंभाविक विधि द्वारा किया गया था तथा यह नगर के 110 विद्यालयों पर आधारित था।"

(*viii*) परन्तु जब प्रस्तुत तालिका, शोध के प्रस्तुत परिणाम तथा पूर्व स्थापित एवं सर्वमान्य तथ्यों, नियमों एवं सिद्धांतों के संबंध में उल्लेख किया जाता है तो वर्तमान काल का प्रयोग किया जाता है, यथा "इस तालिका से स्पष्ट है", "स्किनर का पुनर्बलन का सिद्धांत इस बात की ओर संकेत करता है", "विश्लेषण के आधार पर यह परिणाम निकलता है" आदि।

30.3 तालिकाओं एवं आकृतियों की रचना (Construction of Tables and Figures)

प्रत्येक अनुसंधान प्रतिवेदन में तालिकाओं एवं आकृतियों का विषय के स्पष्टीकरण के दृष्टिकोण से बहुत महत्त्व होता है। जो बात कई पैराग्राफ में समझाई जा सकती है वह एक तालिका मात्र के अध्ययन से स्पष्ट हो जाती है। यही बात आकृतियों के विषय में भी कही जाती है। अत: तालिकाओं एवं आकृतियों को प्रतिवेदन में किस प्रकार, टाइप कराना चाहिए। इस बात को शोधकर्ता के लिए जानना आवश्यक है।

(1) तालिकाओं संबंधी नियम–तालिकाओं की रचना से संबंधित कुछ नियम इस प्रकार हैं–

(*i*) एक सुरचित तालिका में बहुत से परस्पर संबंधित तथ्यों को इस प्रकार समाहित किया जाता है कि वह किसी एक मुख्य विचार को प्रदर्शित कर सके, यथा–एक न्यादर्श की कई विशेषताओं को (जैसे, कुल इकाइयों की संख्या, विद्यालयों की संख्या लड़के-लड़कियों की संख्या, उन सबके विभिन्न परीक्षाओं के मापांक आदि) एक ही तालिका में दर्शाया जा सकता है। यदि इनका वर्णन किया जाए तो पूरा एक पैराग्राफ लिखना पड़ेगा।

(*ii*) तालिका इस प्रकार बनाई जानी चाहिए कि उसका अध्ययन करने पर प्रत्येक बात स्वयं समझ में आ जाए अर्थात् उसे स्वव्याख्यात्मक (self-explanatory) होना चाहिए।

(*iii*) साधारण एवं सरल संख्यात्मक तथ्यों को पाठ्यवस्तु (text) के अन्दर ही वर्णनात्मक ढंग से लिख देना चाहिए। उसके लिए तालिका बनाने से कोई लाभ नहीं होता, यथा "कुल 120 विद्यालयों में से 40 विद्यालयों का चयन किया गया तथा इन 40 में से प्रत्येक विद्यालय से 10 प्रतिशत इकाइयों का चयन किया गया।" इतने सरल सत्य को प्रदर्शित करने के लिए तालिका का निर्माण करना उचित नहीं समझा जाता।

नोट

(*iv*) कुछ साधारण प्रकार के सांख्यिकीय तथ्यों को पाठ्यवस्तु के क्रम में ही एक अनौपचारिक तालिका (जिसमें तालिका का शीर्षक, स्तम्भ एवं पंक्तियाँ आदि नहीं होते) के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। एक वाक्य लिखकर और उनके बाद कोलन लगाकर उसके नीचे उसे प्रस्तुत किया जाता है, यथा–कुल लड़के–लड़कियों की संख्या जो इन तीनों परीक्षाओं में सम्मिलित हुए, इस प्रकार थी–

	लड़के	लडकियाँ	कुल
बुद्धि परीक्षा	170	180	250
अभिरुचि	190	80	270
व्यक्तित्व परीक्षा	150	100	250
	510	360	770

इसी प्रकार की तालिका का विषय-सूची (content) में उल्लेख नहीं किया जाता।

(*v*) जिस वाक्य में सदंर्भ के रूप में तालिका की ओर संकेत किया जाता है, उसी वाक्य के बाद तालिका प्रस्तुत की जाती है, उससे पहले कभी प्रस्तुत नहीं की जाती।

(*vi*) यदि तालिका इतनी बड़ी है कि उस वाक्य के पश्चात् वह शेष पृष्ठ पर नहीं आ सकती तो उसे अन्तिम पैराग्राफ के समाप्त होते ही अगले पृष्ठ पर प्रस्तुत करना चाहिए।

(*vii*) यदि तालिका आधे पृष्ठ से बड़ी है तो उसे अकेले ही पूरे पृष्ठ पर बीच में प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

(*viii*) जो तालिकाएँ एक पृष्ठ से भी बड़ी हों उन्हें परिशिष्ट में प्रस्तुत करना चाहिए।

(*ix*) समपूर्ण प्रतिवेदन में आरम्भ से अन्त तक (परिशिष्ट को भी सम्मिलित करते हुए) सभी तालिकाओं की क्रम-संख्या लगातार क्रम में डालनी चाहिए।

(*x*) तालिका की क्रम-संख्या लिखने की दो विधियाँ हैं। एक में सबसे ऊपर केवल तालिका लिखकर उसके आगे अरबी अंकों में उसकी क्रम-संख्या लिखी जाती है तथा उसके नीचे दो स्थान छोड़कर उसका शीर्षक लिखा जाता है। शीर्षक के अन्त में किसी भी विधि में कोई विराम-चिह्न नहीं लगाया जाता। यदि तालिका अंग्रेजी में है तो टेबिल (TABLE) तथा नीचे उसका शीर्षक दोनों कैपिटल अक्षरों में टंकित किए जाते हैं। यदि शीर्षक एक पंक्ति से अधिक बड़ा है तो उसे सिंगिल स्पेस में तथा उल्टे पिरामिड के रूप में टंकित किया जाता है। दूसरी विधि में तालिका की क्रम-संख्या अलग एक लाइन में रखकर शीर्षक वाली पंक्ति के ही आरंभ में लिख दिया जाता है, यथा–

तालिका **10–समूह-क के बुद्धि-परीक्षण-मापांक**

(*xi*) तालिका के स्तंभों एवं पंक्तियों के शीर्षकों को बहुत संक्षेप में लिखना चाहिए तथा उनकी क्रम-संख्या कोष्ठक में उनके नीचे लिखना चाहिए। यदि शीर्षक बड़े हों तो उन्हें चौड़ी तरफ से (broadside) टंकित किया जा सकता है।

(*xii*) तालिका संबंधी फुटनोट तालिका के ठीक नीचे आधा इंच स्थान छोड़कर टंकित किए जाते हैं, पृष्ठ के अन्त में नीचे नहीं।

सावधानी परिशिष्ट में भी मुड़ी हुई तालिका (folded table) नहीं लगानी चाहिए, उसे फोटोकापी द्वारा छोटे आकार में परिवर्तित करा लेना चाहिए।

नोट

(*xiii*) स्तंभों के शीर्षकों के ऊपर एक दोहरी अथवा मोटी क्षैतिज रेखा तथा उनके नीचे सिंगिल रेखा खींची जाती है। तालिका के अंत में नीचे एक सिंगिल क्षैतिज रेखा खींची जाती है।

(2) आकृतियों संबंधी नियम–आकृतियों की प्रस्तुति के संबंध में निम्नलिखित नियम हैं–

(*i*) आकृति की क्रम-संख्या अरबी अंकों में आकृति के नीचे शब्द 'आकृति' (fig.) के आगे डाली जाती है तथा उसका शीर्षक या तो शब्द आकृति के आगे ही उसी पंक्ति में लिखा जाता है अथवा आकृति के ठीक ऊपर अथवा आकृति के भीतर कहीं भी लिखा जा सकता है। सम्पूर्ण प्रतिवेदन में आरंभ से अन्त तक सभी आकृतियों की क्रम-संख्या एक क्रम से लगातार डाली जाती है।

(*ii*) आकृति के शीर्षक को कैपिटल अक्षरों में तथा यदि एक से अधिक पंक्तियाँ हैं तो उल्टे पिरामिड के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। शीर्षक के अन्त में कोई विराम चिह्न नहीं लगाया जाता।

(*iii*) आकृति को उसी वाक्य के तुरंत बाद प्रस्तुत किया जाता है जिसमें उसका संदर्भ-संकेत आया है।

30.4 उद्धरित सामग्री की प्रस्तुति (Presentation of Reference Materials)

प्रतिवेदन में प्रत्येक शोधकर्ता को यत्र-तत्र अनेक लेखकों, शोधकर्ताओं एवं विशेषज्ञों के विचारों, मतों, कथनों आदि का संदर्भ प्रस्तुत करना पड़ता है। प्रत्येक अध्याय में ही ऐसे संदर्भ आते हैं। उन सबकी अलग-अलग संकेत संख्या पाठ्यवस्तु के बीच में जहाँ संदर्भ आया है, प्रस्तुत करनी होती है तथा अन्त में संदर्भ-ग्रन्थ सूची में उसका पूर्ण विवरण देना होता है। कहीं-कहीं पूर्ण विविरण पृष्ठ के नीचे फुटनोट के रूप में भी देते हैं। फुटनोट तथा संदर्भ ग्रन्थ-सूची में संदर्भ के पूर्ण विवरण को प्रस्तुत करने में थोड़ा अन्तर होता है। इसका स्पष्टीकरण बाद में किया गया है।

पाठ्य-वस्तु के बीच में संदर्भ का संकेत अंकित करने की कई विधियाँ हैं। सर्वमान्य विधि वह है जिसमें जहाँ संदर्भ आया है वहीं कोष्ठक में लेखक का नाम और उसके बाद कौमा लगाकर उस ग्रन्थ के प्रकाशन का वर्ष डाल देते हैं, यथा, (भटनागर, 1993)। इन सभी संदर्भित ग्रन्थों की वर्णक्रमानुसार सूची बनाकर शोध-प्रबंध के अन्त में जोड़ देते हैं। दूसरी विधि के अन्तर्गत कोष्ठक में केवल उस क्रम संख्या को लिख देते हैं जो उस ग्रन्थ के अन्त में जुड़ी संदर्भग्रन्थ सूची में है, यथा (60)। इसका अर्थ होगा उस संदर्भ का पूर्ण विवरण संदर्भग्रन्थ सूची में क्रम-संख्या 60 पर दिया गया है। एक तीसरी विधि फुटनोट पर आधारित है। इसके अन्तर्गत पाठ्यवस्तु के बीच में आए संदर्भ पर थोड़ा ऊपर उठाकर फुटनोट की क्रम संख्या अरबी के अंकों में डाल दी जाती है जिसका अर्थ होता है कि उसका पूर्ण विवरण उसी पृष्ठ के नीच उस संख्या वाले फुटनोट में दिया गया है।

उद्धरण (quotations) को प्रतिवेदन के विवरण में प्रस्तुत करने के भी कुछ नियम हैं जो इस प्रकार हैं–

सबसे पहले यह याद रखना चाहिए कि प्रतिवेदन में बहुत अधिक उद्धरणों का प्रयोग करना अच्छा नहीं समझा जाता। अपरिहार्य हो तभी उद्धरण का प्रयोग करना चाहिए। अन्य नियम इस संबंध में नीचे दिए गए हैं।

1. उद्धरण (quotations)

उद्धरण संबंधी कुछ नियम इस प्रकार हैं–

(*i*) उद्धरण बहुत लम्बा नहीं होना चाहिए। छोटा तथा वाक्य के भीतर ही समा जाने वाला उद्धरण सबसे अच्छा समझा जाता है। इसे उद्धरण-चिह्नों के बीच घेर देना चाहिए।

(*ii*) उद्धरण के बीच भी यदि कोई दूसरा उद्धरण आता है तो उसे सिंगिल उद्धरण-चिह्नों के बीच घेर देते हैं।

(*iii*) उद्धरण के अन्तिम शब्द के आधा स्पेस ऊपर अरबी अंक में संदर्भ-संकेत टंकित किया जाता हैं। यदि वाक्य पूरा हो गया है तो यह संकेत-संख्या विराम-चिह्न के बाद ही टंकित की जाती है। यह संकेत संख्या वही होनी चाहिए जो फुटनोट में उसके पूर्ण विवरण की है।

नोट

(*iv*) लम्बे उद्धरणों (चार अथवा चार से अधिक टंकित पंक्तियों वाले) को अलग पैराग्राफ में तथा सिंगिल स्पेस में पृष्ठ के बीचो-बीच बिना उद्धरण चिह्नों के तथा बिना पैराग्राफ बनाए टंकित किया जाता है। इन लम्बे उद्धरणों के भीतर यदि कोई अन्य उद्धरण आता है तो उसे दोहरे उद्धरण चिह्नों के भीतर घेर दिया जाता है। जो असाधारण रूप से लम्बे उद्धरण हैं उन्हें परिशिष्ट में प्रस्तुत किया जाता है।

(*v*) यदि किसी उद्धरण को फुटनोट में प्रस्तुत किया जाता है तो उसे पैराग्राफ के रूप में सिंगिल स्पेस में तथा उद्धरण-चिह्नों के बीच रखा जाता है।

(*vi*) यदि उद्धरण का पहला शब्द व्याकरण के दृष्टिकोण से वाक्य में पहले जो कुछ कहा गया है उससे संबंधित है तो उसे कैपिटल में न लिखकर छोटे अक्षर में लिखा जाता है, चाहे वह मूल वाक्य में कैपिटल में ही क्यों न हों। अंग्रेजी में ही यह प्रश्न उठता है, हिन्दी में ऐसा प्रश्न नहीं उठता।

(*vii*) अन्तिम उद्धरण चिह्नों के पश्चात् केवल एक ही विराम चिह्न का प्रयोग किया जाता है। यदि पूर्ण विराम अथवा कौमा है तो उसे उद्धरण चिह्नों के भीतर, कोलन अथवा सेमीकोलन है तो उद्धरण चिह्नों के बाहर, यदि प्रश्न-चिह्न अथवा संबोधन चिह्न है तो उद्धरण चिह्नों के भीतर रखा जाता है। परन्तु यदि प्रश्न-चिह्न उद्धरण का भाग न होकर वाक्य का अंग है तो उसे उद्धरण चिह्नों के बाहर रखा जाता है।

2. फुटनोट

फुटनोट संबंधी नियम इस प्रकार हैं–

(*i*) फुटनोट पृष्ठ के अन्त में पाठ्यवस्तु के तीन स्पेस नीचे बाएँ से दाएँ टंकित किए जाते हैं। पाठ्यवस्तु के एक स्पेस नीचे एक दो इंच लम्बी रेखा बाई ओर से दाई ओर टंकित की जाती है। उसके दो स्पेस नीचे से फुटनोट टाइप किया जाता है।

(*ii*) फुटनोट सिंगिल स्पेस में टंकित किया जाता है, परन्तु दो फुटनोट के बीच डबल स्पेस छोड़ा जाता है।

(*iii*) फुटनोट की पहली पंक्ति पैराग्राफ की भाँति बाई ओर से तीन स्पेस छोड़कर टंकित की जाती है तथा उसके पहले शब्द के आधा स्पेस ऊपर उसकी प्रोद्धरण (citation) संख्या जो पाठ्यवस्तु में आई है, उसे टंकित किया जाता है।

(*iv*) फुटनोट की संख्या या तो पृष्ठवार डाली जाती है अथवा सम्पूर्ण प्रतिवेदन में आरंभ से अन्त तक एक क्रम में डाली जाती है। पृष्ठवार संख्या डालना अधिक सुविधाजनक होता है।

(*v*) यदि प्रोद्धरित (cited) सामग्री तालिका कोई गणित का सूत्र है तो उस पर उद्धरण संकेत संख्या न डालकर उसे सितारे अथवा किसी अन्य चिह्न द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

(*vi*) शोध-पत्रिकाओं में प्रकाशित लेखों एवं प्रकाशित पुस्तकों तथा प्रतिवेदनों में जो विधि अपनाई जाती है वह शोध-प्रबंध वाली विधि से भिन्न होती है।

(*vii*) यदि एक संदर्भ ग्रन्थ के फुटनोट के तुरंत बाद वही पृष्ठ तथा वही संदर्भ पुनः आता है तो उसकी संदर्भ-संकेत संख्या डालकर केवल 'वही' (lbid) लिख दिया जाता है। यदि सन्दर्भ-सामग्री वही है, परन्तु पृष्ठ संख्या भिन्न है तो वही, पृ. 8 (lbid, p.8) इस प्रकार लिखा जाता है।

(*viii*) यदि किसी फुटनोट का संदर्भ एक बार आ चुका है तथा उसके बाद अन्य फुटनोट आ गए हैं और उनके बाद पुनः वही संदर्भ आए तो फुटनोट में लेखक का नाम, उसके बाद अर्ध-विराम तथा उसके बाद शब्द-संक्षेप 'op. cit.' और उसकी पृष्ठ संख्या लिखी जाती है। यदि किसी एक ही लेखक की एक से अधिक पुस्तकों के उद्धरण शोध-प्रबंध में प्रस्तुत किए गए हैं तो संदर्भ सं संबंधित विशिष्ट पुस्तक का नाम भी प्रत्येक बार दिया जाता है, परन्तु यदि पृष्ठ संख्या वही रहती है तो 'loc. cit.' का प्रयोग किया जाता है।

नोट

इन तीन शब्द-संक्षेपों के प्रयोग का एक नमूना नीचे दिया गया है–

16. पी. भटनागर, व्यवहार विज्ञानों में अनुसंधान के प्रयोगत्मक आकल्प, लायक बुक डिपो, मेरठ, 1993, पृ. 220
17. lbid. (अर्थात् वही पुस्तक, वही पृष्ठ)
18. lbid., पृ. 214
19. मौलि, जार्ज जे., दी साइंस आफ एजुकेशनल रिसर्च, यूरेशिया पब्लिशिंग हाउस, प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1964, पृ. 308
20. भटनागर, loc-cit. (अर्थात् उपरोक्त भटनागर की पुस्तक तथा वही पृष्ठ)
21. वान डालेन, डी. बी. अन्डरस्टेंडिंग एजुकेशनल रिसर्च, मैग्रा-हिल, इंक, न्यूयार्क, 1966, पृ. 360
22. भटनागर, op.cit. 260 (अर्थात् भटनागर की उपरोक्त पुस्तक, परन्तु पृष्ठ 260)
23. आर.पी. भटनागर, शिक्षा प्रशासन, लायल बुक डिपो, मेरठ, 1989, पृ. 52
24. भटनागर, "अनुसंधान के आकल्प" op.cit. पृ. 240

कुछ अन्य अत्यधिक प्रयोग में आने वाले शब्द-संक्षेप नीचे दिए गए हैं। इनका प्रयोग प्रायः ही पुस्तकों एवं शोध -प्रबंधों में किया जाता है।

ch., chap., chaps.	chapter (s)
e.g.	for example
ed., edd.	edition (s)
ed., eds.	editor (s); edited by
et. al.	and other (Bhatnagar et al. भटनागर एवं अन्य)
i.e.	that is
MS, MSS	manuscript (s)
mimeo.	mimeographed
n., nn. फुटनोट	footnote (s) *e.g.*n. 10 or nn. 2-4 अर्थात् फुटनोट 10 अथवा 2 से 4 तक
p.pp.	page (s)
passim	here and there
Pt. Pts.	part or parts
sec., secs.	section (s)
trans.	transted by
rev.	revised or revision

3. संदर्भग्रन्थ-सूची

(क) संदर्भग्रन्थ-सूची शोध-प्रबंध के अन्त में अध्याय "सारांश एवं निष्कर्ष" के बाद प्रस्तुत की जाती है। इसे परिशिष्ट के अन्तर्गत सम्मिलित किया जाता है। फुटनोट तथा संदर्भग्रन्थ-सूची की प्रस्तुति में थोड़ा-सा अन्तर होता है। फुटनोट में लेखक का प्रथम नाम ही पहले आता है तथा अन्तिम उपनाम बाद में आता है, यथा आर.पी. भटनागर। परन्तु संदर्भग्रन्थ-सूची में उपनाम पहले आता है तथा प्रारम्भिक नाम बाद में आता है, यथा भटनागर, आर.पी। दूसरा अन्तर यह होता है कि फुटनोट को पैराग्राफ की भाँति टंकित किया जता है, अर्थात् उसकी प्रथम पंक्ति बाईं ओर

नोट

हाशिये से तीन स्पेस छोड़कर टंकित की जाती है जिससे कि नीचे की अन्य पंक्तियाँ बाईं ओर को निकली रहती हैं। परन्तु संदर्भग्रन्थ-सूची में प्रथम पंक्ति हाशिये से शुरू होती है तथा अन्य नीचे की पंक्तियाँ हाशिये से 3-4 स्पेस छोड़कर टंकित की जाती हैं। इस प्रकार संदर्भग्रन्थ-सूची में प्रथम (ऊपर की) बाईं ओर को निकली रहती है जबकि अन्य पंक्तियाँ दाईं ओर को अन्दर खिसकी रहती हैं। नीचे के उदाहरण से यह स्पष्ट हो जाएगा–

फुटनोट-(पुस्तक के लिए)

आर.पी. भटनागर, **व्यवहार विज्ञानों में अनुसंधानों के आकल्प,** मेरठ: लायल बुक डिपो,

द्वि. सं., 1993 **संदर्भग्रन्थ-सूची**-(पुस्तक के लिए)

भटनागर, आर.पी., **व्यवहार विज्ञानों में अनुसंधान के आकल्प,** मेरठ: लायल बुक डिपो,

द्वि. सं., 1993.

(ख) संदर्भग्रन्थ-सूची में विवरण का पूरा क्रम इस प्रकार होता है–(*i*) लेखक का उपनाम, (*ii*) वास्तविक नाम, (*iii*) पुस्तक का शीर्षक जिसे शोध प्रबंध के टंकन में रेखांकित किया जाता है, (*iv*) संस्करण, (edition) यदि एक से अधिक हों तो, (*v*) खण्ड (volume) यदि एक से अधिक हों तो, (*vi*) प्रकाशन का स्थान, (*vii*) प्रकाशक का नाम, (*viii*) प्रकाशन का वर्ष अथवा कापीराइट का वर्ष।

(ग) किसी पत्रिका में छपे लेख का संदर्भ-विवरण निम्न प्रकार होता है–(*i*) लेखक का उपनाम, (*ii*) वास्तविक नाम, (*iii*) लेख का शीर्षक, (*iv*) पत्रिका का नाम जिसे रेखांकित किया जाता है, (*v*) खण्ड संख्या (माह, दिन, वर्ष), (*vi*) पृष्ठ।

(घ) दैनिक समाचार पत्र में छपी संदर्भ-सामग्री का विवरण इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है–(*i*) समाचार पत्र रेखांकित किया जाता है, (*ii*) माह, दिन, वर्ष, (*iii*) पृष्ठ। यदि लेखक का नाम भी है तो वह पुस्तक की भाँति ही समाचार पत्र के नाम से पहले आता है।

(ङ) अप्रकाशित सामग्री का संदर्भ-विवरण निम्न प्रकार दिया जाता है–(*i*) लेखक उपनाम, (*ii*) वास्तविक नाम, (*iii*) सामग्री का शीर्षक जो रेखांकित किया जाता है, (*iv*) सामग्री का प्रकार अर्थात् पी.एच.डी. थीसिस अथवा रिपोर्ट अथवा किसी कॉन्फ्रेंस में प्रस्तुत किया गया पेपर आदि, (*v*) स्थान जहाँ प्रस्तुत किया गया अथवा जहाँ उपलब्ध है।

संदर्भग्रन्थ-सूची में संदर्भ-विवरण प्रस्तुत संबंधी कुछ नियम इस प्रकार हैं–

(*i*) यदि एक ही लेखक के लगातार दो या दो से अधिक संदर्भ-ग्रन्थ आते हैं तो प्रत्येक बार लेखक का नाम लिखने की आवश्यकता नहीं होती। पहले संदर्भ के बाद जब उसी लेखक का दूसरा संदर्भ आता है तो लेखक के नाम की बजाय एक 6 स्पेस लंबी रेखा खींच दी जाती है। उसके बाद कौमा लगाकर शेष वर्णन प्रस्तुत किया जाता है। प्रथम संदर्भ के बाद आने वाले संदर्भो को वर्णक्रमानुसार प्रस्तुत किया जाता है।

(*ii*) यदि किसी संदर्भग्रन्थ के दो या तीन लेखक हैं तो प्रथम लेखक का उपनाम पहले आता है तथा वास्तविक नाम उसके बाद, परन्तु दूसरे दोनों के वास्तविक नाम ही पहले आते हैं तथा उपनाम बाद में। यदि लेखकों की संख्या तीन से अधिक है तो केवल प्रथम लेखक का नाम देकर उसके बाद अर्धविराम लगाकर et al. अथवा 'अन्य' (and others) लिख दिया जाता है।

(*iii*) यदि पुस्तक का कोई एक लेखक न होकर सम्पादक है तो उसका नाम लिखकर उसके बाद कोष्ठक में संपादक (ed.) लिख देते हैं।

उदाहरण प्रकाशन के स्थान पर केवल शहर का नाम लिखना पर्याप्त होता है, परन्तु यदि वह स्थान ऐसा है जिसे बहुत कम जाना जाता है तो उसका पूरा पता लिखना आवश्यक होता है।

नोट

स्व-मूल्यांकन (Self Assessment)

निम्नलिखित कथनों में सत्य अथवा असत्य की पहचान करें (Stat whether the following Statements are True or False):

4. शोध प्रबंध के तीसरे अध्याय में अनुसंधान प्रक्रिया का वर्णन किया जाता है।
5. अनुसंधान प्रतिवेदन का उद्देश्य होता है पाठकों को अनुसंधान की वस्तुनिष्ठ जानकारी देना।
6. प्रतिवेदन में जो संख्या 100 से कम होती है, अंकों में लिखी जाती है।
7. कोई भी अनुसंधान अपने-आप में पूर्ण होता है।

30.5 परिशिष्टों की प्रस्तुति (Presentation of an Appendix)

प्रत्येक शोध-प्रबंध में तीन प्रकार के परिशिष्ट जोड़े जाते हैं–(*i*) संदर्भग्रन्थ सूची, (*ii*) मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ तथा अन्य उपकरण जिनका प्रयोग शोध-समग्री के संग्रह हेतु किया जाता है तथा (*iii*) सांख्यिकीय सामग्री आदि, यथा विभिन्न परीक्षाओं के मापांक, लम्बी तालिकाएँ आदि जिनको शोध-प्रबंध के अध्यायों में प्रस्तुत नहीं किया जा सका था। इनमें सबसे पहले संदर्भग्रन्थ सूची को रखा जाता हैं। उसके प्रथम पृष्ठ से पहले एक पृष्ठ उपरिपत्र (fly sheet) पर बीच में परिशिष्ट (क): संदर्भग्रन्थ सूची टंकित किया जाता है। अगले पृष्ठ से सूची प्रारंभ होती है। उस पृष्ठ पर भी ऊपर शीर्षक 'संदर्भग्रन्थ सूची' टंकित किया जाता है। पृष्ठांकन अन्तिम अध्याय के अन्तिम पृष्ठ के क्रम में ही किया जाता है। उपरिपत्र (fly sheet) को भी पृष्ठांकन में सम्मिलित किया जाता है। संदर्भग्रन्थ सूची के प्रथम पृष्ठ तथा उपरिपत्र का पृष्ठांक अन्य अध्यायों के शीर्ष-पृष्ठों की भाँति पृष्ठ के सबसे नीचे बीच में डाला जाता है। अन्य सभी परिशिष्टों के साथ भी उपरिपत्र रहता है। उसे भी पृष्ठांकन में सम्मिलित किया जाता है। परिशिष्ट (ख) में मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ एवं उपकरण रहते हैं। इसके उपरिपत्र पर 'परिशिष्ट (ख): परीक्षाएँ एवं उपकरण' टंकित किया जाता है। इसी प्रकार परिशिष्ट-(ग) में सांख्यिकीय एवं अन्य शोध-सामग्री आती हैं। इसके उपरिपत्र (fly sheet) पर परिशिष्ट (ग): शोध सामग्री' टंकित किया जाता है। इसके अन्तर्गत परिणामों की गणना (calculations) देने की आवश्यकता नहीं होती। परन्तु मूल आँकड़े (raw data) अवश्य देना चाहिए। उसके बिना शोध-प्रबंध अपूर्ण माना जाता है।

30.6 प्रतिवेदन का टंकन (Typing of Report)

क्या आप जानते हैं प्रतिवेदन के टंकन हेतु सफेद बोंड मार्का कागज का प्रयोग किया जाता है।

साधारणतया $8\frac{1}{4}$" × 11" आकार के कागज पर टंकन किया जाता है जिसका भार 20 पौंड होना चाहिए। द्वितीय-तृतीय कापी के लिए हल्का कागज भी प्रयोग किया जा सकता है।

प्रतिवेदन किसी अनुभवी टाइपिस्ट से ही टंकित कराना चाहिए जिसने पहले भी कुछ प्रतिवेदन अंकित किए हों तथा जो यह जानता हो कि तालिकाओं, आकृतियों, फुटनोट, संदर्भ-ग्रन्थ-सूची आदि को कैसे टाइप किया जाता है। इसके पश्चात् भी शोधकर्ता को स्वयं भी उसका मार्गदर्शन करते रहना चाहिए। टाइप किए हुए पृष्ठों को साथ-साथ पढ़ते जाना तथा अशुद्धियों को दूर करते जाना चाहिए।

नोट

टाइप करने में पृष्ठ के सबसे ऊपर तथा नीचे $1\frac{1}{4}$" स्थान छोड़ने, बाई ओर $1\frac{1}{2}$" तथा दाई ओर 1" हाशिया छोड़ने की प्रथा है। पाइका टाइप वाले टापराइटर का प्रयोग किए जाने की सिफारिश की जाती है, परन्तु इलैक्ट्रिक टाइपराइटर का प्रयोग भी किया जा सकता है। जिस टाइपराइटर का भी प्रयोग किया जाए, आरंभ से अन्त तक उसी का प्रयोग होना चाहिए। कार्बन कापी की तो अब आवश्यकता रही नहीं है क्योंकि सभी शोधकर्ता फोटोकापी कराने लगे हैं। परन्तु यदि कार्बन कापी करानी हो तो काले कार्बन पेपर तथा मध्यम इंक वाले रिबन का प्रयोग किया जाना चाहिए।

हस्तलिपि को टाइप के लिए देने से पहले उसे अच्छी तरह पढ़ना चाहिए। साधारणतया फुटनोट संदर्भग्रन्थ सूची, उद्धरणों, तालिकाओं एवं आकृतियों के पृष्ठांकनों आदि में अशुद्धियाँ पाई जाती हैं। इन्हें कई बार पढ़कर चैक कर लेना चाहिए।

टाइप किए हुए प्रत्येक पृष्ठ में दो-तीन शुद्धियाँ करना तो मान्य होता है, परन्तु इससे अधिक काटा-पीटी, शब्दों को बढ़ाना अथवा बीच-बीच में वाक्यों को जोड़ना मान्य नहीं होता। ऐसे पृष्ठों को पुनः टाइप कराना चाहिए।

प्रतिवेदन के प्रत्येक पृष्ठ पर नम्बर डाला जाता है। प्रारंभिक आवश्यकताओं वाले पृष्ठों पर रोमन नम्बर डाले जाते हैं तथा उन्हें पृष्ठ के नीचे बीच में डाला जाता है। शीर्ष पृष्ठ (title page) पर नम्बर नहीं डाला जाता, परन्तु उसे एक (I) गिना जाता है। अतः उसके आगे के पृष्ठ पर संख्या II डाली जाती है। अनुमोदन पत्र पर न कोई नम्बर डाला जाता है और न उसे गिना ही जाता है। शेष सभी पृष्ठों पर अरबी अंकों में पृष्ठ के ऊपर दाईं ओर नम्बर डाले जाते हैं, परन्तु प्रत्येक अध्याय के प्रथम पृष्ठ का नम्बर पृष्ठ के सबसे नीचे बीच में डाला जाता है।

30.7 प्रतिवेदन का मूल्यांकन (Evaluation of Report)

प्रतिवेदन का लेखन पूर्ण हो जाने पर तथा उसे टंकन हेतु देने से पूर्व शोधकर्ता को उसका स्वयं मूल्यांकन कर लेना चाहिए। यों मूल्यांकन का कोई सर्वमान्य आधार, उसकी कोई बहुत निश्चित कसौटी तो नहीं है, परन्तु कुछ लेखकों ने इस संबंध में कुछ सुझाव दिए हैं जो शोधकर्ता की सहायता कर सकते हैं। **वान डालेन** ने एक प्रश्नावली अपनी पुस्तक में प्रस्तुत की है। उस प्रश्नावली के प्रश्न शोधकर्ता की यह जानने में सहायता कर सकते हैं कि कहाँ तक उसके द्वारा तैयार किया गया प्रतिवेदन वांछनीय स्तर का है तथा कहाँ उसमें कुछ कमी रह गई है। **वान डालेन** ने शोध-प्रबंध के सभी पहलुओं से संबंधित प्रश्न इसमें सम्मिलित किए हैं। कुछ संशोधन के साथ उसी प्रश्नावली को यहाँ प्रस्तुत किया गया है–

1. समस्या का शीर्षक

(*i*) क्या शीर्षक समस्या के क्षेत्र को सही-सही निश्चित रूप से बताता है?

(*ii*) क्या उसे स्पष्ट, संक्षिप्त एवं वर्णनात्मक रूप में लिखा गया है?

(*iii*) क्या अनावश्यक शब्दों एवं शब्द समूहों को उसमें से निकाल दिया गया है?

2. प्रारंभिक आवश्यकताएँ

(*i*) क्या प्रतिवेदन का शीर्ष पृष्ठ (title page), अनुमोदन पत्र, आभाराभिव्यक्ति विषय-सूची, तालिका-सूची एवं आकृति-सूची सब क्रमानुसार एवं उन नियमों के अनुसार तैयार करके जोड़े गए हैं जिनका उल्लेख पहले किया गया है?

(*ii*) क्या उन सबका पृष्ठांकन सही ढंग से किया गया है?

नोट

3. समस्या-कथन एवं उसका वर्णन

(*i*) क्या समस्या के उन सब पक्षों का विश्लेषण सही-सही किया गया है, जो महत्त्वपूर्ण हैं, यथा–समस्या का पूर्व में हो चुके अनुसंधानों से संबंध, उसके चरों की परिभाषा, समस्या का महत्त्व, उसके उद्देश्य आदि?

(*ii*) समस्यागत चरों के बीच जिस संबंध के होने की कल्पना की गई है, क्या उसकी संभावना का तर्कपूर्ण पुष्टिकरण किया गया है?

(*iii*) क्या समस्या के मौलिक होने का स्पष्टीकरण किया गया है?

(*iv*) क्या समस्या के क्षेत्र-विस्तार (scope) का स्पष्टीकरण किया गया है?

4. संबंधित साहित्य एवं सूचनाओं का सर्वेक्षण

(*i*) क्या समस्यागत चरों से संबंधित पूर्व में हुए अनुसंधान का पूर्णतया सर्वेक्षण कर लिया गया है?

(*ii*) क्या वह सर्वेक्षण आलोचनात्मक दृष्टिकोण से किया गया है?

(*iii*) क्या उस सर्वेक्षण से यह बात निकलकर आई है कि वर्तमान शोध-समस्या पर अनुसंधान किया जाना आवश्यक था?

(*iv*) क्या सर्वेक्षण समस्या को सैद्धांतिक आधार प्रदान करता है?

5. परिकल्पनाओं का निर्माण एवं कथन

(*i*) क्या परिकल्पनाओं का कोई सैद्धांतिक आधार है?

(*ii*) क्या परिकल्पनाओं का परीक्षण किया जा सकता है?

(*iii*) क्या परिकल्पनागत निष्कर्ष (deduced consequences) तर्कपूर्ण हैं?

(*iv*) क्या परिकल्पनाओं को स्पष्ट एवं संक्षेप में लिखा गया है?

6. विधि एवं प्रक्रिया

(*i*) क्या समष्टि (population) को सही ढंग से परिभाषित किया गया है?

(*ii*) क्या न्यादर्श समष्टि का प्रतिनिधित्व करता है?

(*iii*) क्या शोध-सामग्री के संग्रह हेतु उपयुक्त उपकरणों, विश्वसनीय एवं वैध परीक्षाओं का प्रयोग किया गया है।

(*iv*) क्या वे उपकरण एवं परीक्षाएँ अन्य दृष्टिकोणों से भी उपयुक्त हैं?

(*v*) क्या इन उपकरणों एवं परीक्षाओं का सही ढंग से प्रयोग किया गया है?

(*vi*) क्या आवश्यक सामग्री एवं जानकारी, सूचनाएँ आदि एकत्र कर ली गई हैं?

(*vii*) जिस विधि (method) का प्रयोग किया गया है, क्या उसका संतोषजनक कारण प्रस्तुत किया गया है?

(*viii*) क्या पूर्व में किए गए अनुसंधानों में प्रयुक्त विधियों की स्पष्ट रूप से आलोचनात्मक व्याख्या की गई है?

(*ix*) क्या इस बात का उल्लेख किया गया है कि शोध-सामग्री कहाँ से तथा किस प्रकार एकत्र की गई है?

(*x*) क्या सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग में उनकी आधारभूत शर्तों (underlying assumptions) का ध्यान रखा गया है?

(*xi*) क्या अनुसंधान की आन्तरिक एवं बाह्य वैधता को प्रभावित करने वाले तत्वों को नियंत्रित करने का प्रयास किया गया है?

नोट

7. शोध-सामग्री की प्रस्तुति एवं विश्लेषण

(*i*) क्या संग्रहीत शोध-सामग्री का नियमानुसार प्रस्तुतिकरण किया गया है?

(*ii*) क्या प्रत्येक परिकल्पना का परीक्षण स्वतंत्र रूप से किया गया है?

(*iii*) क्या निष्कर्षों की वस्तुनिष्ठ ढंग से पूर्व में किए गए अनुसंधानों की पृष्ठभूमि में व्याख्या की गई है?

(*iv*) क्या परिणाम शोध-सामग्री पर आधारित हैं?

8. सारांश एवं निष्कर्ष

(*i*) क्या सारांश संक्षिप्त एवं स्पष्ट है?

(*ii*) क्या सारांश शोध-कार्य पर आधारित है?

(*iii*) क्या आगामी शोध हेतु दिए गए सुझाव ठोस एवं तर्कपूर्ण हैं?

(*iv*) क्या परिणामों की उपयोगिता की व्याख्या की गई है?

9. संदर्भग्रंथ सूची एवं परिशिष्ट

(*i*) क्या संदर्भग्रंथ-सूची की शैली एवं रचना नियमानुसार हुई है?

(*ii*) क्या सभी संदर्भग्रंथ-सूची में आ गए हैं?

(*iii*) क्या परिशिष्टों में सभी वांछनीय सामग्री प्रस्तुत की जा चुकी है?

10. प्रतिवेदन का रूप एवं शैली

(*i*) क्या अध्यायों का संगठन नियमानुसार हुआ है?

(*ii*) क्या पृष्ठांकन सही हुआ है?

(*iii*) क्या भाषा एवं शैली नियमानुसार है?

(*iv*) क्या प्रत्येक अध्याय में सामग्री का विवरण संतुलित ढंग से प्रस्तुत किया गया है?

(*v*) क्या प्रतिवेदन के टंकन में वे सावधानियाँ बरती गई हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है?

30.8 सारांश (Summary)

- अनुसंधान कार्य पूर्ण हो जाने के बाद सम्पूर्ण विवरण शोध-प्रबंध के रूप में प्रस्तुत करना होता है। शोध-प्रबंध किस रूप में तैयार किया जाना चाहिए, इस संबंध में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर थोड़े हेर-फेर के साथ सर्वमान्य नियमों का पालन किया जाता है।
- प्रत्येक शोध-प्रबंध में अनुसंधान का वर्णन करने से पहले विश्वविद्यालय के नियमों एवं परम्परा के अनुसार कुछ पृष्ठ औपचारिकता के नाते जोड़ने पड़ते हैं। इनमें मुख पृष्ठ, अनुमोदन पत्र, आभाराभिव्यक्ति, प्राक्कथन, विषय-वस्तु (अध्याय सूची), तालिका-सूची एवं आकृति-सूची के पृष्ठ सम्मिलित होते हैं।
- प्रत्येक शोध-प्रबंध में तीन प्रकार के परिशिष्ट जोड़े जाते हैं–(*i*) संदर्भग्रन्थ सूची, (*ii*) मनोवैज्ञानिक परीक्षाएँ तथा (*iii*) सांख्यिकीय सामग्री।
- प्रतिवेदन का लेखन पूर्ण हो जाने पर तथा उसे टंकन हेतु देने से पूर्व शोधकर्ता को उसका स्वयं मूल्यांकन कर लेना चाहिए।

नोट

30.9 शब्दकोश (Keywords)

1. **अनुमोदन**–समर्थन, किसी शोध कार्य को आरम्भ करने से पूर्व उस पर स्वीकृति ले लेना।
2. **परिशिष्ट**–अनुसंधान लेखन के अंत में दी जाने वाली पूरक बातें।

30.10 अभ्यास प्रश्न (Review Questions)

1. विवरण प्रस्तुति की रूपरेखा का वर्णन करें।
2. लेखन शैली से आप क्या समझते हैं तथा इसे किस प्रकार लिखना चाहिये?
3. तालिकाओं एवं आवृत्तियों की रचना कैसे की जाती है?
4. उद्धरित सामग्री की प्रस्तुति कैसे की जाती है?
5. प्रतिवेदन के मूल्यांकन से आप क्या समझते हैं? वर्णन करें।

उत्तर : स्व-मूल्यांकन (Answer: Self Assessment)

1. शोध प्रबंध	2. टंकित	3. प्राक्कथन	4. रोमन
5. सत्य	6. सत्य	7. असत्य	8. असत्य

30.11 संदर्भ पुस्तकें (Further Readings)

पुस्तकें

1. शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली–*एस. कौल, विकास पब्लिशिंग।*
2. शैक्षिक अनुसंधान विधियाँ–*शरीन एवं शशिकला, विनोद पुस्तक मंदिर।*
3. शैक्षिक तकनीकी एवं मूल्यांकन–*डा. रामपाल सिंह, भट्ट ब्रदर्स।*
4. शैक्षिक तकनीकी प्रबंध एवं मूल्यांकन–*जे.सी. अग्रवाल, भट्ट ब्रदर्स।*

LOVELY PROFESSIONAL UNIVERSITY
Jalandhar-Delhi G.T. Road (NH-1)
Phagwara, Punjab (India)-144411
For Enquiry: +91-1824-300360
Fax.: +91-1824-506111
Email: odl@lpu.co.in